



पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमःगम

नमो नमो वाचना निम्नलदंसणस्स शताब्दी वर्ष

वाचना शताब्दी वर्ष वाचना शताब्दी वर्ष वाचना शताब्दी वर्ष

सवृत्तिक-आगम-सूत्राणि-2

7



आगम - ४४ + ४५

“नन्दी” + “अनुयोगद्वार” वृत्तिः

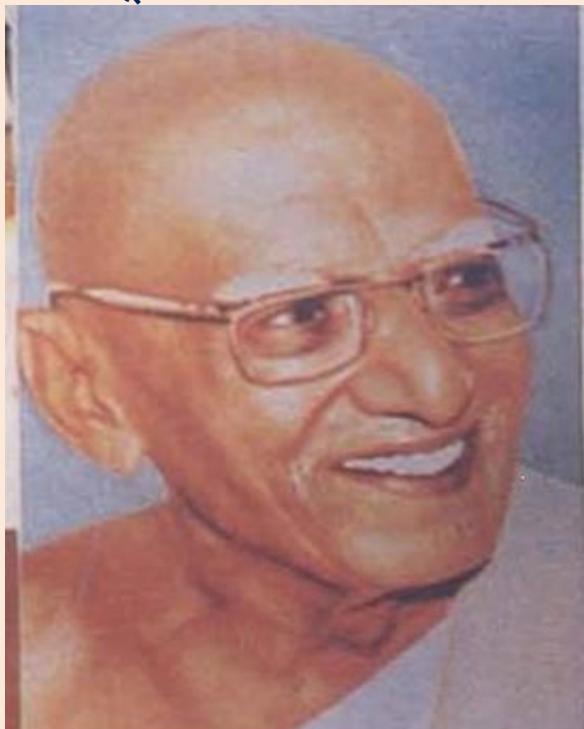
मूल संशोधक :- पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

अभिनव-संकलनकर्ता :- आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्ष]

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी म० की प्रेरणा से
श्री परम आनंद श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघ, पालडी, अमदावाद

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता

सच्चारित्र चूडामणि स्वर्गस्थ पूज्यपाद
गच्छाधिपति आचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागर
सूरीश्वरजी महाराज साहेब



श्री परम आनंद श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघ
वीतराग सोसायटी, प्रभूदास ठक्कर कोलेज रोड, पालड़ी, अमदावाद

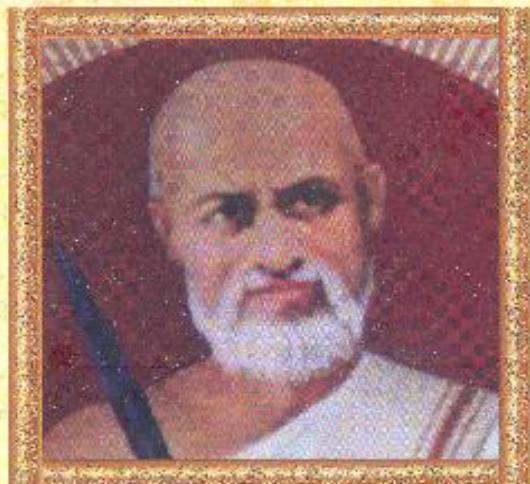
करीब पचास साल पहले परम पूज्य स्वर्गस्थ गच्छाधिपति
आचार्य देव श्रीमद् देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब द्वारा
संस्थापित इस संघमें श्री शीतलनाथ भगवंत का जिनालय भी है,
जिन के प्रतिष्ठाचार्य भी पूज्य देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी म० ही है ।

इस संघमें पूज्य साधू-भगवंत एवं साध्वी-महाराज के लिए
उपाश्रय भी है, जहां हर-साल चातुर्मास करवा के श्रावक-श्राविकाओं
को धर्म-आराधन से लाभान्वित करवाया जाता है । इस संघमें
आयंबिलभवन, उबाला हुआ पानी, ज्ञान-भण्डार एवं पाठशाला की
भी बहोत अच्छी सुविधा प्रदान हो रही है । ऐसे सम्यग्-मार्ग संघ
की सद्वावना और प्रभावक आचार्य पूज्य श्री हर्षसागरसूरिजी म०
की प्रेरणा से इस शास्त्र के लिए अनुदान प्राप्त हुआ है ।

नमो नमो निम्नलदंसणस्स

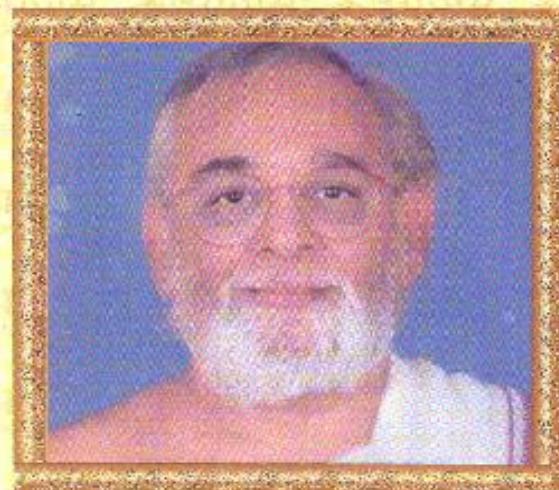
सवृत्तिक-आगम-सूत्राणि-2

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनन्दसागरसूत्रीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता



आगम दिवाकर मुनिश्री दीपक्षनन्दसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्ष]

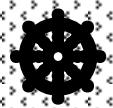
प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका

मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टिंग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275



आठास

वाचना शताब्दी वर्ष



नन्दीसूत्र

एवं



अनुयोगदावार

←[हारिभद्रिया-वृत्ति]→

[४४] श्री नन्दीसूत्रम्

नमो नमो निम्नलदेसणस्स
पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरुङ्यो नमः

“नन्दीसूत्र” मूलं एवं वृत्तिः [हरिभद्रसूरिजी रचिता वृत्तिः]

[आद्य संपादक: - पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म. सा.]
(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

पुनः संकलनकर्ता → मुनि दीपरत्नसागर (M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५.

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि-२-त्रेणी भाग-७

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

<p>आगम (४४)</p> <p>प्रत सूत्रांक [-] गाथा ॥-॥</p> <p>दीप अनुक्रम [-]</p>	<p>[भाग-7] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूल-] / गाथा ॥-॥</p> <div style="text-align: center; border: 2px solid black; border-radius: 10px; padding: 10px; margin: 20px auto; width: fit-content;"> <p style="margin: 0;">श्रीनन्दीसूत्रस्य हारिभद्रीया वृत्तिः ।</p> <p style="margin: 0;">प्रकाशिका—बुहारीवास्तव्यश्रेष्ठिश्वरचंदपन्नाजीवितीर्णकिंचित्साहाय्येन श्रीऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेतांबर संस्था, रतलाम ।</p> <p style="margin: 0;">सुद्रायिता—जैनवन्युभुदणालयाधिपः श्रीजुहारमल मिश्रीलाल पालरेचा इन्दौर</p> <p style="margin: 0;">वीर सं. २४५४ विक्रम सं. १९८४ काइष सन १९२८ पण्यं १-१२-०</p> </div> <p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरजीरचिता वृत्तिः</p> <p>*** ‘नन्दीसूत्र’-हारिभद्रिया वृत्तेः मूल टाईटल पेज</p>

सामाचारी-संरक्षक, ज्ञानधनी, आगम-संशोधक, तीव्र-मेधावी, समाधिमृत्यु-प्राप्त, बहुमुखीप्रतिभाधारक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

◆ जिन्होने शुद्ध-श्रद्धा, सम्यक्-श्रुत आराधना, यथाख्यातचारित्र के प्रति गति और अंत समय देह-ममत्व के त्याग के द्वारा कायोत्सर्ग नामक अभ्यंतर-तप कि मिशाल कायम कि है ऐसे बहुश्रुत आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराज का परिचय कराना मेरे लिए नामुमकिन है, फिर भी गुरुभक्ति बुद्धि से श्रद्धांजली स्वरूप एक मामुली सी झलक पैस करने का यह प्रयास मात्र है।

◆ चारित्र-ग्रहण के बाद अल्प कालमे जो अपने गुरुदेव की छत्रछाया से दूर हो गये, तो भी गुरुदेव के स्वर्ग-गमन को सिर्फ़ कर्मों का प्रभाव मानकर अपने संयम के लक्ष्य प्रति स्थिर रहते हुए अकेले ज्ञान-मार्ग कि साधना के पथ पर चले। पढाई के लिए ही कितने महिनों तक रोज एकासणा तप के साथ बारह किलोमीटर पैदल विहार भी किया। लेकिन अपने मंडिल पे डटे रहे, और परिणाम स्वरूप संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का, प्राचीन लिपिओं का, व्याकरण-न्याय-साहित्य आदि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। जैन आगमशास्त्रों के समुद्र को भी पार कर गए।

◆ एक अकेला आदमी भी क्या नहीं कर शकता? इस प्रश्न का उत्तर हमें इस महापुरुष के जीवन और कवन से मिल गया, जब वे चल पड़े देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के स्थापित पथ पर। बिना किसी सहाय लिए हुए सिर्फ़ अकेले ही “जैन-आगम-शास्त्रो” को दीर्घजीवी बनाने के लिए अनेक हस्तप्रतों से शुद्ध-पाठ तैयार किये। दो वैकल्पिक आगम, कल्पसूत्र और निर्युक्तिओं को जोड़कर ४५ आगम-शास्त्रों को संशोधित कर के संपादित किया। फिर पालीताणामें आगम मंदिर बनवाकर आरस-पत्थर के ऊपर ये सभी आगम-साहित्य को कंडारा, सूरतमें ताम्रपत्र पर भी अंकित करवाए और “आगम मंजूषा” नाम से मुद्रण भी करवा के बड़ी बड़ी पेटीमें रखवा के गाँव गाँव भेज दिए। वर्तमानकालमे सर्व प्रथमबार ऐसा कार्य हुआ।

◆ सिर्फ़ मूल आगम के कार्य से ही उन के कदम रुके नहीं थे, उन्होंने आगमों की वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति, अव चूरी, संस्कृत-छाया आदि का भी संशोधन-सम्पादन किया। उपयोगी विषयों के लिए उन्होंने एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत नए ग्रंथों की रचना भी की। कितने ही ग्रंथों की प्रस्तावना भी लिखी। ये सम्यक्-श्रुत मुद्रित करवाने के लिए आगमोदय समिति, देवचंद लालभाई इत्यादि विभिन्न संस्था की स्थापना भी की।

◆ ज्ञानमार्ग के अलावा सम्मेतशिखर, अंतरीक्षजी, केशरियाजी आदि तीर्थरक्षा कर के सम्यक-दर्शन-आराधना का परिचय भी दिया। राजाओं को प्रतिबोध कर के और वाचनाओं द्वारा अपनी प्रवचन-प्रभावकता भी उजागर करवाई। बालदिक्षा, देवद्रव्य-संरक्षण, तिथि-प्रश्न इत्यादि विषयोंमे सत्य-पक्षमें अंत तक दृढ़ रहे। जैनशासन के लिए जब जरुरत पड़ी तब अदालती कारवाईओं का सामना भी बड़ी निरता से किया था।

◆ सागरानंदजी के नाम से मशहूर हो चुके पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजीने अपने परिवार स्वरूप ७०० साधू-साध्वीजी भी शासन को भेट किये।

...ये थे हमारे गुरुदेव “सागरजी”...

.....मुनि दीपरत्नसागर...

संयमैकलक्षी, उपधान-तप-प्रेरक, चारित्र-मार्ग-रागी, प्रवचन-पटु, सुपरिवार-युक्त

पूज्य गच्छाधिपतिआचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

*** परमपूज्य आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी के पाट-परंपरामे हुए तिसरे गच्छाधिपति थे पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी, जो एक पून्यवान् आत्मा थे, दीक्षा ग्रहण के बाद अल्पकालमे ही एक शिष्य के गुरु बन गये। फिर क्या! शिष्यों कि संख्या बढ़ती चली, बढ़ते हुए पुन्य के साथ-साथ वे आखिर 'गच्छाधिपति' पद पे आरूढ़ हो गए। इस महात्मा का पुन्य सिर्फ शिष्यों तक सिमित नहीं था, वे जहा कहीं भी 'उपधान-तप' की प्रेरणा करते थे, तुरंत ही वहां 'उपधान' हो जाते थे। प्रवचनपटुता एवं पर्षदापुन्य के कारण उन के उपदेश-प्राप्त बहोत आत्माओंने संयम-मार्ग का स्वीकार किया। खुद भी संयमैकलक्षी होने के कारण चारित्रमार्ग के रागी तो थे ही, साथसाथ ज्ञानमार्ग का स्पर्श भी उन का निरंतर रहेता था। आप कभी भी दुपहर को चले जाइए, वे खुद अकेले या शिष्य-परिवार के साथ कोई भी ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापनमें रत दिखाई देंगे।

*** ये तो हमने उनके जीवन के दो-तीन पहेले दिखाए। एक और भी अनुसरणीय बात उन के जीवनमें देखने को मिली थी- 'आराधना-प्रेम'. कैसी भी शारीरिक स्थिति हो, मगर उन्होंने दोनों शाश्वती ओलीजी, [पोष]दशमी, शुक्ल पंचमी, त्रिकाल देववंदन, पर्व या पर्वतिथि के देववंदन आदि आराधना कभी नहीं छोड़ी। आखरी सालोंमें जब उन को एहसास हो गया की अब 'अंतिम-आराधना' का अवसर नजदीक है, तब उन के मुहमें एक ही रटण बारबार चालु हो गया- "अरिहंतनुं शरण, सिद्धनुं शरण, साधुनुं शरण, केवली भगवंते भाखेला धर्मनुं शरण" इसी चार शरणो के रटण के साथ ही वे समाधि-मृत्यु-रूप सम्यक् निद्रा को प्राप्त हुए थे। ऐसे महान् सूरिवर को भावबरी वंदना।

*** मुनि दीपरत्नसागर...

अनुदान दाता संस्था:- “श्री परम-आनंद श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैन संघ”

वीतराग सोसायटी, प्रभूदास ठककर कॉलेज रोड, पालडी, अमदावाद

करीब ५० साल पहले परम पूज्य स्व. गच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमद् देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब द्वारा संस्थापित इस संघमें श्री शीतलनाथ भगवंत का जिनालय भी है, जिन के प्रतिष्ठाचार्य भी पूज्य देवेन्द्रसागरसूरीजी म०सा० ही है। इस संघमें पूज्य साधू भगवंत एवं साध्वीजीओ का उपाश्रय भी है जहा हर-साल चातुर्मास करवाके श्रावक-श्राविकाओं को धर्म-आराधन से लाभान्वित करवाया जाता है। इस संघमें आयंबिलभवन, उबाला हुआ पानी, ज्ञान-भण्डार एवं पाठशाला की भी बहोत अच्छी सुविधा प्रदान हो रही है। ऐसे सम्यग्-मार्गी संघ की सद्गावना और प्रभावक आचार्य पूज्य श्री हर्षसागरसूरिजी म० की प्रेरणा से इस शास्त्र के लिए अनुदान प्राप्त हुआ है।

*** मुनि दीपरत्नसागर...

‘सागर-समुदाय-एकता-संरक्षक, तीर्थ-उद्धार-कार्य-प्रवृत्त, गुणानुरागी’

इस “सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि” श्रेणि भाग १ से ८ के संपूर्ण अनुदान के प्रेरणादाता

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी महाराज साहेब

पूज्यपाद स्व. गच्छाधिपति देवेन्द्रसागर-सूरीश्वरजी के विनयी शिष्य एवं दो गच्छाधिपतिओं के मुख्य सहायक के रूपमें ‘सागर समुदाय’ के सुचारु संचालक पूज्य हर्षसागरसूरिजी, जिन की प्रेरणा से ये “सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि-2” के मुद्रण के लिए संपूर्ण द्रव्यराशि प्राप्त हुई, उनका अत्यल्प परिचय यहां करेंगे। समुदाय-एकता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हुए ये महात्मा समुदाय के साधु-साध्वीजी की आवश्यकताओंकी पूर्ती के लिए भी प्रवृत्त रहते हैं, प्राचीन-अर्वाचीन तीर्थों के जीर्णोद्धार एवं विकाश के लिए भी उत्साहित रहते हैं, ज्ञान-क्षेत्र अछूता न रहे इसीलिए अनुमोदना, अनुदान एवं समय मिलने पर शास्त्र-वाचनमें भी रुचि रखते हैं। समुदाय के जरूरतमंद साध्वीजी भगवंतों के आवास का विषय हो या साध्वीजी के विहारमें मजदूर का वेतन चुकाना हो, ऐसे छोटे-छोटे कार्यों के प्रति भी उन का लक्ष्य रहता है। दर्शन-शुद्धि के लिए जब उन्होंने समग्र भारतवर्ष के १०० साल तक के पुराने जिनालयोंमें १८ अभिषेक की प्रेरणा की, उस वक्त लगभग सभी अभिषेक-सामग्री की द्रव्य-शुद्धि का ख्याल रखते हुए अपनी मेधावी बुद्धि का परिचय दिया था, साथमें अनुकंपा भाव से पुजारी या विधि करानेवाले को यत्किंचित् बहुमान प्रगट करते हुए कुछ धन-राशि प्रदान करवाई।

ऐसे बहुगुण-संपन्न महात्मा पूज्य आचार्यश्री हर्षसागर-सूरिजी को हम भावभरी वंदना करते हुए इस श्रुतकार्य का प्रारंभ करने जा रहे हैं।

*** मुनि दीपरत्नसागर

[काव्रेज]पूना, शंखेश्वर, कपडवंज, प्रभासपाटण आदि स्थानोंमें आगममंदिर के प्रेरक, कर्मग्रंथ अभ्यासु, निस्पृह महात्मा

पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य श्री दौलतसागर-सूरीश्वरजी महाराज साहेब

(एवं) अजातशत्रु, स्वाध्याय-रसिक, प्रशांतमूर्ती और अपने गुरु के प्रीतिपात्र

परम पूज्य आचार्य श्री नंदीवर्धनसागर-सूरिजी महाराज साहेब

इस पवित्र श्रुत-कार्यमें दोनों सूरिवरों का स्मरण करते हुए कोटि कोटि वंदना के साथ

.....मुनि दीपरत्नसागर

[नन्दीसूत्र- मूलं एवं वृत्तिः] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत सबसे पहले “नन्दीसूत्र” के नामसे सन १९२८ (विक्रम संवत १९८४) में ऋषभदेव केशरीमलजी संस्था द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब। मूल संपादकश्रीने तो यहां दो प्रत को मिलाकर एकसाथ मुद्रण करवाया था, (१) चूर्णि और (२) वृत्ति। मगर हमने हमारे प्रकाशनमें चूर्णि को चूर्णि के विभागमें रख दिया और वृत्ति को यहां “आगम-सुत्ताणि-सटीकं”प्रताकार net publications भाग-२ में स्थान दे दिया।

ये ‘हरिभद्रीया-वृत्ति’ तो कदमे छोटी है, मगर ‘नन्दीसूत्र’ पर मलयगिरिजी रचित वृत्ति बहोत बड़ी है, जो हमारे “आगम-सुत्ताणि-सटीकं” प्रताकार net publications भाग-१ में हम मुद्रित करवा चुके हैं।

❖ हमारा ये प्रयास क्यों? ❖ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले, ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोमें १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए है, किन्तु लोगो की पूज्यश्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरूप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया, जिसमें बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर शीर्षस्थानमें आगम का नाम, फिर सूत्र आदि के नंबर लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा सूत्र आदि चल रहे हैं उसका सरलतासे जान हो शके। बायीं तरफ आगम का क्रम और इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है, उसके साथ वहाँ ‘दीप अनुक्रम’ भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर शके।

हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढ़ते हुए ही है, इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए हैं, मगर प्रत में गाथा और सूत्रों के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए हैं और जहां गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची या ‘गाथा’ शब्द लिखा है। हर पृष्ठ के नीचे विशिष्ठ फूटनोट दी है।

❖ शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी म० की प्रेरणासे और श्री परम आनंद श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघ, पालडी, अमदावाद की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये “सवृत्तिक-आगम-सूत्राणि_२” भाग-७ का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते हैं।

.... मुनि दीपरत्नसागर.

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

<p>आगम (४४)</p>	<p>[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं-] / गाथा - </p>																																	
<p>प्रति सूत्रांक [-] गाथा - दीप अनुक्रम [-]</p>	<table border="1" style="width: 100%; border-collapse: collapse;"> <tr> <td style="width: 30%; text-align: center; padding: 5px;"> <p>मुद्रितपूर्वग्रन्थाः।</p> </td><td style="width: 30%; text-align: center; padding: 5px;"> <p>मुद्रयिष्यमाणाः—</p> </td><td style="width: 40%; text-align: center; padding: 5px;"> <p>ग्रातिपादितः, तथा च श्रीमतो हरिभद्रसूते:</p> </td></tr> <tr> <td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>ऐन्द्रस्तुतयः ०-८-०</p> </td><td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>दशवैकालिकचूणिः उत्तराध्ययनचूणिः</p> </td><td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>पूर्वगतकतिचित्सूतार्थधारकता या श्रीम-</p> </td></tr> <tr> <td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>प्रकरणसमुच्चयः १-४-०</p> </td><td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>आचारांगचूणिः</p> </td><td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>द्विरभयदेवद्विरभिः पंचाशकदृत्तौ गदिता</p> </td></tr> <tr> <td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>अनुयोगद्वाराणां चूणिः वृत्तिश्च २-०-०</p> </td><td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>सूत्रकृतांगचूणिः</p> </td><td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>साऽवितयैव, एवं च तेषां पूर्वगतकालास-</p> </td></tr> <tr> <td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>ज्योतिष्करण्डकवृत्तिः ३-८-०</p> </td><td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>प्राप्तिस्थानं—</p> </td><td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>अकालभावितया श्रीवीरहायनः पंचपंचा-</p> </td></tr> <tr> <td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>पंचाशकाद्यष्टशास्त्रीमूलं ४-०-०</p> </td><td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>श्री कृष्णभद्रेकजी केशरीमलजी,</p> </td><td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>शदधिकर्वप्ससहस्रलक्षणं एव सन्तासमयो</p> </td></tr> <tr> <td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>प्रत्याख्यानादि १-४-०</p> </td><td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>पेढी रतलाम.</p> </td><td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>योग्यः, एकादशशताब्द्यां भाविनो जिनभद्रा</p> </td></tr> <tr> <td style="text-align: center; padding: 5px;"> <p>मुद्रमाणाः</p> </td><td style="text-align: center; padding: 5px;"> <p>श्रीहरिभद्रसूरिसमयप्रकाशः</p> </td><td style="text-align: center; padding: 5px;"> <p>ध्यानशतकादिविधायिभ्योऽन्ये एवेति श्री-</p> </td></tr> <tr> <td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>आवश्यकचूणिः</p> </td><td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>श्रीमता हरिभद्रसूरिणा पूर्वगतव्या-</p> </td><td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>वर्षसागरैः स्वयमेव तत्रैव पद्मावत्यां</p> </td></tr> <tr> <td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>वन्दारुद्वृत्तिः</p> </td><td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>ख्याने पूर्वगतानां ग्रायो व्यवच्छिन्नत्वम्-</p> </td><td style="text-align: right; padding: 5px;"> <p>ख्यातं तत्र दृष्टचरं कैश्चित्तदाश्रयं, नन्दी-</p> </td></tr> <tr> <td style="text-align: center; padding: 5px;"> <p>——</p> </td><td style="text-align: center; padding: 5px;"> <p>भिहितं, परिकर्मादीनां च समूलं उच्छेदः</p> </td><td style="text-align: center; padding: 5px;"> <p>चूणिकालस्तु लेखकादिलिखित इति न</p> </td></tr> </table>	<p>मुद्रितपूर्वग्रन्थाः।</p>	<p>मुद्रयिष्यमाणाः—</p>	<p>ग्रातिपादितः, तथा च श्रीमतो हरिभद्रसूते:</p>	<p>ऐन्द्रस्तुतयः ०-८-०</p>	<p>दशवैकालिकचूणिः उत्तराध्ययनचूणिः</p>	<p>पूर्वगतकतिचित्सूतार्थधारकता या श्रीम-</p>	<p>प्रकरणसमुच्चयः १-४-०</p>	<p>आचारांगचूणिः</p>	<p>द्विरभयदेवद्विरभिः पंचाशकदृत्तौ गदिता</p>	<p>अनुयोगद्वाराणां चूणिः वृत्तिश्च २-०-०</p>	<p>सूत्रकृतांगचूणिः</p>	<p>साऽवितयैव, एवं च तेषां पूर्वगतकालास-</p>	<p>ज्योतिष्करण्डकवृत्तिः ३-८-०</p>	<p>प्राप्तिस्थानं—</p>	<p>अकालभावितया श्रीवीरहायनः पंचपंचा-</p>	<p>पंचाशकाद्यष्टशास्त्रीमूलं ४-०-०</p>	<p>श्री कृष्णभद्रेकजी केशरीमलजी,</p>	<p>शदधिकर्वप्ससहस्रलक्षणं एव सन्तासमयो</p>	<p>प्रत्याख्यानादि १-४-०</p>	<p>पेढी रतलाम.</p>	<p>योग्यः, एकादशशताब्द्यां भाविनो जिनभद्रा</p>	<p>मुद्रमाणाः</p>	<p>श्रीहरिभद्रसूरिसमयप्रकाशः</p>	<p>ध्यानशतकादिविधायिभ्योऽन्ये एवेति श्री-</p>	<p>आवश्यकचूणिः</p>	<p>श्रीमता हरिभद्रसूरिणा पूर्वगतव्या-</p>	<p>वर्षसागरैः स्वयमेव तत्रैव पद्मावत्यां</p>	<p>वन्दारुद्वृत्तिः</p>	<p>ख्याने पूर्वगतानां ग्रायो व्यवच्छिन्नत्वम्-</p>	<p>ख्यातं तत्र दृष्टचरं कैश्चित्तदाश्रयं, नन्दी-</p>	<p>——</p>	<p>भिहितं, परिकर्मादीनां च समूलं उच्छेदः</p>	<p>चूणिकालस्तु लेखकादिलिखित इति न</p>
<p>मुद्रितपूर्वग्रन्थाः।</p>	<p>मुद्रयिष्यमाणाः—</p>	<p>ग्रातिपादितः, तथा च श्रीमतो हरिभद्रसूते:</p>																																
<p>ऐन्द्रस्तुतयः ०-८-०</p>	<p>दशवैकालिकचूणिः उत्तराध्ययनचूणिः</p>	<p>पूर्वगतकतिचित्सूतार्थधारकता या श्रीम-</p>																																
<p>प्रकरणसमुच्चयः १-४-०</p>	<p>आचारांगचूणिः</p>	<p>द्विरभयदेवद्विरभिः पंचाशकदृत्तौ गदिता</p>																																
<p>अनुयोगद्वाराणां चूणिः वृत्तिश्च २-०-०</p>	<p>सूत्रकृतांगचूणिः</p>	<p>साऽवितयैव, एवं च तेषां पूर्वगतकालास-</p>																																
<p>ज्योतिष्करण्डकवृत्तिः ३-८-०</p>	<p>प्राप्तिस्थानं—</p>	<p>अकालभावितया श्रीवीरहायनः पंचपंचा-</p>																																
<p>पंचाशकाद्यष्टशास्त्रीमूलं ४-०-०</p>	<p>श्री कृष्णभद्रेकजी केशरीमलजी,</p>	<p>शदधिकर्वप्ससहस्रलक्षणं एव सन्तासमयो</p>																																
<p>प्रत्याख्यानादि १-४-०</p>	<p>पेढी रतलाम.</p>	<p>योग्यः, एकादशशताब्द्यां भाविनो जिनभद्रा</p>																																
<p>मुद्रमाणाः</p>	<p>श्रीहरिभद्रसूरिसमयप्रकाशः</p>	<p>ध्यानशतकादिविधायिभ्योऽन्ये एवेति श्री-</p>																																
<p>आवश्यकचूणिः</p>	<p>श्रीमता हरिभद्रसूरिणा पूर्वगतव्या-</p>	<p>वर्षसागरैः स्वयमेव तत्रैव पद्मावत्यां</p>																																
<p>वन्दारुद्वृत्तिः</p>	<p>ख्याने पूर्वगतानां ग्रायो व्यवच्छिन्नत्वम्-</p>	<p>ख्यातं तत्र दृष्टचरं कैश्चित्तदाश्रयं, नन्दी-</p>																																
<p>——</p>	<p>भिहितं, परिकर्मादीनां च समूलं उच्छेदः</p>	<p>चूणिकालस्तु लेखकादिलिखित इति न</p>																																
<p>पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p>	<p>*** पूज्यपाद् आनंदसागरसूरीश्वरेण दर्शितः हरिभद्रसूरः काल-समय</p>																																	

<p>आगम (४४)</p> <p>प्रत सूत्रांक [—] गाथा - </p> <p>दीप अनुक्रम [—]</p>	<p>[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [—] / गाथा - </p> <p>॥ नमः सर्वज्ञाय ॥</p> <h2 style="text-align: center;">श्रीमद्भर्मद्रसूरिसूत्रिता नन्दीवृत्तिः</h2> <p>जयति भुवनैकभानुः सर्वत्राविहतकेवलालोकः । नित्योदितः स्थिरस्तापवर्जितो वर्द्धमानजिनः ॥ १ ॥</p> <p>इह सर्वेणैव संसारिणा सच्चेन नारकतिर्यज्ञनरामरगतिनिवन्धनानेकशारीरमानसातितीवतरदुःखौषसङ्खातपीडितेन जातिजरा-मरणशोकरोगाद्युपद्रववातरहितनिरतिशयालोकसुखस्थावापवर्गगतिसम्बवे सति पीडानिर्वेदात् तत्परित्यागाय निरतिशयालोक-सुखाभिलाषाच्च तदवासये आत्मपरतुल्यचित्तेन सर्वथा स्वपरोपकाराय प्रवर्त्तितव्यमिति, तत्रान्यथरिक्षणादिना परोपकारस्पूर्वक एवात्मोपकार इति विशेषतस्तत्र, स पुनः परोपकारो द्विघाद्वयतो भावतश्च, तत्र द्वयतो भोजनादिविचित्रविभवप्रदानजनितः, अयं चानेकान्तिकोऽनात्यन्तिकथ, भावतस्तु सद्भवप्रदानजनितः, अयं चैकान्तिकस्तथा आत्यन्तिकथ, सद्भवश्च श्रुतधर्मचारिन्धर्मभेदाद् द्विभेदः, तत्र श्रुतधर्मो जिनवचनस्थाध्यायः, चारित्रधर्मस्तु तदुक्तः श्रमणधर्म इति, उक्तश्च-“सुयधम्मो सज्जाओ चारित्यधम्मो समणधम्मो ।” तत्र श्रुतधर्मसम्प्रत्यसमन्विता एव ग्रायश्चरित्रधर्मग्रहणपरिपालनसमर्था भवन्तीति तत्प्रदानमेवादौ न्यायमिति, तत्रापि श्रुतप्रदाने सत्यपि नाविज्ञातार्थादेव तस्मादभिलिप्तिर्थावास्तः प्राणिनामित्यतः प्रारम्भते अर्हद्वनानुयोगः, अयं च</p> <p>ग्रस्तावना</p> <p>॥ १ ॥</p>
	<p>पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>*** वर्द्धमानजिनेश्वरस्य स्तुतिः</p>

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [] / गाथा -
<p>प्रति सूत्रांक [-]</p> <p>गाथा - </p> <p>दीप अनुक्रम [-]</p>	<p>नन्दी- हारिमद्रिय वृत्ती ॥ २ ॥</p> <p>परमपदप्राप्तिहेतुत्वाच्छ्रेयोभूतो वर्तते, श्रेयांसि बहुविज्ञानि भवन्ति, यथोक्तम्-“श्रेयांसि बहुविज्ञानि, भवन्ति महतामपि । अश्रेयासि प्रवृत्तानां, कापि यान्ति विनायका ॥१॥” इति, अतोऽस्य प्रारम्भ एव विघ्नविनायकोपशान्तये मङ्गलाधिकारे नन्दिवृत्तिः । अथ नन्दिरिति कः शब्दार्थः? उच्यते, ‘दुण्डि समुद्रा’ वित्यस्य धातोः ‘इदितो तुम् धातो’ रिति (७-१-५८) तुमि विहितेऽनुबन्धलोपे च कृते उणादिकः इन् प्रत्ययो विधोयते, ‘इन् सर्वधातुभ्य’ इति वचनाद्, अनुबन्धलोपे च कृते सति नन्दिं, सो रुखं विसर्जनीयत्वे ते नन्दिः, नन्दनं नन्दिः नन्दन्त्यनेनेति वा नन्दन्त्यस्मिन्निति वा नन्दयतीति वा तदभेदोपचारान्वन्दिः हर्षः प्रमोद इत्यनर्थान्तरं, ‘ताभ्यामन्यत्रोणादय’ इति वचनाद् ताभ्यामिति सम्प्रदानापादानाभ्यां अन्यत्र उणादयः प्रत्यया भवन्ति, अन्ये तु नन्दीत्यभिदधिति, तत्रापि नन्दिस्थिते ‘इक् कृष्णादिभ्य’ इति (उणा.) इक् प्रत्ययः, स च ‘कृत्यलुटो बहुल’ (३-३-११३) मिति वचनाद्वावे करणे वा अवगान्तव्य इति, ततः ‘कृदिकारादस्त्विनः, (वात्तिकं) ‘सर्वतोऽक्षिष्ठर्थादित्येक’ इति स्त्रीप्रत्ययः, अस्य भावार्थः कृदिकारान्तो यः शब्दः क्तिन् वाजिंतस्तस्मात् स्त्रीप्रत्ययो भवति, अपरे तु सर्वतः अक्षिष्ठर्थादिकारान्तात् स्त्रीप्रत्ययो भवतीति मन्यन्ते, अनुबन्धलोपे च कृते ‘यस्ये’ (६-४-१४८) तीकारलोपे च नन्दीति रूपं भवति, नन्दनं नन्दी नन्दन्त्यनयेति वा भव्याः प्राणिन इति नन्दी, इत्यलमप्रस्तुतातिप्रसङ्गेति ।</p> <p>अयं च नन्दिश्वतुविधः, तथा- नामनन्दिः स्थापनानन्दिः द्रव्यनन्दिः भावनन्दिश्वेति, तत्र नामस्थापने प्रकटार्थे, द्रव्यनन्दिश्वाधा-आगमतो नोआगमतश्च, तत्रागमतो नन्दिपदार्थज्ञः तत्र च अनुपयुक्तः ‘अनुपयोगो द्रव्य’ मिति वचनात्, नोआगमतस्तु झशरीरद्रव्यनन्दिः भव्यशरीरद्रव्यनन्दिः झशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तश्च द्रव्यनन्दिः, तत्र झशरीरद्रव्यनन्दिः नन्दिपदार्थज्ञस्य</p> <p>नन्द्याः शब्दार्थः निक्षेपात्</p> <p>॥ २ ॥</p>
	<p>पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>*** नन्दीसूतस्य अर्थ एवं निक्षेपा:</p>

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [] / गाथा ||१||

प्रति
सूत्रांक
[-]
गाथा
||१||

दीप
अनुक्रम
[१]

नन्दी-
हारिमद्रिष्ट
शृणौ
॥ ३ ॥

शरीरं जीवविग्रहुकं अनुभूतनंदिभावत्वात्, पश्चात्कृतभावस्य द्रव्यत्वात्, यथोक्तम्—“भूतस्य भाविनो वा भावस्य हि कारणं तु यस्तोके। तद्द्रव्यं तत्त्वज्ञैः सचेतनाचेतनं कथितम् ॥ १ ॥” भव्यशरीरद्रव्यनंदिश नन्दिपदार्थपरिज्ञानभाव-योग्यं बालादिशरीरं, पुरस्कृतभावत्वादस्य, व्यतिरिक्तः पुनः क्रियाविष्टो द्वादशविधस्तूर्याङ्गसङ्घातोऽयम्-तद्यथा-भेदा १ मउंद २ महल ३ कडेच ४ शङ्खारि ५ हुडुकक ६ कंसाला ७ । काहल ८ तलिमा ९ वंसो १० संखो ११ पण्वो १२ य बारसमो ॥ १ ॥” भावनन्दिरपि द्विवैव-आगमतो नोआगमतश्च, तत्रागमतो भावनन्दिः नन्दिपदार्थज्ञस्तत्र चोपयुक्तः, ‘उपयोगो भाव’इतिकृत्वा, नोआगमतस्तु भावनन्दिः पञ्चप्रकारज्ञानसमुदायः, नोशब्दो देशवचनः, अथवा पञ्चप्रकारज्ञानस्वरूपप्रतिपादकोऽव्ययनविशेषः, नोशब्दो देशवचन एव ॥ अर्यं चाध्ययनविशेषः श्रुतांशेन सर्वश्रुताभ्यन्तरभूतो वर्तते, अत एव सर्वश्रुतारम्भेष्व विद्यनविनायकोपशान्तये मङ्गलार्थमभिधीयत इति, अस्य च मंगलस्थानावसरग्रासस्य सत आचार्याः विनेयानां स्त्रीरथगौरवोत्पादनार्थ-मविच्छेदेन सन्तानागतस्तत्रार्थेपददर्शनार्थं चादावेवाबलिकामभिधाय व्याख्यानाय यतन्ते, सर्वे श्रुतार्थाश्च यतस्तीर्थकरप्रभवा अतः प्रज्ञापकश्रावकपाठकाः अभिलषितार्थसिद्धये प्रवर्चमानाः प्रधानोन्यायत्वाद्गगवद एव नमस्कारपूर्वकं प्रवर्चन्त इत्यत आह ग्रंथकारः-

जयति०गाथा॥(*१-२ पञ्चे)॥ इन्द्रियविषयकपायघातिकर्मभवोपग्राहिकर्मशब्दुगणजयाज्जयतीत्युच्यते, किंविशिष्टो जयति॒-जगज्जीवयोनिविज्ञायकः, इह जगच्छब्देन सकलधर्माधर्मोकाशपुद्रलास्तिकायपरिग्रहः, जीवशब्देन तु सकलजीवास्तिकायपरिग्रहः, उक्तं च-“जगन्ति जंगमान्याहुः, जगद्भैर्यं चराचरम्”योनयः-सचिच्चाद्याः, उक्तच्च-‘सचिच्चशीतसंवृत्तेतरभिश्रास्तद्योनयः’(तत्त्व० २-३३)

नन्दा
निक्षेपाः

॥ ३ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरजीरचिता वृत्तिः

*** अत्र मूल नन्दीसूत्रस्य आरंभः जिन-स्तुति द्वारा क्रियते

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [] / गाथा ||१||

प्रति
सूत्रांक
[-]
गाथा
||१||

दीप
अनुक्रम
[१]

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ती
॥ ४ ॥

जीवोत्थत्तिस्थानानीत्यर्थः; ‘यु मिश्रणे’ युवन्ति-तैजसकार्मणशरीरवन्तः सन्तः ओदारिकादिशरीरेण मिश्रीभवन्त्यस्यामिति योनिः; उक्तच-‘जोएण कम्मएण आहोरेह अणंतरं जीवो । तेण परं मसिणं जाव सरीरस्स निष्फक्ती ॥ १ ॥’ ततश्च जगच्च जीवाश्च योनि-यश्च जगज्जीवयोनयः विविधम्-अनेकघोत्पादाद्यनन्तधर्मात्मकं जानातीति विज्ञायकः जगज्जीवयोनीनां विज्ञायक २ इति समाप्तः; अनेन केवलज्ञानप्रतिपादनात् स्वार्थसम्पदमाह । तथा जगद् गृणातीति जगद्गुरुः, यथोपलब्धजगद्गुरेति भावना, अनेनापि स्वार्थसम्पदमेवाह । तथा जगदानन्दः इह जगच्छब्देन संज्ञिजड्गमपरिग्रहः, तेषां सद्गमदेशनाद्वारेणानन्दहेतुत्वादैहिकामुष्मिकप्रमोदकारणत्वात् जगदानन्द इत्यनेन परार्थसम्पदमाह, तथा ‘जगज्ञाथ’ इह जगच्छब्देन सकलचराचरपरिग्रहः तस्य यथावस्थित-स्वरूपप्ररूपणद्वारेण वितथग्ररूपणापायेभ्यः पालनात् नाथवक्षाथ इति, अनेनापि परार्थसम्पदमिति । तथा जगद्गुरुः इह जगच्छब्देन सकलप्राणिपरिग्रहस्तदव्यापादनोपदेशप्रणयनेन सुखस्थापकत्वाद् बन्धुवत् बन्धुः, तथा चोक्तम्-‘सब्वे पाणा सब्वे भूया सब्वे जीवा सब्वे सत्ता ण हंतच्चा ण अज्जावेयव्वा ण परितावेयव्वा ण उवद्वेयव्वा, एस धम्मे धुवे पितीए सासते समेच्च लोयं खेद-पणेहि पवेदिते’ इत्यादि, अनेनापि परार्थसम्पदमिति । तथा ‘जयति जगत्पितामह’ इति, इह जगच्छब्देन सकलसत्त्वपरिग्रह एव, तेषां च कुगतिगमनभयापायरक्षणात् पिता धर्मो वर्तते, अतो जगत्पितामहः, तथोक्तम्-‘दुर्गतिप्रस्त्रतान् जीवान्, यस्माद्वा-रयते ततः । धत्ते चैतान् शुभे स्थाने, तस्माद्वर्म इति स्मृतः ॥ १ ॥’ तस्यापि चार्थप्रणेतृत्वेन भगवान् पिता वर्तते, अतो जगच्छ-पितामह इति, स्ववाचिकाराच्च तुनः क्रियाभिधानमदृष्ट, उक्तच-‘सज्जायज्ञाणतवयोसहेसु उवएसयुइपयाणेसु । सन्तगुणकिञ्च-णेसु य न होति पुणरुचदोसा अो ॥ १ ॥’ अनेनापि परार्थसम्पदमाह । भगवानिति भगः-समग्रैश्वर्यादिलक्षणः; तथा चोक्तम्-

जिन-
स्तुतिः

॥ ४ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [] / गाथा ||२||

प्रति
सूत्रांक
[-]
गाथा
||२||

नन्दी-
हारिभद्रीय
इत्तौ
॥ ५ ॥

‘ऐर्वर्षस्य समग्रस्य, रूपस्य यशसः श्रियः । धर्मस्याथ प्रयत्नस्य, पण्णां भग इतींगना ॥१॥’ भगोऽस्यास्तीति भगवानिति, अनेन चोभयसम्यदमाह, स्यपरोपकारित्वादैश्वर्यादेरित्यलं प्रसङ्गेनेति गाथार्थः ॥ १ ॥ ‘व्याख्यानयन्ति केचित् स्तुतिमेनाभन्वथापि विद्वांसः । तत्राप्यपौनस्त्वयं सूक्ष्मधिया चिन्तनीयमिति ॥१॥’ एवं तावदनादिभन्तो भतास्तीर्थकरा इति ज्ञापनार्थं सामान्येन नमस्कारमभिधाय साभ्रतमासश्चोपकारित्वात् सकलदुःखपरमोपध्यभूतप्रवचनप्रणेतृत्वाद्वर्त्तमानतीर्थाधिपतेः नमस्कारं प्रतिपादयन्नाह-

जयति सु० गाहा ॥ (* २-१५) ॥ जयतीति पूर्ववत्, श्रुतानां-आचारादिभेदभिज्ञानां प्रभवः प्रभवन्यस्मादिति प्रभवः, तदर्थभिधायकत्वात्, कारणमित्यर्थः, ऋषभादयोऽप्येवंभूता एव अत आह-तीर्थकराणामपश्चिमो जयति, तत्र तीर्थकरणशीला-स्तीर्थकरास्तेवां तीर्थकराणां भरते अधिकृतावसर्पिष्यां पश्चिम एवानिष्टशब्दयरिहारार्थमपश्चिम इत्युच्यते, पश्चानुपूर्व्या वा पश्चिम-इति, जयति गुरुलोकानां गृणाति शास्त्रार्थमिति गुरुः, लोकानां इति-सत्त्वानां, जयति महात्मा अनन्तज्ञानवीर्ययुक्तत्वान्महानां-त्पा यस्य स महात्मा, महावीर इति ‘धूर वीर विक्रान्ता’ विति कषायादिशब्दयान्महाविक्रान्तो महावीरः, ‘ईर गतिप्रेरणयो’ रित्यस्य वा विपूर्वस्य विशेषण ईरयति कर्म गमयति याति वेह शिवमिति वीरः, महाँश्चासौ वीरश्च महावीर इति गाथार्थः ॥

भद्रं०गाहा(*३-२३)‘भद्रं’ कल्याणं भवतु, कस्य ?-सर्वजगदुद्योतकस्येत्यनेन ज्ञानातिशयमाह, इह च “चतुर्थीं चाशिष्यायु-
ष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहैतै” रिति(३-३-७३) वचनात् पृष्ठयपि भवत्येव, यथा आयुष्यं देवदत्तायायुष्यं देवदत्तस्येति, एवं भद्रादिष्वपि

श्री
वीरजिन
स्तुतिः

॥ ५ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** अत्र वीर जिनेश्वरस्य स्तुतिः क्रियते

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [] / गाथा ||३||

प्रति
सूत्रांक
[-]
गाथा
||३||

दीप
अनुक्रम
[३]

नन्दी-
हरिमद्रीय
बृत्ता
॥ ६ ॥

वक्तव्यमिति, भद्रं जिनस्य ‘जिं जये’ अस्य औणादिकनक्षप्रत्ययान्तस्य जिन इति भवति, रागादिजयाज्जिन इति, अनेनाणागातिशयमाह, अपायो-विश्लेषः रागादिभिः सार्वमात्यन्तिकवियोग इत्यर्थः, आह-अपायातिशये सति ज्ञानातिशयभावाद् व्यतिक्रमः किमर्थैः, फलप्रधानाः समारम्भा इति ज्ञापनार्थं, भद्रं सुरासुरनमस्कृतस्येत्यनेन पूजातिशयमाह, नहि विभवानुरूपां पूजामङ्गत्वैव सुरासुरा नमस्कारक्षियायां प्रवर्त्तन्त इति, उक्तं च-“अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिदिव्यो ध्वनिश्चामरमासनं च । भासण्डलं हुन्दु-मिरातपत्रं, सत्प्रतिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥१॥” इति, पूजातिशयान्यथाऽनुपपत्यैव वागतिशयो गम्यते, भद्रं धुतरजस इत्यनेन सकलसंसारिक्षेशविनिर्मुक्तां सिद्धावस्थामेवाह, यतो वध्यमानं कर्म रजो भग्यते, तदभावस्त्वयोगिसिद्धानामेव, न पुनरन्येषां, यत आह-“जीवे ण एस जीवे एयइ वेदति चलइ कंदइ ताव ण अट्ठविहवंधए वा सत्तविहवंधए वा छच्चिहवंधए वा एगविहवंधए वा” इत्यादि, तत्थ “सत्तविहवंधगा हाँति पाणिणो आउवज्जगाणं तु । तह सुहुमसम्पराया छाच्चिहवंधा विणिद्वा ॥१॥ मोहाउगवज्जाणं पगडीणं ते उ बंधगा भणिया । उवसन्तखीणमोहा केवलिणो एगविहवंधा ॥२॥ ते उण दुसम्याठिइत्सस बंधगा ण उण संपरायस्स । सेलेसि पडिवक्षा अबंधगा हाँति विक्षेया ॥३॥” आह-भगवतः संसारतीतत्वात् परमकल्याणस्पत्वात् किमेवमुच्यते-भद्रं भवतु, न च स्तोत्रा भणितं सर्वमेव भवतीति, अत्रोच्यते, सत्यमेतत्, तथापि कुशलमनोवाकायप्रशृतिकारणत्वात् दोष इत्यर्थं प्रसङ्गेनेति गाथार्थः ॥२॥ एवं तावसीर्थकरनमस्कारः प्रतिपादिताः, साम्रतं तीर्थकरानन्तरः सङ्घ इतिकृत्वा तीर्थान्तरग्रामव्युदासेन नगररूपेण तदसंस्तवं कुर्वन्नाह-

गुण० गाहा (* ४-४२) ‘गुणभवनगहन’ इह गुणाः पिण्डविशुद्धयादयः उत्तरगुणा आभिगृह्णन्ते, यथोक्तम्-“पिण्डस्स

सर्व-
जिनस्तुतिः

॥ ६ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [] / गाथा ४,५
<p>प्रति सूत्रांक [-] गाथा ४-५ </p> <p>दीप अनुक्रम [४-५]</p>	<p>नन्दी- हरिभद्रीय इच्छा ॥५॥</p> <p>जा विसोही समितीओ भावणा तबो दुक्षिहो । पडिमा आभिगहाविय उत्तरगुणमो वियाणाहि ॥१॥” एत एव भवनानि एभिगह- ने-अनुरत्वादुत्तरगुणानामेभिः सङ्कुलं, सङ्ख्यनगरमभिगृह्यते, तस्यामन्त्रणं हे गुणभवनगहन !, तथा श्रुतरत्वभूत् श्रुतान्वेव आचारादीनि निरूपमसुखहेतुत्वाद्रत्वानि तैभृतं-पूरितमित्यर्थः तस्यामन्त्रणं, तथा दर्शनविशुद्धरथ्याक, इह दर्शने-प्रश्नमसंवेगनिर्वेदानुकम्पा- स्तिक्ष्याभिव्यक्तिलक्षणं सम्यग्ददेशने गृह्यते, तच्चौपशमिकादिभेदात् पञ्चविधं, तथा चोक्तम्-“तं च पञ्चधा सम्म-उवसंभं सासा- यणं ख्येवसमियं वेदयं ख्येयं” ति, दर्शनमेवासारमित्यात्वादिकचवररहिता शुद्धा रथ्या यस्य तत्तथाविधं, तस्यामन्त्रणं, ‘संघ- नगर’ सङ्कुः-चातुर्वर्णः श्रमणादिसंघातः स नगरभिव संघनगरं तस्यामन्त्रणं, यथा पुरुषोऽयं व्याप्र इव पुरुषव्याप्रः, उक्तश्च-‘उपभितं व्याप्रादिभिः सामान्याप्रयोगे’(२-१-५६) भद्रं कल्याणं तथा भवतु, अस्वप्णच्चारित्रप्राकार! चारित्रं-प्रूलगुणा अखण्डम्-अविराखितं चारित्रमेव ग्राकारो यस्य तत्तथाविधं तस्यामन्त्रणमिति गाथार्थः ॥४॥ संसारोन्तेदित्वात् संघस्थैव चक्ररूपकेण स्तवं कुर्वन्नाह —</p> <p>संघम० गाहा (* ५-४३) संघमतपस्तुम्बारकाय नमः संघमथ तपांसि च संघमतपांसि, तुम्बं च अरकाश तुंवारकाः, तत्र यथासंस्तुत्यं संघमतपांस्येव तुम्बारकाय यस्य तत् तत्थाविधं तस्मै नमः, तत्र संघमः ‘पञ्चाश्रवाद्विरमणं पञ्चेन्द्रियनिग्रहः कषाय- जयः । दण्डप्रयविरतिशेति संघमः सप्तदशभेदः ॥१॥ तयो द्वादशग्रकारं वाल्मम्भ्यन्तरं च, तत्र वास्यं पञ्चविधं, यथोक्तम्-‘अनश- नमूनोदरता इच्छा: संक्षेपणं रसत्यागः । कायक्षेशः संलीनतेति वास्यं तपः ग्रोक्तम् ॥२॥ अभ्यन्तरमपि विज्वधम्, उक्तञ्च-‘प्रायविधितं विनयो वैयाकृत्यं स्वाध्यायो ध्यानं व्युत्सर्गश्च’ ति, सम्मतपारियिष्टसात्ति पारियष्टं-चाशपुष्टकस्य भाषा आभिरुच्यते, ततथ सम्म-</p> <p>संघस्य नगरतया स्तुतिः ॥७॥</p>
	<p>पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>*** अथ विविध-उपमायाः ‘संघ’-स्तुतयः आरभ्यते</p>

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [] / गाथा ||७-८||

प्रति
सूत्रांक
[-]
गाथा
||७-८||

दीप
अनुक्रम
[५-८]

नन्दी-
हरिभद्रीय
वृत्ति

॥ ८ ॥

तत्त्ववाह्यभ्रमिणे नमः, व्याख्यातं गाथार्थं, चरकादिभिरतुल्यत्वान्ब्राह्मण ग्रतिचक्रं विद्यते इत्यप्रातिचक्रं तस्य जयो भवतु इति, सुप्रणि-
धानमेतत्, सदा सर्वकालं, संघश्वकमिव संघचक्रं तस्येति गाथार्थः ॥५॥ इदानीं संघस्यैव मार्गगामित्वतो रथस्पृकेण स्तवं कुबेराह-
भद्रं० गाहा (* ६-४३) भद्रं कल्याणं भवतु, कस्य ?-संघरथस्य, भगवत् इति योगः, किंविशिष्टस्य ?-इशिलोच्छ्रितप-
ताकस्य, प्राकृतशैल्याऽन्यथोपन्यासः, शीलग्रहणात् अष्टादशशीलाङ्गसहस्रपरिग्रहः, तथा तपोनियमतुरग्युक्तस्य तपः-
संघमाश्वयुक्तस्येत्यर्थः स्वाध्यायो-वाचनादिः, यथोक्तम्-“वाचना प्रच्छना परावर्तना अनुप्रेक्षा धर्मकथा चे”ति, तत्र स्वाध्याय एव
शोभनो नन्दिधोषतर्यरवो ‘सुनेभिधोसस्स’ति नेमिनिधोषो वा यस्य स तथाविधो यस्य, इह च शीलांगनिरूपणे सत्यपि
तपोनियमनिरूपणं प्रधानपरलोकांगत्वस्यापनार्थम्, अस्ति चायं न्यायो यदुत सामान्योक्तावपि प्राधान्यस्यापनार्थं विशेषा-
भिधानभिति, यथा ब्राह्मणा आयाता वशिष्ठोऽप्यायात इति, एवमन्यत्रापि योजनीयमित्यलं प्रसंगेनेति गाथार्थः ॥ संघस्यैव
लोकांसंश्लिष्टत्वतः पश्चस्पृकेण स्तवं ग्रतिपादयन्नाह-

कम्मरथ० गाहा ॥ (* ७-४४ ॥) सावय० गाहा ॥ * (८-४४ ॥) संघपद्मस्य भद्रं-मङ्गलं भवत्वितिकिया, किम्भूतस्य? -
कर्मरजोजलौघविनिर्गतस्य इह ज्ञानावरणादिलक्षणं कर्म तदेव अनेकधा जीवगुण्डनाद्रजो भण्यते तदेव भवकारणत्वाज्जलौघः तस्मा-
द्विनिर्गत इव विनिर्गतः, तथा चाविरतसम्यग्द्वैररथ्यपाद्वपुद्गलपरावर्तः परः संसार उक्त इत्यतो विनिर्गतस्तस्य, श्रुतरत्नमेव दीर्घ-
नालं यस्य सः, तद्वलादेव निर्गत इति भावनीयं, पंच महाव्रतानि-प्राणातिपातादिविनिवृत्तिलक्षणानि तान्येव स्थिरा-द्वा कर्णिका

संघस्य
चक्रतया
पश्चतया
च स्तवः

॥ ८ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [] / गाथा ८-१०
<p>प्रति सूत्रांक [-] गाथा ८-१० </p> <p>दीप अनुक्रम [८-१०]</p>	<p>नन्दी- हारिभद्रीय शृङ्गी ॥ ९ ॥</p> <p>ग्रन्थाण्डिका यस्य, गुणा-उच्चरण्णाः त एव तद्विविक्तत्वात् केसराणि यस्य विद्वन्ते इति गुणकेसरवद् तस्य गुणकेसरवतः, आवकजनमधुकरीपरिवृत्तस्येति प्रकटार्थं, नवरमभ्युपेत्य सम्यक्त्वं प्रतिपञ्चाणुव्रतोऽपि प्रतिदिवसं यतिभ्यः सकाशात् साधूनाम-गारिणां च समाचारां शृणोतीति श्रावकः, उक्तं च—“योऽहमभ्युपेतसम्यक्त्वो, यतिभ्यः प्रत्यहं कथाम् । शृणोति धर्मसम्बद्धाम-सौ श्रावक उच्यते ॥ १ ॥” जिनस्तूर्यतजोबुद्धस्य-केवलज्ञानभास्करविशिष्टसंवेदनप्रमवधमदेशनाबुद्धस्येति भावार्थः, अमण-गणसहस्रपञ्चस्येति प्रकटार्थमेव, नवरं श्राम्यतीति श्रमणः ‘कृत्यलुटो बहुल’ मितिवचनात् कर्त्तरिल्युद्, श्राम्यतीति तपस्यति, एत-दुक्तं भवति-प्रवज्यादिवसादारभ्य सकलसावद्ययोगविरतो गुरुपदेशादनशनादि यथाशक्त्याऽप्राणोपरमात्मपश्चरतीति श्रमणः, उक्तं च—“यः समः सर्वभूतेषु, स्थावरेषु त्रसेषु च । तपश्चरति शुद्धात्मा, श्रमणोऽसौ प्रकीर्तिः ॥ १ ॥ इति गाथाद्वयार्थः ॥ इदानीं सङ्घस्यैव सौम्यतया चन्द्ररूपकेण स्तवमाह—</p> <p>तवसंयम०गाहा ॥(*९-४५)॥ तपःसंयममृगलाज्ञन! तपःसंयममृगचिन्ह!-अक्रियाराहुसुखदुष्प्रधृष्या इह अक्रिया-शब्देन नास्तिका गृह्णन्ते, अनभ्युपगमाद्, अविद्यमानपरलोकक्रिया: अक्रियाः त एव राहुसुखं तेन दुष्प्रधृष्यः-अनभिभवनीयस्त-स्यामन्त्रणं, नित्यमिति सदा जय सङ्घचन्द्र! निर्मलसम्यक्त्वविशुद्धज्योत्स्नाक इह मिथ्यात्वभावतमोरहितं निर्मलं सम्य-ज्यव्युष्यते तदेव विशुद्धा-निर्मला ज्योत्स्ना-चन्द्रिका यस्य स तथाविधिः तस्यामन्त्रणमिति गाथार्थः ॥ अथुना सङ्घस्यैव प्रकाशकत-या द्वयरूपकेण स्तवमाह—</p> <p>परतित्थिय०गाहा ॥(*१०-४५)॥ परतीर्थिकग्रहप्रभानाशकस्य इह परतीर्थिकाः-कपिलकणभक्षपादादिमतावल-</p> <p>संघस्य पद्मचन्द्र- तथा स्तवः ॥ ९ ॥</p>
	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p>

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [] / गाथा ||१०-१२||

प्रति
सूत्रांक
[-]
गाथा
||१०-
१२||

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्तो
॥ १० ॥

मिनः त एव ग्रहास्तेषां प्रभा—एकदुर्णीयज्ञानलक्षणा तां नाशयति अनन्तनयसंकुलप्रवचनसमुत्थज्ञानालोकेन अपनयतीति समाप्तस्तस्य, तपस्नेजोदीपलेश्यस्य तपस्तेज एव दीपा—उज्ज्वला लेश्या दीधितयो यस्य, ज्ञानोद्योतस्येति गतार्थं, जगति लोके भद्रं-मङ्गलं भवतु, कस्य?—दमसङ्क्षेपसूर्यस्य दमः-उपशमो भण्यते तत्प्रधानः सङ्क्षर्यः दमसङ्क्षेपसूर्यस्येति गाथार्थः॥साम्रतं सङ्क्षेपस्यैव महत्तया समुद्रसूपकेण स्तवमाह—

भद्रं०गाहा ॥(*११-४५)॥ सङ्क्षेपसूद्रस्य भद्रं भवत्त्विति क्रिया, किम्भूतस्यै-धृतिवेलापरिगतस्य धृतिः-आत्मसरिणामः सैव वेला-वेदिका जलान्तररमणलक्षणा मर्यादा वा तथा परिगतस्तस्य, स्वाध्याययोगमकरस्य कर्मविदारणमहाशक्ति-युक्तत्वात् स्वाध्याय एव भक्तो यस्मिस्तस्य, अक्षरोभ्यस्य परीष्ठोपसर्गसम्बन्धे निष्प्रकम्पस्य भगवतः समग्रैश्वर्यादियुक्तस्य, रुद्दस्येति विस्तीर्णस्येति गाथार्थः॥ इदानीं सङ्क्षेपस्यैव स्थिरतयाऽचलेन्द्ररूपकेण स्तुतिं कुर्वन्नाह—

सम्महंसण०गाहा ॥(श्ल॑१२-४५)॥ सम्यग् अविपरीतं दर्शनं सम्यग्दर्शनं तदेव प्रथमं मोक्षाङ्गत्वात् सारत्वाद्वज्जं सम्यग्दर्शनवज्जं तदेव हृदं रुदं गादं अवगादं पीठं यस्य सङ्क्षमद्वामन्दरगिरेः स सम्यग्दर्शनवज्जदृढगाढावगाढीठस्तस्य, ‘बंदे’ चि द्वितीयार्थं पष्टी प्राकृतशैल्या आर्षत्वाच्च, तं बन्दे इत्यर्थः, तत् सम्यग्दर्शनवज्जपीठं, दृढमिति निष्प्रकम्पं शङ्कादिशल्यरहितत्वात्, रुदमिति बृद्धिमुपगतं, प्रतिसमयं विशुद्ध्यमानत्वात्, प्रशस्ताध्यवसायस्थानेषु वर्तनात्, गाढमिति निविडं तीव्रतत्त्वरूचिस्पत्वात्, ‘सुष्ठुभ्रद्वानरूपत्वादित्यर्थः, अवगाढमिति निमग्नं, जीवादिपदार्थेषु सम्यगवबोधरूपतया प्रविष्टमित्यर्थः, धर्मवरेत्यादि धारयतीति धर्मः

संघस्य
दर्यसहृद-
तया स्तवः

॥ १० ॥

दीप
अनुक्रम
[१०-१२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [] / गाथा १२-१४
<p>प्रति सूत्रांक [-] गाथा १२- १४ </p> <p>दीप अनुक्रम [१२-१४]</p>	<p>नन्दी- हारिभद्रोपीय दृक्ती</p> <p>॥ ११ ॥</p> <p>धर्मे एव वररत्नमण्डिता प्रधानरत्नमण्डिता चामीकरमेखला यस्य स धर्मवररत्नमण्डितचामीकरमेखलाकः, क्रियायोजना पूर्ववदेव अवसेया, इह धर्मो द्विविधः, मूलगुणोच्चरगुणरूपः, तत्रोत्तरगुणधर्मो रत्नानि मूलगुणधर्मस्तु चामीकरमेखलेति, तथा च न राजते मूलगुणधर्मचामीकरमेखलोत्तरगुणधर्मरत्नभूषणविकलेति गाथार्थः ॥</p> <p>नियमूसिय०गाहा (१२-४५) इहोत्सुतशब्दस्य व्यवहितः प्रयोगो द्रष्टव्यः, ततश्चैवं भवति-नियम एव कनकशिलातलानि-नियमकनकशिलातलानि तेषूच्छित्तानि उज्ज्वलानि उज्ज्वलन्ति चिन्तान्तेव प्राकृतशैल्या कूटानि यस्मिन् स तथाविधः, इह च नियमः इन्द्रियनोइन्द्रियनियमः परिगृह्यते, उत्सुतानि अशुभाध्यवसायपरित्यागात्, उज्ज्वलानि प्रतिसमयं कर्ममलविगमात्, उज्ज्वलन्ति सदा सूत्रार्थानुस्मरणरूपत्वात्, चिन्त्यते यैस्तानि चित्तानि, उक्तं च-“चित्तरत्नमसंक्लिष्टमान्तरं धनमूल्यते । यस्य तन्मुषितं दौषित्स्तस्य शिष्ठा विपत्तयः ॥ १ ॥” इति, वनं वृक्षसमुदायः, नन्दनं च तदनं च नन्दनवनं, तत्र नन्दनन्ति यत्र सुरसिद्धदेव्य-विद्याधरादयस्तन्नांदनं वनमित्यशोकसहकारादिजालं, मनो हरतीति मनोहरं, लतावितानविविधपुष्पफलग्रवालाद्यपेतत्वात्, नन्दनवनं च तन्मनोहरं चेति ‘विशेषणं विशेषणं बहुल’मिति समासः, तस्य, सुरभिश्चासौ शीलगन्धश्च सुरभिशीलगन्धः तेनाध्मातः-व्यासो यः स तथाविधस्तस्य, क्रिया पूर्ववत्, इह च संघमंदरगिरः सन्तोष एव नन्दनवनं, तथाहि-नन्दनन्ति तत्र साधव इति, तदेव विविधामषौषध्यादिलब्ध्युपेतत्वान्मनोहरं तस्य सुरभिशीलगन्ध एवेति, अथवा मनोहरत्वं सुरभिशीलगन्धविशेषणमिति गाथार्थः ॥</p> <p>जीवदय० गाहा (१२-४५) जीवदयेव सुन्दराणि स्वपरनिर्द्वितीहेतुत्वात् कन्द्राणि वस्तुतस्तपस्विनिलयत्वात्,</p>
	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p>

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [] / गाथा १४-१६ 	
प्रति सूत्रांक [-] गाथा १४- १६	<p>नन्दी- हारिभद्रीय वृत्ती ॥ १२ ॥</p> <p>तथाहि-अहिंसाव्यवस्थितः तपस्वीति, शुनिवरा एव शाक्यादिमृगपराजयान्मृगेन्द्राः शुनिवरमृगेन्द्राः, उत्प्रावल्येन दर्पिताः उदर्पिताः, कर्मशमुजयं प्रति उदर्पिताश्च मुनिवरमृगेन्द्राश्चेति विशेषणसमासः, जीवदयासुन्दरकन्दरेषु उदर्पितमुनिवरमृगेन्द्रास्तैः आकीर्णो-व्यासो यस्तस्येति, हेतुशत इत्यादि, प्रगलितं च तानि रत्नानि च प्रगलद्रत्नानि निस्यन्दवन्ति चन्द्रकान्तादीनि परिगृह्यन्ते, धातवः कनकादिधातवो गृह्यन्ते, धातवश्च प्रगलद्रत्नानि च धातुप्रगलद्रत्नानि, दीपाश्च ता औषधयश्च दीपीषधयः, धातुप्रगलद्रत्नानि च दीपीषधयश्च, ताः गुहासु यस्य स तथोच्यते, इह च संघमंदरगिरौ हेतुशतान्येव धातवः, अन्वयव्यतिरेकलक्षणा हेतवो गृह्यन्ते, प्रगलद्रत्नानि तु क्षायोपशमिकभावनिष्यन्दवन्ति श्रुतरत्नानि गृह्यन्ते, दीपीषधयस्तु विशुद्धा आमर्षीषध्यादयो गृह्यन्ते, गुहास्तु समवायाः प्रसूपणगुहा वा गृह्यन्ते, इति गाथार्थः ॥</p>	सूर्यस्या- चलेन्द्रतया स्तवः
दीप अनुक्रम [१४-१६]	<p>संवर० गाहा ॥(*१५-४६)॥ संवरथासौ वरशं संवरवरः, संवरः-प्रत्याख्यानरूपः सर्वप्राणातिपातादिविनिष्टुतिरूपत्वाद्वारः असावेव कर्ममलक्षालनाज्जलमिव जलं संवरवरजलं तस्मात् प्रगलितं च तदुज्ज्वरं च संवरवरजलप्रगलितोज्ज्वरं, तथा च संवरवर-जलादुपचारतः प्रगलिति श्रुतज्ञानाद्युज्ज्वरभिति, तदेव प्रविराजमानः हारो यस्य स तथाविधः, ‘सावगजणो’त्यादि, रवन्तश्च ते मयूराश्च रवन्मयूराः प्रचुराश्च ते रवन्मयूराश्च २ श्रावका एव जनास्त एव प्रचुररवन्मयूरास्तैर्नृत्यन्तीव कुहराणि यस्येति समासः, इह च स्तुतिस्तोत्रगन्धर्वादि रवणं कुहराणि शास्त्रमण्डपादीनि गाथार्थः ॥</p> <p>विणय०गाहा॥(*१६-४६)॥स्फुरन्तश्च ता विष्णुतश्च स्फुरद्विष्णुतः, विनयेन नताः विनयनताः विनयनताश्च ते प्रवरणुनिवराश्चेति,</p>	॥ १२ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [] / गाथा १६-२१
<p>प्रति सूत्रांक [-] गाथा १६- २१ </p> <p>दीप अनुक्रम [१६-२१]</p>	<p>नन्दी- हारिभद्रीय वृत्ती ॥ १३ ॥</p> <p>त एव स्फुरद्विद्युज्ज्वलन्ति शिखराणि यस्येति समासः; इह च विनयस्यान्तरतपोभेदत्वात्पांस्येव स्फुरन्ति प्रावचनिकाश्च विशिष्टाचार्यादयः। शिखराणि, ‘विविधगुणे’त्यादि, विविधा गुणा येषां ते विविधगुणाः; विशेषणान्यथाऽनुपपत्त्या साध्वो गृह्णन्ते, त एव विशिष्टकुलोत्पत्त्वात् सत्यसुखहेतुर्धर्मफलप्रदानाच्च कल्पवृक्षकाः विविधगुणकल्पवृक्षकाः; फलभरश्च कुसुमानि च २ विविधगुणकल्पवृक्षकाणां फलभरकुसुमानि २ तैराङ्कुलानि वनानि यस्येति समासः; इह च फलभरो धर्मफलभरो गृह्णते, कुसुमानि कद्यो, वनानि गच्छा इति गाथार्थः॥</p> <p>णाण०गाहा ॥(*१७-४६)॥ ज्ञानं च तद्वरं च २ परमनिर्वृत्तिहेतुत्वात् तदेव रत्नं दीप्यमानत्वात् कान्ता विमला वैद्यर्घूडा यस्य स तथाविधः; दीप्यते यथावस्थितजीवादिपदर्थस्वरूपोपलम्भात्, कान्ता भव्यजनमनोहरित्वाद्, विमला तदावरणा-भावाद्, चन्देत्ति विनयप्रणतसंघमहामन्दरगिरेर्यन्माहात्म्यमिति, कर्मणि वा पष्टीति गाथार्थः॥ एवं संघनमस्कारा अपि प्रतिपादिताः, साम्यतमावलिका प्रतिपादयते, सा च त्रिविधा- तीर्थकरावलिका गणधरावलिका स्थाविरावलिका च, तत्र तीर्थकरावलिकां प्रतिपादयन्नाह—</p> <p>वंदे० गाहा, विमल० गाहा ॥(*१८१९-४७)॥ गाथाद्वयमपि निगदसिद्धं। गणधरावलिका तु या यस्य तीर्थकृतः सा प्रथमानुयोगानुसारेण द्रष्टव्येति, महावीरवर्द्धमानस्य पुनरियम्-‘पढमेत्थ इदभूई वीओ पुण होइ अरिगभूहत्ति। तइए य वाउभूई तओ वियसे सुहम्मेय ॥ १ ॥ मंडिय मोरियपुस्ते अंकपिए चेव अयलभाया य। मेयज्जे य पभासे गण-</p> <p>पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p>
	<p>*** अथ गणधर-आवलिका दर्शयते</p>

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [] / गाथा २२-२४
<p>प्रति सूत्रांक [-] गाथा २२- २४ </p> <p>दीप अनुक्रम [२२-२४]</p>	<p>हरा हुंति वीरसस ॥ २ ॥’ साम्प्रतं वर्तमानतीर्थाधिष्ठेः स्थविरावलिकां प्रतिपादयन्ति शयमत्त्या सामान्यतस्तच्छासनस्तवं प्रतिपादयन्नाह—</p> <p>निष्ठवृप्तिः ० रूपकं ॥(*२२-४८)॥ निर्वृत्तिपथशासनकमित्यत्र यद्यपि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि निर्वाणमार्गस्तथा-प्यनेन दर्शनचरणपरिग्रहः, यत आह—जयति सदा सर्वभावदेशानकं, सर्वभावप्ररूपकमित्यर्थः, अनेन तु ज्ञानपरिग्रहः, अथवा निर्वृत्तिपथशासनकमित्यनेन सम्पूर्णनिर्वाणमार्गकथनमेवेति गृह्णते, जयति सदा सर्वभावदेशानकमित्यनेन तु विधिप्रतिषेधद्वारे-ण न निर्वृत्तिमार्गव्यतिरेकेण किञ्चिदस्तीति ख्याप्यते, यत एवंभूतमत एव कुसमयमदनाशानकं छासिद्वान्तावलेपनाशनकमि-त्यर्थः, जिनेन्द्रवर्चीरशासनकं चरमतीर्थकप्रवचनमिति हृदयं, अयं रूपकार्थः ॥ अधुना यैरविच्छेदेन स्थविरैः क्रमेणदंयुगी-नानामानीतं तदावलिकां प्रतिपादयन्नाह—</p> <p>सुधर्मं० गाहा ॥(*२३-४८)॥ इह स्थविरावलिका सुधर्मस्वामिनः प्रवृत्ता, उक्तं च—“तित्यं च सुधर्माओ णिरवच्चा गणहरा सेस” च्चि, अतस्तमेव पुरस्त्वयेषं प्रतिपाद्यते सुधर्मं भगवद्गुणधरं अग्निवैशायनमित्यग्निवैशायनसगोत्रं, तथा त-च्छिष्यं जम्बुनामानं च काश्यपं काश्यपगोत्रं, तस्मात् प्रभवं तच्छिष्यं प्रभवनामानं कात्यायनमिति कात्यायनसगोत्रं, वंदे इति क्रिया प्रत्येकमभिसम्बद्धते, तथा तच्छिष्यं ‘वच्छ’ मिति वत्ससगोत्रं सव्यम्भवं तथेति गाथार्थः ॥</p> <p>जसमद० गाथा ॥(*२४-४९)॥ शयंमवशिष्यं यशोभद्रं ‘तुङ्गिक’ मिति तुङ्गिकगणं व्याघ्रापत्यसगोत्रं वन्दे, अस्य च</p> <p style="text-align: right;">तीर्थ- करावलिका शासन- स्तवः ॥ १४ ॥</p>
	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>*** अथ सुधर्मस्वामी आदि स्थविरावली प्रस्तूयते</p>

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [] / गाथा २४-२७
<p>प्रति सूत्रांक [-] गाथा २४- २७ </p> <p>दीप अनुक्रम [२४-२७]</p>	<p>नन्दी- हारिभद्रीय इच्छा ॥ १५ ॥</p> <p>द्वौ प्रधानशिष्यौ बभूवतुः; तथथा-सम्भूतविजयो भाद्ररसगोत्रः; भद्रबाहु च प्राचीनसगोत्र इति, तथा चाह-सम्भूतं चैव मादरं भद्रबाहुं प्राचीनमिति, तत्र सम्भूतस्य विनेयः स्थूलभद्रो गौतमसगोत्र आसीद्, आह च-स्थूलभद्रं च गौतममिति गाथार्थः ॥ एलावच्च० गाहा ॥(*२५-४९)॥ स्थूलभद्रस्यापि द्रवेव प्रधानशिष्यौ, तथथा-एलापत्यसगोत्रो भग्नागिरिः च-शिष्टसगोत्रः सुहस्ती च, यत आह-एलापत्यसगोत्रं वन्दे महागिरि, सुहस्तिनं च, तत्र सुहस्तिनः सुस्थितसुप्रतिषुद्धादिक्रमे-णावलिका यथा वसासु तथैव द्रष्टव्या, न तथेहाधिकारः, महागिर्यावलिक्येहाधिकारः, तत्र महागिरेवहुलबलिस्सहौ कौशिकसगो-त्रौ जगलभातरौ द्वौ प्रधानशिष्यौ बभूवतुः; तयोरपि बलिस्सहः प्रावचनीय आसीदत आह-ततः कौशिकगोत्रं बहुलस्य सद्वश्व-यसं, यगलत्वात्, वन्द इति गाथार्थः ।</p> <p>हारिय०गाहा ॥(*२६-४९)॥ बलिस्सहशिष्ये हारीतसगोत्रं स्वातिं च वन्दे, तथा स्वातिशिष्यं हारीतं च हारीतसगो-त्रमेव इयामार्य, शिष्यं च वन्दे कौशिकसगोत्रं सापिण्डलयं, किम्भूतंै-आर्यजीतधरं आरादातं सर्वहेयधर्मेभ्य इत्यार्यं, जीत-मिति सत्रं, जीतं मर्यादा व्यवस्था स्थितिः कल्य इति पर्यायाः, मर्यादादिकारणं च सूत्रमिति भावनीयं, धारयतीति धरः, आ-र्यजीतस्य धरः २ तं, अन्ये तु व्याचक्षते-किल सापिण्डलयस्य शिष्यः आर्यसगोत्रो जीतधरनामा द्विरासीदिति गाथार्थः ॥</p> <p>तिसमुद्दृह० गाहा ॥ (*२७-४९) ॥ सापिण्डलयशिष्यं वन्दे, आर्यसमुद्रमिति क्रिया, किम्भूतंै-त्रिसमुद्रख्यातकीर्ति पू-र्वदक्षिणापरास्त्रयः समुद्राः उत्तरतस्तु हिमवान् वैताद्यो वेति, अत्रान्तरे प्रथितकीर्तिमित्यर्थः, दीपसमुद्रेषु गृहीतप्रमाणं अति-</p> <p>गणधरा- . चलिका स्थीविरा- वलिका</p> <p>॥ १५ ॥</p>
	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p>

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [] / गाथा ||२७-३०||

प्रति
सूत्रांक
[-]
गाथा
||२७-
३०||

नन्दी-
हरिभद्रीय
वृत्ती
॥ १६ ॥

शयेन द्वीपमागरप्रह्लादिविज्ञायकमिति भावः, अक्षुभितसप्तद्वद् गम्भीरो २ अतस्तमिति गाथार्थः ॥
भणग० गाहा ((२८-५०))। आर्यसमुद्दिश्यं वन्दे आर्यमद्भूगुमिति योगः, किम्भूतं-भणकं कालिकादसूत्रार्थं भण-
तीति भणः स एव प्राकृतशैल्या भणकस्तं, कारकं कालिकादिद्वत्रोक्तमेवोपधिप्रत्युपेक्षणादिक्रियाकलापं करोतीति कारकस्तं, ध्यातारं
धर्मध्यानं ध्यायतीति ध्याता तं, इहौघतः कारकमित्युक्ते प्रधानपरलोकांगताख्यापनार्थं ध्यानस्य ध्यातारमिति विशेषाभिधानं,
यत इत्थंभूतः अत आह-प्रभावकं ज्ञानदर्शनगुणानां यथावस्थितपदार्थवेदोधादीनाम्, एकप्रहणात्तजातीयग्रहणाच्चरणपरिग्रहः,
श्रुतसागररथारं धीरमिति गाथार्थः ।

णाणमिम० गाहा (* २९-५०) आर्यमंगुशिष्यं आर्यनन्दिलक्षणं शिरसा वन्दे, प्रसन्नमनसं, किम्भूतं ?-ज्ञाने दर्शने
च तपसि विनये च, अनेन चरणमाह, नित्यकालं उद्युक्तम्-अप्रमादिनमिति गाथार्थः ॥

वहुउ गाहा (* ३०-५०) वर्द्धतां-वृद्धमुपयातु, कोऽसौ ?-वाचकवंशः, तत्र विनेयेभ्यः पूर्वगतं सूत्रमन्यच्च वाचय-
न्तीति वाचकाः तेषां वंशाः भाविषुरुषपर्वप्रवाहः, किम्भूतः ?-यशोवंशाः, अनेन विपक्षव्यवच्छेदमाह, तथा ह्यलमयशःप्रधानस्य
संसारहेतोः परमसुनिविश्वतलिंगविडम्बकस्य वृद्ध्येति, केषां सम्बन्धिसम्भूतः ?-आर्यनन्दिलक्षणपणशिष्याणां आर्यनागहस्तिनां,
किम्भूतानां ?-व्याकरणभंगिककर्मप्रकृतिप्रधानानां तत्र व्याकरणं-प्रश्नव्याकरणं शब्दप्राभूतं वा करणं-पिण्डविशुद्ध्यादि, उक्तं
च-“पिण्डविसोही समिती भावण पडिमा य इंदियणिरोहो । पडिलेहण गुत्तीओ अभिगग्हा चेव करणं तु ॥१॥” भंगिकाः-चतुर्भ-

गणधरा-
वलिका
स्थीविरा-
वलिका

॥ १६ ॥

दीप
अनुक्रम
[२७-३२]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः



अत्र द्वे प्रक्षेपे गाथे वर्तते. ते गाथे मत्संपादित “आगमसुत्ताणि” मूलं एवं सटीकं द्वयोः अपि पुस्तके मुद्रिते ।

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

..... मूलं [] / गाथा ||३०-३३||

प्रति
सूत्रांक
[-]
गाथा
||३०-
३३||

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ती
॥ १७ ॥

गिकाद्यास्तच्छुतं वा कर्मप्रकृतिः प्रतीता एतेषु प्रलपणामधिकृत्य प्रधानानामिति गाथार्थः ॥
जच्चंधणधाउसमप्पहाण० गाहा (* ३१-५१) जात्यशासावंजनधातुश्चेति समासः तत्समा प्रभा-देहच्छाया येषां
ते तथाविधास्तेषां, मा भूदत्यन्तकृष्णसम्प्रत्ययस्तत आह--मुद्रिकाकुवलयनिभानां पक्षसरसद्राक्षानीलोत्पलनिभानामित्यर्थः,
रत्नविशेषः कुवलयमित्यन्ये, तथाऽप्यविरोधः, वर्द्धनां वाचकवंशः, केषां ?-आर्यनागहस्तिशिष्याणां रेवतिनक्षत्रनाम्नां
रेवतिवाचकानामिति गाथार्थः ॥

अथलपुरा० गाहा (* ३२-५१) अचलपुरात् निष्कान्तान् कालिकश्रुतानुयोगेन निषुक्ताः कालिकश्रुतानुयोगेनिषुक्ताः कालिकश्रुतानुयोग एषां विद्यत इति समासस्तान् कालिकश्रुतानुयोगिनः, धीरान् स्थिरान्, ब्रह्मद्वीपिकान् सिंघान् ब्रह्मद्वीपि-
कशाखोपलक्षितान् सिंघाचार्यान् रेवतिवाचकशिष्यान्, वाचकपदं तत्कालपेक्षया उत्तमं प्रधानं प्राप्तानिति गाथार्थः ॥

जेसिं० गाथा (* ३३-५१) येषामयमनुयोगः प्रचरति अघात्यर्द्धभरते वैताढ्यादारतः, बहुनगरेषु निर्गतं प्रसिद्धं यशो
येषां ते बहुनगरनिर्गतयशसः तान् वन्दे, सिंघवाचकशिष्यान् स्कन्दिलाचार्यान्, कहं पुण तेसिं अणुओगो ?, उच्यते, वारस-
संवच्छरिए महन्ते दुष्टिभक्ते काले भक्तद्वा फिडियाणं गहणगुणणणुप्येहाऽभावतो सुन्तं विष्पणद्दं, पुणो सुभिक्ते काले जाते महु-
राए, महन्ते समुद्रेण खंदिलायरियप्यमुहसंवेण जो जं संभरहत्ति एवं संघडितं कालियं सुयं, जम्हा एवं महुराते कर्यं तम्हा माहुरा
वायणा भवति, सा य खंदिलायरियसम्मतचिकाऽं तस्संतिओ अणुओगो भण्णति, अन्ने भण्णति-जहा सुयं णो णद्दं, तम्मि दुष्टिम-

स्थविराव-
लिका

॥ १७ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

..... मूलं [] / गाथा ||३३-३६||

प्रति
सूत्रांक
[-]
गाथा
||३३-
३६||

नन्दी-
हरिभद्रीय
वृत्ती
॥ १८ ॥

क्षेत्रकाले । जे अन्ने पहाणा अणुओगधरा ते विणड्हा, एसे खंदिलायरिए संधेरे, तेण महुराए पुणो अणुओगो पवाचिओत्ति महुरा वायणा भूमध्य, तसंतिओ अणुओगो भण्णइत्ति गाथार्थः ॥

तच्छ्वतो० गाहा (* ३४-५१) ततः स्कन्दिलाचार्यशिष्यं हिमवन्तं वन्दे शिरसेति क्रिया, किंभूतं? -हिमवन्महाविक्रमं हिमवत् शूद्रव महाविक्रमो-विहारव्याप्त्यादिलक्षणो यस्य स तथाविधस्तं ‘धीपरक्षममण्टं’ न्ति अनन्तशृतिपराक्रमं, प्राकृतशैल्या तु अन्यथोऽयोपन्यासः, अनन्तः शृतिप्रधानः पराक्रमः कर्मक्रियता वा (शब्दजये) यस्य स तथाविधस्तं ‘सञ्ज्ञायमण्टत्वरं’ ति अनन्तस्वाध्यायधरं, धरतीति धरः अनन्तगमपर्यायत्वादनन्तं-सूत्रं तदिष्यः स्वाध्यायस्तस्य धर इति समाप्तः तामिति गाथार्थः ॥

कालिय० गाहा (* ३५-५२) मित० गाहा (३६-५२) कालिकश्चुतानुयोगस्य धारकान्, धारकांश्च पूर्वाणां-उत्पादार्दीनां, हिमवतश्चमाश्रमणान् वन्दे, तथैतच्छिष्यानेव वन्दे नागार्जुनाचार्यानिति गाथार्थः ॥ किंभूतान् ?-सूदुमार्द-वसम्पन्नश्चान् उपलक्षणत्वान्मृदुत्वस्य, कान् ?-क्षमामार्दवार्जवसन्तोषसम्पन्नानित्यर्थः, आनुपूर्व्या वयःपर्यायकालगोचरया चाचकल्पं त्रिप्राप्तान्, ऐदंयुगीनानामपि सामाचारीप्रदर्शनपरमेतत्, न चायुक्तं द्वितीयपदमाश्रित्यैदंयुगीनानामपि युज्यते कालोचिष्ठुतानुभूतीं विहाय क्वचिदप्याचार्यत्वाद्यारोपणं, महापुरुषाणां गौतमादीनामाशातनाप्रसंगात्, कृतं प्रसंगेन, संसार एव दण्डो भूमिगवदाज्ञावितथकारिणां इति, ओघशुतसमाचरकान् ओघशुतस्म-उत्सर्गश्रुतं तत् समाचरन्ति ये ते तथाविधास्तान् नागार्जुनशृतवाचकान् वन्दे इति गाथार्थः ॥

स्थविरा-
वलिका

॥ १८ ॥

दीप
अनुक्रम
[३६-३८]

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [] / गाथा ३७-४१
प्रति सूत्रांक [-] गाथा ३७- ४१	<p>नन्दी- हारिभ्रीय इत्तो ॥ १९ ॥</p> <p>वरकणगा० अङ्ग० भूआहियथ० ॥ (* ३७। ३८। ३९-५२) ॥ इदं गाथात्रयमपि ग्रायो नियदसिद्धमेव, नचरं भव्यजनहृदयदपितान् भव्यजनहृदयवलुभान्, तथा सुविज्ञातवहुविधस्वाध्यायप्रधानान् वहुविध आचारादिभेदात् स्वाध्यायः, अनुयोजितायथोचिते वैयाहृत्यादौ वरवृषभाः सुसाधवो वैस्तान्, नागेन्द्रकुलवंशानान्दिकरानिति प्रमोदकरानित्यर्थः, भूताहितप्रगत्यमान्, भूतदिभाचार्यान् इत्यत्रातुस्वारोऽलाश्चणिकः, भवभयव्यव्यक्तेदकरानिति सदृपदेशादिना संसारभयव्यव्यक्तेदकरणशीलान् ।</p> <p>‘सुमुणिय० ॥ गाहा (* ४०) ॥, अनेकधा सत्त्वहितनिपुणानिति भावः, वन्देऽहं भूतदिज्ञाचार्यशिष्यं, वन्देऽहं लोहित्यामिति क्रिया, किम्भूतं ?-सुषु विज्ञातं नित्यानित्यं येन स तथाविधस्तं, किं ज्ञातं ?, विशेषणान्यथाऽनुपयत्तेः वस्तु इति गम्यते, यथा ‘सवच्छा धेनु’ रित्युक्ते गोवडवाया विशेषणायोगादिति, तच्च वस्तु सचेतनाचेतनं, तत्र सचेतनभात्मा चेतनत्वाधिषेक्षया नित्यः नारकतिर्थऽनरामरपर्यायापेक्षया चानित्यः, एवमचेतनमप्यणवादि विज्ञातव्यं, तथाहि-परमाणुरजीवत्वमूर्चत्यादिभिन्नित्यः, वर्णादिभिर्वर्णुकादिभिस्त्वानित्य दृष्टि, उक्तञ्च-‘सर्वव्यक्तिषु नियतं क्षणे॒२७न्यत्वमथ च न विशेषः । सत्योऽथित्यपचित्योराकृतिज्ञातिव्यवस्थाना ॥ १ ॥ दित्यत्र वहु वक्तव्यं तच्च नोन्यते ग्रन्थविस्तरभयाह्, गमनिकामावग्रधानोऽयमारंभ इति, अनेन न्यायवेदित्वमाह, सुविज्ञातस्त्रार्थधारकमित्यनेन त्वोघत एव स्वम्यस्तस्त्रार्थधारकमिति सङ्घावोऽङ्गावना, तथ्यमित्यनेन सम्यक्त्रस्त्रकत्वमाहेति गाथार्थः ॥</p> <p>अत्थमहत्थकूचाणी० गाहा।(*४१-५२)। लोहित्यशिष्यं प्रथतःसन् अनुत्सृष्टप्रथत्वपरः सञ्जित्यर्थः, प्रणमाभि दुष्य-</p>
दीप अनुक्रम [३९-४३]	स्थविरा- वलिका ॥ १९ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

..... मूलं [] / गाथा ||४१-४४||

प्रति
सूत्रांक
[-]
गाथा
||४१-
४४||

नन्दी-
हारिमद्रीष्ट
बृत्तौ
॥ २० ॥

गणिनमिति किया, किम्भूतं ?—अर्थमहार्थखानिं खानिरिव खानिः अर्थमहार्थानां खानिः २ तं, तत्र भाषाऽविदेशाः अर्थाः विभाषावार्तिकगोचरा महार्थाः इति, सुश्रमणव्याख्यानकथने निवृत्तिर्थस्य स तथाविधस्तं, तत्र व्याख्यानं ग्रतीतं कथनं-संशये सति विनेयप्रश्नोच्चरकालभावि व्याकरणं, अथवा व्याख्यानम्-अनुयोगः कथनमोघतो धर्मस्य, धर्मकथेत्यर्थः, प्रकृत्या स्वभावेन मधुरवाचं भयुरगिरमिति गाथार्थः ॥

सुकुमालकोमल० गाहा ॥(*४२-५४)॥ निगदसिद्धा, एवं आवालिकाक्रमेण महापुरुषाणां स्तवममिधाय साम्रतं सामान्येनैव श्रुतधर्मस्कारं प्रतिपिपादयिषुराह-

जे अन्ने भगवंते० ॥(*४३-५४)॥ ये चान्येऽदीता भाविनश्च भगवन्तः, श्रुतरत्नोपेतत्वात् समग्रैश्वर्यादिमन्त इत्यर्थः, कालिकश्रुतानुयोगिनो धीराः सत्त्ववन्तस्तान् प्रणम्य द्विरसा उच्चमाङ्गेन ज्ञानस्य-आभिनिबोधिकादेः प्ररूपणं वक्ष्ये, क एव-माह-दूष्यगणितश्चयो देववाचक इति गाथार्थः ॥ इदं च पञ्चप्रकारं ज्ञानम्, एतत्प्रतिपादकं चाध्ययनं योग्येभ्य एव विनेयेभ्यो दीयते, नायोग्येभ्य इत्यतो योग्यायोग्यविभागोपदर्शनार्थमेव तावदिदमाह—

सेलघण० गाहा ॥(*४४-५४)॥ आह-शुभाध्ययनप्रदानाधिकारे समभावव्यवस्थितानां सर्वसत्त्वहितायोद्यतानां महापुरुषाणां अलं योग्यायोग्यविभागनिरीक्षणेन, न हि परहितार्थमिह महादानोद्यता महीयांसोऽर्थिंगुणमपेक्ष्य प्रदानक्रियायां प्रवर्तन्ते दयालव इति, अत्रोच्यते, ननु यत एव शुभाध्ययनप्रदानाधिकारे समभावव्यवस्थिताः सर्वसत्त्वहितायोद्यता महापुरुषाश्च गुरवः अत एव

अनुयोग-
धर
नमस्कारः
योग्यायो-
ग्यविचारः

॥ २० ॥

दीप
अनुक्रम
[४४-४६]

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [] / गाथा ||४४||

प्रति
सूत्रांक
[-]
गाथा
||४४||

नन्दी-
हारिभद्रीय
बृत्तो
॥ २१ ॥

दीप
अनुक्रम
[४६]

योग्यायोग्यविभागोपदर्शनं न्यायं, मा भूदयोग्यप्रदाने तत्सम्यग्नियोगाक्षमार्थिजनानर्थं इति, न खलु तत्त्वतोऽनुचितप्रदानेनाया-
सहेतुनाऽविवेकिनमधिजनमनुयोजयन्तोऽप्यनवगतपरार्थसम्पादनोपाया भवन्ति दयालव इत्यवधूय मिथ्याभिमानमालोच्यतामे-
तदिति । आह-क इवायोग्यप्रदाने दोष इति, उच्यते, स हचिन्त्यचिन्तामणिकल्पमनेकभवशतसहस्रोपात्तानिष्टुष्टाकर्मराशिजनित-
दैर्घ्यविच्छेदकमपीदयोग्यत्वादवाप्य न विधिवदासेवते, लाघवं चास्य समापादयति, ततो विधिसमासेवकः कल्याणभिव मह-
दकल्याणमासादयति, उक्तं च ‘आमे घडे निहतं जहा जलं तं घडं विणासेइ । इयं सिद्धंतरहस्यं अंपाहारं विणासेइ ॥१॥’ इत्यादि,
अतोऽयोग्यदाने दातृकृतमेव वस्तुतस्तस्य तदकल्याणामिति, अलं प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रस्तुमः, तत्राधिकृतगाथां प्रपञ्चतः आवश्य-
कानुयोगे व्याख्यास्यामः; इह पुनः स्थानाशून्यार्थं भाष्यगाथाभिव्याख्यायुतं इति ॥

उल्लेखण न सको गजजइ इयं मुग्गसेलओ रन्हे । तं संवद्गमेहो सोउं तस्सोवर्तं पडह ॥ १ ॥ रविशेषित ठिओ मेहो उल्हो
मि एवत्ति गजजइ य सेलो । सेलसमं गाहेसं निविज्जइ गाहगो एवं ॥ २ ॥ आयरिए सुत्तमिय परिवाओ सुत्तअत्थपलिमंथो ।
अभ्यर्सिपि य हाणी पुढाविन न दुद्धया वंशा ॥ ३ ॥ बुद्धेऽविदोणमेहेण कणभोमाऊ लोद्गए उदगं । गहणधरणासमत्ये इयं देयम-
छित्तिकारिभिम ॥ ४ ॥ भाविय इयरे य कुडा अपसत्थ पसत्थ भाविया दुविहा । पुर्फाईहि पसत्था सुरतेल्लाईहि अपसत्था ॥५॥
वम्मा य अवम्मावि य पसत्थवम्मा य होति अगेज्जा । अपसत्थअवम्मावि य तप्पडिवकखा भवे गेज्जा ॥६॥ कुष्यवयणओस-
नेहि भाविया एवमेव भावकुडा । संविग्नेहि पसत्था वम्माज्वम्मा य तह चेव ॥ ७ ॥ जे पुण अभाविया खलु ते चतुधा अथविमो
गमो अशो । छिदूद कुड यिन्ह खंडे सगले य परवणा तेसिं ॥ ८ ॥ सेले य छिडु चालिणि मिहो कहा सोउमुडियाणं तु । छिडुऽह

योग्या-
योग्याः

॥ २१ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [] / गाथा ||४४||

प्रति
सूत्रांक
[-]
गाथा
||४४||

दीप
अनुक्रम
[४६]

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृच्छा
॥ २२ ॥

तत्थ चिद्गो सुमरिणु सरामि येदाणि ॥ ९ ॥ एगेग विसह वीएण णीइ कण्णेण चालणी आह । धष्टउथ आह सेलो जं पविसति नीति वा तुज्ज्व ॥ १० ॥ तावसखउरक्षिणियं चालणिपडिवक्षिख ण संदश दवंपि । परिपूणगम्मि य गुणा गलंति दोसा य चिद्वृति ॥ ११ ॥ सब्बन्नुप्यामक्षा दोसा हु न संति जिणमते केई । जं अणुवउत्तकहणं अपचमासज्ज व हविज्ज ॥ १२ ॥ अंवत्तणण जीहाए कूचिया होइ सीरमुदगम्मि । हंसो मोक्षण जलं आविथइ पयं तह सुसीसो ॥ १३ ॥ सयमवि न पियइ महिसो ण य जूहं पियइ लेलियं उदगं । विगगहविकहाहि तहा अथक्षुच्छाहि य कुसीसो ॥ १४ ॥ अवि गोपयमिवि पिए सुढिओ तणुयत्तणण तोङ्डस्स । न करेइ कलुसतोर्य मेसो एवं सुसीसोवि ॥ १५ ॥ मसउच्च तुदं जच्चादिएहिं निच्छुब्बमए कुसीसो उ । जलुगा व अह-मितो पियइ सुसीसोवि सुयणाण ॥ १६ ॥ छेऊं भूमीए खीरं जह पियइ दुड्मज्जारी । परिसुढियाण पासे सिक्खइ एवं विणय-मेसी ॥ १७ ॥ पाउ थोव थोवं खीरं पासाइं जाहओ लिहइ । एमेव जियं काउं पुच्छह मझेन खिज्जेइ ॥ १८ ॥ अणो दोज्जाहि कल्णं णिरत्थयं किं वहामि से चारि ? । चउचरणगवी उ मता अवश हाणी य बहुगाण ॥ १९ ॥ मा मे होज अवणो गोवज्जामा पुणो व न दलिज्जा । वयमवि दोज्जामो पुणो अणुगगहो अश्वट्टेऽवि ॥ २० ॥ सीसा पडिच्छगाणं भरोत्ति तेऽवि हु सीस गभरोत्ति । ण करेति सुचहाणी अचत्थवि दुळ्हंभं तेसि ॥ २१ ॥ कोमुदिया तह संगामिया य उब्भूतिगा उ तिक्कि भेरीओ । कणहस्सासी उ (णु) तया असिवोवसमी चउत्थी उ ॥ २२ ॥ सकपसंसा गुणगाहि केसवा येमिवंद सुणदन्ता । आसरथणस्स हरणं कुमार भेंग य पुयजुज्ज्व ॥ २३ ॥ णेहि जिओमिति अहं असिवोवसमीइ संपयाणं च । छम्मासिय वोसणया पसमहण थ जायए अणो ॥ २४ ॥ आगंतु वाधिखोभे भीहिं मोहण कंथ दंडणता । अड्डमआराहण अभेरि अश्वस्स ठवणं च ॥ २५ ॥

योग्या-
योग्याः

॥ २२ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

<p>आगम (४४)</p> <p>प्रति सूत्रांक [-] गाथा ४५- ४७ </p> <p>दीप अनुक्रम [४७-५२]</p>	<p>[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)</p> <p>..... मूलं [] / गाथा ४५-४७ </p>	<p>मूलं तथा अगहिते दुपरिगगहियं कर्यं तथा कलहो ! पिदुण अइचिर विकयं गतेसु चोरा य ऊर्जवं ॥ २६ ॥ मा गिष्ठव हय दातुं उवज्ञंजिय देहि किं विचितेसि ? । विच्चामेलियदाणे किलिस्ससी तं चञ्जं चेव ॥ २७ ॥ भणिया जोग्गा २ सीसा गुरवो य तत्थ दोष्हंपि । वेयालियगुणदोसो जोगो जोगस्स भासेज्जा ॥ २८ ॥</p> <p>एवं तावदिभागतो योग्यायोग्यविनेयविभागोपदर्शनं कृत्वा साम्यतं सामान्येन पर्षदं प्रसूपयश्चाह— सा समासओ तिकिहा पञ्चतेत्यादि, सा पर्षत् समासतः संक्षेपेण त्रिविधा त्रिग्रकारा प्रज्ञसा प्रसूपिता, कैः ?—तीर्थकरगणधैरीरित गम्यते, ‘तत्यथे’ त्युदाहरणोपन्यासार्थः, ‘ज्ञिके’त्यत्र‘ज्ञा अवबोधन’ इत्यस्य ‘इगुपधज्ञादकिरः क’इति (३-१-१२५) कप्रत्ययः, ‘आतो लोप इटि च किङ्कीत्या (६-४-६४) कारलोपः परमनं टाप् जानातीति ज्ञा कप्रत्ययः ‘प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्थात् इदाप्यतुप’ इति (७-३-४४) इत्वं, ज्ञिका-परिज्ञानवती, न ज्ञिका आज्ञिका- तद्विलक्षणा, दुर्विद्यमा मिभ्यावलेपगर्भा । तस्थिमा जाणिया-‘युणदोसविसेसण्णु अणभिगगहिया य कुस्सुविमण्णु । एसा जाणगपरिसा गुणतच्छ्ला अगुण- वज्जा ॥ १ ॥’ इमा तु अयाधिया- ‘यज्ञतीयुद्ध अयाणिय भिगछावयसीहकुड्यभूया । रथणमिव असंठविया सुहसम्भा गुणसमिद्वा ॥ २ ॥ इमा युण दुवियाङ्गुया- किंचिम्यसग्गाही पल्लवगाही य तुरियगाही य । दुवियाङ्गुया उ एसा भणिया तिकिहा भवे परिसा ॥ ३ ॥ साम्यतमिष्टदेवतास्तवादिसम्पादितसकलसौहित्यो देववाचकोऽधिकृताप्यनविषयभूतस्य ज्ञानस्य प्रसूपणं कुर्विदमाह— ‘प्याणं पंचविहं पण्णात्म’ इत्यादि, (सूत्रम् १-६५) ज्ञातिः ज्ञानं ‘ कुल्यल्युटो लक्ष्मुः ’ इति वन्यनाङ्गावसाधनः, संविदि-</p>
		<p>पर्षदेदाः</p> <p>॥ २३ ॥</p>

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** पर्षदाया: भेदानां वर्णनं क्रियते

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१] / गाथा ४७...
<p>प्रति सूत्रांक [१] गाथा ४७- ४८ </p> <p>दीप अनुक्रम [४८-५३]</p>	<p>नन्दी- हरिभद्रीय बृत्ती ॥ २४ ॥</p> <p>त्यर्थः, ज्ञायते वाऽनेनेति (अस्मादिति वा) ज्ञानं तदावरणक्षयोपशमादेव, ज्ञायतेऽस्मिन्निति क्षयोपशमे सति, ज्ञानमात्मैव विशिष्ट-क्षयोपशमयुक्तो ज्ञानातीति वा ज्ञानं तदेव स्वविषयसंवेदनरूपत्वात् तस्य, पञ्चविधमित्यत्र पञ्चेति संख्यावाचकः विधानं विधेत्यत्र ‘दुधात्र धारणपौषणयो’ रित्यस्यानुबन्धलोपे कृते विपूर्वस्य खियां वर्तमानायां ‘षिद्धिदादिभ्योऽङ्गिः’ ति (३-३-१०४) वर्तमाने ‘आतशोपसर्गे’ (३-१-१२६) इत्यनेन अङ्गत्रययः अनुबन्धलोपे कृते आतो लोप इति च किङ्कती (६-४-६४) त्यनेन चाकारलोपे कृते परगमने च ‘अजाधृतशाचिति (४-१-४) टाप्प्रत्ययोऽनुबन्धलोपः परगमनं विधा, पञ्च विधा अस्येति समासो ‘हस्तो नपुंसके प्रतिष्ठिदिकस्ये’ति (१-२-४७) वर्तमाने ‘गोत्रियोरुपसर्जनस्ये (१-२-४८) त्यनेन इस्वत्वं, सुअमूभावः पञ्चविधं-पञ्चप्रकारमित्येतदेवमनवद्यं, कुव्याख्याव्यपोहार्थं चैतदेवं निदर्शितमित्यलं प्रसंगेन, प्रज्ञासं-प्ररूपितं, कैः? -अर्थतस्तीर्थकरैः सूत्रतो गणधैरिति, उक्तं च—“अत्थं भासइ अरहा सुत्तं गंथंति गणहरा णिउणं । सासणस्स हियद्वाए तओ सुत्तं पवत्तह ॥ १ ॥” इत्यनेन स्वमनीषिकाव्यपोहमाह, अथवा प्राज्ञादासं प्राज्ञासं, तीर्थकरादासमिति प्रासं गौतमादिभिः, अथवा प्राज्ञरासं प्राज्ञासं गौतमादिभिः, प्रज्ञया वाऽसं प्रज्ञाद्वाऽसं प्रज्ञासं, सर्वैरेव संसारिभिरिति, तथाहि-न प्रज्ञाविकलैरिदमवाप्यते इति भावनीयं, तथायेत्युदाहरणोपन्यासार्थः, अभिनिवोधिकज्ञानं श्रुतज्ञानं अवधिज्ञानं मनःपर्यायज्ञानं केवलज्ञानं चेति, तत्रार्थाभिमुखो नियतो बोधोऽभिनिवोधः स एव स्वार्थिकग्रत्ययोपादानादाभिनिवोधिकं, अभिनिवोधे वा भवं तेन वा निर्वृत्तं तन्मयं तत्प्रयोजनं वेत्याभिनिवोधिकं, अभिनिवुद्यते वा तदित्याभिनिवोधिकः-अवग्रहादिरूपं मतिज्ञानमेव, तस्य स्वसंविदितरूपत्वादभेदोपचारादित्यर्थः, अभिनिवोध्यतेऽनेनत्याभिनिवोधिकं तदावरणक्षयोपशम इति भावार्थः, अभिनिवुद्यतेऽस्मादिति वा आभिनिवोधिकं तदावरणर्कम-</p> <p>ज्ञानभेदा- नामुदेशः ॥ २४ ॥</p>
	<p>पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>*** अथ नन्दीसूत्रस्य प्रथम-सूत्र आरम्भ्यते, तदन्तर्गतः ज्ञानस्य भेआनां वर्णयते</p>

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

..... मूलं [१] / गाथा ||४७...||

प्रति
सूत्रांक
[१]
गाथा
||४७..||

नन्दी-
हरिभद्रीय
वृत्तौ
॥ २५ ॥

क्षयोपशम एव, अभिनिबुद्धयतेऽस्मिन्निति वा क्षयोपशमे सत्याभिनिबोधिकं, आत्मैव वा अभिनिबोधोपयोगपरिणामानन्यत्वादभिनि-
बुध्यत इति, अभिनिबोधिकं च तज्ज्ञानं चाभिनिबोधिकज्ञानं १ तथा शूयते इति शुतं-शब्द एव, भावशुतकारणत्वात्, कारणे
कार्योपचारादिति भावार्थः; शूयते वा अनेनेति शुतं-तदावरणक्षयोपशम इति हृदय, शूयतेऽस्मादिति वा शुतं-तदावरणक्षयोपशम
एव, शूयतेऽस्मिन्निति वा क्षयोपशमे सति शुतं, आत्मैव शुतोपयोगपरिणामानन्यत्वाच्छृणोतीति, शुतं च तत् ज्ञानं च शुतज्ञानं २
तथाऽवधीयतेऽनेनेत्यवधिः, अवधीयत इत्यधौऽधो विस्तृतं परिच्छिद्यते मर्यादिया वेति अवधिज्ञानावरणकर्मक्षयोपशम एव, तदुपयोग-
हेतुत्वादित्यर्थः; अवधीयतेऽस्मादित्यवधिस्तदावरणकर्मक्षयोपशम एव, अवधीयते तस्मिन्निति वेत्यवधिभावार्थः पूर्ववदेव, अवधानं
वा अवधिः, विषयपरिच्छेदनमित्यर्थः; अवधिश्वासौ ज्ञानं च अवधिज्ञानं ३, तथा मनःपर्यायज्ञानमित्यत्र परिः सर्वतो भावे अयनं
अयः गमनं वेदनमिति पर्यायाः, परि अयः पर्ययः, पर्ययनं पर्यय इत्यर्थः, मनसि मनसो वा पर्ययो मनःपर्ययः, सर्वतस्तत्परि-
च्छेद इत्यर्थः, स एव ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानं, अथवा मनसः पर्याया मनःपर्याया धर्मा बाह्यवस्त्वालोचनादिप्रकारा इत्यनर्थी-
न्तरं तेषु ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानं तेषां वा सम्बन्धिज्ञानं मनःपर्यायज्ञानं, इदं चार्द्धतृतीयद्विपासमुद्रान्तर्वर्त्तिसंज्ञिमनोगतद्रव्यालम्ब-
नमेवेति भावार्थः ४, तथा केवलम्-असहायं मत्यादिज्ञाननिरपेक्षं, शुद्धं वा केवलमावरणमलकलंकारहितं, सकलं वा केवलं तत्-
प्रथमतथैवाशेषतदावरणाभावतः सम्पूर्णोत्पत्तेः, असाधारणं वा केवलं अनन्यसदृशमिति हृदयं, ज्ञेयानन्तत्वादनन्तं वा केवलं
यथावस्थिताशेषभूतभवद्वाविभावस्वभावाविभासीति भावना, केवलं च तज्ज्ञानं च केवलज्ञानं ५ ॥ आह- एषां ज्ञानानामित्थ-
मुपन्यासे किं प्रयोजनमिति, उच्यते, इह स्वामिकालकारणविषयपरोक्षत्वसाधम्यात् तद्वावे च शेषज्ञानभावादादावेव मतिशुत-

ज्ञानभेदा-
नाशुद्देशः

॥ २५ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [१] / गाथा ||४७...||

प्रति
सूत्रांक
[१]
गाथा
||४७..||

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ता
॥ २६ ॥

ज्ञानयोरुपन्यास इति, तथाहि-य एव मतिज्ञानस्य स्वामी स एव श्रुतज्ञानस्य, ‘जन्म भृत्याणां तत्थ सुयणाणं’ ति वचनात्, तथा याचान् मतिज्ञानस्य स्थितिकालस्तावानेवेतरस्य, प्रवाहापेक्षया अतीतानानागतवर्तमानः सर्वे एव, अप्रतिपत्तैकजीवापेक्षया च वद्यष्टिसागरोपमाण्यधिकानीति, उक्तं च भाष्यकरेण—‘दो वारे विजयाइसुं गयस्स तिभज्ज्ञुते अहव ताइं । अहेरं नरभवियं णाणाजीवाण सञ्चद्धं ॥ १ ॥’ यथा मतिज्ञानं क्षयोपशमहेतुकं तथा श्रुतज्ञानमपि, यथा च मतिज्ञानमादेशतः सर्वद्रव्यादिविषयमेवं श्रुतज्ञानमपि, यथा मतिज्ञानं परोक्षं एवं श्रुतज्ञानमर्णीति, तथा मतिज्ञानश्रुतज्ञानयोरेव अवध्यादिज्ञान-भावादिति । आह-एवमपि मतिज्ञानमादौ किमर्थमिति?, उच्यते, मतिष्वैकत्वाद्विशिष्टमत्यंशरूपत्वाद्वा श्रुतस्यादौ मतिज्ञानमिति, उक्तं च-“ मतिष्वैवं जेण सुयं तेणादीप् मती विसिद्धो वा । मतिभेदो चेद् सुयं तो मतिसमर्णंतरं भणियं ॥ १ ॥ ” इति, पर्यासं विस्तरेण । तथा कालविपर्ययस्वामिलाभसाधर्म्यान्मतिश्रुतज्ञानानन्तरमवधिज्ञानस्योपन्यासः, तथाहि-याचानेव मतिज्ञानश्रुतज्ञानयोः स्थितिकालः प्रवाहापेक्षयाऽप्रतिपत्तैकसञ्चाधारापेक्षया च तावानेवावधिज्ञानस्यापि अतः स्थितिसाधर्म्यं, तथा यथैव मतिज्ञानश्रुतज्ञाने विपर्ययज्ञाने भवत एवमिदं मिथ्याद्वेदिभेदज्ञानं भवतीति विपर्ययसाधर्म्यं, तथा य एव मतिज्ञानश्रुतज्ञानयोः स्वामी स एवावधिज्ञानस्यापि (इति) भवति स्वामिसाधर्म्यं, तथा विभेदज्ञानिन्दिदशादेः सम्बद्धं-नावासौ युगपेव ज्ञानत्रयलाभसम्भवाल्लभसाधर्म्यं । तथा छब्दस्थविषयभावाध्यक्षसाधर्म्यादवधिज्ञानानन्तरं मनःपर्यायज्ञान-स्योपन्यासः, तथाहि-यथाऽवधिज्ञानं छब्दस्थस्य भवत्येवं मनःपर्यायज्ञानमपि छब्दस्थस्यैवेति छब्दस्थसाधर्म्यं, तथा यथाऽवधिज्ञानं रूपिद्रव्यविषयमेवं मनःपर्यायज्ञानमपि सामान्येनेति विषयसाधर्म्यं, तथा यथाऽवधिज्ञानं ज्ञायोपशमिके भावे तथा मनः-

ज्ञानभेदा-
नामुद्देशः

॥ २६ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२,३] / गाथा ४७...
प्रति सूत्रांक [२-३] गाथा ४७..	<p>नन्दी- हारिभद्रीय बृत्ती ॥ २७ ॥</p> <p>पर्यायज्ञानमपि इति भावसाधर्म्यं, तथा यथा अवधिज्ञानं प्रत्यक्षमेवं मनःपर्यायज्ञानमपीत्यध्यक्षसाधर्म्यं। तथा मनःपर्यायज्ञानानन्तरं केवलज्ञानस्योपन्यासः, तस्य सकलज्ञानोत्तमत्वात्, तथा अप्रमत्तयतिस्वाभिसाधर्म्यात्, तथाहि-यथा मनःपर्यायज्ञानमप्रमत्तयतेरेव भवति एवं केवलज्ञानमपि अप्रमत्तभावयतेरेवेति साधर्म्यं, तथाऽवसानलाभाच्च, यो हि सर्वज्ञानानि समासादयति स खल्वन्त एवेदमाभोतीति भावना, विषयेभावसाधर्म्याच्च, तथाहि-यथा मनःपर्यायज्ञानं विपरीतं न भवत्येवं केवलभपि इति साधर्म्यं, अलं विस्तरेणेति सूत्रार्थः;</p> <p>‘तं समासतो दुष्टिहं पश्चत्’मित्यादि (२-७१) तत् पञ्चप्रकारं ज्ञानं समासतः संक्षेपेण द्विविधमिति द्वे विधे अस्येति द्विविधं द्विप्रकारं प्रज्ञसं प्रस्तुपितं तत्यथेत्युदाहरणोपन्यासार्थम्, प्रत्यक्षं च परोक्षं च, तत्र प्रत्यक्षमित्यत्र जीवोऽक्षः, कथैः, ‘अश-व्यासा’वित्यस्य ज्ञानात्मनाऽश्चुतेऽर्थानित्यक्षः, व्याभोतीत्यर्थः, ‘अश भोजन’ इत्यस्य वाऽश्चनाति सर्वाऽथानित्यक्षः, पालयति शुक्ते चेत्यर्थः, तमक्षं प्रति वर्तते इति प्रत्यक्षं, आत्मनः अपरनिमित्तमवध्याद्यतीनिद्रियमिति भावार्थः, चशब्दः स्वगतानेकमेदप्रदर्शनपरः, विचित्रतां चास्योत्तरत्र वक्ष्यामः, परोक्षं चेत्यत्राक्षस्य-आत्मनः द्रव्येनिद्रियाणि द्रव्यमनश्च पुद्गलमयत्वात् पराणि वर्तन्ते, पृथगित्यर्थः, तेभ्योऽक्षस्य यत् ज्ञानमुत्पद्यते तत् परोक्षे, परनिमित्तत्वाद्गमादग्निज्ञानवद्, अथवा पौरुषा-संबंधनं विषयविषयीभावलक्षणमस्येति परोक्षं, चशब्दः पूर्ववद्, एवमन्यत्राप्युत्प्रेक्ष्य चशब्दार्थो वक्तव्य इति सूत्रार्थः ॥ एवं भेदद्वये उपन्यस्ते सत्यनयोः सम्यक्-स्वरूपमनवगच्छाह चादकः—</p> <p>‘से किं तं पच्चक्षं १०’ (३-७६) सेशब्दो मागधेशीप्रसिद्धो निषातोऽथशब्दार्थे वर्तते, स च प्रक्रियादिवाचकः, यथोक्तं</p>
दीप अनुक्रम [५४-५५]	प्रत्यक्ष- परोक्षे ॥ २७ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** जानस्य संक्षेप्तः द्वे भेदे प्रदर्शयते

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [३,४] / गाथा ४७... 	
प्रति सूत्रांक [३-४] गाथा ४७..	<p>नन्दी- हारिभद्रीय वृत्ती ॥ २८ ॥</p> <p>‘अथ प्रक्रियाप्रश्नानन्तर्यमंगलोपन्यासप्रतिवचनसमुच्चयेषु’ इहोपन्यासार्थः, किमिति परिप्रश्ने, तत् प्रागुपदिष्टे प्रत्यक्षमिति सूत्रार्थः ॥ एवं चोदकेन प्रश्ने कुते सति न्यायप्रदर्शनार्थमाचार्यः चोदकोक्तानुवादद्वारेण निर्वचनमभिधातुकाम आह— ‘पञ्चक्खं दुविहं पञ्चत्’मित्यादि, एवमन्यत्रापि यथायोगं प्रश्ननिर्वचनसूत्राणां पातनिका कार्येति, प्रत्यक्षं द्विविधं प्रज्ञासं, तद्यथा-इन्द्रियप्रत्यक्षं नोइन्द्रियप्रत्यक्षं च, इन्द्रियाणां प्रत्यक्षं इन्द्रियप्रत्यक्षं, इहेन्द्रः स्वरूपतो ज्ञानादैश्वर्ययुक्तत्वादात्मा तस्येदमिन्द्रियं, तच्च द्विधा-द्रव्येन्द्रियं च भावेन्द्रियं च, तत्र पुढलैर्बाध्यसंस्थाननिवृत्तिः कदम्बपुष्पाद्याकृतिविशिष्टेषोपकरणं च द्रव्येन्द्रियं, ‘निवृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियं’ मिति(तच्चा.२-१७) वचनात्, श्रोत्रेन्द्रियादिविषया सर्वात्मप्रदेशानां तदावरणक्षयोपशमलबिधरूपयोगश्च भावेन्द्रियं, ‘लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियं’ मिति(तच्चा.२-१८) वचनात्, इन्द्रियप्रत्यक्षं न भवतीति नोइन्द्रियप्रत्यक्षं, नोशब्दः सर्वप्रतिषेधे ॥</p> <p>‘से किं त’मित्यादि (४-७६) अथ किं तदिन्द्रियप्रत्यक्षं ?, तत् इन्द्रियप्रत्यक्षं पञ्चविधं प्रज्ञासं, तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्षमित्यादि, श्रोत्रेन्द्रियस्य श्रोत्रेन्द्रियप्रधानं वा प्रत्यक्षं २, श्रोत्रेन्द्रियनिभित्तमित्यर्थः, एवं शेषव्यपि वक्तव्यम्, एतच्चोपचारतः प्रत्यक्षं, न परमार्थतः, कथं ज्ञायत इति चेत् सूत्रप्रामाण्यात्, वक्ष्यति च—“परोक्खं दुविहं पञ्चतं, तंजहा-आभिषिद्वेहियणाण-परोक्खं च सुयणाणपरोक्खं च” न च मतिश्रुताभ्यामिन्द्रियमनोनिमित्तमन्यदस्ति यत् प्रत्यक्षमज्जसा भवेत्, भावे च पृष्ठज्ञान-प्रसंगाद् विरोध इति, तस्मात् परोक्षमेवेदं तत्त्वत इति, आह-इह लोके लिंगं परोक्षमिति प्रतीतमिति, उच्यते, इह यदिन्द्रियमनो-भिर्बाध्यलिंगप्रत्ययमुत्पद्यते तदेकान्तेनैवेन्द्रियाणामात्मनश्च परोक्खं, परनिमित्तत्वाद्भूमादग्निज्ञानवदित्यतः परोक्षमिति प्रतीतिः,</p>	इन्द्रिय- प्रत्यक्षं ॥ २८ ॥
दीप अनुक्रम [५७-५६]		

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

<p>आगम (४४)</p>	<p>[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४-७] / गाथा ४७... </p>
<p>प्रत सूत्रांक [४-७] गाथा ४७.. </p>	<p>नन्दी- हरिभद्रीय वृत्ति ॥ २९ ॥</p> <p>यत्पुनः साक्षादिनिद्रियमनोनिमित्तं तत्तेषामेव तत्प्रत्यक्षम्, आलिङ्गत्वाद्, आत्मनोऽवध्यादिवत्, न त्वात्मनः, आत्मनस्तु तत् परोक्षमेव, परनिमित्तत्वालैंगिकवत्, इन्द्रियाणाभपि तदुपचारतः प्रत्यक्षं, न परमार्थतः, कथम्?, अचेतनत्वादित्यत्र वहु वक्तव्यं तत्त्वान्यत्र वक्ष्यामो, मा भूत् प्रथमग्रन्थ एव प्रतिपत्तिगौरवमित्यलं विस्तरेण, आह-‘स्पृशनरसनद्वाणचक्षुःश्रोत्राणीनिद्रियाणी’ ति क्रमः, अयमेव च ज्यायान्, पूर्वपूर्वलभम् एवोत्तरोत्तरकाभाद्, अतः किमर्थमुल्कमः ?, उच्यते, पश्चानुपूर्वादिन्यायज्ञानपनार्थं, स्पष्टसंवेदनद्वारेण सुखप्रतिपत्त्यर्थं चेति, इह मनोज्ञानयणीनिद्रियज्ञानतुल्ययोगक्षेममेव द्रष्टव्यं, तथा चाभिनिवोधिकज्ञानप्ररूपणार्थं प्रत्यक्षत इति सेतं इतियपचक्ष्यं तदेतदिनिद्रियप्रत्यक्षम् ॥</p> <p>‘से किं तं णोऽनिद्रियपचक्ष्यं०’(५-७६) अथ किं तत्रोऽनिद्रियप्रत्यक्षं? नोऽनिद्रियप्रत्यक्षं त्रिविधं प्रज्ञासं, तद्यथा-अवधिज्ञान-प्रत्यक्षं इत्यादि ॥</p> <p>‘से किं तं०’इत्यादि (६-७६) अथ किं तदवधिज्ञानप्रत्यक्षं ?, २ द्विविधं प्रज्ञासं, तद्यथा-भवप्रत्ययं च क्षयोपशामिकं च, तत्र भवन्त्यस्मिन् कर्मवशवर्त्तिनः प्राणिन् इति भवः-नरकादिजन्मेति भावः, भव एव ग्रत्ययः-कारणं यस्य तद्ववप्रत्ययं, च पूर्ववत्, तथा क्षयश्चोपशमश्च क्षयोपशमौ ताभ्यां निर्वृत्तं क्षयोपशामिकं ॥ तत्र यदेषां भवति तत्तेषामुपर्दर्शनाह—</p> <p>‘दोणह’मित्यादि (७-७६) द्वयोर्जीवसमूहयोः भवप्रत्ययं, तद्यथा-देवानां नारकाणां च, तत्र दीन्यन्तीति देवाः, निरुपमक्रीडामनुभवन्तीत्यर्थः, तेषां, तथा नरान् कायन्तीति नरकाः, योग्यतया शब्दयन्तीत्यर्थः, तेषु भवा नारकास्तेषां ॥ अत्राह-न-</p>
<p>दीप अनुक्रम [५६-५९]</p>	<p>अवधेर- धिकारः ॥ २९ ॥</p>

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** अथ प्रत्यक्ष-ज्ञान भेदे ‘अवधिज्ञान’ वर्णयते

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

..... मूलं [७-९] / गाथा ||४७...||

प्रति
सूत्रांक
[७-९]
गाथा
||४७..||

नन्दी-
हरिभद्रीय
शृणा
॥ ३० ॥

नवधिज्ञानं क्षायोपशमिके भावे वर्तते देवनारकभवशौदधिकस्तत कथं तद् भवप्रत्ययमिति, उच्यते, क्षायोपशमिकमेव तत्, किंतु स एव देवनारकभवे अवश्यंभावि, पश्चिणं गगनगमनलघिनिमित्तवदित्येता भवप्रत्यय इति, उक्तं च-“उदयक्खयस्योवसमोवसमा जं च कम्मुणो भणिथा । दद्यं खेत्तं कालं भावं च भावं च संपप्प ॥ ९ ॥(पंचसं०७६) तथा द्वयोः क्षायोपशमिके, तद्यथा-मनुष्याणां पंचेन्द्रियतिर्थग्न्योनीनां च, न चैषामवश्यंतया भवतीत्यतः सत्यपि क्षायोपशमिकत्वे भवप्रत्ययाद् भिन्नमिदमिति, तच्चतस्तु सर्वमेव क्षायोपशमिकमिति ॥ अयुना क्षयोपशमस्वरूपं प्रतिपादयन्नाह—‘को हेऽज’ इत्यादि, को हेतुः? किनिमित्तं किविषयं क्षायोपशमिकं यद्वा किं कारणं क्षायोपशमिकमुच्यते इत्यध्याहारः, अत्र निर्वचनमभिघातुकाम आह-क्षायोपशमिकं तदावरणीयानाम्-अवधिज्ञानावरणीयानां कर्मणां उदीर्णानां उदयावलिकाग्रासानां-क्षयेण प्रलयेन अनुदीर्णानां चात्मनि व्यवस्थितानामुपशमेन उदयनिरोधेन अवधिज्ञानमुत्पद्यते इति सम्बन्धः, यत एवमतः कर्मोद्यानुदयविषयं, अथवा येन तदावरणीयानां कर्मणां उदीर्णानां क्षयेणानुदीर्णानामुपशमेनावधिज्ञानमुत्पद्यते तेन क्षायोपशमिकमित्युच्यते इति, स च क्षयोपशमो विशिष्टगुणप्रतिपत्तिमन्तरेण तथा गुणप्रतिपत्तितश्च भवति, तत्रान्तरेण यथाऽकाशे धनधनपटलाञ्छादितमूर्त्तेद्विवसकरमण्डलस्य कर्थंचिदुपजातरन्त्रेण विनिर्गतप्रसिद्धिरानि-चयप्रलयहेतवः किरणाः स्वावपातदेशस्पदं द्रव्यंमुद्योतयन्ति तथा प्रकृतिभास्वरस्यात्मनो मिथ्यात्वादिजनितज्ञानावरणीयादिकर्म-मलपटलतिभिरतिरस्कृतस्वभावस्यानादौ संसारे परिभ्रमतो यथाप्रवृत्त्योपजातावधिज्ञानावरणक्षयोपशमविवरस्यावधिज्ञानालोकः प्रसाधयते स्वकार्यमिति, गुणप्रतिपत्तितस्तु मूलगुणादिप्रतिपत्तेभवति, यत आह—
‘अथवा’ इत्यादि ॥ (९-८१) ॥ अथवेति प्रकारान्तरप्रदर्शनार्थ, अन्तरेण प्रतिपत्तिमित्यस्मादिदं प्रकारान्तरमेव, गुणाः-

अवधे-
रधिकारः

॥ ३० ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१-१०] / गाथा ४७...
<p>प्रति सूत्रांक [१०] गाथा ४७.. </p> <p>दीप अनुक्रम [६२]</p>	<p>नन्दी- हारिभद्रीय वृत्ती ॥ ३१ ॥</p> <p>मूलगुणादयस्ते: प्रतिपज्ञो-गृहीतो गुणप्रतिपक्ष इत्यनेन अतिशयपात्रतामाह, यतः पात्राश्रयिणो गुणाः, उक्तच—“नोद- न्वानर्थितामेति, न चाम्भोभिर्न पूर्वते । आत्मा तु पात्रतां नेयः, पात्रमायान्ति सम्पदः ॥ १ ॥” अथवा प्राकृतशैल्या पूर्वापरनि- पातकरणात् प्रतिपञ्चगुणस्य अनगारस्य न गच्छन्तीत्यगाः-वृक्षास्तैः कृतमगारं-गृहं नास्यामारं विद्यते इत्यनगारः परित्यक्तद्र- व्यमावगृह इत्यर्थः, तस्य प्रशस्ताध्यवसायस्य तदावरणकर्मश्योपशेषम् सत्यवाधिज्ञाने समुत्पद्यते, तं समासतो इत्यादि, तद् अ- वधिज्ञानं समासतः संक्षेपेण षड्विधं षट्प्रकारं प्रज्ञसं प्रसूपितं, तदथा-अनुगामिकं अनुगमनशीलं, अनुगामिकं अवधि- ज्ञानं लोचनवद्गच्छन्तमनुगच्छतीतिभावार्थः, अननुगामिकं नावधिज्ञानिनं गच्छन्तमनुगच्छति संकलाप्रतिवद्ग्रदीपवत् इति ह- दयं, वर्धते वर्द्धमानं तदेव वर्द्धमानकं, संज्ञायां कन्, उत्पत्तिकालादारभ्यं प्रवर्द्धमानं, महेन्धननिवन्धनोत्पद्यमानानलज्वालाक- लापवदिति भावना, हीयमानंकं हीयते हीयमानं तदेव हीयमानकं, कुत्सायां कन्, उदयसमयसमनन्तरमेव हीयमानं दग्धेन्ध- नप्रायधूमध्वजाचिर्वातवदित्यर्थः, प्रतिपाति प्रतिपतनशीलं प्रतिपाति कर्थचिदापादिताजात्यमणिप्रभाजालवदिति गर्भार्थः, अप्रति- पाति न ग्रतिपाति अप्रतिपाति क्षारमृतपुटपाकाद्यापाद्यमानजात्यमणिकरणनिकरवदित्यमित्रायः, आह-आनुगामुकानानुगामुकमे- दद्य एव शेषभेदानां वर्द्धमानकादीनामन्तर्भावात् किमर्थसुपन्यास इति, उच्यते, सत्यप्यन्तर्भवे तद्विकल्पद्वयादेव तेषामपरिच्छित्तेः, तथाहिनानुगामुकमनानुगामुकं चेत्युक्ते वर्द्धमानकादयो गम्यन्त इति, अज्ञातज्ञापनार्थं च शास्त्रप्रवृत्तिरित्यलं प्रसंगेन । ‘से किं तमाणुगामिकं’मित्यादि ॥ (१०-८२) ॥ अथ किं तदानुगामुकं अवधिज्ञाने, २ द्विविधं प्रज्ञसं, तदथा— अन्त- गतं च मध्यगतं च, इहान्तः पर्यन्तो भव्यते, नान्तवत्, गतं स्थितमित्यनर्थान्तरं, अन्ते गतमन्तगतं अन्ते स्थितं, तच्च फड्ड-</p> <p style="text-align: right;">अवधे- भेदाः</p> <p style="text-align: right;">॥ ३१ ॥</p>
	<p>पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>*** अथ अवधिज्ञानस्य भेदानां वर्णनं आरक्ष्यते</p>

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [१०] / गाथा ||४७...||

प्रति
सूत्रांक
[९-१०]
गाथा
||४७..||

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ती
॥ ३२ ॥

कावधित्वादात्मप्रदेशान्ते, सर्वात्मप्रदेशक्षेत्रोपशमभावतो वा औदारिकशरीरान्ते, एकदिगुपलम्भाद्वा तदुद्योतितक्षेत्राते गतमंत-
गतं, इह चात्मप्रदेशान्तगतमुच्यते, सकलजीवोपयोगे सत्यपि साक्षादेकदेशेनैव दर्शनात्, औदारिकशरीरान्तगतमपि, औदारिकश-
रीरैकदेशेनैव दर्शनाच्च, यथोक्तक्षेत्रान्तगतं त्ववधिमतस्तदन्तवृत्तेरिति भावना, चशब्दः पूर्ववत्, मध्यगतं इह मध्यः प्रसिद्ध ए-
व दण्डादिमध्यवत्, मध्ये गतं मध्यगतं मध्ये स्थितं, तच्च सर्वत्र फङ्कविशुद्धरात्ममध्ये सर्वात्ममध्ये सर्वात्मनो वा क्षेयोपशमयो-
गाविशेषेऽपि औदारिकशरीरमध्योपलब्धेः तन्मध्ये सर्वदिगुपलम्भाद्वा तत्प्रकाशितक्षेत्रमध्ये गतं मध्यगतं, अत्र चात्ममध्यगतमभिधी-
यते, सर्वात्मोपयोगे सत्यपि मध्य एव फङ्कसद्भावात्, साक्षान्मध्यभागेनोपलब्धेः, औदारिकशरीरमध्यगतमप्यादैरिकशरीरमध्य-
भागेनैवोपलब्धेः, प्रस्तुतक्षेत्रमध्यगतं पुनरवधिज्ञानिनस्तत्र मध्ये भावादिति भावार्थः, चशब्दः पूर्ववत् ।

दीप
अनुक्रम
[६१-६२]

‘से किं त’मित्यादि, प्रायः सुगमम्, नवरं उल्का-दीपिका चुड्ली-पर्यन्तज्वलिता तुणपूलिका अलातम्-उल्मुकं मणिः-पद्मरा-
गादिः प्रदीपशिखादि ज्योतिः मल्लिकाद्याधारोऽग्निः प्रदीपः प्रतीतः पुरतः अग्रतो हस्तदण्डादौ गृहीत्वा ‘पणोल्लेमाणे पणो-
ल्लेमाणे’ति प्रेरयन् २ गच्छेदूयाथात् सेतनं तदेतत् पुरतोऽन्तगतम्, अयमत्र भावार्थः स हि गच्छन् उल्कादिभ्यः सकाशात्
पुरत एव पश्यति, नान्यत्र, एवं यतोऽवधिज्ञानाद्विविधश्योपशमनिमित्तत्वादेशपुरत एव पश्यति, नान्यत्र, तत् पुरतोऽन्तगतमभि-
धीयते हन्त्येतावताऽशेन दृष्टान्तं हन्त्येवं सर्वत्र योज्यम् । से किं तमित्यादि, निगदसिद्धं, नवरं ‘अणुकड्डेमाणे २’ति अनुकर्षन् २,
एवं ‘परियट्टेमाणे २’ परिकर्षन् २, अथ किं तन्मध्यगतमित्यादि निगदसिद्धमेव, नवरं मस्तके शिरसि कृत्वा गच्छेत् तदेतन्म-
ध्यगतमिति, एतदुक्तं भवति-स तेन मस्तकस्थेन सर्वत्र तदप्रकाशितमर्थं पश्यति, परमेवं यतोऽवधिज्ञानात् तदुद्योतितार्थोवगमस्त-

अनु-
गाम्याद्याः
अन्त-
गताद्याश्च

॥ ३२ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१०-१२] / गाथा ४७...
प्रति सूत्रांक [१०-१२]	<p style="text-align: center;">नन्दी- हरिभद्रीय वृत्ती ॥ ३३ ॥</p> <p>न्यध्यगतमित्येतावताऽरेन दृष्टान्त इति, इह व्याख्यातार्थं सम्यगववगच्छआह चोदकः- अंतगतस्स य इत्यादि दूत्रासिदं यावत् ‘मज्जगतेण’मित्यादि, भध्यगतेनावधिज्ञानेन सर्वतः सर्वासु दिग्बिदिक्षु समन्तात् सर्वैरात्मप्रदेशैर्विशुद्धफड्हकैर्वा संख्येयानि वा असंख्येयानि वा योजनानि जानाति पश्यति, अथवा समन्ता अवधिज्ञान्येव च गृह्णते, संख्येयानि चेत्यत्र संख्यायन्त इति संख्येयानि- एकादीनि शीर्षप्रहेलिकापर्यन्तानि गृह्णन्ते, तत ऊर्ध्वमसंख्येयानि, तदेतदानुगामुकमवधिज्ञानं इति ।</p> <p>‘से किं त’ मित्यादि ॥११-८९॥ प्रकटार्थमेव, नवरं ज्योतिःस्थानं-अग्निस्थानं कृत्वा तस्यैव ज्योतिःस्थानस्य पर्यन्तेषु, किमेकदिग्गतेषु ? , नेत्याह- परिः सर्वतो भावे, ततश्च परिपर्यन्तेषु २ परिघूर्णन् , परिभ्रमन् इत्यर्थः, तदेव ज्योतिःस्थानं, ज्योतिः- प्रकाशितं क्षेत्रमित्यर्थः, पश्यति, अन्यत्र गतो न पश्यति, तदुपलभाभावात् , तदावरणक्षयोपशमस्य तत्क्षेत्रसम्बन्धसापेक्षत्वात् , एवमेव अनानुगामुकमवधिज्ञानं यत्रैव क्षेत्रं व्यवस्थितस्य सतः समुत्पद्यते तत्रैव व्यवस्थितः सन् संख्येयानि वा असंख्येयानि वा योजनानि सम्बद्धानि वा असम्बद्धानि वा जानाति पश्यति, नान्यत्र, क्षेत्रसम्बन्धसापेक्षत्वादवधिज्ञानावरणक्षयोपशमस्य, तदेतद- नानुगामुकम् ॥</p> <p>‘से किं त’ मित्यादि॥(१२-९०)॥ अथ किं तद्वद्भमानकं? , २ वर्द्धमानमेव वर्द्धमानकं प्रशस्तेष्वध्यवसायस्थानेषु वर्तमानस्य वर्तमानचारित्रस्य, इहौषतो द्रव्यलेश्योपरजितं चित्तमध्यवसायस्थानमुच्यते, अस्य चानवस्थितत्वात्तद्रव्यसाचिव्ये सति विशेषभावाद्द्वित्वमिति, तत्र प्रशस्तेष्वध्यवस्थानेनापश्यस्तकुण्णलेश्यादिद्रव्योपरंजितव्यवच्छेदमाह, अध्यवसायस्थानेषु वर्तमानस्य, प्रश-</p>
गाथा ॥४७..॥	अनानुगा- मुकं वध- मानकं च ॥ ३३ ॥
दीप अनुक्रम [६२-६४]	

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२] / गाथा ४८
<p>प्रत सूत्रांक [१२] गाथा ४८ </p> <p>दीप अनुक्रम [६४-६५]</p>	<p>नन्दी- हारिभद्रीय वृत्तौ ॥ ३४ ॥</p> <p>स्ताध्यवसायस्येत्यर्थः; सर्वतः समन्तादवधिः परिवर्द्धत इति योगः; अनेनाविरतसम्यग्दृष्टेरपि वर्द्धमानक उक्तो वेदितव्यः; वर्त्तमानचारित्रस्येत्यनेन तु देशविरतसर्वविरतयोरिति, विशुद्धमानस्य-तदावरणकर्ममलविगमादुत्तरोत्तरं शुद्धिमनुभवतः अविरतसम्यग्दृष्टेरेव, अनेनावधेः शुद्धिजन्यत्वमाह, विशुद्धमानचारित्रस्य देशसर्वविरतस्य सर्वतः समन्तादवधिः परिवर्द्धत इति, तत्र परिवर्द्धत इत्युक्तम् , अथ सर्वजघन्योऽयं कियत्प्रमाणो भवतीति प्रश्नसम्भवे क्षेत्रतः प्रतिपादयन्नाह—</p> <p>जावहया०गाहा॥(*४८-९०)॥यावती यावत्प्रमाणा, आहारयतीत्याहारकः त्रिसमयं आहारकः त्रीन् वा समयानिति, तस्य, सूक्ष्मनामकमर्मेदयात् सूक्ष्मस्तस्य, पनकश्चासौ जीवश्च पनकजीवः, वनस्पतिविशेषः इत्यर्थः; तस्य, अवगाहन्ते यस्यां प्राणिनः सा अवगाहना, तनुरित्यर्थः; जघन्या- सर्वस्तोका, अवधेः क्षेत्रं अवधिक्षेत्रं, जघन्यं- सर्वस्तोकं, तुशब्द एवकाकारार्थः; स चावधारणे, तस्य चैवं प्रयोगः-अवधिक्षेत्रं जघन्यमेतावदेवेति ॥ अत्र च सम्प्रदायसमधिगम्योऽयमर्थः—</p> <p>योजनसहस्रमानो मत्स्यो मृत्वा स्वकायेदेश यः। उत्पद्येत हि सूक्ष्मः पनकत्वेनेह स ग्राह्यः ॥ १ ॥ संहृत्य चाद्यसमये स द्वायामं करोति च प्रतरम् । संख्यातीताख्यांगुलविभागवाहल्यमानं तु ॥ २ ॥ स्वतन्त्रपृथुत्वमात्रं दीर्घत्वेनापि जीवसामर्थ्यात् । तमपि द्वितीयसमये संहृत्य करोत्वसौ सूचिम् ॥ ३ ॥ संख्यातीताख्यांगुलविभागविष्कम्भमाननिर्दिष्टाम् । निजतनुप्रथुत्वदैव्यां तृतीयसमये तु संहृत्य ॥ ४ ॥ उत्पद्येत च पनकः स्वदेहदेशे स सूक्ष्मपरिणामः । समयत्रयेण तस्यावगाहना यावती भवति ॥ ५ ॥ तावज्जघन्यमवधेरालम्बनवस्तुभाजनं क्षेत्रम् । इदमित्थमेव मुनिगणसुसम्प्रदायात् समवेसयम् ॥ ६ ॥'</p> <p>अवधेज- घन्यं क्षेत्रं</p> <p>॥ ३४ ॥</p>
	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p>

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [१२...] / गाथा ||४९||

प्रति
सूत्रांक
[१२..]
गाथा
||४९||

नन्दी-
हारिमद्रीय
वृत्तौ
॥ ३६ ॥

अत्र कश्चिदाह- किमिति महान् मत्स्यः? किं वा तस्य तृतीयसमये निजदेशे समुत्पादः? त्रिसमयाहारकत्वं वा कल्प्यते? इति, अत्रोच्यते, स एव हि महामत्स्यखिभिः समयैरात्मानं संक्षिप्तं प्रयत्नविशेषात् सूक्ष्मावगाहनो भवति, नान्यः, प्रथमद्वितीयसमययो-थातिसूक्ष्मः, चतुर्थादिषु चातिस्थूरः, त्रिसमयाहारक एव च योग्य इत्यतस्तद्ग्रहणं इति, अन्ये तु व्याचक्षते-त्रिसमयाहारक इति आयामविष्कम्भसंहारसमयद्वयं सूचिसंहरणोत्पादसमयर्थते त्रयः समयाः, विश्रामावाच्चाहारक एतेभ्यत्यतः उत्पादसमय एव त्रिसमयाहारकः सूक्ष्मः पनकजीवो जघन्यावगाहनश्चातस्तद्प्रमाणं जघन्यमवधिक्षेत्रमिति, एतच्चायुक्तं, त्रिसमयाहारकत्वस्य पन-कजीवविशेषणत्वात्, भृत्यायामविष्कम्भसंहरणसमयद्वयस्य च पनकसमयायोगात्, त्रिसमयाहारकत्वात्यविशेषणानुपपत्तिप्रसंगाद्, अलं प्रसंगेनेति गाथार्थः ॥ एवं तावज्जगन्यमवधिक्षेत्रमुक्तृष्टिभागमाभिधातुकाम आह—

दीप
अनुक्रम
[६६]

सर्वव्युत्थुअगणिजीवाऽ ॥ (४९-५०) ॥ सर्वेभ्यो-विवक्षितकालावस्थायिभ्योऽनलजीवेभ्य एव वहयः सर्ववहवो, न भूत-भविष्यद्भ्यो नापि शेषजीवेभ्यः, कुतः १, असम्भवात्, अग्रयश्च ते जीवाश्च अग्निजीवाः सर्ववहवश्च ते अग्निजीवाश्च सर्ववहवश्च ते अग्निजीवाः, निरन्तरमिति क्रियाविशेषणं, यावद् यावतपरिमाणं भूतवन्तो व्याप्तवन्तः क्षेत्रम्-आकाशम्, एतदुक्तं भवति-नैरन्तर्येण विशिष्टसूचिरचनया यावद् भूतवन्त इति, भूतकालनिर्देशशाजितस्वामिकाल एव प्रायः सर्ववहवोऽनलजीवा भवन्त्यस्यामवसर्पि-प्यामित्यस्यार्थस्य रुपापनार्थम्, हदमनन्तरोदितविशेषणं क्षेत्रमेकदिक्षमपि भवति अत आह-सर्वदिक्षम्, अनेन सूचीपरिग्रामणप्रमि-तमेवाह, परमश्चासाववधिश्च परमावधिः क्षेत्रमनन्तरव्यावर्णितं प्रभूतानलजीवमितमङ्गीकृत्य निर्दिष्टः क्षेत्रनिर्दिष्टः प्रतिपा-दितो गणधरादिभिरिति, ततश्च पर्यायेण परमावधेरेतावत् क्षेत्रमित्युक्तं भवति, अथवा सर्ववहवश्चिजीवा निरतरं यावद् भूतवन्तः क्षेत्र-

अवधे-
रुक्तुष्ठं
क्षेत्रं

॥ ३६ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [१२...]/ गाथा ||४९-५३||

प्रति
सूत्रांक
[१२...]
गाथा
||४९-
५३||

नन्दी-
हारिभद्रोय
वृत्ती
॥ ३६ ॥

सर्वादिकं एतावति क्षेत्रे यानि अवस्थितानि द्रव्याणि तत्परिच्छेदसामर्थ्ययुक्तः परमावधिः क्षेत्रमंगीकृत्य निर्दिष्टो, भावार्थस्तु पूर्ववदेव, अयमक्षरार्थः, इदानीं साम्प्रदायिकः प्रतिपाद्यते-तत्र सर्ववहृथिजीवा वादराः प्रायोऽजितस्वामितीर्थकरकाले भवन्ति, तदारम्भकपुरुषवाहुल्यात्, स्वक्षमाश्रोत्कृष्टपदिनस्तैवावरुद्धयन्ते, ततश्च सर्ववहवो भवन्ति, तेषां च दुदूचा पोढाऽवस्थानं कल्पयते, एकैकक्षेत्रप्रदेशे एकैकर्जीवावगाहनया सर्वतश्चतुरस्तो घनः प्रथमं, स एव जीवः स्वावगाहनया द्वितीयं, एवं प्रतरोऽपि द्विभेदः, श्रेण्यपि द्विभेदा, तत्राद्याः पञ्च प्रकारा अनादेशाः, क्षेत्रस्यालपत्वात् क्वचित् समयविरोधाच्च, पष्ठः प्रकारस्तु स्त्रादेश इति, तत्रश्चासौ श्रेणी अवधिज्ञानिनः सर्वासु दिक्षु शरीरपर्यन्तेन आम्यते, सा चासङ्गेयानलोके लोकमात्रान् क्षेत्रविभागान् व्याप्तेति, एतावद्वाधिक्षेत्रमुत्कृष्टमिति, सामर्थ्यमङ्गीकृत्यैव प्रस्तृतेते, एतावति क्षेत्रे यदि द्रष्टव्यं भवति पश्यति, न त्वलोके द्रष्टव्यमस्तीति गार्थार्थः ॥ एतनावज्जघन्यमुत्कृष्टं चावधिक्षेत्रमभिहितम्, इदानीं विमध्यमप्रतिपिपादयिषया एतावत्क्षेत्रोपलम्भे चैतावत्कालोपलम्भः तथा एतावत्कालोपलम्भे चैतावत्क्षेत्रोपलम्भम् इत्यर्थस्य प्रदर्शनाय चेद् गाथाचतुष्टयं जगाद् शास्त्राकारः—

अंगुलमावलियाणं०॥(*५०)॥ हत्थमिम० गाहा ॥(*५१)॥ भरहमिम० गाहा ॥(*५२)॥ संखेज्जमिम० गाहा ॥(*५३-५०)॥ अंगुलं क्षेत्राधिकारात् प्रमाणाङ्गुलं गृह्णते, अवधिधिकारान्व्योच्छयाङ्गुलमित्येके, आवलिका असङ्गेयसमयसङ्घातोपलक्षितः कालः, उक्तश्च-‘असंखेयाणं समयाणं समुदयसमितिसमागमणं एगा आवलिगति दुच्चइ’ अङ्गुलं च आवलिका च अङ्गुलावलिके तयोरङ्गुलावलिक्योर्भागमसङ्गत्वयेवं पश्यति अवधिज्ञानी, एतदुक्तं भवति-क्षेत्रमङ्गुलासंख्येभागमात्रं पश्यन् कालतः आवलिकायाः असंख्येयमेव भागं पश्यति, अतीतमनागतं चेति, क्षेत्रकालदर्शनं उपचारेणोच्यते, अन्यथा हि क्षेत्र-

विमध्यमा-
वधि-
क्षेत्रकालौ

॥ ३६ ॥

दीप
अनुक्रम
[६६-७०]

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [१२...]/ गाथा ||४९-५३||

प्रति
सूत्रांक
[१२...]
गाथा
||४९-
५३||

नन्दी-
हरिभद्रीय
वृत्ती
॥ ३७ ॥

व्यवस्थितानि दर्शनयोग्यानि इव्याणि तत्पर्यायांश्च विवक्षितकालान्तर्वर्तिनः पश्यति, न हु क्षेत्रकालौ, मूर्च्छद्रव्यालम्बनत्वात्, एवं सर्वत्र भावना द्रष्टव्या, क्रिया च गाथाचतुष्टयेऽप्यध्याहार्या, तथा इयोः अङ्गुलावलिकयोः सङ्घार्थेयौ भागौ पश्यति, अङ्गुलसंख्येयभागमात्रं क्षेत्रं पश्यन्नावलिकायाः सङ्घार्थेयभागमेव पश्यतीत्यर्थः, तथा अंगुलं पश्यन् क्षेत्रत आवलिकान्तः पश्यति, भिन्नामावलिकामित्यर्थः, तथा कालत आवलिकां पश्यन् क्षेत्रतः अङ्गुलपृथक्त्वं पश्यति, पृथक्त्वं हि द्विप्रभूतिरानवभ्यः, इति प्रश्नमगार्थार्थः ॥ द्वितीयगाथाव्याख्या-हस्त इति हस्तविषयः क्षेत्रोऽवधिः कालतो मुहूर्तान्तः पश्यति, भिन्नमुहूर्चमित्यर्थः, अवध्यवधिमतोरभेदोपचारादवधिः पश्यतीत्युच्यते, तथा कालतो दिवसान्तो भिन्नदिवसं पश्यन् क्षेत्रतो गच्छूत इति गच्छूतविषयो बोद्धव्यः, तथा योजनविषयः क्षेत्रोऽवधिः कालतो दिवसपृथक्त्वं पश्यति, तथा पक्षान्तः भिन्नं पक्षं पश्यन् कालतः पञ्चविंशति योजनानि पश्यतीति द्वितीयगाथार्थः ॥ तृतीयगाथाव्याख्या-भरत इति क्षेत्रतो भरतविषयेऽवधौ कालतः अर्द्धमास उक्तः, एवं जम्बुदीपविषये चावधौ साधिको मासः, वर्षं च मनुष्यलोकविषयेऽवधाविति मनुष्यलोकः खल्वर्ढत्तर्तीयद्विषयसमुद्रपरिमाणः, वर्षपृथक्त्वं च रुचकारुच्यवादाद्विषयेऽवधाववगन्तव्यमिति तृतीयगाथार्थः ॥ चतुर्थगाथाव्याख्या-सङ्ग्रह्यायत इति सङ्ग्रह्येयः, स च संवत्सरलक्षणोऽपि भवति, तुशब्दो विशेषणार्थः, किं विशिनश्चि ?, सङ्ग्रह्येयो वर्षसहस्रात् परतोऽपि गृह्णते इति, तस्मिन् संख्येये कलनं कालः तस्मिन् काले अवधेगोचरे सति क्षेत्रतस्यैवावधेगोचरतया द्वीपाश्च समुद्राश्च द्वीपसमुद्रा अपि भवन्ति संख्येयाः, अपिशब्दात् महानेकोऽपि तदेकदेशोऽपीति, तथा कालेऽसंख्येये पल्योपमादिलक्षणोऽवधेविषये सति तस्यैवासंख्येयकाल-परिच्छेदकस्यावधेः क्षेत्रतः परिच्छेदतया द्वीपसमुद्रास्तु भाज्याः कदाचिदसंख्येया एव, यदा इह कस्यचिन्मनुप्यस्यासंख्येयद्वीप-

क्षेत्रकाल-
वृद्धिः

॥ ३७ ॥

दीप
अनुक्रम
[६६-७०]

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [१२...]/ गाथा ||५३-५४||

प्रति
सूत्रांक
[१२...]
गाथा
||५३-
५४||

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृद्धा
॥ ३८ ॥

समुद्रविषयोऽवधिरुत्पद्यत इति, कदाचिन्महान्तः संख्येयाः, कदाचिदेकदेशः स्वप्नभूरमणतिरशोऽवधिविहेयः, स्वप्नभूरमणविषय-
मनुष्यबाह्यावधेवा, योजनापेक्षया च सर्वपक्षेष्वसंख्येयमेव क्षेत्रमिति गाथार्थः ॥ एवं तावत् परिस्थूरन्यायमंगीकृत्य क्षेत्रवृद्ध्या
कालवृद्धिरनियता कालवृद्ध्या च क्षेत्रवृद्धिः प्रतिपादिता, साम्यते द्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षया यस्य वृद्धौ यस्य वृद्धिर्भवति यस्य वा
न भवत्यमुमर्थमभिघित्सुराह—

कालेऽगाहा ॥(५४-१०)॥ कालेऽवधिज्ञानगोचरे वर्द्धमाने चतुर्णां द्रव्यादीनां वृद्धिर्भवति, कालस्तु भाज्यो विकल्पयितव्यः,
क्षेत्रस्य वृद्धिः क्षेत्रवृद्धिः तस्यां क्षेत्रवृद्धौ सत्यां कदाचिद्वृद्धते कदाचिन्नेति, कुतः? क्षेत्रस्य सूक्ष्मत्वात्, कालस्य च स्थूलत्वाद्,
द्रव्यपर्यायौ तु वर्द्धते, साम्यन्तता चास्य-‘ए होइ अथारेत पर्यमिम बियाए बहुसु पुंलिंगे । तद्याइसु छट्टीसत्तमीण एकमिम महि-
लत्थे॥१॥’ अस्माछक्षणात् सिद्धेति, एवमन्यत्रापि प्राकृतशैल्या इष्टविभक्त्यन्तता पदानामवगन्तव्येति, तथा वृद्धौ च-द्रव्यं च पर्यायश्च
द्रव्यपर्यायौ तयोर्वृद्धौ सत्यां भाज्यौ- विकल्पनीयौ क्षेत्रकालावेष, तुशब्दस्यैवकारार्थत्वात्, कदाचिदनयोर्वृद्धिर्भवति कदाचिन्नेति,
द्रव्यपर्याययोः सकाशात् परिस्थूरत्वात् क्षेत्रकालयोरिति भावार्थः, द्रव्यवृद्धौ तु पर्याया वर्द्धन्त एव, पर्यायवृद्धौ च द्रव्यं भाज्यं,
द्रव्यात् पर्यायाणां सूक्ष्मत्वाद् एकस्मिन् भावे (अ)कमवर्त्तिनामपि च वृद्धिसम्भवात् कालवृद्ध्यभावो भावनीय इति गाथार्थः ॥ अत्र
कथिदाह- जघन्यमध्यमोक्षमेदभिन्नयोरवधिज्ञानसम्बन्धिनोः क्षेत्रकालयोरंगुलावलिकाऽसंख्येयभावोपलक्षितयोः परस्परतः
प्रदेशसमयसंख्यया परिस्थूरसूक्ष्मत्वे सति कियता भागेन हीनाधिकत्वमिति, अत्रोच्यते, सर्वत्र प्रतियोगिनः खल्वावलिकाऽसंख्ये-
यभागादेः कालादसंख्येयगुणं क्षेत्रं, कुत एतदत आह—

द्रव्यादि-
वृद्धिनियमः

॥ ३८ ॥

दीप
अनुक्रम
[७०-७१]

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३-१५] / गाथा ७५
<p>प्रति सूत्रांक [१३-१५]</p> <p>गाथा ७५.. </p> <p>दीप अनुक्रम [७२-७६]</p>	<p>नन्दी- हारिभद्रीय वृत्ती ॥ ३९ ॥</p> <p>सुहुमो य० गाहा ॥ (४५५-१०) ॥ सूक्ष्मश्च-श्लक्षणश्च भवति कालः, यस्मादुत्पलपत्रशतभेदे समयाः प्रतिपत्रमसंख्येयाः प्रतिपादिताः, तथापि ततः कालात् सूक्ष्मतरं भवति क्षेत्रं, कुतः १, यस्मादंगुलश्रेणिमात्रे क्षेत्रे, प्रदेशपरिमाणं प्रतिप्रदेशं समय-गणनया अवसर्पिण्यः असंख्येयसर्तीर्थकुद्धिः प्रतिपादिताः, एतदुक्तं भवति-अंगुलश्रेणिमात्रक्षेत्रप्रदेशाग्रं असंख्येयावसर्पिणीसमयरा-शिपरिमाणमिति गाथार्थः ॥ सेतं इत्यादि, तदेतद्द्वामानकं अवधिज्ञानमिति ॥</p> <p>‘से किं त’मित्यादि ॥(१३-१६)॥ अथ किं तद्वायामानकं?, २ कर्थचिद्वासं सत् अप्रशस्तेष्वब्ध्यवसायस्थानेषु वर्तमानस्य सतः अविरतसम्यग्वृष्टेवैभानचारित्रस्य देशविरतादेः संक्षिप्तमानस्य ब्ध्यमानकर्मसंसर्गादुत्तरोत्तरं संक्षेपमासादयतः अविर-तसम्यग्वृष्टेरेव, संक्षिप्तमानचारित्रस्य देशविरतादेः, सर्वतः समन्तादवधिः परिक्षीयते, तदेतद्वायामानकमवधिज्ञानमिति ॥</p> <p>‘से किं त’मित्यादि ॥(१४-१६)॥ अथ किं तत् प्रतिपात्यवधिज्ञानं?, २ ‘जन्म’ मिति, यदवधिज्ञानं जन्मन्येन सर्वस्तोकतया-गुलस्यासंख्येयमागमात्रं वा, उत्कर्षेण सर्वप्रचुरतया यावल्लोकं हृष्ट्वा लोकमुपलभ्य तथाविघ्नश्चयोपशमजन्यत्वात् प्रतिपतेत् , न भवेदित्यर्थः, तदेतत् प्रतिपात्यवधिज्ञानं इति, क्रियाशेषं प्रायो निगदसिद्धं, नवरं पृथक्त्वमिति द्विप्रमृतिरानवभ्य इति सिद्धान्त-परिभाषा, तथा हस्तद्वयं कुक्षिरुच्यते, चत्वारो हस्ता धनुरिति, ‘से त’ मित्यादि, तदेतत्प्रतिपात्यवधिज्ञानम् ॥</p> <p>‘से किं त’मित्यादि ॥(१५-१७)॥ अथ किं तदप्रतिपात्यवधिज्ञानं ?, ‘जेणं’ ति येनावधिज्ञानेनालोकस्य सम्बन्धिनं एकम-प्याकाशप्रदेशं, अपिशब्दाद्वृहन् वा, पद्येत् शक्त्वपेक्षयोपलभेत, एतावत्क्षयोपशमप्रभवं यत् ‘तत् ऊर्ध्वं’मिति तत आरभ्याप्रति-</p> <p style="text-align: right;">वर्धमानादि भेदाः</p> <p style="text-align: right;">॥ ३९ ॥</p>
	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p>

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [१५-१७] / गाथा ||७५...||

प्रति
सूत्रांक
[१५-१७]

नन्दी-
हारिमद्रीय
वृत्ती
॥ ४० ॥

पाति आकेवलप्राप्तेरवधिज्ञानमिति, अयमत्र भावार्थः-एतावत्क्षयोपशमसम्भासात्मा विनिहतप्रथानप्रतिपक्षयोद्दसंघात इव नरपतिर्न पुनः कर्मशशुणा परिभूयते, किं तर्हि ?, समासादैतैतायदालोक एवाप्रतिनिवृत्तः शेषमपि कर्मशश्च विनिर्जित्याप्नेति केवलराज्य-विधिमिति, लोकालोकविभागस्त्वयं-जीवादीनां वृचिर्द्रव्याणां भवति यत्र तत् क्षेत्रम् । तैर्द्रव्यैः सह लोकस्तद्विपरीतं ह्यलोकारूपम् ॥ १ ॥ ‘सित’मित्यादि, तदेतदप्रतिपात्यवधिज्ञानमिति ॥ व्याख्याताः पञ्चेदाः, साम्ब्रतं द्रव्यादिविषयापेक्षणा भेदतोऽवधिज्ञानमेव निरूपयन्नाह—

गाथा
||७५||

‘तं समासओ’ इत्यादि ॥ (१६-९७) ॥ तदवधिज्ञानं समासतः संक्षेपण चतुर्विधं प्रज्ञसं, तद्यथा-द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावत इति, तत्र द्रव्यतः यमिति वाक्यालंकारे अवधिज्ञानी जघन्येनानन्तानि द्रव्याणि तैजसभावाद्रव्याणमपान्तरालवर्तीनि, यत उत्कृष्ट-‘तेयाभासादव्याण अंतरा एत्य लभइ पञ्चओ’-त्ति, उत्कृष्टतः सर्वरूपिद्रव्याणि बादरक्षम्भेदभिज्ञानि जानाति विशेषाकारेण, पश्यति सामान्याकारेण, आह-आदौ दर्शनं ततो ज्ञानमिति क्रमः तत् किमर्थमेनं परित्यज्य प्रथमं जानातीत्युत्कृष्ट ?, अत्रोच्यते, इहावधिज्ञानाधिकारात् प्राधान्यरूपापनार्थमादौ जानातीत्युत्कृष्ट, अवधिर्दर्शनस्य त्ववधिविभंगसाधारणत्वात् पश्चात् पश्यतीति, अथवा सर्वा एव लब्धयस्सांकरोपयोगोपयुक्तस्योत्पद्यन्त इति, अवधेश्च लब्धित्वादित्यस्यार्थस्य रूपापनार्थमादौ जानातीत्याह, ततः क्रमेणोपयोगप्रवृत्तेः पश्यतीति, क्षेत्रतः अवधिज्ञानी जघन्येनांगुलस्यासंख्येयभागं, उत्कृष्टतोऽसंख्येयानि अलोके केवलाकाशास्तिकाये शक्तिमपेक्ष्य लोकप्रमाणानि खण्डानि जानाति पश्यति, कालतोऽवधिज्ञानी जघन्येनावलिकासंख्येयभागं उत्कृष्टतोऽसंख्येया अवसर्पिण्युत्सर्पिणीरतीतं चानागतं च कालं जानाति पश्यतीति, भावार्थः प्राक् प्रतिपादित एव, भावतोऽवधिज्ञानी

दीप
अनुक्रम
[७६-७८]

अवधि-
विषया:
द्रव्यादयः

॥ ४० ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** अवधिज्ञानस्य द्रव्य आदि चत्वारः भेदानां वर्णनं क्रियते

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१७] / गाथा ७६-७७ 	
प्रति सूत्रांक [१७] गाथा ७६- ७७	नन्दी- हरिभद्रीय वृत्ती ॥ ४१ ॥	<p>जघन्येन अनन्तानन्तान् भावान्-पर्यायान्, आधारद्रव्यानन्तत्वात्, न तु प्रतिद्रव्यमिति, उत्कृष्टोऽनन्तान् भावान् जानाति पश्यति, तेऽपि चोत्कृष्टप्रदिनः सर्वभावानां सर्वपर्यायाणामनन्तभाग इति ॥ इत्थमवधिज्ञानं भेदतोऽप्यभिधाय साम्प्रतं संग्रहाथामाह—</p> <p>ओही भव० इत्यादि (* ५६-९८) अवधिर्भवप्रत्ययो गुणप्रत्ययश्च वर्णितो व्याख्यातः एषः अनन्तरं, पाठान्तरं वा वर्णितो द्विविधः, तस्य द्विविधस्यापि बहवो विकल्पा द्रव्यत इति द्रव्यविषयाः परमाणुकादिद्रव्यभेदात् क्षेत्रत इति क्षेत्रविषया अंगुलासङ्घेयभागादिविशिष्टक्षेत्रभेदात्, कालत इति कालविषयाः आवलिकाऽसङ्घेयभागाण्युपलक्षितकालभेदात्, चशब्दाङ्गाविषयाश्च, वर्णाद्यनेकप्रकारत्वाङ्गावानामिति गाथार्थः ॥ एवं तावद्वधिज्ञानमभिधाय साम्प्रतं ये बाह्यावधयो ये चाभ्यन्तरावधयो भवन्ति तानुपदर्शयन्नाह—</p> <p>णेरइय० गाहा (* ५७-९८) नारकाश्च देवाश्च तीर्थकराश्चेति समासः, चशब्द एवकारार्थः, स चावधारणे, अस्य च व्यवहितः प्रयोग इति दर्शयिष्यामः, एते नारकादयः अवधेः अवधिज्ञानस्य न बाह्या अवाद्या भवन्ति, इदमत्र हृदयम्-अवध्युपलब्धक्षेत्रस्यान्तर्वर्तन्ते, सर्वतोऽवभासकत्वात् प्रदीपवत् अवाद्यावधय एव भवन्ति, नैषां बाह्यावधिर्भवतीत्यर्थः, तथा पश्यति सर्वतः सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च, खलुशब्दोऽप्येवकारार्थः, स चावधारणे, सर्वास्वेव दिक्षिति, आह-अवधेबाहा भवन्तीत्यस्मादेव सर्वत इत्यस्य सिद्धत्वात् सर्वतो ग्रहणमतिरिच्यत इति, अत्रोच्यते, नन्चभ्यन्तरत्वे सत्यपि न सर्वे सर्वतः पश्यन्ति, दिगन्तरालादर्शनाद्, अवधेर्विचित्रत्वात्, अतो नातिरिच्यते इति, शेषास्तिर्थप्रराः देशेनेत्येकदेशेन पश्यन्ति, अत्रेष्टोऽवधारणविधेः शेषा एव देशतः</p>
दीप अनुक्रम [७८-८१]		अवधे- विषयः अवाद्याश्च ॥ ४१ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [१७] / गाथा ||७६-७७||

प्रति
सूत्रांक
[१७]
गाथा
||७६-
७७||

नन्दी-
हारिमदीय
बृत्ता
॥ ४२ ॥

पश्यन्ति, न तु देशत एवेति गाथार्थः ॥ अथवा उन्यथा व्याख्यायते-एवं तावदवधिज्ञानमध्यधायि, साम्प्रतं ये नियतावधयो ये चानियतावधयो भवन्ति तान् प्रतियादयआह—‘नेरइय’ गाहा, नारका देवास्तीर्थकरा एव अवधेरवाहा भवन्ति, किमुलं भवति? नियतावधयो भवन्ति, नियमेनैयामवधिर्भवतीत्यर्थः, तेन चावधिना पश्यन्ति सर्वत एव, न पुनर्देशतोऽपि, अत्राह-पश्यन्ति सर्वत एवेत्येतावदेवास्तु, अवधेरवाहा भवन्तीत्येतत्वनर्थकं, नियतावधित्वस्थार्थसिद्धत्वात्, तथा चोक्तम्-द्वयोभेवप्रत्ययः, तद्यथा-देवानां च नारकाणां चेत् त्यतोऽर्थगम्यमैवापां नियतावधित्वं, तीर्थकृतामपि प्रसिद्धतरपारभविकावधिसमन्वागमादेव नियतावधित्वसिद्धिरिति, अत्रोच्यते, नियतावधित्वे सिद्धपि न सर्वकालावस्थायित्वसिद्धिरित्यतस्तप्रदर्शनार्थं अवधेरवाहा भवन्तीति सदाऽवधिज्ञानवन्तो भवन्तीति ज्ञापनार्थत्वाददुष्ट, यदेवं तीर्थकृतां सर्वकालावस्थायित्वं विरुद्धत इति, न, छद्मस्थ-कालस्यैव विवक्षितत्वात्, अलं विस्तरेण, शेषं पूर्ववदिति गाथार्थः। ‘सेत ओहिणार्णति, तदेवतदवधिज्ञानम् ॥

‘से कि तं मणपञ्जवणाणं’ भित्यादि ॥ १७-९९ ॥ अथ कि तन्मनःपर्यायज्ञानं?, इदं प्राणिरूपितशब्दार्थ-भेद, साम्प्रतमुत्पन्निस्वामिर्मार्गणाद्वारेण चिन्त्यते, तथा चाह—‘मणपञ्जवणाणं भेदं’ इत्यादि, मनःपर्यायज्ञानं णमिति वा-क्यालङ्कारे, भदन्त! इति गुर्वामन्त्रणं, किमिति परिप्रश्ने, मनुष्याणामुत्पद्यत इति प्रकटार्थम्, अमनुष्याणामुत्पद्यत इत्यमनुष्या-देवादयः, अत्रेद निर्वचनं-गौतम! भाणुस्साणभित्यादि । आह-किमिदं अकाण्ड एव गौतमामन्त्रणं, ननु देववाचकरचितो-ऽयं ग्रन्थ इति, उच्यते, सत्यं, किन्तवेते पूर्वस्त्रालापका एवार्थवशाद्विरचिताः, ‘जावइया तिसमयाहारगस्से’ त्यादिनिर्दुक्ति-गाथामृतवदित्यतो न दोषः, तत्र च गौतमप्रश्नमगवचिवचनरूप एव ग्रन्थ इति, पुनरर्प्याह-ननु गौतमोऽपि स्त्रवतः प्रवचन-

मनःपर्या-
याधिकारः

॥ ४२ ॥

दीप
अनुक्रम
[७८-८१]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** अथ प्रत्यक्षज्ञान भेदे मनःपर्यवज्ञानस्य वर्णनं आरभ्यते

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [१७] / गाथा ||७६-७७||

प्रति
सूत्रांक
[१७]
गाथा
||७६-
७७||

नन्दी-
हारिभद्रीय
शृङ्गी
॥ ४३ ॥

प्रणेतृत्वाच्चतुर्दशपूर्वधरत्वात् सकलप्रज्ञापनीयभावपरिज्ञानयुक्तत्वात् सर्वज्ञकर्त्य एव, उक्तच्च—“संखातिरेऽवि भवे साहृजं वा परो उ पुच्छेऽज्ञा । ण य ण अणाइसेसी वियाणई एस छउमत्थो ॥ १ ॥ ततः किमर्थं गृच्छति?, अत्रोच्यते, कुतश्चिदभिप्रायात्, जानत एव स्वशिष्येभ्यो वा प्रस्प्य तत्प्रस्प्यत्ययनिमित्तं, स्वत्ररचनाकल्पतो वेति न दोषः, कृतं प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रस्तुमः, गौतमेन पृष्ठो भगवानाह—गौतम! मनुष्याणामुत्पद्यते, नान्येषां, विशिष्टचारित्रप्रतिपत्त्यभावाद्, एवमन्यत्रापि भावना कार्येति, सम्पूर्णिममनुष्या गर्भव्युत्कान्तिकमनुष्यवान्तादिसमुद्घवाः, उक्तच्च—‘कहि णं भेत! संयुच्छिमणुस्सा संमुच्छाति?, गोयमा! अंतो मणुस्सेखेते पण्यालीसाए जोयणसयसहस्रेसु अड्डाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पञ्चरससु कम्भेभूमीसु छप्पन्नाते अंतरदीवएसु गच्छ-वकंतियमणुस्साणं चेव उच्चारेसु वा पासवणेसु वा खेलेसु वा सिंधाणेसु वा वंतेसु वा पित्तेसु वा सुककेसु वा सोणिएसु वा सुकक-पोगगलेसु वा सुककपोगगलपरिसाडेसु वा विगयकलवरेसु वा णगरणिद्वमणेसु वा सब्बेसु चेव असुइएसु असुइड्डाणेसु वा, एत्थं णं संमुच्छिममणुस्सा संमुच्छान्ति अंगुलस्स असंखेज्जइभागपत्तीए ओगाहणाए असञ्ची मिच्छदिङ्गी अन्नाणी सञ्चाहिं पञ्जतीहिं अप-ज्जत्तमा अन्तोमुहुच्छाउया चेव कालं करंति”। भरताद्याः पञ्चदश कर्मभूमयः, हेमवताद्यास्त्रिवशदकर्मभूमयः, त्रीणि योजनशतानि लवणजलधिजलमध्यमधिलक्ष्य हिमवतशिखारिपादप्रतिष्ठाएकोरुकाद्याः पद्यंचाशदन्तद्वीपा भवन्ति, कर्मभूमौ जाताः कर्मभूमि-जा इयेवमश्वरगमनिका कार्या, संख्येयवर्षायुषः पूर्वकोव्यादिजीविनः असंख्येयवर्षायुषः पल्योपमादिजीविन इति, इह पर्याप्तिसिनाम शक्तिः, सा च पुद्दलद्रव्योपचयादुत्पद्यते, सा पुनः पद्मकारा, तथथा—आहारपर्याप्तिः शरीरपर्याप्तिः इन्द्रियपर्याप्तिः प्राणापानपर्याप्तिः भाषापर्याप्तिः मनःपर्याप्तिश्चति, तत्र पर्याप्तिः क्रियापरिसमाप्तिः, आत्मनः शरीरेन्द्रियप्राणापानवाङ्मनोयो-

मनःपर्या-
याधिकारः

॥ ४३ ॥

दीप
अनुक्रम
[७८-८१]

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [१७] / गाथा ||७६-७७||

प्रति
सूत्रांक
[१७]
गाथा
||७६-
७७||

नन्दी-
हरिभद्रेय
वृच्छौ
॥ ४४ ॥

ग्यदलिकद्रव्याहरणक्रियापरिसमाप्तिराहारपर्याप्तिः; गृहीतस्य शरीरतया संस्थापनक्रियापरिसमाप्तिः; शरीरपर्याप्तिः; संस्थानरचना-घटनमित्वर्थः; त्वगादीन्द्रियनिर्वर्तनक्रियापरिसमाप्तिरिन्द्रियपर्याप्तिः; प्राणापानक्रियायोग्यद्रव्यग्रहणशक्तिनिर्वर्तनक्रियापरिसमाप्तिः; प्राणापानपर्याप्तिः; भाषायोग्यद्रव्यग्रहणनिर्सर्गशक्तिनिर्वर्तनक्रियापरिसमाप्तिमनःपर्याप्तिरित्येके, आसां युगपदारब्धानामपि क्रमेण परिसमाप्तिः; उत्तरोत्तरसूक्ष्मतरत्वाद्, अत्र चाद्याश्च-तस्य एकेन्द्रियाणां, पञ्च विकलेन्द्रियाणां, पद् संज्ञानां, उक्तंच—“आहारसरीरिन्द्रियपञ्जन्ती आणुपाणभासमणे। चत्तारि पञ्च छप्पिय एगिदियविगलसन्नीणं ॥१॥” तत्र पर्याप्तकनामकमोदयात् निष्पद्माननिष्पन्नपर्याप्तिमन्तः पर्याप्ताः, अर्शआदित्वात् मत्वर्थीयः; त एव पर्याप्तकाः, एवमपर्याप्तकनामकमोदयादनिष्पन्नपर्याप्तियोगादपर्याप्तास्तु एवापर्याप्तका इति, सम्यग्-अविपरीता दृष्टिर्थेषां ते तथा, भिथ्यानविपरीता दृष्टिर्थेषां ते तथा, सम्यग्भिथ्यादृष्टयस्तु प्रतिपन्थभिमुखा अन्तर्मुहूर्तमात्रं भवन्ति, न तु परित्याभिमुखाः, यत उक्तम्— ‘मिच्छता संकंती अविरुद्धा होइ सम्ममीसेसु । मीसाओ वा दोसुवि सम्मा मिच्छं न पुण मीसं ॥२॥’ संयताः सकलचारित्रिणः असंयता अविरतसम्यग्दृष्टयः संयतासंयताः देशविरतिमन्तः श्रावकाः प्रमत्तसंयता गच्छवासिनः क्वचिदनुपयोगसम्भवात् अप्रमत्तसंयतास्तु जिनकल्पिकादयः सततोपयोगात्, अथवा गच्छवासिनः तत्रिगताश्च परिणामविशेषतः प्रमत्ताश्चाप्रमत्ताश्चावगन्तव्या इति, आपर्याप्त्यादिलिघलक्षणा ऋद्धयस्तासामन्यतरग्राम्योगात् प्राप्तर्दयः; अवधिक्षद्विभावाद्वा, अन्ये त्ववधिक्षद्वा नियमभिदधति, इह च सर्वत्रैव मनुष्यादिषु विधाने सत्वर्थतो गम्यमानस्यापि विपक्ष-निषेधस्याभिधानमन्युत्पन्नविनेयजनानुग्रहार्थमदुष्टेवेति, तथाहि-सर्वपार्षदं हीदं शार्व, त्रिविधाश्च विनेया भवन्ति, तदथा-

मनःपर्या-
याधिकारः

॥ ४४ ॥

दीप
अनुक्रम
[७८-८१]

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [१८] / गाथा ||७७...||

प्रति
सूत्रांक
[१८]
गाथा
||७७..||

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्तौ
॥ ४५ ॥

उदधिटज्ञा मध्यमबुद्धयः प्रणच्छधियथेत्यलं विस्तरेण, स्थितमेतत्-प्राप्तिर्थिअप्रमत्तसंयतानाशुत्पद्यते, एतच्चोत्पद्यमानं द्विघोत्पद्यते, तदथा-ऋजुमतिश्च विपुलमतिश्च, मननं मतिः, संवेदनमित्यर्थः, ऋज्ज्वा-सामान्यग्राहिणी मतिः ऋजुमतिः, घटोऽनेन चिन्तितः इत्यध्यवसायनिबन्धनमनोद्रव्यप्रतिपत्तिरित्यर्थः, एवं विपुला-विशेषग्राहिणी मतिर्विपुलमतिः घटोऽनेन चिन्तितः, स च सौवर्णः पाटलिपुत्रकोऽद्यतनो महानित्याद्यध्यवसायहेतुभूतमनोद्रव्यविज्ञासिरिति भावार्थः, अस्या व्युत्पत्तौ स्वतन्त्रं ज्ञानमेव गृह्णत इति, अथवा ऋज्ज्वा-सामान्यग्राहिणी मतिरस्य सोऽयं ऋजुमतिस्तद्वानेव गृह्णते, एवं विपुला-विशेषग्राहिणी मतिरस्येति विपुलमतिस्तद्वानेव, भावार्थः प्राग्वद्, उत्तरत्र वा वक्ष्यामः ।

“तं समासतो” इत्यादि (१८-१०७) तत् समासतश्चतुर्विंश्च प्रज्ञासं, तदथा—द्रव्यतः कालतो भावतः, तत्र द्रव्यतः णमिति पूर्ववत् ऋजुमतिः अनन्तान्-अपरिमितान् अनन्तपरमाण्यात्मकानित्यर्थः, स्कन्धान् विशिष्टैकपरिणामपरिणामान् संज्ञिभिः पञ्चेन्द्रियैः पर्याप्तैरर्द्धतीयद्वीपसमुद्रान्तर्वर्त्तिभिर्मनस्त्वेन परिणामितानित्यर्थः, जानीत इति मनःपर्यायज्ञानावरणक्षयोपशमस्य पद्मत्वात् साक्षात्कारेण विशेषभूयिष्ठपरिच्छेदाज्जानीत इत्युच्यते, तदालोचितं पुनरर्थं घटादिलक्षणमध्यक्षतो न जानाति, किन्तु तत्परिणामान्यथाऽनुपत्त्याऽनुभानतः पश्यतीत्युच्यते, उक्तं च भाष्यकारेण—“जाणति बज्ज्वेणुमाणाओ” चिति, हत्थं चैतदझी-कर्तव्यं, यतो मूर्त्तिरव्यालम्बनमेवेदं, मंतारस्त्वरूप्तयपि धर्मास्तिकायादिकं मन्येन, नच तदनेन साक्षात्कर्तुं शक्यते, तथा चतुर्विंश्च च चक्षुर्दर्शनादि दर्शनमुक्तम्, अतो भिन्नालम्बनमेवेदमवसेयं, तत्र च दर्शनसम्भवात् पश्यतीत्यपि न दुष्टं, एकप्रमात्रपेक्ष्या तदनन्तरभावित्वाच्चोपन्यस्तमिति, ओष्ठतो वैकविधक्षयोपशमलब्धौ विविधोपयोगसम्भवाद्विशेषसामान्यार्थपेक्ष्या जानाति पश्यति

मनःपर्या-
याधिकारः

॥ ४५ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [१८] / गाथा ||७७...||

प्रति
सूत्रांक
[१८]
गाथा
||७७..||

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ता
॥ ४६ ॥

चेत्यदुष्टमित्यलं विस्तरेण, तानेव विपुलमतिः अभ्यधिकतरान् स्फन्धात् द्रव्यार्थतया वर्णादिभिश्च जानाति पश्यति च, क्षेत्रतः क्रजुमतिः अथो यावदस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या उपरिमाधस्त्यानि क्षुद्रकप्रतरपरिज्ञानार्थमिमं पण्णविजज्ञति- तिरियलोकस्स उद्गुहमडारसजोयणसातियस्स बहुमज्ज्वे एत्थ असंख्येजंगुलभागमेत्ता लोगागासपतरा अलोगेण संवेदिया सञ्चुखुड- गतरा खुडागपतररति भन्नति, तेऽय सञ्चतो रज्जुप्पमाणा, तेसि बहुमज्ज्वे दो खुडागपतरा, तेसि बहुमज्ज्वे जंबुदीवे रयणप्पभपुड- वीवहुसमभूमिभागेऽत्थ मंदरस्स बहुमज्ज्वे, एत्थऽद्गुपएसो रुधगो, जत्तो दिसिविदिसाविभागो पवत्ता, एयं तिरियलोयमज्ज्वं, एयातो तिरियलोयमज्ज्वातो रज्जुप्पमाणाखुडागपतरेरहितो उवरिं तिरियं असंख्येयगुलभागवुड्ही, उवरिहुत्तोवि अंगुलअसंख्यभागा- रेहो चेव, एवं तिरियमुवरिं च अंगुलसंख्यभागवुड्हीए ताव लोगवुड्ही येयव्या जाव उद्गुलोयमज्ज्वं, ततो पुणो तेणव कमेण संवद्वा कायव्वो जाव उवरिमलोगंतो रज्जुप्पमाणो, तत्तो उद्गुलोगमज्ज्वातो उवरिं हेड्हा य कमेण खुडागपतरा भाणियव्वा, जाव रज्जुप्प- माणा खुडागपयराति, तिरियलोयमज्ज्वरज्जुप्पमाणाखुडागपतरेरहितोवि हेड्हा अंगुलस्स असंख्येयभागवुड्ही तिरियं, अहोअवगाहेणवि अंगुलस्स असंख्येयभागो चेव, एवमहोलेगो वद्वयव्वो जाव अहोलोगंतो सत्तरज्जूओ, सत्तरज्जुपतरेरहितोवि उवरिकमेण खुडागपयरा भाणियव्वा, जाव तिरियलोयमज्ज्वां रज्जुप्पमाणा खुडागपयराति, एवं खुडागपरूपणे करे इमं भवेह ‘उवरिम’ति तिरियलोयमज्ज्वाओ अहो जाव णव जोयणसयाणि ताव इमीसे रयणप्पभाए पुढीते उवरिमखुडागपतररति भन्नति, तदधो अधो- लोगे जाव अहोलोगिया भामति, एए हेड्हिमखुडागपयरति भन्नति, रिजुमती अहो ताव पस्सतिति भणियं होइ, अहवा अहो- लोगस्स उवरिमा खुडागपयरा तिरियलोगस्स य हेड्हिमा खुडागपयरति ते जाव पश्यतीत्यर्थः; असे भणंति-उवरिमाति अथो-

मनःपर्या-
याविकारः

॥ ४६ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [१८] / गाथा ||७७...||

प्रति
सूत्रांक
[१८]
गाथा
||७७..||

नन्दी-
हारिभद्रीय
इत्योऽवृत्तिः
॥ ४७ ॥

लोगोवरि जे ते उचरिमा, केय ते १, उच्यते, सब्वतिरियलोगवच्चिणो, तिरियलोगस्स वा अहो नव जोयणसतवत्तिणो, ताण चेव जे हेड्हिमा ते जाव पश्यतीत्यर्थः; इमं च ण घडति, अहोलोइयगाममणपञ्जवणाणसंभववाहलुत्तणओ, उक्तश्च—“इहाधोलौकिकान् ग्रामान्, तियग्लोकविवर्तिनः । मनोगतास्त्वसौ भावान्, वेति तद्वर्तिनामपि ॥१॥” अलं प्रसंगेन, एवमध्यं ग्रावज्ज्योतिशक्ति-स्योपरितलं, तिर्थम्यावदन्तो मनुष्यक्षेत्रे, मनुष्यलोकान्त इत्यर्थः, शेषं सुगमं यावत् ‘सण्णीणं पञ्चेन्द्रियाणामित्यादि, तत्र संज्ञिनोऽपान्तरालगतावपि तदायुष्कसंवेदनादभिधीयन्त एव, न तैरिहाधिकार इत्यतः पञ्चेन्द्रियग्रहणं, तेऽपि चोपपातक्षेत्रप्राप्ता अपि मनः-पर्याप्त्या अपर्याप्तका अपि भण्यन्ते, न च तैरपीहाधिकार इत्यतः पर्याप्तकग्रहणं इति, स्वरूपकथनं चा संज्ञिनां पञ्चेन्द्रियाणां पर्याप्तकानामिति, अथवा संज्ञिनो हेतुवादोपदेशेन विकलेन्द्रिया अपि भण्यन्ते, तदूप्यवच्छेदार्थं पञ्चेन्द्रियग्रहणं, तेऽप्यपर्याप्तका अपि भवन्ति अतः पर्याप्तग्रहणमिति, इह क्षेत्राधिकारस्यैव प्राधान्यात्तदेव मनोलभिसमन्वितजीवाधारक्षेत्रमभिगृह्यते, विपुलमतिः अद्यं तृतीयस्य येषु तान्यद्वृत्तीयानि तैरभ्यधिकतरं, प्रभूततरमित्यर्थः; तदेव प्राकृतशैल्या अभ्यधिकतरकं, एवं शेषेष्वपि द्रष्टव्यं, तत्रैकदिशमप्यधिकतरं भवत्यतः सर्वतोऽधिकतरमिति ग्रतिपादनार्थमाह—विपुलतरं विस्तीर्णतरम्, अथवा आयामविष्कम्भावाविश्रित्यामभ्यधिकतरं, बाहल्यमाश्रित्य विपुलतरं तथा विसुद्धतरं निर्मलतरमित्यर्थः; यथा चन्द्रकान्तादिप्रकाशकदृव्यविमलरतरविशेषाद्विमलप्रकाशितदण्डः सकाशाद्विमलतरप्रकाशितद्रष्टा विशुद्धतरं पश्यति, एवं विष्कम्भितोदयमनःपर्यायज्ञानावरणस्य कारण-भेदतो मन्दरतरविशेषभावात् कजुमतेः सकाशात् विपुलमतिर्विशुद्धतरमिति, उपशान्तावरणविशेषादपि ज्ञानस्य विशेष इत्येताव-ताऽशेन वृष्टान्तः; तथा तदावरणक्षयोपशमविशेषाच्च विनिमित्तरतरं-निर्मलतरं, अथवा प्राग्भृतदावरणकर्मक्षयोपशमस्य प्रधान-

मनःपर्या-
याधिकारः

॥ ४७ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [१९] / गाथा ||५८||

प्रति
सूत्रांक
[१९]
गाथा
||५८||

दीप
अनुक्रम
[८३-८७]

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्तो
॥ ४८ ॥

त्वाद्विशुद्धतरं, वध्यमानावरणकर्मक्षयोपशमविशेषाच्च वितिमिरतरं, वध्यमानाभावाच्च वितिमिरतरामेत्यन्ये, अथवैकार्थिका एवैते शब्दाः नानादेशजानां विनेयानां कस्यचित् कश्चित् प्रसिद्धो भवतीत्युपन्यस्ताः, क्षेत्रं तात्स्थ्यात् तदव्यपदेश इति जानाति पश्यति, शेषं निगदसिद्धं यावत्—

मणपञ्जवं गाहा (५८-१०८) मनःपर्यायज्ञानं ग्रागनिरूपितशब्दार्थं, पुनःशब्दो विशेषणार्थः, इदं हि सूपिनि-
बन्धनक्षायोपशमिकप्रत्यक्षादिसाम्येऽपि सत्यवद्विज्ञानात् स्वाम्यादिभेदेन विशिष्टमिति स्वरूपतः प्रतिपाद्यन्नाह—जायन्त इति
जनाः तेषां मनांसि २ जनमनोभिः परिचिन्तितः जनमनःपरिचिन्तितः जनमनःपरिचिन्तितश्चासावर्थश्चेति समासः, तं, प्रकटयनि-
प्रकाशयति जनमनःपरिचिन्तितार्थंप्रकटनं, मानुषक्षेत्रम्—अर्द्धवृतीयद्वीपसमुद्रपरिमाणं तन्निवन्धनं, तद्बहिर्वर्वासिथतप्राणिमनः-
परिचिन्तितार्थविषयं प्रवर्त्तत इत्यर्थः, गुणाः—क्षान्त्यादयः त एव प्रत्ययाः-कारणानि यस्य तद् गुणप्रत्ययं, चारित्रमस्यास्तीति
चारित्रवान् तस्य चारित्रघत एवेदं भवति, एतदुक्तं भवति-अप्रमत्तसंयतस्य आमर्षादिक्षद्विग्रामस्य चेति गाथार्थः ॥‘से तं
मणपञ्जवणाणं,’ तदेतन्मनःपर्यायज्ञानमिति ॥

‘से किं तं केवलज्ञानमित्यादि ॥(१०-१११)। अथ कि तत् केवलज्ञानं?, केवलज्ञानं द्विविधंप्रज्ञम्, तद्यथा-भवस्थकेवलज्ञानं
च सिद्धकेवलज्ञानं च, भवन्त्यस्मिन् कर्मवशवर्तिनः प्राणिन इति भवः, भवो गतिर्जन्मेति पर्यायाः, भवे तिष्ठतीति भवस्थः तस्य
केवलज्ञानं२, ‘षिधौ संराद्धौ’ ‘राध साध संसिद्धौ’ ‘षिधूं शाखे मांगल्ये च’ सिध्यति स्म सिद्धः-यो येन गुणेन निष्पन्नः- परिनि-

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** अथ प्रत्यक्षज्ञान-भेदे केवलज्ञानस्य वर्णनं आरक्ष्यते

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [१९] / गाथा ||५८||

प्रति
सूत्रांक
[१९]
गाथा
||५८||

दीप
अनुक्रम
[८३-८७]

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ती
॥ ४९ ॥

छितो, न पुनः साधनीयः, सिद्धोदनवत् स सिद्धः, स च कर्मसिद्धादिभेदादेनकविधः, उक्तं च-‘कर्म्मे सिष्ये य विज्ञा य, मंते जोगे य आगमे । अत्थ जत्ता आभिष्पाए, तवे कर्मकृत्येहय ॥ १ ॥’ इह कर्मक्षयसिद्धेनाधिकारः, स चाशेषकर्माशक्षयात् कर्म-क्षयसिद्धः, सितध्वंसित्वात् सिद्धः, ‘सिं वर्णगन्धनयोरिति सितं- बद्मष्टप्रकारं कर्म तद् ध्वंसितुं शीलमस्येति सितध्वंसी सिद्धः, तस्य केवलज्ञानं २ ॥

‘से किं त’मित्यादि, अथ किं तद् भवस्थकेवलज्ञानैै॒, २ द्विविधं प्रज्ञम्, तद्यथा-सयोगिभवस्थकेवलज्ञानं च अयोगिभवस्थकेवलज्ञानं च, इह युज्यन्त इति योगाः-कायादयः, उक्तं च-‘कायवाह्मनःकर्म योगः’ तत्रौदारिकादिशरीरयुक्तस्यात्मनो वीर्यपरिणतिविशेषः काययोगः, तथौदारिकवैकियाहारकशरीरव्यापाराहतवाग्द्रव्यसमूहसाचिव्यात् जीवव्यापारो वाग्योगः, तथौदारिकवैकियाहारकशरीरव्यापाराहतमनोद्रव्यसमूहसाचिव्याजीवव्यापारो मनोयोगः, तद्यथासम्भवं योगोऽस्य विद्यत इति सयोगी सयोगी चासौ भवस्थश्च २, तस्य केवलज्ञानं, एवं न योगी २ स च भवस्थश्च तस्य केवलज्ञानं २, शैलश्यवस्थागतस्येत्यर्थः, अथ किं तद् सयोगिभवस्थकेवलज्ञानैै॒, २ द्विविधं प्रज्ञम्, तद्यथा-प्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानं च अप्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञानं च, तत्र प्रथमसमयस्तत्प्रथमतयोत्पत्तिसमय एव गृह्णते, न प्रथमोऽप्रथमः-द्वितीयादयः सर्वं एव शैलश्यवस्थाप्राप्तेरप्रथमसमया इति, अथवेत्यन्यथा प्रतिपादते, ‘चरमसमये’त्यादि, तत्र चरमः-सयोगिकालान्त्यसमयः, न चरमोऽचरमः पश्चानुपूर्वी चरभादारभ्य सर्वं एवाकेवलप्राप्तेरचरमा इति । ‘सेत’ मित्यादि, निगमनम्, ‘से किं त’मित्यादि, अत्रापि शैलश्यवस्थाभाविकेवलज्ञानम्-विकृत्यैवमेव भावनीयमलं विस्तरेण । ‘सेत’ मित्यादि, निगमनम्, तदेतद्वस्थकेवलज्ञानम् ॥

केवलज्ञानं

॥ ४९ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [२०-२१] / गाथा ||७८...||

प्रति
सूत्रांक
[२०-२१]

दीप
अनुक्रम
[८६-८७]

नन्दी-
हारिभद्रीय
बृची
॥ ५० ॥

‘से किं त’मित्यादि ॥ (२०-११३) ॥ अथ किं तत् सिद्धकेवलज्ञानं ?, सिद्धकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञसं, तद्यथा-अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानं च, तत्र शैलेश्वरस्थार्थं न्तवर्तिसमयसमाप्तिसिद्धत्वस्य तस्मिन्नेव समये यत् केवलज्ञानं तदनन्तरसिद्धकेवलज्ञानं, ततो द्वितीयादिसमयेष्वनन्तामप्यनागतादार्थं परम्परसिद्धकेवलज्ञानमिति ॥

‘से किं त’मित्यादि ॥ (२१-१३०) ॥ प्रश्नस्त्रस्य निर्वचनम्-अनन्तरसिद्धकेवलज्ञानं पंचदशविधं प्रज्ञसं, सिद्धानामेवानन्तरभवगतोपाधिभेदेन पंचदशभेदभिन्नत्वात्, पंचदशभेदभिन्नतामेव दर्शयन्नाह-तद्यथा-तीर्थसिद्धा इत्यादि, तत्र येनेह जीवा जन्म-जरामरणसलिलं मिथ्यादर्शनाविरतिगंभीरं विचित्रदुःखगणकरिमकरं रागद्वेषपवनप्रक्षेपितमनन्तसंसारसागरं तरन्ति तत्तीर्थमिति, तच्च यथाऽवस्थितसकलजीवाजीवादिपदार्थप्ररूपकं अस्यन्तानवद्यान्याविज्ञातचरणकरणक्रियाधारं अचिन्त्यशक्तिसमन्विताविसंवादुडपकलं चतुर्खण्डतिशयसमन्वितपरमगुरुग्रणीतं प्रवृचनम्, एतच्च संघः प्रथमगणधरो वा, तथा चोक्तम्- “तित्थं भेते तित्थं?, तित्थकरे तित्थं ?, गोयमा! अरिहा नियमा ताव तित्थकरे, तित्थं पुण चाउव्यणो समणसंघो पठमगणहरो वा” इत्यादि, ततश्च तस्मिन्नुपपन्ने ये सिद्धास्ते तीर्थसिद्धाः, अतीर्थसिद्धास्तीर्थान्तरसिद्धा इत्यर्थः, श्रूयते च ‘जिपान्तरे साहुवोच्छेऽओऽति, तत्रापि जातिस्मरणादिनाऽवासापर्वगमार्गः सिध्यन्ति एव, मरुदविग्रसृतयो वाऽतीर्थसिद्धास्तदा तीर्थस्यानुत्प्रभत्वात्, तीर्थकरसिद्धास्तीर्थकरा एव, अतीर्थकरसिद्धा अन्ये सामान्यकेवलिनः, स्वयम्बुद्धाः सन्तो ये सिद्धास्ते स्वयंबुद्धसिद्धाः, प्रत्येकबुद्धाः सन्तो ये सिद्धास्ते प्रत्येकबुद्धसिद्धा इति । अथ स्वयंबुद्धप्रत्येकबुद्धयोः कः प्रतिविशेष इति, उच्यते, बोध्युपधिश्रुतलिङ्गकृतो विशेषः, तथाहि-स्वयंबुद्धा वाद्यप्रत्ययमन्तरेणैव बुद्ध्यन्ते, प्रत्येकबुद्धास्तु न तद्विरहण, श्रूयते च वाद्यष्टमादिग्रन्थयसापेक्षा करकंडवादीनां प्रत्येकबुद्धानां बोधि-

सिद्ध-
केवलज्ञानं

॥ ५० ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** अत्र ‘सिद्ध’स्य पंचदश भेदानां वर्णयते

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [२१-२२] / गाथा ||५८...||

प्रति
सूत्रांक
[२१-२२]

दीप
अनुक्रम
[८७-८९]

नन्दी-
हारिभद्रीप्र
वृत्ती
॥ ५१ ॥

रिति, उपधिस्तु स्वयंबुद्धानां द्वादशविधः पात्रादिः, प्रत्येकबुद्धानां तु नवविधः प्रावरणवर्जः, स्वयंबुद्धानां पूर्वाधीतश्चुते अनियमः, प्रत्येकबुद्धानां तु नियमतो भवत्येव, लिंगप्रतिपत्तिः स्वयंबुद्धानां आचार्यासन्निधावपि भवति, प्रत्येकबुद्धानां तु देवता प्रथम्छतीत्यलं विस्तरेण। ‘बुद्धोविष्टसिद्धाः’ बुद्धाः-आचार्यास्तैर्वौधिताः सन्तो ये सिद्धास्ते इह गृह्यन्ते, एते च सर्वेऽपि केचित् स्त्रीलिंगसिद्धाः केचित् पुंलिंगसिद्धाः केचिच्छुसकलिंगसिद्धा इति, आह- तीर्थकरा अपि स्त्रीलिंगसिद्धा भवन्ति ?, भवन्तीत्याह, यत उक्तं सिद्धप्राभृते- ‘सव्वत्थोवा तित्थगरीसिद्धा, तित्थगरितित्थे योतित्थसिद्धा संखेजगुणा, तित्थगरतित्थे योतित्थगरिसिद्धाओ संखेजगुणाओ, तित्थगरितित्थे योतित्थगरसिद्धा संखेजगुणा’ इति, न तु नपुंसकलिंगः, प्रत्येकबुद्धास्तु पुंलिंग एव, स्वलिंगसिद्धा द्रव्यलिंगं प्रति रजोहरणगोच्छकधारिणः, अन्यलिंगसिद्धाः परित्राजकेदिलिंगसिद्धाः, गृहिलिंगसिद्धा मरुदेवीप्रभृतयः, एकसिद्धा इति एकस्मिन् समये एक एव सिद्धः, ‘अणेगसिद्धा’ इति एकस्मिन् यावद् अष्टशतं सिद्धं, यत उक्तम्-वृत्तीसा अडयाला सही बावत्तरी य बोद्धव्या। चुलसीती छब्बउह दुरहिय अद्दुचरसयं च ॥१॥ अत्राह चोदकः-ननु सर्वं एवेते भेदास्तीर्थसिद्धातीर्थसिद्धभेदद्वयान्तर्भाविनः, तथाहि तीर्थसिद्धा एव तीर्थकरसिद्धाः, अतीर्थकरसिद्धा अपि तीर्थ[कर]सिद्धा वा स्युः अतीर्थसिद्धा वैत्येवं शेषेष्वपि भावनीयमिति, अतः किमेमिरति, अत्रोच्यते, अन्तर्भावे सत्यपि पूर्वभेदद्वयादेवोचरोचरभेदाप्रतिपत्तेः, अज्ञातज्ञापनार्थं च भेदाभिधानमिति । ‘सेत’मित्यादि, निगमनम् ॥

‘से किं तं परम्पर’ इत्यादि ॥ २२-१३३ ॥ न प्रथमसमयसिद्धाः अप्रथमसमयसिद्धाः- परम्परसिद्धविशेषणप्रथम-समयवर्तिनः, सिद्धत्वद्वितीयसमयवर्तिनः इत्यर्थः, त्यादिषु तु द्विसमयसिद्धादयः प्रोच्यन्ते, यदा सामान्येनाप्रथमसमयसिद्धा अभिवृत्तिः

सिद्ध-
केवलज्ञानं

॥ ५१ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [२२] / गाथा ||७८...||

प्रति
सूत्रांक
[२२]
गाथा
||७८..||

नन्दी-
हारिभद्रीय
शृङ्गी
॥ ५२ ॥

धानविशेषतो द्विसम्यादिसिद्धाभिधानमिति, शेषं प्रकटार्थं, यावत् तं समाप्ततो इत्यादि, तदिति सामान्येन केवलज्ञानमभिगु-
णते, द्रव्यतः केवलज्ञानी सर्वद्रव्याणि—धर्मास्तिकायादीनि साक्षाज्जानाति पश्यति, क्षेत्रतः केवलज्ञानी सर्वं क्षेत्रं लोकालो-
कभेदभिन्नं साक्षाज्जानाति पश्यति, (ग्र० १०००) इह च धर्मास्तिकायादिसर्वद्रव्यग्रहणे सत्यप्याकाशास्तिकायस्य क्षेत्रत्वेन सु-
ठत्वाद् भेदेनोपन्यासः, कालतः केवलज्ञानी सर्वं कालमतीतानागतवर्तमानभेदभिन्नं साक्षाज्जानाति पश्यति, भावतः केवलज्ञानी
सर्वान् जीवाजीवगतान् भावान् गतिकषायाद्यगुरुलघुलक्षणादीन् साक्षाज्जानाति पश्यति ।

दीप
अनुक्रम
[८९]

केवलोप-
योगवादः

इह च केवलज्ञानदर्शनोपयोगचिन्तार्थां क्रमोपयोगादी सूरीणामनेकविधा विप्रतिपत्तिः अतः संक्षेपतो विनेयजनानुग्रहाय तत्प्रद-
र्शनं क्रियत इति, तत्र-केह भण्ठंति जुगवं जाणाह पासह य केवली णियमा । अन्ने एगंतरियं इच्छंति सुओवदेसेणां ॥१॥
अन्ने प्रचेव वीसुं दंसणमिच्छन्ति जिणवारिंदस्स । जं चिय केवलनामां तंचिय से दंसणं विन्ति ॥२॥ गाथाद्यम्, अस्य
व्याख्या-केचन सिद्धसेनाचार्यादयः भण्ठंति, किं?, युगपद्-एकस्मिन्ब्रेव काले जानाति पश्यति च, कः?, केवली, न त्वन्यः, नियमात्-
नियमेन । अन्ये जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणप्रभृतयः एकान्तरितं जानाति पश्यति चेत्येवमिच्छान्ति, श्रुतोपदेशेन यथाश्रुतागमा-
नुसारेणेत्यर्थः, अन्ये तु वृद्धाचार्याः न नैव विष्वंकृ पृथक् तदर्शनमिच्छान्ति जिनवरेन्द्रस्य, केवलिन इत्यर्थः, किं तर्हि?, य-
देव केवलज्ञानं तदेव ‘स’ तस्य केवलिनो दर्शनं ब्रुवते, क्षीणावरणस्य देशज्ञानाभाववत् केवलदर्शनाभावादिति भावना, अयं गा-
थाद्यार्थः । साम्रातं युगपदुयोगवादिमतप्रदर्शनायाह—जं केवलाहं सादी अपञ्जवासियाहं दोषि भणियाहं । ता विन्ति
केह जुगवं जाणाह पासह य सञ्चन्न ॥ ३ ॥ यस्मात् केवलज्ञानदर्शने साध्यपर्यवसिते द्वे अपि भाणिते ततः ब्रुवते केचन सि-

॥ ५२ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** अत्र केवल ज्ञान-दर्शनयोः उपयोगस्य वादः दर्शयते

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [२२] / गाथा ||७८...||

प्रति
सूत्रांक
[२२]
गाथा
||७८..||

नन्दी-
हारिभद्रीय
इत्तो
॥ ५३ ॥

द्वसेनाचार्यादयः, किं? युगपद-एकस्मिन् काले जानाति पश्यति च, कः? सर्वज्ञ इति गाथार्थः ॥ इहराऽऽदीणिधणत्वं मिच्छा-वरणकस्वयोति व जिणस्स । इयरेतरावरणता अहवा निक्कारणावरणं ॥ ४ ॥ इतरथा अन्यथा आदिनिधनत्वं सादिपर्यवसानत्वं केवलज्ञानदर्शनयोरुत्पत्त्यनन्तरमेव केवलज्ञानोपयोगकाले केवलदर्शनभावात्, एवं केवलदर्शनोपयोगकालेऽपि केवलज्ञानभावात्, तथा मिथ्याऽबरणक्षय इति वा जिनस्य, न खपनीतावरणौ द्वौ ग्रदीपौ क्रमेण प्रकाशयत इत्यभिग्रायः, तथा इतरेतरावरणता स्वावरणे क्षीणेऽप्यन्यतमभावे अन्यतमाभावादिति भावना, अथवा निक्कारणावरणमित्यकारणमेव अन्यतरगोपयोगकालेऽन्यतरस्यावरणं, तथा च सति सर्वदैव भावोभावप्रसङ्गः, तथा चोक्तम्—“नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वाऽहेतोरन्यानपेक्षणात् । अपेक्षातो हि भावानां, कादाचित्कत्वसम्भवः ॥ १ ॥” इति गाथार्थः ॥ तहय असव्वन्तुतं असव्वद-रिसणप्पसंगो य । एगंतरोवओगे जिणस्स दोसा बहुविहीया ॥ ५ ॥ तथा च सति असव्वज्ञत्वासर्वदर्शित्वप्रसंगश्च, पाथिकं वा असर्वज्ञत्वं, यदा सर्वज्ञो न तदा सर्वदर्शी, दर्शनोपयोगभावाद्, एवं यदा सर्वदर्शी न तदा सर्वज्ञः, ज्ञानोपयोगभावात्, एवमेकान्तरोपयोगेऽभ्युपगम्यमाने सति जिनस्य-केवलिनो दोषा बहुविधा इति गाथार्थः ॥ एवं परेणात्कै सत्यागमवाद्याह—भण्णति भिन्नमुहुत्तोवयोगकालेवि तो तिणाणिस्स । मिच्छा छावट्टी सागराद्दं तस्स य खओवसमो ॥ ६ ॥ यदुक्त-मितरथाऽदिनिधनत्वमिति तदसदिति दर्शयति, उपयोगालुपयोगकालपेक्षयैव साद्यपर्यवसितत्वात् केवलज्ञानदर्शनयोरित्यभिप्रायो, न चानार्षमिदं, कथं?, भण्णते-अन्यथा हि भिन्नमुहुत्तोपयोगकालेऽपि मत्यादीनां ततस्त्रिज्ञानिनः मिथ्या पद्धषिः सागरो-पमाणि क्षयोपशमः, ग्रतिपादितश्च स्त्रे, न च युगपदेव मत्यालुपयोगः, एवं क्षायिकोपयोगोऽपि भविष्यति जीवस्याभाव्यादिति गा-

केवलोप-
योगवादः

॥ ५३ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [२२] / गाथा ||७८...||

प्रति
सूत्रांक
[२२]
गाथा
||७८..||

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ती
॥ ५४ ॥

थाऽभिप्रायः । न च क्षयकर्त्तेण अवश्यमनवरतमेव भवितव्यमिति दर्शयन्नाह—अह एवं ता सुण जहेव स्वीर्णतराहओ अरहा । संतोषि अंतरायकव्ययमिम पञ्चवप्पगारमिम ॥ ७ ॥ सततं न देति लहति व सुजति उवभुंजह व स-व्वन्नू । कज्जमिम देति लभति व सुजंति तहेव इहांपि ॥ ८ ॥ किंच-दितस्स लभंतस्स य सुजंतस्स व जिणस्स एस गुणो । स्वीर्णतराहयस्ते जं से विघ्नं न संभवह ॥ ९ ॥ उवउत्सस्सेमेव य णाणमिम व दंसणमिम व जिण-स्स । स्वीर्णावरणगुणोऽयं जं कसिणं सुणह पासह वा ॥ १० ॥ ओ०-पासंतोऽवि न जाणह जाणं वण पासती जह जिर्णिदो । एवं न कदाइवि सो सव्वन्नू सव्वदरिसी य ॥ ११ ॥ पश्यन्नपि न जानाति जानन्वा न पश्यति यदि जिनेदः एवं न कदाचिदप्यसौ सर्वज्ञः सर्वदर्शी वा, युगपदन्यतरोपयोगकालेऽन्यतरोपयोगभावादिति गाथार्थः ॥ सिद्धान्तवा-धाह—जुगवमजाणांतोऽवि हु चउहिवि णाणेहिं जहेव अरहा सव्वन्नू सव्वदरिसी य ॥ १२ ॥ इयं तु निगदसिद्धैव, नवरं क्षायिकभावमाश्रित्येति गाथार्थः ॥ पुनरप्याह—तुल्ले उभयावरणक्षयमिम पुव्वतरसुव्वभवो कस्सै । दुष्टिहुवयोगभावे जिणस्स जुगवंति चोदेति ॥ १३ ॥ तुल्ये उभयावरणक्षये केवलज्ञानदर्शनावरणक्षये पूर्व-तरं प्रथमतरसुद्धवः—उत्पादः कस्यै, यदि ज्ञानस्य स किनिवन्धन इति वाच्यं, तदावरणक्षयनिवन्धन इति चेत् दर्शनेऽपि तुल्य इति तस्याप्युद्धवप्रसंगः, एवं दर्शनेऽपि वाच्यं, अतः स्वावरणक्षयेऽपि दर्शनाभाववत् ज्ञानस्याप्यभावप्रसंगः विपर्ययो वा, एवं द्विविषोगयोगभावे जिनस्य युगपदिति चोदयति, अयं गाथार्थः ॥ अत्र सिद्धान्तवाधाह—भण्णति ण एस नियमो जु-गवुप्पन्नेण जुगवमेवेह । होयव्वं उवओगेण एत्थ सुण ताव दिङ्गंतं ॥ १४ ॥ जह जुगवुप्पत्तीयवि सुते सम्मत-

केवलोप-
योगवादः

॥ ५४ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [२२] / गाथा ||५९||

प्रति
सूत्रांक
[२२]
गाथा
||५९||

नन्दी-
हरिभद्रीय
द्वृत्तो
॥ ५९ ॥

मतिसुतादीणं । णत्थि जुगबोषयोगो सव्वेषु तहेव केवलिणो ॥ १५ ॥ भणियंपि य पञ्चतीपञ्चवणादीसु जह जिणो समयं । जं जाणती न पासइ तमणुरयणप्पभादीणं ॥ १६ ॥ इदं गाथात्रयमपि प्रकटार्थम् । अधुना ये केवलज्ञानदर्शनाभेदवादिनस्तनुमतमुपन्यस्यन्नाह—जह किर स्वीणावरणे देसन्नाणाण संभवो न जिणे । उभयावरणादीते तह केवलदंसणस्सावि ॥ १७ ॥ निगदसिद्धा । सिद्धान्तवाद्याह—देसन्नाणोवरमे जह केवलणाणसंभवो भणिओ । देस-इंसणविगमे तह केवलदंसणं होउ ॥ १८ ॥ अह देसणाणदंसणविगमे तुह केवलं मयं णाणं । ण मतं केवलदंसणमेच्छामेतं णणु तवेयं ॥ १९ ॥ भणणइ जहोहिणाणी जाणणइ च पासइ च भासितं सुते । न य पाम औहिदंसणणाणगतं तह इमंपि ॥ २० ॥ जह पासइ तह पासितु पासिति सो जेण-दंसणं तं से । जाणति य जेण अरहा तं से णाणंति वत्तव्वं ॥ २१ ॥ स्वपक्षसमर्थनायैव सिद्धान्तवाद्याह—णाणम्मिं दंसणम्मिं य एतो एगतरयम्मिं उवउत्तो । सव्वस्स केवललिस्सा जुगवं दो णत्थि उवओगा ॥ २२ ॥ उवओगो एगयरो पणुचीसितिमे सते सिणायस्स । भणिओ वियडन्थो चिच्य छद्दुद्देसे विसेसेउं ॥ २३ ॥ गाथाद्रयमपि निगदसिद्धं, नवरं भगवत्यां पंचविशतिमे शतेऽधिकारोपलक्षिते ‘सिणायस्स’ चि स्नातकस्य केवलिनः । सिद्धान्तवाद्यनुद्धतत्वमागममकिं च परां ख्यापयन्नाह—कस्स च णाणुमतमिणं जिणस्स जदि होउज वोवि उवओगा ? । पूणं ण होति जुगवं जेण णिसिंद्वां सुते घहुसो ॥ २४ ॥ निगदसिद्धैवत्यलं प्रसंगेन, प्रकृतं प्रस्तुमः ।

‘अह’० गाहा ॥(५९-१३४)॥ इह मनःपर्यायज्ञानानन्तरं स्त्रक्रमोद्देशतः शुद्धिलाभतश्च प्राक्केवलज्ञानमुक्तं, तदुपन्यस्तथ-

केवलज्ञानं

॥ ५५ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [२३] / गाथा ||६०||

प्रति
सूत्रांक
[२३]
गाथा
||६०||

नन्दी-
हरिभद्रोर्य
वृत्ती
॥ ५६ ॥

इत्यतस्तदर्थेऽयमथशब्दः, उक्तं च—“अथशब्दः प्रकियाप्रश्नानन्तर्थमंगलोपन्यासप्रतिवचनसमुच्चयेषु” सर्वाणि च तानि द्रव्याणि सर्वद्रव्याणि जीवाजीवलक्षणानि तेषां परिणामाः—प्रयोगविशेषोभयाख्या उत्पादादयः सर्वद्रव्यपरिणामास्तेषां भावः—सत्ता स्वलक्षणमित्यनन्तरं तस्य विशेषणं ज्ञापनं विज्ञाप्तिः विज्ञानं वा विज्ञप्तिः, तत्र भेदोपचारात्तस्या विज्ञप्तेः—परिच्छित्तेः कारणं सर्वद्रव्यपरिणामभावविज्ञप्तिकारणं, अथवा विज्ञप्तिरेव कारणं विज्ञप्तिकारणं, अत एव सर्वक्षेत्रकालविषयं तद्, क्षेत्रादीनामपि द्रव्यत्वात्, तच्च ज्ञेयानन्तत्वादनन्तं, शशद्वावाच्छाश्वतं, सदोपयोगादिति भावार्थः, प्रतिपत्तनशीलं प्रतिपाति न प्रतिपाति अप्रतिपाति, सदाऽवस्थितमित्यर्थः, आह—यच्छाश्वतं तदप्रतिपात्यवातः किं विशेषणेनेति?, उच्यते, मा भूद् यावद्वश्वति तावच्छाश्वत-मनवरतमेव भवतीति प्रतिपत्तिः, न पुनरवध्यादिवदन्यशेषतो विशेषणमित्यनवरतं भवति सर्वकालं चेति, अथवैकपदव्यभिचारेऽपि विशेषणविशेष्यभावो भवतीति ज्ञापनार्थं, तथाहि—शाश्वतमप्रतिपात्यवेव, अप्रतिपाति तु शाश्वतमशाश्वतं वा, अप्रतिपात्यवधेरप्यशाश्वतत्वादिति, एकविधम्-एकप्रकारं आवरणाभावात् क्षयस्यैकरूपत्वात्, केवलं-मत्यादिनिरपेक्षं, केवलं च तज्ज्ञानं चेति गाथार्थः ॥ इह तीर्थकृत् समुपजातकेवलः सच्चानुग्रहार्थं देशानां करोति, तीर्थकरनामकमोदयात्, ततश्च धर्मद्रव्यशुत्रसूत्रपत्वात्-स्य च भावशुत्रपूर्वकत्वात् श्रुतज्ञानसम्भवादनिष्टापत्तिरिति मा भून्मतिमोहोऽव्युत्पन्नबुद्धीनामित्यतस्तद्विवृत्यर्थमाह—
‘केवल०’ गाहा ॥ (* ६०—२३सू० १३९) ॥ इह तीर्थकरः केवलज्ञानेनाधीन-धर्मस्तिकायादीन् मूर्त्तामूर्त्तान् अभिलाप्यानभिलाप्यान् ज्ञात्वा विनिश्चित्य केवलज्ञानेनैव ज्ञात्वा, नतु श्रुतज्ञानेन, तस्य क्षायोपशमिकत्वात्, केवलिनश्च तदभावात्, सर्वशुद्धौ देशशुद्ध्यभावादित्यर्थः ‘तत्र’ तेषामर्थानां मध्ये प्रज्ञापनं प्रज्ञापना तस्या योग्याः प्रज्ञापनायोग्याः तान् भाषते-तानेव वाक्ति,

केवलज्ञानं

॥ ५६ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [२४] / गाथा ||६०||

प्रति
सूत्रांक
[२४]
गाथा
||६०||

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ती
॥ ५७ ॥

नेतरानेति, प्रज्ञापनीयानिति न सर्वानेव भाषते अनन्तत्वाद् आयुषः परिमितच्चात्, किं तद्दिः? योग्यानेव, गृहीतशक्त्यपेक्षया, यो हि यावतां योग्य इति, तत्र केवलज्ञानोपलब्धार्थाभिधायकः शब्दराशिः प्रोच्यमानस्तस्य भगवतो वाग्योग एव भवति, न श्रुतं, नामकर्मद्यनिवन्धनत्वात्, श्रुतस्य च क्षायोपशमिकत्वात्, स च श्रुतं भवति ‘शोषं’ शोषमित्यप्रधानं, एतदुक्तं भवति—श्रोतृणां श्रुतग्रन्थानुसारि भावश्रुतनिवन्धनत्वाच्छेषम्—अप्रधानं द्रव्यश्रुतमित्यर्थः; अन्ये त्वेवं पठन्ति—‘वह्निं वह्नि तेसिं’ स वाग्योगः श्रुतं भवति तेषां श्रोतृणां, भावश्रुतकारणत्वादित्यभिप्रायः; अथवा वाग्योगः श्रुतं द्रव्यश्रुतमेवेति गाथार्थः। ‘सेत’ इत्यादि निगमनम्। तदेतत् केवलज्ञानं, तदेतत्प्रत्यक्षम्। एवं प्रत्यक्षे प्रतिपादिते सति पराक्षस्वरूपमनवगच्छाह चोदकः—

‘से किं त’ मित्यादि ॥(२४-२४०)॥ अथ किं तत् परोक्षं ?, परोक्षं द्विविधं प्रज्ञसं, तदथा—आभिनिवोधिकज्ञानपरोक्षं च श्रुतज्ञानपरोक्षं च, चौ पूर्ववत्, अनयोथेत्थं क्रमोपन्यासे प्रयोजनमुक्तमेव ॥ साम्प्रतं स्वाम्यभेदप्रतिपादनायाह—‘जत्थ आभिनिवोहियणाणं’ मित्यादि, यत्र पुरुषे इन्द्रियनोहन्द्रियक्षयोपयशमे वा आभिनिवोधिकज्ञानं तत्रैव पुरुषादौ श्रुतज्ञानं, तथा यत्र श्रुतज्ञानं तत्राभिनिवोधिकज्ञानम्। आह—यत्राभिनिवोधिकं ज्ञानं तत्र श्रुतज्ञानमित्युक्ते यत्र श्रुतज्ञानं तत्राभिनिवोधिकज्ञानमिति गम्यत एवेत्यतः किमनेनोक्तेनेति?, अत्रोच्यते, नियमतो न गम्यत इत्यतो नियमार्थ, तथा चाह—‘दोषि एयाह’ इत्यादि, द्वे अप्येते-आभिनिवोधिकश्रुते अन्योऽन्यानुगते-परस्परं प्रतिबद्धे, स्यादेतद्-एवं सत्यभेद एवास्त्वनशोरित्याशङ्कायाह—‘तहवि पुणो’ इत्यादि, तथापि पुनराचार्याः नानात्वं-भेदं प्रज्ञापयन्ति ग्रहणयन्ति, कथं ?, लक्षणभेदादौ, दृष्टशान्योऽन्यानुगतयोरप्येकाकाशस्थयोर्धर्माधर्मास्तिकाययोरलक्षणभेदाद्द्वेद इति, तत्र यो हि गतिपरिणामपरिणतयोर्जीवपुद्दलयोर्गत्युपष्टमेहतुर्जलमिव ज्ञप्तस्य स

मतिश्रुत-
योर्भेदः

॥ ५७ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** अथ परोक्षज्ञान-भेदे ‘मतिज्ञान’ वर्णयते

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [२४] / गाथा ||६०||

प्रति
सूत्रांक
[२४]
गाथा
||६०||

नन्दी-
हारिभ्रीय
वृत्ती
॥ ५८ ॥

खल्वसंख्येयग्रदेशात्मकोऽमूर्तो धर्मास्तिकाय इति, तथा यः स्थितिपरिणामपरिणतयोर्जीविषुद्वलयोरेव स्थित्युष्टम्भेतुर्विवक्षया क्षितिरिव ज्ञप्तस्य स खल्वसंख्येयग्रदेशात्मकोऽमूर्ते एवाधर्मास्तिकाय इति, एवमाभिनिवोधिकश्रुतयोरपि लक्षणमेदाङ्गेदः, तथा चाह-‘अभिगिण्वुजश्चइ’ इत्यादि, अभिनिवुध्यत इत्याभिनिवोधिकं-आत्मनः परिणामविशेषः, एवं शृणोतीति श्रुतं-आत्मन एव परिणामविशेष इति, एतदुक्तं भवति-यदिन्द्रियमनोनिमित्तमात्मनो विज्ञानं श्रुतग्रन्थानुसारेणोपजायते तत् श्रुतं, शेषमिन्द्रियमनोनिमित्तमाभिनिवोधिकमिति । इत्थं लक्षणमेदाङ्गेदमिधायाधुना प्रकारान्तरेण भेदमभिधित्सुराह-‘मनिषुद्वं सुतं, ण मती सुयपु-चिवया’ ‘पु पालनपूरणयो’रित्येतस्य पूर्यते प्राप्यते प्राल्यते वाऽनेन कार्यमिति पूर्व-कारणं, मतिः पूर्वमस्येति मतिपूर्वं, श्रुतं-श्रुतज्ञानं, तथा चेदं मत्या पूर्यते प्राप्यते पाल्यते वा, अन्यथा प्रणश्यतीत्यर्थः, न मतिः श्रुतपूर्वेत्ययं महान् भेद इति ॥ अत्राह-मतिश्रुतयोर्युगपदेव सम्यक्त्वावासौ भाव उक्तः, अज्ञानयोरपि विगमः, तत् कथं मतिपूर्वं श्रुतमिति ?, किंच-मतिपूर्वकत्वेऽभ्युपगम्यमाने सति मतिज्ञानभवेऽपि ततकालं श्रुतमज्ञानं प्राप्नोति, अनार्पं चेदमिति, अत्रोच्यते, ननु लक्ष्यं प्रति मतिश्रुते समकाले भवतः, न तृप्तोगोऽनयोः समकालं इति मतिपूर्वं श्रुतं, इह पुनः को भावार्थः ?-श्रुतोपयोगो मतिप्रभवः, यतो नासंचिन्त्य मत्या श्रुतग्रन्थानुसारि विज्ञानमुत्पद्यते । आह-एवं मतिरपि श्रुतपूर्वा भवत्येव, तथाहि-शब्दं श्रुत्वा या मतिरुत्पद्यते सा श्रुतपूर्वेति ग्रतीतं, अतो न विशेषो, यथा मतिपूर्वं श्रुतं तथा मतिरपि श्रुतपूर्वेति, अत्रोच्यते, ननु सा द्रव्यश्रुतोङ्गवा वर्तते, इह तु न मतिः श्रुतपूर्वेति, का भावनाः, भावश्रुतात् सकाशात् ग्रतीर्वस्तीति, यदा कार्यतया निषिध्यते, न पुनः क्रमण, क्रमण तु श्रुतोपयोगात् च्युतस्य मत्यवस्थानमिष्यत एवेत्यलं प्रसङ्गेन, न चैतत् स्वमनीषिकयोच्यते, यतोऽभ्युधायि भाष्यकृता-‘णाणाणऽणाणाणाणि य समकालाई यतो

मतिश्रुतयो
भेदः

॥ ५८ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [२७] / गाथा ||६०...||

प्रति
सूत्रांक
[२७]
गाथा
||६०..||

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ती
॥ ५९ ॥

महसुयाइं । तो न सुयं मतिपुञ्चं मतिणाणे वा सुयऽणाणं ॥ १ ॥ इह लद्धिमहसुयाइं समकालाइं न तूयेगो सिं । मतिपुञ्चं सुय-
मिह पुण सुतोपयोगो मतिष्पभवो ॥ २ ॥ सोङ्ग जा मती ते सुयपुञ्चत्ति तेण ण विसेसो । सा दब्बसुयप्पभवा भावसुयाओ मती
नत्थि ॥ ३ ॥ कज्जतया ण तु कमसो कमण को वा मतिं निवारइ ? । जं तत्थावत्थाणं त्रुतस्स सुतोवयोगाओ ॥४॥” इतश्च
मतिश्रुतयोर्भेदः, भेदभेदात्, तथाहि-अवग्रहादिभेदादषाविंशतिविधं मतिज्ञानं, अङ्गप्रविष्टाद्यनेकभेदभिधं च श्रुतज्ञानं, इन्द्रियोप-
योगलाभतो उक्तो (० लव्विविभागतो) वा, उक्तज्ञच—“सोइंदिओवलद्वी होइ सुतं सेसयं तु मतिणाणं । मोक्षणं दब्बसुयं अक्षरलंभो
य सेसेसु ॥१॥” इतश्च भेदः, अनक्षरमपि मतिज्ञानं, अक्षरानुगतं च श्रुतज्ञानमिति, अथवाऽत्मप्रत्यायकं मतिज्ञानं स्वपरग्रत्यायकं
श्रुतज्ञानम्, आवरणभेदाच्च भेद इत्यलं अतिप्रसङ्गेन, इह च यथा मतिश्रुतयोः कार्यकारणभेदान्मिथो भेदस्तथा सम्यग्मिथ्यादर्श-
नपरिग्रहविशेषात् स्वरूपतोऽपि भेद इति दर्शयन्नाह-

‘अविसेसिता’ इत्यादि ॥’(२५-१४२) ॥ अविशेषिता मतिः सामान्येनैव मतिज्ञानं मत्यज्ञानं च, सामान्येनोभयत्रापि
मतिशब्दप्रवृत्तोः, विशेषिता मतिः स्वामिविशेषेण सम्यग्गद्येतर्मतिर्मतिज्ञानं, निश्चयनयदर्शनेन स्वकार्यप्रसाधकत्वात्, मिथ्यादृष्टमितिः
मत्यज्ञानं, तत्वतः स्वफलरहितत्वादित्यर्थः; एवं श्रुतसूत्रमपि व्याख्येयम् । आह-क्षयोपशमादिकारणाभेदे घटादिपरिच्छेदकार्याभेदे
च कथं मिथ्यादृष्टरज्ञाने इति, तथा च मिथ्यादृष्टरपि क्षयोपशमादेव मतिश्रुतप्रवृत्तिः, तथोऽर्धादिलक्षणाकारमेव घटादिसंवेदनमिति,
अत्रोच्यते, मिथ्यादृष्टरज्ञाने मतिश्रुते, सदसतोरविशेषादुन्मनकवद्, उक्तं च भाष्यकारेण—सदसदविसेसणाओ भवहेतु-
जहिच्छिओवलंभाओ । णाणकलाभावातो मिच्छाद्विस्स अन्नाणं ॥ १ ॥ विनेयजनानुग्रहार्थमियं लेशतो व्याख्यायत-

मति-
श्रुतयो-
ज्ञाना

॥ ५९ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२६] / गाथा ६१
प्रति सूत्रांक [२६] गाथा ६१	<p>नन्दी- हरिभद्रीय बृत्ती ॥ ६० ॥</p> <p>इति, मिथ्यादृष्टिः कथंचित् सन्तमपि पुरुषे देवादिधर्मं न प्रतिपद्यते, पुरुष एवेत्यभ्युपगमात् , तथा असन्तमपि यटादिधर्मं प्रतिपद्यते, अस्त्येवेत्यभ्युपगमात् , अतः सदसतोरविशेष इति, अतश्च मिथ्यादृष्टेर्मतिश्रुते अज्ञाने, भवेत्तुत्वाच्च मिथ्यादर्शनवत्, इतश्चाज्ञानं यदच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् , इतश्चाज्ञानं फलाभावादन्धप्रदीपवत्, ज्ञानस्य हि फलं विरतिः; सा च मिथ्यादृष्टेर्न विद्यते इत्यलं प्रसंगेन, प्रकृतं प्रस्तुमः; इह मतिपूर्वं श्रुतमितिकृत्वा भातज्ञानमेवाधिकृत्य ग्रन्थश्चभाह-</p> <p>‘से किं त’मित्यादि ॥(२६-१४४)॥ अत्र निर्वचनं-द्विविधं प्रज्ञसं, तद्यथा-श्रुतनिश्रितं चाश्रुतनिश्रितं च, चौ पूर्ववत्, श्रुतमिह सामायिकादि लोकविन्दुसारान्तं द्रव्यश्रुतं गृह्णते, तदुत्पारेण श्रुतपारिकर्मितमतेस्तदपेक्षमेव च उत्पादकाले यत्तु तज्जिरपेक्षमेवात्पद्यते तत् श्रुतनिश्रितं अवग्रहादि, यत्तु तज्जिरपेक्षं तथाविधक्षयोपशमप्रभवमेव वर्चते तदश्रुतनिश्रितं-औत्पत्तिक्यादि ॥ आह-इदमप्यवग्रहा-दिरूपमेव, सत्यं, किन्तु श्रुतानुसारमन्तरेणोत्पत्तेभेदेनोक्तं । तत्राल्पतस्वक्तव्यत्वादश्रुतनिश्रितमतिज्ञानप्रतिपादनायाह-‘से किं त’मित्यादि, अत्र</p> <p>उप्पत्तियाऽगाहा॥(*६१-१४४)॥उत्पत्तिरेव प्रयोजनं यस्याः सा औत्पत्तिकी, आह-क्षयोपशमः प्रयोजनमस्याः, सत्यं, किन्तु स खल्वन्तरंगत्वात् सर्वबुद्धिसाधारण इति न विवक्ष्यते, न चान्यच्छास्त्रस्वकर्माभ्यासादिकमपेक्षत इति, विनयो-गुरुशुश्रूषा स कारणमस्यास्तत्प्रधाना वा वैनयिकी, अनाचार्यकं कर्म साचार्यकं शिलं नित्यव्यापारः कर्म कादाचित्कं शिलं कर्मजेति कर्मणो वा जाता कर्मजा, परि समन्तात् नमनं परिणामः सुदीर्घिकाळपूर्वापरार्थावलोकनादिजन्य आत्मधर्मं इत्यर्थः स कारणमस्यास्तत्प्रधाना</p>
दीप अनुक्रम [१५-१६]	अश्रुतनि- श्रितामतिः ॥ ६० ॥
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
	*** अत्र औत्पातिकी आदि बुद्धे: वर्णनं आरभ्यते

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [२६...]/ गाथा ||६२-६६||

प्रति
सूत्रांक
[२६]
गाथा
||६२-
६६||

नन्दी-
हरिभद्रीय
वृत्ती
॥ ६१ ॥

परिणामिकी। तु ध्यते अनयेति तु द्विर्मतिरित्यर्थः; सा चतुर्विधोक्ता तोर्थकरणधरैः, किमिति?, यस्मात् पञ्चमी नोपलभ्यते केवलिनाऽपि, असच्चादिति गाथार्थः॥ औत्पत्तिक्या लक्षणं प्रतिपादयन्नाह-पुब्वं गाहा॥(*६२-१४४)॥ पूर्वमिति बुद्ध्युत्पादात् प्राक् स्वयमदृष्टः अन्यतश्चाश्रुतः अवेदितो भनसाऽप्यनालोचितः तस्मिन्नेव क्षणे विशुद्धो यथावस्थितः गृहीतोऽवधारितः अर्थोऽभिमेतपदार्थो यथा सा तथा, इहैकान्तिकमिहपरलोकाविरुद्धं फलान्तरावायितं चाव्याहतसुन्धते, फलं-प्रयोजनं, अव्याहतं च तत्फलं च २ योगोऽस्यास्तीति योगिनी अव्याहतफलेन योगिनी २, अन्ये पठन्ति-अव्याहतफलयोगा अव्याहतफलेन योगोऽस्याः सा अव्याहतफलयोगा तु द्विः औत्पत्तिकी नामेति गाथार्थः॥ साम्रतं विनेयजनानुग्रहायास्या एव स्वरूपप्रतिपादनार्थमुदाहरणानि प्रतिपादयन्नाह-भरहसिलं पणिय०॥ *६३॥ भरह०॥ *६४॥ मधुसिन्ध०॥ *६५॥ (१४४) गाहाओ, आसामर्थः कथानकेभ्य एवावसेयः, तानि चावसरप्राप्तान्यपि गुरुनियोगान्न ब्रूमः, किन्त्वावद्यके वैश्यामः, अधुना वैनायिक्या लक्षणं प्रतिपादयन्नाह-भरणित्य० गाहा॥(*६६-१५९)॥ इहातिगुरु कार्यं दुर्निर्वहत्वाद्ग्र इव भरः तच्चिस्तरणे समर्था भरनिस्तरणसमर्था, त्रयो वर्गात्स्त्रिवर्गमिति लोकरूपेर्थमार्थकामाः तदर्जनपरोपायप्रातिपादननिवन्धनं सूत्रं, तदन्वाख्यानं त्वर्थः पैथालं प्रमाणं सारो वा त्रिवर्ग-सत्त्वार्थयोर्गृहीतं प्रमाणं सारो वा यथा सा तथाविद्या, अथवा त्रिवर्गः-त्रैलोक्यं, आह-त्रिवर्गसत्त्वार्थगृहीतसारत्वं सत्यश्रुतनिश्रितत्वं विस्तृयत इति, न हि श्रुताभ्यासमन्तरेण त्रिवर्गसत्त्वार्थगृहीतसारत्वं सम्भवति, अत्रोन्यते, इह प्रायोऽवृत्तिमंगीकृत्याश्रुतनिश्रितभावेऽपि न कथिद्वौष इति, उभयलोकफलवती ऐहिकामुभिकफलवती विनयसमुत्था विनयोद्भवा भवति तु द्विरिति गाथार्थः॥ अस्या एव विनेयजनानुग्रहार्थं उदाहरणैः स्वरूपमुपदर्शयन्नाह-

तु द्विचतुर्ष्फं

॥ ६१ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	<h2 style="text-align: center;">[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">..... मूलं [२६...]/ गाथा ६७-७१ </p>
प्रति सूत्रांक [२६] गाथा ६७- ७१ दीप अनुक्रम [१०१- १०५]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p style="text-align: center;"> </p> <p>प्रति सूत्रांक [२६]</p> <p style="text-align: center;">नन्दी-हारिभद्रीय वृत्तौ</p> <p style="text-align: center;">॥ ६२ ॥</p> <p>गाथा ६७-७१ </p> <p>दीप अनुक्रम [१०१-१०५]</p> <p style="text-align: right;">उद्धिचतुष्कं</p> <p style="text-align: right;">॥ ६२ ॥</p> <p>पिमित्तिं गाहा ॥*(६७)। सीता० गाहा॥*(६८-१५९)॥ गाथाद्वयार्थः कथानकं भ्य एवावसेयः, तानि चोत्तरत्र वक्ष्यामः । साम्प्रतं कर्मजाया उद्देलक्षणं प्रतिपादयन्नाह—</p> <p>उवयोग० गाहा॥*(६९-१५९)॥ उपयोजनमुपयोगो-विवक्षिते कर्मणि मनसोऽभिनिवेशः सारः-तस्यैव कर्मणः परमार्थः, उपयोगेन दृष्टः सारो यथेति समासः, अभिनिवेशोपलब्धकर्मपरमार्थेत्यर्थः, कर्मणि प्रसंगः २, प्रसंगः-अस्यासः, परिवोलनं-विचारः, कर्मप्रसंगपरिघोलनाभ्यां विशाला, अभ्यासविचारविस्तर्णिते भावार्थः, साधु कृतमिति सुष्टु कृतमिति विड्यः प्रशंसा-साधुकारः तेन फलवतीति समासः, साधुकारेण वा शेषमपि फलं यस्याः सा तथा, कर्मसमुत्था कर्माङ्गवा भवति बुद्धिरिति गाथार्थः ॥ अस्या अपि विनेयवर्गानुकम्पयोदाहरणैः स्वरूपमुपर्दर्शयन्नाह—</p> <p>हेरणिए गाहा ॥*(७०-१६४)॥ अस्या अप्यर्थं वक्ष्यामः ॥ साम्प्रतं पारिणामिक्या लक्षणं प्रतिपादयन्नाह—</p> <p>अनुमाण० गाहा ॥*(७१-१६५)॥ ‘अनुमानहेतुदृष्टान्तैः’ साध्यमर्थं साधयतीति अनुमानहेतुदृष्टान्तसाधिका, इह लिङ्ग-ज्ञानमनुमानं, स्वार्थमित्यर्थः, तत्प्रतिपादकं वचो हेतुः, परार्थमित्यर्थः, अथवा ज्ञापकमनुमानं, कारको हेतुः, दृष्टमर्थमन्तं नयतीति दृष्टान्तः, आह-अनुमानग्रहणादेव दृष्टान्तस्य गतत्वादलमुपन्यासेन, न, अनुमानस्य तत्त्वत एकलक्षणत्वाद्, उक्ते च-“अन्यथा-अनुपपत्त्वं, यत्र तत्र त्रयेण कि”मित्यादि । साध्योपमाभूतश्च दृष्टान्तः, उक्तञ्च-“यः साध्यस्योपमाभूतस्स दृष्टान्तं” इति, कालकृतो देहावस्थाविशेषो वय इत्युच्यते, तद्विपाकेन परिणामः-पुष्टता यस्याः सा तथाविधा, हितम्-अभ्युदयस्तत्कारणं चा निःश्रेयसं-</p>

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२७-२८] / गाथा ७२-७४ 	
प्रति सूत्रांक [२७-२८]	नन्दी- हारिभद्रीय बृत्ती ॥ ६३ ॥	मोक्षस्तश्चिवन्धनं वा हितनिश्रेयसाभ्यां फलवती बुद्धिः परिणामिकीति गाथार्थः ॥ अस्या अथि शिष्यगणहितायोदाहरणैः स्वरूपं दर्शयन्नाह— अलए० गाहा ॥(*७२-१६५)॥ खमए० गाहा ॥(*७३-१६५)॥ चलणा० गाहा ॥(*७४-१६५)॥ आसामर्थः कथानकेभ्य एवावसेयः, तानि चान्यत्र वक्ष्यामः ‘से त’ इत्यादि, तदेतदश्रुतनिश्चितम्
गाथा ॥७२- ७४॥		‘से किं त’मित्यादि, (२७-१६८) चतुर्विंश्य प्रज्ञसं, तदथा-अवग्रह इहा अपायो धारणा, अवग्रहणमवग्रहः-सामान्यमात्रा-निदिश्यार्थग्रहणमित्यर्थः, तथा इहनमीहा, सदर्थपर्यालोचनचेष्टेत्यर्थः, एतदुक्तं भवति-अवग्रहादुत्तीर्णः अपायात् पूर्वः सद्भूतार्थ-विशेषोपादानाभिमुखोऽसद्भूतार्थविशेषत्यागाभिमुखश्च प्रायो मधुरत्वादयः शब्दादिशब्दधर्मा अत्र घटन्ते, न खरकर्कशनिष्ठुरता-दयः शब्दादिशब्दधर्मा इति भविष्यते इहेति, तथा तदर्थव्यवसायोऽपायः, निषयो निश्चयोऽवगम इत्यनर्थान्तरं, एतदुक्तं भवति-शांख एवायं शाङ्के एव वेत्याद्यवधारणात्मकः प्रत्ययोऽपाय इति, तथा तदर्थविशेषधरणं धारणा, अविच्छयितस्मृतिवासनारूपा ॥
दीप अनुक्रम [१०६- ११२]		‘से किं त’मित्यादि ॥(२८-१६८)॥ अथ कोऽयमवग्रहो?, २ द्विविधः प्रज्ञसः, तदथा-अर्थावग्रहश्च व्यञ्जनावग्रहश्च, अर्थ्यत इत्यर्थः, अर्थस्यावग्रहोऽर्थावग्रहः, सकलविशेषणिरपेक्षानिर्देश्यार्थग्रहणमेकसामायिकमिति भावार्थः, व्यञ्जयतेऽनेनर्थः प्रदीपेनेव घट इति व्यञ्जनं, तचोपकरणेन्द्रियं शब्दादिपरिणतद्रव्यसङ्खातो वा, ततश्च व्यञ्जनेन-उपकरणेन्द्रियेण व्यञ्जनानां-शब्दादिपरिणतद्रव्याणामवग्रहो व्यञ्जनावग्रहः, अशार्थावग्रहस्य तु लक्ष्यत्वात् सकलेन्द्रियार्थव्यापकत्वाचेतरस्य ।
	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
	*** अथ मते: अवग्रह-आदि भेदानां वर्णनं आरभ्यते	

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [२९-३१] / गाथा ||७४...||

प्रति
सूत्रांक
[२९-३१]

नन्दी-
हारिमद्रीय
बृत्ती
॥ ६४ ॥

‘से किं त’मित्यादि (२९-१६२) अथ कोऽयं व्यञ्जनावग्रहः इत्यत्र पुनरुत्पत्तिक्रम एवाश्रितो यथासम्भवाश्रिति सुद्दिलष्टमेतदिति, प्रकृतमुच्यते—व्यञ्जनावग्रहश्चतुर्विधः प्रज्ञसः, तद्यथा-श्रोत्रेन्द्रियव्यञ्जनावग्रह इत्यादि सूत्रसिद्धं । आह-पञ्चेन्द्रियमनःसङ्गावे सति किमित्यर्थं चतुर्विध इति ?, अत्रोच्यते, नयनमनसोरप्राप्तकारित्वाद्, अप्राप्तकारित्वं च विषयकृतानुग्रहोपधातशून्यत्वात्, प्राप्तकारित्वे पुनरनलजलशूलाद्यालोकने दहनक्षेदनपाठनादयः स्युः, अत्र च विषयदेशं गत्वा न पश्यति, प्राप्तं चार्थं नालम्बत इत्येतावश्चियम्यते, मूर्तिमता पुनः श्रासन भवत एवानुग्रहोपधातौ भास्करकिरणादिनेति, अन्यस्त्वाह-व्यवहितार्थानुपलब्धेरनुमानात् प्राप्तकारित्वं लोचनस्येति, एतदयुक्तं, नैकान्तिकत्वाद्, रुचोऽप्रपटलस्फटिकान्तरितोपलब्धेः, स्यादेतत्-नायना रझमयो निर्गत्य तपर्य गृह्णन्तीति दर्शने रथमीनां तैजसत्वात्, तेजोद्रव्यैरप्रतिस्खलनाददोष इति, एतदप्ययुक्तं, महाज्वालादौ ग्रतिस्खलनोपलब्धे-रित्यत्र बहु वक्तव्यं ततु नोच्यते ग्रन्थविस्तरमयाद्ग्रमनिकामात्रमेतदिति ।

‘से किं त’मित्यादि ॥ * ३०-१७३ ॥ अथ कोऽयमर्थावग्रहः?, अर्थावग्रहः पद्मिधः प्रज्ञसः, तद्यथा—श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रह इत्यादि सूत्रसिद्धं यावत् ।

‘तस्य णं इमे’ इत्यादि ॥ * ३१—१७४ ॥ तस्यावग्रहस्यामूलिनि, णं पूर्ववत्, अवग्रहसामान्यापेक्षयैकार्थिकानि नानाघोषाणि-नानाव्यञ्जनानि पञ्च नामधेयानि भवन्ति, घोषा उदात्तादयः कादीनि व्यञ्जनानि, नामैव नामधेयं, अवग्रहविशेषापेक्षया तु कथंचिद् भिन्नार्थानि, त्रिविधश्चावग्रहः—सामान्यावग्रहो विशेषावग्रहः विशेषसामान्यार्थावग्रहश्चेति, तत्र भिन्नार्थता निर्दर्शते—

अवग्रह-
कार्थता

॥ ६४ ॥

दीप
अनुक्रम
[११३-
११५]

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [३१-३२] / गाथा ||७४...||

प्रति
सूत्रांक
[३१-३२]
गाथा
||७४..||

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ती
॥ ६५ ॥

‘तंजहा—ओगिणहणते’ त्यादि, अवगृह्णतेऽनेनेति अवग्रहणं, करणे ल्युद्, व्यञ्जनावग्रहप्रथमसमयप्रविष्टशब्दादिद्रव्यादानपरिणाम इत्यर्थस्तद्वावः अवग्रहणता, धार्यतेऽनेनेति धारणं उप-सामीप्येन धारणं उपधारणं व्यञ्जनावग्रहाद्वाया आ(व्या)दिसमये-व्यवसानानन्तं प्रतिसमयमेव शब्दादिद्रव्यादानधारणपरिणाम इति भावना, तद्वाव उपधारणता, श्रूयतेऽनेनेति श्रवणं एकसामायिकसामान्यार्थावग्रहाववोधपरिणाम इत्युक्तं भवति तद्वावः श्रवणता, अवलम्बत इत्यवलम्बन, ‘कृत्यल्युटो बहुल’ मिति वचनात् कर्मणि ल्युद् तद्वावः अवलम्बनता-विशेषसामान्यार्थावग्रह इवि भावार्थः, तथा हि उच्चरोत्तरधर्मजिज्ञासायां सत्यां शब्दादिज्ञान-मेवावलम्ब्यहाद्यः प्रवर्चन्ते—किमयं शांखः कि वा शाङ्गे इत्यतस्तदनन्तरमेवेहादिप्रवृत्तेविशेषसामान्यार्थावग्रहोऽवलम्बनमिति, एवमुत्तरोत्तरधर्मजिज्ञासायां सत्यां विशेषसामान्यार्थावग्रहेषु मर्यादया धावतो, मेघोच्यते, यावदधिगच्छति, यथा-शांखः स किं मन्द्रः कि वा तार इत्यादि, यत्र व्यञ्जनावग्रहो नास्ति तत्राद्यमेदद्वयाभाव इति। ‘से तं उरगहे’ सोऽयमवग्रहः।

दीप
अनुक्रम
[११५-
११६]

‘से किं त’ मित्यादि, सूत्रम् ॥ ३२-१७५ ॥। निगदसिद्धं यावत् आभोगनता ईहा, अर्थावग्रहसमयसमनन्तरमेव सद्भूतार्थविशेषाभिमुखमेव तद्भूतार्थविशेषाभिमुखमालोचनभाषोगनमुच्यते तद्वाव आभोगनता, मृग्यतेऽनेन परिणामकरणेति मार्गणं, सद्भूतार्थविशेषाभिमुखमेव तदूर्ध्वमन्वयव्यतिरेकधर्मान्वेषणमिति हृदयं, तद्वावो मार्गणता, एवमन्वयतेऽनेनेति गवेषणं, तत ऊर्ध्वं सद्भूतार्थविशेषाभिमुखमेव व्यतिरेकधर्मपरित्यागतोऽन्वयधर्माध्यासेनालोचनमिति गर्भः, तद्वावो गवेषणता, ततो मुहुर्मुहुः क्षयोपशमविशेषतः स्वधर्मानुगत-सद्भूतार्थविशेषचिन्तनं चिन्ता, विर्मषणं विर्मषः क्षयोपशमविशेषादेवोर्ध्वं स्पष्टतरावबोधतः सद्भूतार्थविशेषाभिमुखमेव व्यतिरेकधर्मपरित्यागतोऽन्वयधर्मालोचनं विर्मषः, नित्यानित्यादिद्रव्यभावालोचनमित्यन्ये। ‘से तं ईहा’।

ईहापाय-
पर्यायाः

॥ ६५ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [३३-३४] / गाथा ||७४...||

प्रति
सूत्रांक
[३३-३४]
गाथा
||७४..||

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्तो
॥ ६६ ॥

‘से किं त’ मिल्यादि ॥(३३-१७६)॥ स्वत्रसिद्धं यावदावर्तनता, वर्त्यते अनेनेति वर्तनं-क्षयोपशमकरणमेव ईहाभावनिवृत्य-
भिमुखस्यापायभावप्रतिपत्त्यभिमुखस्य चार्थविशेषावबोधविशेषस्या-मर्यादया वर्तनमावर्तनं तद्वावः आवर्तनता, ततः प्रतिपत्त्या(प्रती-
पमा-) वर्तनं प्रत्यावर्तनं, अर्थविशेष एव विवक्षितापायप्रत्यासञ्चतरबोधविशेषाणां मुहुर्मुहुर्वर्तनमित्यर्थः, तद्वावः प्रत्यावर्तनता, अप-
अयः अपायः विशेषतः सङ्कलनेन निश्चयो निर्णयोऽवगम इत्यनर्थान्तरं, सर्वथेहाभावाभिवृत्स्यावधारणावधारितमर्थमवगच्छतोऽ-
पाय इति भावार्थः, ततस्तमेवावधारितमर्थं क्षयोपशमविशेषात् स्थिरतया पुनः पुनः स्पष्टतरमेव बुध्यमानस्य बुद्धिः, विशिष्टं ज्ञानं
विज्ञानं क्षयोपशमविशेषादवधारितार्थविषयमेव तीव्रतरधारणाकरणमित्यर्थः, ‘से तं अवायो’ सोऽयमपायः ।

दीप
अनुक्रम
[११७-
११८]

‘से किं त’ मिल्यादि ॥(३४-१७६)॥ निगदिसिद्धं यावदारणेत्यादि, अपायानन्तरमवगतार्थमविच्युत्या जघन्योत्कृष्टम-
न्तर्मुहूर्चमात्रं कालं धारयतो धारणेति भण्यते, ततस्तमेवार्थं उपयोगाच्युतं जघन्येनान्तर्मुहूर्चादुल्कृष्टतोऽसङ्घव्येयकालात् परतः
स्मरतो धरणं धारणोच्यते, स्थापनं स्थापना, ततोऽपायावधारितमर्थं पूर्वोपरालोचितं हृदि स्थापयतः स्थापना, मूर्त्युटस्यापना-
वद्, वासनेत्यर्थः, अन्ये तु धारणास्थापनयोर्व्यत्ययेन स्वरूपमाचक्षते, प्रतिष्ठापनं प्रतिष्ठा अपायावधारितमेवार्थं हृदि प्रभेदेन
प्रतिष्ठापयतः प्रतिष्ठा भण्यते, जले उपलप्रक्षेपप्रतिष्ठावत्, कोष्ठक इति अविनष्टसूत्रार्थवीजधारणात् कोष्ठकवद् धारणा कोष्ठक इति ।
इहात्पनो ज्ञानस्वभावत्वाज्ञानावरणीयादिकर्मसमलपटलाञ्छादितस्वभावत्वात् गुरुवदनसमुत्थशब्दाद्येनकविधकारणापाद्यमानक्ष-
योपशमसामर्थ्यादवबोधः, ज्ञेयस्य चानन्तरधर्मात्मकत्वात् कालक्षयोपशमविशेषतोऽवग्रहेहापायावबोधविशेषो भावनीयः, कथंचि-

धारणा-
पायायाः
अवग्रहा-
दिकालः

॥ ६६ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [३५-३६] / गाथा ||७४...||

प्रति
सूत्रांक
[३५-३६]
गाथा
||७४..||

नन्दी-
हरिभद्रीय
वृत्ती
॥ ६७ ॥

देकाधिकरणत्वाद्, अन्यथा परिच्छेदप्रवृत्तिलक्षणसकललोकप्रसिद्धसंव्यवहारोच्छेदप्रसङ्ग इत्यलं प्रसङ्गेन, गमनिकामात्रमेतत् ॥ अव-
ग्रहादिकालप्रमाणं प्रतिपादयन्नाह—
'ओग्गहे' इत्यादि॥(*३४।३५-१७७)॥ अर्थावग्रहः एकसामायिकः, आन्तर्मौहूर्तिकी ईहा, आन्तर्मौहूर्तिकोऽपायः, धारणा
संख्येयं वाऽसङ्ख्येयं वा कालं स्मृतिवासनारूपा, सङ्ख्येयवर्षायुगां संख्येयमसंख्येयवर्षायुगामसंख्येयम् । 'एव अद्वावीसविधस्ते'-
त्यादि, एवमुक्तेन प्रकारेण अष्टाविंशतिविधस्य, कथमष्टाविंशविधं १, चतुर्विंशो व्यञ्जनावग्रहः पडविधोऽर्थावग्रहः पडविधा ईहा
पडविधोऽपायः पडविधा धारणा, एवमष्टाविंशतिविधस्याभिनिर्विधिकज्ञानस्य सम्बन्धीयो व्यञ्जनावग्रहः तस्य प्रस्तुपाणं-प्रतिपादनं
करिष्यामि, कथं १, प्रतिबोधकदृष्टान्तेन मल्लकदृष्टान्तेन च, 'से किं त'मित्यादि॥(३६-१७७)॥ प्रतिबोधघर्तीति प्रतिबोधकः स
एव दृष्टान्तस्तेन, तद्यथा नाम कथिदनिर्दिष्टस्वरूपः पुरुषः कंचिदन्यतममनिर्दिष्टस्वरूपमेव पुरुषं सुमं सन्तं पतिष्ठोधएज्जाति
प्रतिबोधयेत्, कथं १. अमुकामुकेति, तत्र चोदकेत्यादि. इह ज्ञानावरणकर्मदयतः कथितमपि स्त्रार्थमनवगच्छन् प्रश्नचोदनाच्चवो-
दकः, अविशिष्टस्थयोपशमभावतो वा अगृहीतशास्त्रगर्भार्थः पूर्वापरविरोधचोदनात् चोदकः, यथाऽवस्थितं स्त्रार्थं प्रज्ञापयतीति प्रज्ञा-
पकः, श्रौतार्थपेक्षया विरुद्धं पुनरुक्तस्त्रं वा अर्थतोऽविरुद्धं अपुनरुक्तं प्रज्ञापयतीति प्रज्ञापकः, तत्र चोदकः प्रज्ञापकं एवमुक्तवा-
निति, भूतकालनिर्देशोऽनादिमानागम इति ख्यापनार्थः, किमेकसमयप्रविष्टेत्यादि सुगमं यावत् एवं वदन्तं चोदकं प्रज्ञापकं एव-
मुक्तवान् नो एकसमयप्रविष्टेत्यादि प्रकटार्थं यावत् न सङ्ख्येयसमयप्राविष्टाः पुद्गला ग्रहणमागच्छान्ति, नवरमयं प्रतिषेधः स्फुटश-
ब्दविज्ञानग्राह्यतामधिकृत्य वेदितव्यः, शब्दविज्ञानजनकत्वेनेत्यर्थः, अन्यथा सम्बन्धमात्रमधिकृत्य प्रथमसमयादारम्य ग्रहणमा-

प्रतिबोधक-
दृष्टान्तः

॥ ६७ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [३५-३६] / गाथा ||७४...||

प्रति
सूत्रांक
[३५-३६]
गाथा
||७४..||

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्तौ
॥ ६८ ॥

गच्छुन्त्येव, ‘असंख्येज्ज’ इत्यादि, प्रतिसमयप्रवेशेनादित आरभ्य असंख्येयसमयैः प्रविष्टैरसंख्येयसमयप्रविष्टाः, न पुनर्विशत्या-इहोमिः पथिकगृहप्रवेशबद्यान्तरालागमनसमयापेक्ष्याऽसंख्येयसमयप्रविष्टा इति, पुद्गलाःशब्दद्रव्यविशेषा ग्रहणमागच्छन्ति, अर्था-वग्रहज्ञानहेतवो भवन्तीति भावः, इह च चरमसमयप्रविष्टा एव ग्रहणमागच्छन्ति, तदन्ये त्विन्द्रियक्षयोपयशमकारिण इत्योधतो ग्रहणमुक्तमिति, असंख्येयमानं चात्र जघन्यमावलिकासंख्येयमागसमयतुल्यं, उत्कृष्टं तु संख्येयावलिकासमयतुल्यं, तच्च प्राणापा-नपृथक्त्वकालसमयमिति, उक्तंच-“वंजणवग्गहकालो आवलियाऽसंख्यमेत्तो उ । थोवो उक्तोसो पुण आणायाण्पुद्गच्छति ॥ १ ॥”
‘से तं’ इत्यादि निगमनम् ॥ सेयं प्रतिबोधकदृष्टान्तेन व्यञ्जनावश्ग्रहप्रूपणेति वाक्यशेषः ॥

दीप
अनुक्रम
[११९-
१२०]

‘से किं त’मित्यादि, अथ कोऽयं मल्लकदृष्टान्तो?, २ नाम तद्यथा नाम कथित् पुरुष आपाकशिरसः, आपाकः प्रतीतः तच्छिर-सश्च मल्लक-शरावं गृहीत्वा, इदं रूक्षं भवति इत्यतोऽस्य ग्रहणमिति, तत्र मल्लके एकं उदकविन्दुं प्रश्निषेत् स नष्टः, तत्रैव तद्भावपरि-णतिमापन्न इत्यर्थः, शेषं सुगमं यावत् जणणं तं मल्लकं रावेहिति आद्रितां नेष्यति, शेषं सुगमं यावत् एवमेवेत्यादि, अतिवहुत्वात् प्रतिसमयमनन्तैः पुद्गलैःशब्दपुद्गलैः यदा तद् व्यंजनं पूरितं भवति तदा हुमिति करोति, तमर्थं गृहातीत्युक्तं भवति, अत्र व्यंजनशब्देन व्रयमाभिगृहते-द्रव्यमिन्द्रियं सम्बन्धो वा, यदा द्रव्यं व्यंजनमधिक्रियते तदा पूरितमिति प्रभूतीकृतं, स्वप्रमाणमानीतं, स्वविषय-व्यक्तौ समर्थीकृतमित्यर्थः, यदा व्यंजनमिन्द्रियं तदा पूरितमित्याभूतं, भूतं व्याप्तमित्यर्थः, यदा तु द्रव्योरपि सम्बन्धोऽधिक्रियते तदा पूरितमित्यंगांगाभावमानीतमनुष्टकमित्यर्थः, एवं यदा पूरितं भवति तदानीं तमर्थं गृहातीति, किंविशिष्टं? भामजात्यादिकल्पना-रहितं, तथा चाह-णो चेव एं जाणइ के वेस सद्गदिति, न पुनरेवं जानाति क एव शब्दादिरर्थं इति, एकसामयिकत्वादर्था-

मल्लक-
दृष्टान्तः

॥ ६८ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

..... मूलं [३५-३६] / गाथा ||७४...||

प्रति
सूत्रांक
[३५-३६]
गाथा
||७४..||

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ती
॥ ६९ ॥

वग्रहस्य, अत्रार्थावग्रहात् पूर्वः सर्वो व्यंजनावग्रह इति, ततो ईं हं पविसतीत्यादि सुगमं यावत् संखेजं वा असंखेजं वा कालंति । अत्राह-सुममंगीकृत्य युज्यते अयं न्यायः, जाग्रतस्तु शब्दश्रवणसमनन्तरमेव अवग्रहेहाव्यतिरेकेणैवापायज्ञानमुत्पद्यते, तथो-पलम्भात्, न चैतदनार्थं, यत आह शूत्रकारः-‘से जहा णामए’ इत्यादि, अथवा यदुक्तं न पुनरेवं जानाति क एष शब्दादि, किं तर्हि ?, नामजात्यादिकल्पनारहितं गृहातीत्यतदयुक्तं, यत एवमागमः ‘से’ इत्यादि, अथवा सुप्रतिव्योधकमल्लकदृष्टान्ताभ्यां व्यंजनार्थावग्रहयोः सामान्येन स्वरूपमभिधाय अपुना मल्लकदृष्टान्तेनैव प्रतिपादयन्नाह-‘से जहा’ इत्यादि, तदथा नाम कथित् पुरुषः अव्यक्तं शब्दं शृणुयात्, अव्यक्तमित्यनिर्देश्यस्वरूपं नामादिकल्पनारहितमित्यनेनार्थावग्रहमाह, तस्य च श्रोत्रेन्द्रियसम्बन्धिनो व्यंजनावग्रहपूर्वकत्वात् व्यंजनावग्रहं च, आह-न द्यत्रैवं क्रम उपलभ्यते, किंत्वशेषेण शब्दापायज्ञानमेव वेद्यते, स्त्रेऽव्यक्तमिति शब्दविशेषणं कृतमतोऽव्यक्तं सन्दिग्धं पुरुषादिशब्दमेदेन शब्दं शृणुयादिति न्यायं, तथा चोत्तरस्त्रवरमप्येतदेवाह-‘तेण संदेत्ति उग्रहिते’ तेन-श्रोत्रा शब्द इत्यवगृहीतं ‘णो चेव णं जाणति के वेस सहादि’ न पुनरेवं जानाति-क एष पुरुषादिसमुत्थानामन्यतमः शब्द इति, आदिशब्दाद्रसादिव्ययमेव न्याय इति ज्ञापयति, ‘ततो ईं हं पविसती’ त्याद्यपि संबद्धमिति, नैतदेवम्, उत्पलपत्रशतव्यतिभेददृष्टान्तेन कालभेदस्य दुर्लक्षत्वाद् अक्षेषणे शब्दापायज्ञानानुपपत्तेः, यच्च तेन शब्द इत्यवगृहीत-मित्युक्तम् अत्र शब्द इति भणति वस्त्रा-स्त्रवकार, इतिकरणनिर्देशात्, शब्दमात्र वा शषविशेषविमुखं, न तु शब्दबुध्या, तस्यैवापायसंगाद्, अवग्रहादिश्रुतव्यतिरेकेण च मतिज्ञानानुत्पत्तेः, तथा चाह-‘णो चेव ण’ मित्यादि, न पुनरेवं जानाति क एष शब्दादिर्थः, सामान्यमात्रप्रतिभासनाद्, आह च भाष्यकारः-‘अवत्तमणिदेसं सरूपणामादिकप्यणारहितं । जदि एवं जं तेण

मल्लक-
दृष्टान्तः
. .

॥ ६९ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

..... मूलं [३५-३६] / गाथा ||७४...||

प्रति
सूत्रांक
[३५-३६]
गाथा
||७४..||

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ती
॥ ७० ॥

गहियं सदेति तं कह णु?॥१॥ सदेति भणति वत्ता तम्मतं वाण सद्मुची(बुद्धी)ए । जदि होज सद्बुद्धी तोज्वाओ चेव सो होज्जा ॥ २ ॥ जति सद्बुद्धिमेत्यमवगहे तविवेसेसणमवाओ । णणु सदो णासदो ण य रुवादी विसेसोऽर्थं ॥३॥ थोवमिम य णावायो तव्वेयाविक्षणं अवाओति । तव्वेयाविक्षणाए णणु थोवमिणंपि णावाओ ॥ ४ ॥” इत्यादि, अन्ये त्वाचार्या इदं स्त्रं विशेषसामान्यार्थीवग्रहविषयं व्याचक्षते, अव्यक्त-अनिद्वारितविशेषस्वरूपं अशब्दव्यवच्छेदेन शब्दं शृणुयात् , तेन शब्द इति शब्दमात्रमवगृहीतं, न पुनरेवं जानाति क एष शब्दः?, शांखशाङ्कादीनामन्यतमः; आदिशब्दाद्रसादिपरिग्रहः; तत्रापीयमेव वाचेति, युक्ति-युक्ता चेयं व्याख्यात्येति, तत ईहां प्रविशति-सदर्थपर्यालोचनां करोति, इह च दुरववोधत्वादस्तुन अपदुत्वाच्च भाविज्ञानावरण-क्षयोपशमस्यासंजातापाय एवेहोपयोगाच्युतः पुनरस्यन्यमन्तर्मुहूर्चमीहते, एवमहोपयोगाविच्छेदेत एव प्रभृतानप्यन्तर्मुहूर्चानीहत इति सम्भवः; ततो जानातीत्यादि, वस्तुतः गतार्थ यावत् स्पर्शनेनिद्रयवक्तव्यता, उक्तं च भाष्यकारेण-“सेसंसुवि रूपादिसु विसेष-सुवि होइ रूपलक्ष्माइ । पायं पच्चासन्नतणेणमीहादिवत्थूणि ॥ १ ॥ थाणुपुरिसादिकुडुप्पलादिसंभिकरिष्टमंसादी । सप्पो-प्पलणालादियसमाणरूपादिविसयाइ ॥ २ ॥ एकं चिय सुमिणादिसु मणसो सदादिएसु विसेषसु । हौंतिदिवयवावाराभावेऽविअवग्रहादीया ॥३॥” इत्यादि, ‘से जहा णामए’ इत्यादि, इह प्रतिबोधप्रथमसमयेऽव्यक्तम्-अनिद्वारितस्वरूपं स्वप्नं प्रतिसंवेदयेत्, तस्य तदार्थावग्रहः, तत ऊर्ध्वमीहादय इति, अन्ये तु मनसोऽप्यर्थावग्रहात् पूर्वं व्यंजनावग्रहं मनोद्रव्यव्यंजनग्रहणलक्षणं व्याचक्षते, तत पुनरयुक्तं, अनार्थत्वाद्, व्यंजनावग्रहस्य श्रोत्रादिभेदेन चतुर्विधत्वात्, शेषं प्रकटार्थं यावत् सेतं मल्लगादिष्टतेण । इह च सुखप्रतिपत्त्यर्थं स्वप्नमधिकृत्य नोइन्द्रियार्थावग्रहादयः प्रतिपादिताः, अन्यथाऽन्यत्रापीनिद्रियव्यापाराभावे सति मनसा

अवग्रहादिः
क्रमः
मत्तेविषयः

॥ ७० ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [३७] / गाथा ७५
<p>प्रति सूत्रांक [३७] गाथा ७५ </p> <p>दीप अनुक्रम [१२१- १२२]</p>	<p>नन्दी- हरिभद्रीय वृत्ती ॥ ७१ ॥</p> <p>पर्यालोचयतो अवगन्तव्या इति ॥ अत्राह-किमुक्तलक्षणमवग्रहादिक्रमं विहाय क्वचिदपि मतिज्ञानं नोत्पद्यते येनैव क्रम इति, अत्रो- च्यते, नोत्पद्यते, तथाहि- नानवगृहीतमील्यते, न चानवगतं धार्यते इत्यलं प्रसंगेन ॥ सर्वमेवेदं द्रव्या- दिभिन्निरूपयन्नाह—</p> <p>‘तं समासतोऽ’ इत्यादिः॥(३७-१८४)॥ द्रव्यत आभिनिवोधिकज्ञानी आदेशेन, आदेशः-प्रकारः, स च सामान्यतो विशेष- तश्च, तत्र द्रव्यजातिसामान्यादेशेन, द्रव्याणि-धर्मस्तिकायादीनि जानाति, विशेषतोऽपि यथा धर्मस्तिकायो धर्मस्तिकायस्य देश इत्यादि, न पश्यति सर्वात्मना धर्मस्तिकायादीन् , शब्दादृस्तु योग्यदेशावस्थितान् पश्यत्यपि, श्रुतादेशतो वा जानाति, एवं क्षेत्रादिव्यपि भावनीयं, नवरं तात्र पश्यत्येव, तथा चोक्तं भाष्यकारेण-“आदेसोत्ति पगारो ओहादेसेण सञ्चदव्याइं । धर्मस्तिथ- काइयाइं जाणइ न उ सञ्चभावेण ॥ १ ॥ खेचं लोगालोगं कालं सञ्चदमहव तिविधोऽवि । पंचोदइयादीए भावे जं नेयमेवतियं ॥ २ ॥ आदेसोत्ति व सुचं सुतोवलद्देसु तस्स मतिणाणं । पसरइ तब्मावणभाविणोवि सुचाणुसारेण ॥ ३ ॥” साम्यतं संग्रहगाथा उच्यते, तत्र—</p> <p>उग्गह० गाहा ॥ (*३५-१८४) ॥ अवग्रहः ग्राग्निरूपितशब्दार्थः, तथा ईहाऽपायश्च, चश्वदः पृथग्वग्रहादिस्वरूप- स्वातन्त्र्यप्रदर्शनार्थः, अवग्रहादीनामीहादयः पर्याया न भवन्तीत्युक्तं भवति, समुच्चयार्थो वा, यदा समुच्चयार्थस्तदा व्यवहितो द्रष्टव्यः, धारणा च, एवकारः क्रमपरिदर्शनार्थः, एवमनेनैव क्रमेण भवन्ति चत्वार्याभिनिवोधिकज्ञानस्य भिवन्त इति भेदा-विकल्पाः</p> <p>अवग्रहा- दयो भेदाः ॥ ७१ ॥</p>
	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p>

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [३७...]/ गाथा ||७६-७७||

प्रति
सूत्रांक
[३७...]

गाथा
||७६-
७७||

दीप
अनुक्रम
[१२३-
१२४]

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ती
॥ ७२ ॥

अंशा इत्यनर्थान्वरं त एव वस्तुनि भेदवस्तुनि, कथं ?, यतो नानवगृहीतमीद्यते, न चानवगतं धार्यत इति, अथवा काङ्क्षा कीयते, एवं भवति चत्वार्याभिनिवेदिकज्ञानस्य भेदवस्तुनि ?, समासेन संक्षेपण, विशिष्टावग्रहादिस्वरूपापेक्षया, न तु विस्तरत इति, विस्तरतोऽष्टाविंशतिमेदभिन्नत्वात्स्येति गाथार्थः ॥ इदानीमनन्तरोपन्यस्तानामवग्रहादीनां स्वरूपं प्रतिपिपादयिष्याऽऽह—

अत्थाणं० गाहा ॥ (*७६-१८४) ॥ तत्रार्थन्त इत्यर्थाः, अर्थन्ते गम्यन्ते परिच्छिद्यन्त इतियावत्, ते च स्पादयः, तेषामर्थानां प्रश्नमदर्शनानन्तरं च ग्रहणं अवग्रहं, ब्रुवत इति योगः, आह-वस्तुनः सामान्यविशेषात्मकतया विशिष्टत्वात् किमिति प्रथमं दर्शनं ततो ज्ञानमिति, उच्यते, तस्य प्रबलावरणत्वात्, दर्शनस्य चाल्पावरणत्वादिति, ‘तथे’ त्यानन्तर्ये, विचारणं पर्यालोचनं, अर्थानामिति वर्तते, ईहनमीहा तां, ब्रुवत इति सम्बन्धः, विविधोऽवसायो व्यवसायः-निर्णयस्तं व्यवसायं च, अर्थानामिति वर्तते, अपायं ब्रुवत इति संसर्गो, धृतिर्धरणं, अर्थानामिति वर्तते, परिच्छिद्यन्तस्य वस्तुनः अविच्युतिस्मृतिवासनारूपं, तद्वरणं पुनर्धारणां, ब्रुवत इत्यनेन शास्त्रपारतन्त्रमाह, इत्थं तीर्थकरणधरा ब्रुवते, अन्ये त्वेवं पठन्ति ‘अत्थाणं उग्गहणमिम उग्गहो’ इत्यादि, अत्राप्यर्थानामवग्रहणे सत्यवग्रहो नाम मतिविशेष इत्येवं ब्रुवते, एवमीहादिष्यपि योजयं, भावार्थस्तु पूर्ववदिति गाथार्थः॥ इदानीमभिहितस्वरूपाणामवग्रहादीनां कालप्रमाणमभिधित्पुराह-

उग्गहो० गाहा ॥(*७७-१८४)॥ इहामिहितलक्षणोऽर्थवग्रहो यो जघन्यो-नैश्चायिकः स खल्येकं समयं, भवतीति सम्बन्धः,

अवग्रहा-
दयो भेदाः

॥ ७२ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [३७...]/ गाथा ||७७-७८||

प्रति
सूत्रांक
[३७...]
गाथा
||७७-
७८||

नन्दी-
हारिभद्रीय
शृङ्खला
॥ ७३ ॥

तत्र कालः परमनिकृष्टः समयोऽभिधीयते, स च प्रवचनप्रतिषादितोत्पलपत्रशतव्यतिभेदोदाहरणाज्जीर्णपद्मशाटिकापाठनदृष्टान्ताच्चावसेय इति, तथा सांव्यवहारिकार्थावग्रहन्यज्ञनावग्रहौ तु पृथक् पृथगन्तमुहूर्तकालं भवत इति ज्ञातव्यौ, ईहा चापायश्चेहापायौ, प्राकृतशैल्या बहुवचनं, उक्तं च-“बहुवयणेण दुवयणं छाड्विभक्तीऽ भण्णह चउत्थी । जह हत्था तह पाया नमोऽस्तु देवाहिदेवाणं ॥ १ ॥” तावीहापायौ मुहूर्तार्द्धं ज्ञातव्यौ भवतः, तत्र मुहूर्तशब्देन घटिकाद्वयपरिमाणः कालोऽभिधीयते, तस्याद्वं मुहूर्तार्द्धं, तु-शब्दो विशेषणार्थः, किं विशिनष्टि ?, व्यवहारापेक्षयैतन्मुहूर्तार्द्धमुक्तं, तच्चतस्त्वन्तमुहूर्तमवसेयमिति, अन्ये त्वेवं पठन्ति-“मुहूर्तमतं तु” मुहूर्तान्तस्तु, द्वे पदे, अयमर्थः—अन्तर्मध्यकरणे, तुशब्द एवकारार्थः, स चावधारणे, एतदुक्तं भवति-ईहापायौ मुहूर्तान्तः; भिन्नं मुहूर्तं ज्ञातव्यौ भवतः, अन्तर्मुहूर्तमेवत्यर्थः, कलनं कालः तं कालं, न विद्धते संख्यायन्ते इयन्तः पक्षमासत्वयन-संवत्सरादय इत्येवंभूता संख्या यस्यासावसंख्येयः, पल्योपमादिलक्षण इत्यर्थः, तं कालमसंख्यं, तथा संख्यायत इति संख्यः-इयन्तः पक्षमासत्वयनादय इत्येवं, संख्येय प्रमित इत्यर्थः, तं संख्यं, चशब्दादन्तमुहूर्तं च, धारणाऽभिहितलक्षणा भवति ज्ञातव्या, अयमत्र भावार्थः-अपायोऽत्तरकालमविन्युतिरूपाऽन्तमुहूर्तं भवत्येव, स्मृतिरूपाऽपि, वासनारूपा तु तदावरणक्षयोपशमाख्या स्मृतिधारणायाः वीजभूता संख्येयवर्षायुषां सञ्चानां संख्येयकालं असंख्येयवर्षायुषां पल्योपमादिजीविनां चासंख्येयमिति गाथार्थः ॥ इत्थमवग्रहादीनां स्वरूपमभिधायेदानीं श्रोत्रेन्द्रियादीनां प्राप्ताप्राप्तविषयतां प्रतिषिधादिषुराह—
पुडं सुणेह०गाहा ॥ (*७८-१८४) ॥ तत्र स्पृष्टमित्यालिङ्गितं, तनौ रेणुश्वत्, श्रृणोति-गृहाति, किं?, शब्द-शब्दद्रव्यसंघातं, इतः ?, तस्य मृहमत्वाद्वावुकत्वात् प्रचुरद्रव्याकुलत्वाच्छोत्रेन्द्रियस्यान्येन्द्रियग्रहणात् प्रायः पदुतरत्वात् १, रूप्यत इति रूपं तद्वर्णं

अवग्रहा-
दीनां
कालमानं

॥ ७३ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [३७...]/ गाथा ||७८-७९||

प्रति
सूत्रांक
[३७..]
गाथा
||७८-
७९||

नन्दी-
हारिभद्रीय
द्वन्द्वे
॥ ७४ ॥

पुनः पश्यति-गृह्णाति, अस्पृष्टम्-अनालिङ्गितमसंबद्धमित्यर्थः; पुनःशब्दो विशेषणार्थः; तुशब्दस्त्वेवकारार्थः; ततश्चायमर्थः; अस्पृष्टमेव पश्यति, पुनःशब्दादस्पृष्टमपि योग्यदेशावस्थितं, नायोग्यदेशावस्थितमधोलोकादि, कुतःैः, अग्रासकारित्वात् परिमितदेशस्थिविषय-ग्राहित्वाच्चक्षुष इति २, ग्रायत इति गन्धस्तं ३, रस्यत इति रसस्तं च, स्पृश्यत इति स्पर्शस्तं, चशब्दौ पूरणसमुच्चयार्थौ, ‘बद्ध-स्पृष्टमिति’ बद्धम्-आशिलाई तोयवदात्मप्रदेशैरात्मकृतमित्यर्थः; स्पृष्टं पूर्ववत्, प्राकृतशैलया चेत्थपुण्यासो ‘बद्धपुड़’ ति, अर्थतस्तु स्पृष्टं च बद्धं च स्पृष्टबद्धमिति विज्ञयं, आलिंगितानन्तरमात्मप्रदेशैराशृहीतमित्यर्थः; गन्धादिः, स्तोकद्रव्यत्वादभावुकत्वाद् ग्राणादीनां चापुदत्त्वाद्विनिश्चिनोतीत्येव व्यागृणीयादिति गाथार्थः ॥ इह स्पृष्टं श्रुणोति शब्दमित्युक्तं, तत्र किं शब्दप्रयोगोत्सु-द्धान्येव केवलानि शब्दद्रव्याणि गृह्णात्युतान्यानि तद्वावितानि आहोस्त्रित मिश्राणीति चोदकाभिप्रायमाशंक्य न तावत् केवलानि, तेषां वासकत्वात्तद्योग्यद्रव्याकुलत्वाच्च लोकस्य, किन्तु मिश्राणि तद्वासितानि वा गृह्णातीति, अमुर्मर्थमभिघित्सुराह—

भासा०गाहा ॥(*७९-१८४)। भाष्यत इति भाषा, वक्त्रा शब्दतयोत्सृज्यमाना द्रव्यसंहतिरित्यर्थः; तस्याः समश्रेणयो भाषा-समश्रेणयः, समग्रहणं विश्रेणीच्यवच्छेदार्थं, इह श्रेणयः खेत्रप्रदेशश्रेणयोऽभिधीयन्ते, तात्र सर्वस्यैव भाषमाणस्य षड्सु दिष्टु विद्यन्ते, याद्यत्सृष्टा सति भाषाऽद्यसमय एव लोकान्तरमनुधावतीति, ता इतो- भाषासमश्रेणीतः, इतो गतः प्राप्तः स्थित इत्यन-र्थान्तरं, एतदुक्तं भवति- भाषासमश्रेणीच्यवस्थित इति, शब्दयेऽनेनेति शब्दः भाषत्वेन परिणतः पुद्गलराशिः तं शब्दं, यं पुरुषा-इवादिसम्बन्धिनं श्रुणोति-गृह्णाति उपलभत इति पर्यायाः, यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात्मं मिथं श्रृणोति, एतदुक्तं भवति- उत्सृष्टद्रव्य-भावितापान्तरालस्थशब्दद्रव्यमिश्रमिति, विश्रेणीं पुनरित इति वर्तते, ततश्चायमर्थो भवति- विश्रेणीच्यवस्थितः पुनः श्रोता शब्दं

प्राप्याप्रा-
प्यकारिता

॥ ७४ ॥

दीप
अनुक्रम
[१२५-
१२६]

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [३८] / गाथा ||७९-८०||

प्रति
सूत्रांक
[३८]
गाथा
||७९-
८०||

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्तां
॥ ७५ ॥

शृणोति नियमेन परावाते सति, यानि शब्दद्रव्याण्युत्सृष्टद्रव्याभिधाते वासितानि तान्येव, न पुनरुत्सृष्टानांति भावार्थः, कुतः? तेषां अनुश्रेणिगमनात् प्रतिष्ठाताभावाच्च, अथवा विश्रेणिस्थित एव विश्रेणिरभिधीयते, पदेऽपि पदावयवप्रयोगदर्शनाद्वीमसेनः सेनः सत्यमामा भासेति यथेति गाथार्थः ॥ साम्प्रतं विनेयगणसुखप्रतिपत्तये मतिज्ञानपर्यायशब्दानभिधित्सुराह—

ईहा०गाहा ॥(८०-१८४)॥ ईहनमीहा, सदर्थपर्यालोचनचेष्टत्यर्थः, अपोहनमपोहा, निश्चय इत्यर्थः, विर्मषणं विर्मषः, ईहापायमध्यवर्ती प्रत्ययः, तथाऽन्वयवर्तीन्वेषणा मार्गणा, चः समुच्चर्यार्थः, व्यतिरेकधर्मालोचना गवेषणा, तथा संज्ञानं संज्ञाव्यञ्जनावग्रहोचरकालभावी मतिविशेष इत्यर्थः, स्मरणं स्मृतिः, पूर्वानुभूतार्थालम्बनप्रत्ययः, मननं मातिः-कर्थंचिद्धर्थपरिच्छत्ता-वपि सूक्ष्मधर्मालोचनरूपा वुद्दिरित्यर्थः, तथा प्रव्वानं प्रव्वा विशिष्टश्योपशमजन्या प्रभूतवस्तुगतयथाऽवस्थितधर्मालोचनरूपा संविदिति भावना, सर्वभिद्माभिनिवोधिकं मतिज्ञानमित्यर्थः, एवं किंचिद्देवाद्वेदः प्रदशितः, तत्त्वस्तु मतिवाचकाः सर्व एते पर्यायशब्दा इति गाथार्थः ॥ ‘सेत’मित्यादि, तदेतदाभिनिवोधिकज्ञानमिति ॥ साम्प्रतं ग्रागुपन्यस्तसकलचरणकरणक्रियाधारश्रुत-ज्ञानस्वरूपजिज्ञासयाह—

‘से किं त’मित्यादि ॥(३८-१८०)॥ अथ किं तत् श्रुतज्ञानं ?, श्रुतज्ञानभुपरिधिभेदाच्चतुर्दशविधं प्रज्ञासं, तद्यथा-अक्षरश्रुतं १ अनक्षरश्रुतं २ संज्ञश्रुतं ३ असंज्ञश्रुतं ४ सम्यकश्रुतं ५ भिष्याश्रुतं ६ सादि ७ अनादि ८ सपर्यवासितं ९ अपर्यवासितं १० गमिकं ११ अगमिकं १२ अंगप्रविष्टं १३ अनंगप्रविष्टं १४, एतेषां च भेदानां स्वरूपं यथावसरं वक्ष्यामः । अक्षरश्रुतानक्षरश्रुतभेदद्वयान्त-

भाषाश्रुतिः
मतिपर्या-
याश्च

॥ ७१ ॥

दीप
अनुक्रम
[१२६-
१२९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** अथ परोक्षज्ञान-भेदे ‘श्रुतज्ञान’स्य वर्णनं आरक्ष्यते, तदन्तर्गत् ‘श्रुत’स्य १४ भेदानां वर्णनं क्रियते

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [३९] / गाथा ८०... 	
प्रति सूत्रांक [३९] गाथा ८०..	<p>नन्दी- हरिभद्रीय वृत्ती ॥ ७६ ॥</p> <p>र्मायेऽपि शेषभेदानामुपन्यासोऽज्ञातज्ञात्वार्थः, न च भेदद्वयादेवाव्युत्पचमतीनां शेषभेदावगम इति प्रतीतमेतद् , अलं विस्तरेण ॥ साम्प्रतमुपन्यस्तश्रुतभेदानां स्वस्पमनवगच्छब्दाध्यं भेदमधिकृत्य प्रश्नस्त्रमाह— ‘से किं त’ मित्यादि ॥(३९-१८७)॥ अथ किं तदक्षरश्रुतं, ‘क्षर संचलने’ न क्षरतीत्यक्षरं, तच्च ज्ञानं चेतनेत्यर्थः, जीवस्वा भाव्यादनुपयोगेऽपि तच्चतो न प्रच्यवत इत्यर्थः, इत्थंभूतभावाक्षरकार्यकारणत्वादकाराद्यप्यक्षरपुच्यते, तत्राक्षरात्मकं श्रुतमक्षरश्रुतं- द्रव्याक्षराण्यधिकृत्य, अथयाऽक्षरं च तत् श्रुतं चाक्षरश्रुतं, भावाक्षरमधिकृत्य, इदमक्षरश्रुतं त्रिविधं प्रज्ञसं, अक्षरस्यैव त्रिभेदत्वात्, त्रिभेदतामेव दर्शयन्नाह- संज्ञाक्षरं १ व्यञ्जनाक्षरं २ लब्ध्यक्षरं ३, ‘से किं त’मित्यादि अथ किं तत् संज्ञाक्षरं ?, संज्ञानं संज्ञा, संज्ञायते वा अनयेति संज्ञा, तत्रिवन्धनमक्षरं संज्ञाक्षरं, इदं च अक्षरस्य अकारादेः संस्थानस्याकृतिः संस्थानाकारो, यतस्तत्रिवन्ध- नैवैतेष्वकारादिसंज्ञा प्रवर्चते इति, एतच्च ब्राह्म्यादिलिपीविधानादनेकविधं, ‘सेतं सन्नक्षयते इति तदेतत् संज्ञाक्षरं ॥</p> <p>‘से किं त’ मित्यादि, अथ किं तद् व्यञ्जनाक्षरं ?, व्यञ्जयतेज्ञेनार्थः प्रदीपेनेव घट इति व्यञ्जनं तच्च तदक्षरं च व्यञ्जना- क्षरं, तच्चेह सर्वमेव भाष्यमाणमकारादि हकारान्तं, अर्थाभिव्यञ्जकत्वाच्छब्दस्य, तथा चाह सूत्रकारः-अक्षरस्याकारादेः व्यञ्जना- भिलापः शब्दोच्चारणं, ‘से त’ मित्यादि, तदेतद्व्यञ्जनाक्षरम् ॥</p> <p>‘से किं त’ मित्यादि, अथ किं तल्लब्ध्यक्षरं ?, लविधः क्षयोपशमः उपयोग इत्यर्थः, ‘अक्षरलङ्घीयस्स’ इत्यादि, इहाक्षरे लविध्यर्थस्य सोऽक्षरलविधिकस्तस्य, इन्द्रियमनउभयविज्ञानसमुत्थवटाद्यक्षरलविधिसमन्वितस्येत्यर्थः, अनेन विकलेन्द्रियादिव्यवच्छेद-</p>	<p>श्रुतभेदाः अक्षरश्रुतं</p> <p>॥ ७६ ॥</p>
दीप अनुक्रम [१३०]		

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [३९] / गाथा ||८१||

प्रति
सूत्रांक
[३९]
गाथा
||८१||

नन्दी-
हारिभद्रीय
बृत्ती
॥ ७७ ॥

माह, लब्ध्यक्षरं समुत्पद्यते, कुत्रिच्छब्दादेनिभित्तात् सञ्जाततदावरणकर्मक्षयोपशमस्य लब्ध्यक्षरं समुत्पद्यते-अक्षरोपलम्भः सञ्जायते, एतदुक्तं भवति-शब्दादिग्रहणसमनन्तरमिन्द्रियमनोनिमित्तं श्रुतग्रन्थानुसारि शाङ्क इत्याद्यक्षरानुषक्तं विज्ञानमुत्पद्यते, तच्चानेकप्रकारं, तदथा-श्रोत्रेन्द्रियलब्ध्यक्षरमित्यादि, इह श्रोत्रेन्द्रियेण शब्दश्रवणे सति शाङ्कोऽयमित्याद्यक्षरद्वयलाभः श्रोत्रेन्द्रिय-निमित्तस्वाच्छ्रोत्रेन्द्रियलब्ध्यक्षरामिति, एवं शेषेषपि भावनीयं, ‘से त’ मित्यादि, तदेतल्लब्ध्यक्षरं, ‘से त’ मित्यादि, तदेतद्व्यक्षरात्मकं अक्षरं च तदिति वा श्रुतं चाक्षरश्रुतं, तत्र संज्ञाव्यञ्जनाक्षरे द्रव्यश्रुतं, लब्ध्यक्षरं पुनर्भावश्रुतं, लब्धेविज्ञानरूपत्वात् ॥ ‘से किं त’ मित्यादि, अथ किं तदनक्षरश्रुतम् ?, २ अनक्षरः शब्दः कारणं कार्यमनक्षरश्रुतं अनेकप्रकारं प्रज्ञसम्, तदथा—

अससियं०गाहा ॥ (* ८१-१८७) ॥ उच्छ्वसनमुच्छ्वसितं, भोवे निष्ठाप्रत्ययः, तथा निःश्वसनं निःश्वसितं, निष्ठीवनं निष्ठयुतं, कासनं कासितं, चशब्दः समुच्चयार्थः, क्षवणं क्षुतं, चशब्दः समुच्चयार्थं एव, अस्य व्यवहितः सम्बन्धः, कथं?, सेण्टिं चानक्षरं श्रुतमिति वक्ष्यामः, निःसङ्खनं निःसङ्खितं, अनुस्वारवदनुस्वारं, अक्षरमपि यदनुस्वारवदुच्चार्यते, ‘अनक्षर’मित्येतदुच्छ्व-सिताद्यनक्षरश्रुतमिति, सेण्टनं सेण्टिं तत् सेण्टिं चानक्षरश्रुतमिति, इदं चोच्छ्वसितादि द्रव्यश्रुतमात्रं ध्वनिमात्रत्वात्, अथवा श्रुतविज्ञानोपयुक्तस्य जन्तोः सर्व एव व्यापारः श्रुतं, तस्य तद्वावेन परिणतत्वात्, आहयदेवं किमित्युपयुक्तस्य चेष्टापि श्रुतं नोन्यते, येनोच्छ्वसिताद्येवोन्यते इति, अत्रोन्यते, रूब्या, अथवा श्रूयत इति श्रुतं, अन्वर्थसंज्ञामधिकृत्योच्छ्वसिताद्येव श्रुतमुन्यत-न चेष्टा, तदभावादिति, अनुस्वारादयस्त्वर्थगमकत्वादेव श्रुतमिति, ‘से त’ मित्यादि, तदेतदनक्षरश्रुतम् ।

लब्ध्यक्षरं
अनक्षरश्रुतं

॥ ७७ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४०] / गाथा ८९...
प्रति सूत्रांक [४०] गाथा ८९...	<p>नन्दी- हारिभद्रीय वृत्ती ॥ ७८ ॥</p> <p>‘से किं त’मित्यादि, ॥ (४०-१८९) ॥ अथ किं तत् संज्ञिश्रुतं? संज्ञानं संज्ञा, संज्ञाऽस्यास्तीति संज्ञी तस्य श्रुतं २ त्रिविधं प्रज्ञासं, संज्ञिन एव त्रिभेदत्वात्, त्रिभेदतामेव दर्शयन्नाह-तथाथा-कालिक्युपदेशेन हेतुपदेशेन वाष्टिवादोपदेशेन. ‘से किं त’मित्यादि, अथ कोऽयं कालिक्युपदेशेन, इहादिपदलोपाहीर्वकालिकी कालिक्युन्यते, संज्ञेति प्रकरणाद्भ्यते, उपदेशनमुपदेशः, कथनमित्यर्थः; दर्खिकालिक्याः सम्बन्धी दर्खिकालिक्या वा मतेनोपदेशो दर्खिकालिक्युपदेशस्तेन यस्य प्राणिनः अस्ति-विद्यते ईहा-शब्दाद्यवग्रह-णोन्नरकालमन्वयव्यतिरेकधर्मालोचनचेष्टेत्यर्थः, तथा अपोऽहो-व्यतिरेकधर्मपरित्यागेनान्वयधर्माध्यासेनावधारणात्मकः प्रत्यय इति भावना, यथा शब्द इति, तथा मार्गणा विशेषधर्मान्वेषणारूपा संविदित्यर्थः, यथा शब्दः सन् किं शाङ्कः किं वा शार्ङ्ग इति, तथा गवेषणा व्यातिरेकधर्मस्वरूपालोचना, यथा खरादय एवंभूता इति, तथा चिन्ना अन्वयधर्मपरिज्ञानाभिषुखा चेष्टा, यथा भवुरत्वादयस्त्वेवभूता इति, तथा विमर्षः त्याज्यधर्मपरित्यागेनोपादेयधर्मग्रहणाभिषुख्यं, यथा न शाङ्कः, प्रायोऽयं मधुरत्वादियोगाच्छाङ्क इति, ‘से णं सञ्जीति लब्धति’ति स प्राणी णमिति वाक्यालङ्कारे संज्ञीति लभ्यते, मनःपर्याप्त्या पर्याप्तोऽवग्रहादिभतिज्ञानसम्युक्तसमान्वित इत्यर्थः; अथवा यस्यास्ति ईहा-किमतीदिति चेष्टा इदमित्यवगमोऽपोऽहः अवगतार्थाभिलोषे तत्प्राप्तौ च निषुणोपाय तोऽन्वेषणं गवेषणा प्रयुक्तप्रतिहतोपायस्येपायान्तरचिन्तनं चिन्ना तद्विषय एवोपायालोचनात्मकः प्रत्ययो विमर्षः संज्ञीति-लभ्यते, अयं च गर्भव्युत्क्रान्तिकः पुरुषादिरौपपातिकश्च देवादिरेव मनःपर्याप्तिप्रयुक्तो विज्ञेयः, यथोक्तविशेषणकलापसमन्वितत्वात्, न पुनरन्यस्तद्विशेषणविकल इति, आह च-‘जस्से’ त्यादि, यस्य नास्ति ईहाऽपाहो मार्गणा गवेषणा चिन्ना विमर्षः सोऽसंज्ञीति लभ्यते, अयं च सम्मूर्च्छमपंचेन्द्रियविकलेन्द्रियादिरैयः, अल्पमनोलघ्नित्वादभावाच्च, ‘सेत’मित्यादि, सोऽयं कालिक्युपदेशेन ।</p> <p>संज्ञिश्रुतं ॥ ७८ ॥</p>
दीप अनुक्रम [१३३]	

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [४०] / गाथा ||८९...||

प्रति
सूत्रांक
[४०]
गाथा
||८९..||

नन्दी-
हरिभद्रीय
वृत्ती
॥ ७९ ॥

‘से किं त’मित्यादि, अथ कोऽयं हेतूपदेशेन?, हेतुः कारणं स एव उपदेशः हेतोरूपदेशस्तेन, कारणोपदेशेनेत्यर्थः, यस्य प्राणिनोऽस्ति-विद्यतेऽभिसन्धारणम्--अव्यक्तेन विज्ञानेनालोचनं तत्पूर्विका- तत्कारणिका करणशक्तिः क्रियाशक्तिः, करणं-क्रिया शक्तिः- सामर्थ्यं, अव्यक्तविज्ञानालोचननिबन्धनचेष्टासामर्थ्यमिति भावना, स प्राणी णमिति वाक्यालकारे संज्ञीति लभ्यते, अयं च द्वीन्द्रियादिः सम्मुच्छिमपंचेन्द्रियावसानो विज्ञेयः, तथाहि- कृम्यादयोऽपीष्टेष्वाहारादिषु प्रवर्तन्ते अनिष्टम्यश्च निवर्तन्ते स्वदेहपरिपालनार्थं, प्रायो वर्तमान एव, न चासंचिन्त्येष्टानिष्ठविषयः प्रवृत्तिनिष्टिसम्भव इति संज्ञा, उक्तलक्षणविकल-स्त्वसंज्ञा, तथा चाह-‘यस्य’त्वादिः यस्य नास्ति अभिसन्धारणपूर्विका करणशक्तिः सोऽसंज्ञीति लभ्यते, अयं चैकेन्द्रियपृथिव्यादिरव-सेयो, मनोलब्धिरहितत्वाद, आह-यदि स्वल्पसंज्ञायोगाद्विकलेन्द्रियादयः संज्ञिन इष्यन्ते पृथिव्यादयः किं नेष्यन्ते ? यतस्तेषामपि दशविधाः संज्ञा विद्यन्त एव, तथा चोक्तं परमगुरुभिः—“कृति णं भेते! एगिंदियाणं सक्षाओ पव्याओ? गोयमा! दस, तंजहा-आहार-संना भयसक्षा मेहुण० परिग्रहसक्षा कोह० माण० माया० लोभ० ओहसक्षा लोगसक्षा य”ति उपयोगभावमोघसंज्ञा लोकसंज्ञा स्वच्छ-न्दविकालिपता विश्वगमा लोकिकराचरिता, तथथा-अनपत्यस्य न सन्ति लोका इत्यादि, अन्ये तु व्याचक्षते-ओधसंज्ञा दशनोप-योगो लोकसंज्ञा ज्ञानोपयोग इति, अत्रोच्यते, इहौघसंज्ञा स्तोकत्वाद् आहारादिसंज्ञाशानिष्टत्वाशाधिक्रियते, यथा न काषायण-मात्रेण धनवानभिधीयते, मूर्च्छिमात्रेण वा रूपवानिति, किन्तु यथा प्रभूतरत्नादिसमन्वितो धनवान् प्रशस्तमूर्च्छियुक्तश्च रूपवानभि-धीयते, एवं महती शोभना च संज्ञा यस्यास्त्यसौ संज्ञीति, विशिष्टतरा च विकलेन्द्रियसंज्ञेत्यलं विस्तरेण, ‘सत’मित्यादि, सोऽयं हेतूपदेशेन। ‘से किं त’मित्यादि, अथ कोऽयं दृष्टिवादोपदेशेन?, दृष्टिः-दर्शनं वदनं वादः दृष्टीनां वादः दृष्टिवादः तदुपदेशेन तन्मतापेक्षया

संज्ञिश्वतं

॥ ७९ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४] / गाथा ८९...
प्रत सूत्रांक [४१] गाथा ८९..	<p>नन्दी- हारिभद्रीय वृत्ति ॥ ८० ॥</p> <p>संज्ञिश्रुतस्य क्षयोपशमेन संज्ञीति लभ्यते, अयमत्र भावार्थः-संज्ञानं संज्ञा तद्बोगात् संज्ञी तस्य श्रुतं संज्ञिश्रुतं, इदं सम्यक् श्रुतमेव, अन्यथा संज्ञानाभावात्, न हि मिथ्याद्देषः संज्ञानमस्ति, हिताहितप्रवृत्तिनिवृत्यभावाद्, रागादिप्रवृत्तेः, उक्तं च-“तज्ज्ञानमेव न भवति यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः। तमसः कुतोऽस्ति शक्तिदिनकरकिरणाग्रतः स्थातुम् ? ॥१॥” सम्यग्दृष्टिस्तु तन्निग्रहपरत्वाद्वीतराग-सम एव, उक्तं च-“कलुमफलेण ण जुज्जइ कि चित्तं तथं जं विगतराओ। संतेवि जो कसाए णिगिण्हती सोज्जि तरुलो ॥१॥” नीत्यादि, अलं प्रसंगेन, तदित्थं भूतस्य संज्ञिश्रुतस्य क्षयोपशमेन सता संज्ञीति लभ्यते, अयं च सम्यग्दृष्टिरेव क्षयोपशमिकज्ञान-युक्तो रागादिनिग्रहपरः, तदन्यस्त्वसंज्ञी, यत आह ग्रन्थकारः-असंज्ञिश्रुतस्य क्षयोपशमेनासंज्ञीति लभ्यते, ‘सेत’मित्यादि, सोज्जं दृष्टिवादोपदेशेन, एवं संज्ञिनस्त्रिमेभिन्नत्वात् श्रुतमपि तदुपाधिमेदात् त्रिविधमेवेति। अत्राह-कालिक्युपदेशेनत्यादि क्रमःकिमर्थे?, उच्यते, इह प्रायः स्त्रे यत्र क्वचित् संज्ञिग्रहणं तत्र दीर्घकालिक्युपदेशेन समनस्कसंज्ञिपरिग्रह इति प्रथमं तदुपन्यासः, अप्रधान-त्वाच्चेतरयोः अन्ते च प्रधानाभिधानमिति न्याय्यं, ‘सेत’मित्यादि, तदेतत् संज्ञिश्रुतं, असंज्ञिश्रुतं तु प्रतिपक्षाभिधानादेव प्रतिपादितं, तदेतदसंज्ञिश्रुतम् ॥</p> <p>‘से किं त’ मित्यादि ॥(४१- १९१)॥ अथ कि तत् सम्यक्श्रुतं?, २ यदिदं प्रणीतमिति सम्बन्धः, तत्राशोकाद्यष्टमहाप्रातिहा-र्यसूपां पूजामर्हन्तीत्यर्हन्तः, तथा चोक्तं-“अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिर्दिव्यो ध्वनिशामरसासनं च। भामण्डलं हुन्दुभिरातपत्रं, सत्प्राति-हार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥ १ ॥” तैरहंडिः, तत्र शुद्धद्रव्यास्तिकनयमतानुसारिभिः अनादिशुद्धा एव मुक्तात्मानोऽभ्युपगम्यन्ते, यथोक्तम्-“ज्ञानमप्रतिधं यस्य, वैराग्यं च जगत्पतेः। ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च, सहस्रिद्वं चतुष्टयं॥१॥” इत्यादि, वहवश कैश्चिदिष्यन्ते, तेऽपि</p>
दीप अनुक्रम [१३४]	संज्ञिश्रुतं ॥ ८० ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** श्रुतज्ञानस्य १४ भेद-मध्ये ‘सम्यक्श्रुत’स्य वर्णनं क्रियते

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [४] / गाथा ||८९...||

प्रति
सूत्रांक
[४१]
गाथा
||८९..||

नन्दी-
हरिभद्रीय
बृत्ती
॥ ८१ ॥

च स्थापनादिद्विरेण पूर्जोऽहत्वादर्हन्तो भवन्त्येव, अतो- भगवद्भिः; भगः खलु समग्रैश्वर्यादिलक्षणः, यथोक्तं-“ऐश्वर्यस्य समग्रस्य,
रूपस्य यशसः श्रियः। धर्मस्याथ प्रयत्नस्य, धर्माणं भग इतींगना ॥१॥” भगो विद्यते येषां ते भगवन्तः तैर्भगवद्भिः; न चानादि-
शुद्धानां समग्रं रूपमुपपद्यते,अवरीरित्वात्,शरीरस्य च रागादिकार्यत्वात् तेषां च तदभावादिति, स्वेच्छानिर्माणतः समग्रशरीरसम्भवा-
तुल्यतामेवाशंक्याह-उत्पन्नज्ञानदर्शनधैरः; न च तेऽनादिशुद्धः उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः; ज्ञानमप्रतिधं यस्ये’त्यदिवचनविरोधात्, एवं
शुद्धद्रव्यास्तिकनयमतानुसारिपरिकलिपतमुक्तव्यवच्छेदार्थोऽयं ग्रन्थः, अधुना पर्यायास्तिकनयमतानुसारिपरिकलिपतमुक्तव्यवच्छे-
दार्थमाह-‘त्रैलोक्यनिरोक्षितमहितपूजितैः’ निरीक्षिताश्च महिताश्च पूजिताश्चेति समाप्तः, त्रैलोक्येन निरीक्षितमहितपूजिता इति
विग्रहः, विशेषणसाफल्यं पुनरित्थमवसंय-त्रैलोक्यग्रहणाद् भवनव्यन्तरनरीविद्याधरज्योतिष्ठकैमानिकपरिग्रहः, निरीक्षिता भक्तिनप्रैर्मनो-
रथदृष्टिभिर्दृष्टाः, महिता यथा ज्वस्थितान्यासाधारणगुणोत्कीर्त्तनलक्षणेन भावस्त्वेन, पूजिताः सुगन्धिपुण्यप्रकरप्रक्षेपादिना द्रव्य-
स्तवेनेति, तत्र सुगतादयोऽपि पर्यायास्तिकनयमतानुसारिभिर्त्रैलोक्यनिरोक्षितमहितपूजिता इष्यन्त एव, आह च स्तुतिकारः—
“देवागमनभोयानचामरादिविभूतयः। मायाविष्वपि दृश्यन्ते, नातस्त्वमसि नो महान् ॥१॥” इत्यादि, अत आह-‘अतीतप्रत्यु-
त्पचानागतज्ञैः’ न चैकान्तक्षणिकवादिनां यथोक्तविशेषणसम्भवः, अतीतानागताभावात्, तथा चागमः, “ण णिहणगया भग्गा
पुंजो णिथि अणागते। णिच्युया णेव चिद्वृत्ति आरग्गे सरिसोवमा ॥१॥” असतां च ग्रहणायोगादित्याद्यत्र बहु वक्तव्यं, न च
तदुच्यते, गमनिकामात्रत्वादस्य प्रारम्भस्य, व्यवहारनयमतानुसारिभिस्तु कैश्चिदतीतानागतार्थग्राहिण इष्यन्त एव ऋषयः, यथाऽस-
हुरेके- “ऋषयः संयतात्मानः, फलमूलानिलाशनाः। तपसैव प्रपश्यन्ति, त्रैलोक्यं सच्चराचरम् ॥ १ ॥ अतीतानागतान् भावान् ,

सम्यक्षतुं

॥ ८१ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [४] / गाथा ||८९...||

प्रति
सूत्रांक
[४१]
गाथा
||८९..||

नन्दी-
हारिभद्रीय
बृत्ती
॥ ८२ ॥

वर्तमानांश भारत! । ज्ञानालोकेन पश्यन्ति, त्वक्संगा जितेन्द्रिया ॥२॥” इत्यादि, अत आह-‘सर्वज्ञः सर्वदाशिभिः’ ते तु सर्वज्ञा न भवन्तीत्यमित्रायः; एवं प्रधानोभयनयमतानुसारिपरिकल्पितमुक्तव्यवच्छेदेनं नीयते, अन्यथा वाऽविरोधेन नेतव्यमिति, प्रणीतम्-अर्थकथनदारेण प्रस्तुतं, कि तदैङ्ग-द्वादशांगं, श्रुतपरमपुरुषोत्तमस्यांगानीवांगानि द्वादश अंगानि- आचारादीनि यस्मै-स्तदैङ्ग-द्वादशांगं, गुणगणोऽस्यास्तीति गणी-आचार्यस्तस्य पिटकं सर्वस्वं गणिपिटकम् , अथवा गणिशब्दः परिच्छेदवचनः; तथा चोक्तम्-“आयारम्भ अहीए जं णातो होइ समणधम्मो उ । तम्हा आयारधरो भन्नति पढमं गणिडाणं ॥१॥” परिच्छेदस्थानमित्यर्थः; ततथ परिच्छेदसमूहो गणिपिटकं, तथथा-आचार इत्यादि, पाठसिद्धं यावद् दृष्टिवादः । अनंगप्राचिष्ठमावश्यकादि, ततोऽहंतप्र-पीतत्वात् वस्तुत उक्तव्यादनुक्तमपि गृह्णते, इदं सर्वमेव द्रव्यास्तिकनयमतेन तदमिधेयपंचास्तकायभाववच्चित्यं सत् स्वाम्यस-म्बन्धचिन्तायां सूत्रार्थोभयरूपं सम्यक्क्षुतमेव भवति, स्वाभिसम्बन्धचिन्तायां तु भाज्यं, स्वाभिपरिणामविशेषात् , कदाचित् सम्यक्क्षुतं कदाचिद्विपर्ययः, तत्र सम्यग्देषः प्रशमादिसम्यक्परिणामोपेतत्वात् स्वरूपेण प्रतिभासनात् सम्यक्क्षुतं, पितोदयान-भिभूतस्य शर्करादिरिवेति, मिथ्यादेषः पुनरप्रशमादिमिथ्यापरिणामोपेतत्वाद्वस्तुनः स्वरूपेणप्रतिभासनान्मध्याक्षुतं, पितोदया-भिभूतस्याशर्करादिवदिति, देशतो दृष्टान्तः; अशर्करादित्वं च तं प्रति तस्कार्याकरणात्, तथाऽप्यभ्युपगमे चातिप्रसंगादित्यं प्रसंगेन ॥ श्रुतप्रमाणत एव सम्यक्परिणामनियमनायाह—
‘इच्छेदंमित्यादि, इत्येतदैङ्ग-द्वादशांगं गणिपिटकं चतुर्दशपूर्विंशोऽपि सम्यक्क्षुतमेव, तथा अभिशदशपूर्विंशोऽपि सम्यक्क्षुतमेव, तेण परं भिन्नेसु(दससु)भयण’ त्ति पश्चानुपूर्व्या ततः परं भिन्नेषु दशसु भजना-कदाचित् सम्यक्क्षुतं कदाचिन्मध्याक्षुतं

सम्यक्क्षुतं

॥ ८२ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [४२-४३] / गाथा ||८१...||

प्रति
सूत्रांक
[४२-४३]

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्तौ

॥ ८१ ॥

दीप
अनुक्रम
[१३५-
१३६]

परिणामविशेषाद्, एतदुक्तं भवति-आसन्नमव्योऽपि मिथ्याद्विः सम्पूर्णदशपूर्वरत्ननिधानं न प्राप्नोति, मिथ्यात्वपरिणामकलं-
कितत्वादारिणिवन्धनपापकलंकांकितपुरुषवर्णिचतामणिमिति, ‘सेत’मित्यादि तदेतत् सम्यक्श्रुतम् ॥

‘से किं त’मित्यादि ॥(४२-१०४)॥ अथ किं तन्मिथ्याश्रुतं? २ यदिदमज्ञानिकैः, तत्राल्पज्ञानभावादधनवदशीलवद्वा सम्य-
ग्दष्टयोऽप्यज्ञानिकाः प्रोच्यन्ते अत आह-मिथ्याद्विष्टमिः, किं-स्वच्छन्दवुद्दिमतिविकलिप्तं, इहावग्रहे बुद्धिः, अपायधारण-
मतिः, स्वच्छन्देन-स्वाभिप्रायेण स्वतः, सर्वज्ञप्रणीतार्थानुभारमन्तरेण बुद्धिमतिभ्यां विकलिप्तं स्वच्छन्दबुद्धिमतिविकलिप्तं, स्वबु-
द्धिकल्पनाशिल्पनिर्भित्यर्थः, तद्यथा ‘भारत’मित्यादि स्वत्रसिद्धं, यावच्चत्वारश्च वेदास्सर्वांगोपांगाः, एतानि स्वरूपतोऽन्यथाव-
स्वभिधानान्मिथ्याश्रुतेभव, स्वाभिसम्बन्धचिन्तायां तु भाज्यानि, तथा चाह-मिथ्याद्वेष्टमिथ्यात्वपरिगृहीतानि विषरीताभिनिवे-
शहेतुत्वान्मिथ्याश्रुतं, एतान्येव सम्यग्दृष्टेः सम्यक्त्वपरिगृहीतानि असारतादर्शनेन स्थिरतरसम्यक्त्वपरिणामहेतुत्वात् सम्यक्श-
श्रुतं, अथवा मिच्छादिङ्गीया इत्यादि, यस्माते मिथ्यादृष्टयः ‘तेहिं चेव समयेहिं चोदिता समाप्तं’ त्ति तैरेव समयैः-सिद्धान्तैः
पूर्वापरविरोधद्वारेण यद्यतीन्द्रियार्थदर्शनं स्यात् कथंचिदर्थप्रतिपत्तिरित्यादिना चोदिताः सन्तः केचन विवेकिनः सत्यकथाद्य इव,
किं, ‘सप्तक्षेपदिङ्गीयो वर्तेति’ स्वपक्षदृष्टीस्त्वजन्तीत्यर्थः ‘सेत’मित्यादि, तदेतत् मिथ्याश्रुतं। ‘से किं त’मित्यादि, सादि सपर्य-
वसितं अनाद्यपर्यवासितं चाधिकारवशाद्युगपदुच्यते, अथ किं तत् सादि?, सह आदिना वर्तत इति सादि इत्येतद् द्वादशांगं गणि-
पिटकं व्यवच्छित्तिप्रतिपादनपरो नयः व्यवच्छित्तिनयः, पर्यायास्तिक इत्यर्थः, तस्यार्थो व्यवच्छित्तिनयार्थः, तद्वावो व्यवच्छित्ति-

मिथ्यात्व-
श्रुतं

॥ ८२ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४२-४३] / गाथा ८१...
प्रति सूत्रांक [४२-४३] गाथा ८१...	<p>नन्दी- हारिमद्रीय वृत्ती ॥ ८४ ॥</p> <p>नयार्थता तथा व्यवच्छित्तिनयार्थभावेन, पर्यायपेक्षयेत्यर्थः, किं १, सादि सपर्यसितं, पर्यवसानं पर्यसितं, भावे निष्ठाप्रत्ययः, सह इत्यर्थं, तस्यार्थोऽव्यवच्छित्तिनयार्थस्तद्वावः अव्यवच्छित्तिनयार्थता तथा अव्यवच्छित्तिनयार्थभावेन, द्रव्यापेक्षयेत्यर्थः, किं? अनादि अपर्यसितं, त्रिकालावस्थायेत्वात् जीवबत् ॥ अधिकृतमेवार्थं द्रव्यादिचतुष्टयमधिकृत्य प्रतिपादयन्नाह-‘तं समासतो’ इत्यादि, तच्छुज्ञानं समासतः संक्षेपेण चतुर्विधं प्रज्ञम्, तद्यथा-द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतः, तत्र द्रव्यतः एनमिति वाक्यालंकारे सम्यक्श्रुतं एकं पुरुषं प्रतीत्य सादिसपर्यसितं, कथं १, सम्यक्त्वावासौ तत्प्रथमपाठतो वा सादि, पुनर्मिथ्यात्वप्राप्तौ सति वा सम्यक्त्वे प्रमादिग्लानिसुरलोकगमनकेवलोत्पत्तिभावात् सपर्यवसितं, वह्न् पुरुषान् प्रतीत्य अनाद्यपर्यवसितं, सन्तानेन प्रवत्तत्वात् पुरुषत्वबत्, तथा क्षेत्रतः पंच भरतानि पंच एवतानि प्रतीत्य सादि सपर्यसितं, कथं १, तेषु सुषमदुष्ममादिकाले तीर्थकरर्धमसंधानां तत्प्रथमतयो-त्पत्तेः सादि, एकान्तदुष्ममादिकाले च तदभावे सपर्यवसितं, तथा भग्नाविदेहादि प्रतीत्य प्रवाहरूपेण तीर्थकरादीनामन्यवच्छित्ते-रनाद्यपर्यवसितं, कालतः एनमिति वाक्यालंकारे अवसर्पिणीं उत्सर्पिणीं च प्रतीत्य सादि सपर्यसितं, कथं १, यतोऽवसर्पिण्यां तिसृ-ष्वेष सुषमदुष्ममादुष्ममसुषमादुष्ममास्विति, उत्सर्पिण्यां द्वयोः दुष्ममसुषमासुषमदुष्मयोरिति, न परतः, इत्यतः सादि सपर्यवसितं, अत्र कालचक्रं विश्वितसागरोपमकोटीकोटिपरिमाणं विनेयजनानुग्रहार्थं प्रस्तृप्यते— चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीउ संततीए उ । एगंत द्वसमा खलु जिणेहि सच्चेहि णिद्वा ॥१॥ तीए पुरिसाणमायुं तिणिउ पलियाइं तह पमाणं च । तिनेव गाउयाइं आदीए भण्ठति समयणू ॥ २ ॥ उवभोगपरीभोगा जम्मंतरसुक्यवीयजातातो ।</p> <p>मिथ्यात्व- शुतं</p> <p>॥ ८४ ॥</p>
दीप अनुक्रम [१३५- १३६]	<p>पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>*** अत्र ‘कालचक्र’स्य स्वरूपम् वर्णयते</p>

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [४२-४३] / गाथा ||८१...||

प्रति
सूत्रांक
[४२-४३]

दीप
अनुक्रम
[१३५-
१३६]

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ति
॥ ८५ ॥

कप्पतरुसमूहाओ होंति किलेसं विणा तेसि ॥ ३ ॥ ते पुण दसप्पगारा कप्पतरु समणसमयकेतूहिं । धीरेहि विणिहिंडुा मणोरहाप्-
स्गा एए ॥ ४ ॥ भत्तंगथा १ य भिंगा २ तुडियंगा ३ दीव ४ जोति ५ चित्तंगा ६ । चित्तरसा ७ मणियंगा ८ गेहागारा ९
अणियणा १० य ॥ ५ ॥ भत्तंगएसु मज्जं सुहपेज्जं भायणाणि भिंगसु । तुडियंगेसु य संगथतुडियाणि बहुप्पगाराणि ॥ ६ ॥
दीवसिहा ज्ञोतिसणामया य शिन्चं करिति उज्जोथं । चित्तंगेसु य मल्लं चित्तरसा भोयणड्डाए ॥ ७ ॥ मणियंगसु य भूसणवराणि
मवणाणि भवणरुक्खेसु । आयन्नेसु य इच्छयवत्तथाणि बहुप्पगाराणि ॥ ८ ॥ एसु य अन्नेसु य नरनारिगणाण ताणमुवभोगो ।
भवियपुणबभवरहिया इथ सच्चनू जिणा विति ॥ ९ ॥ तो तिन्नि सागरोवमकोडाकोडी उ वीयरागेहिं । सुसमति समक्खाया
पवाहरुवेण धीरेहिं ॥ १० ॥ तीए पुरिसाणमायुं दोणिण य पलियाइं तह पमाणं च । दो चेव गाउयाइं आईए भणांति समयन्नू
॥ ११ ॥ उवभोगपरीभोगा तेसिपि य कप्पपादवेहितो । होंति किलेसेण विणा नवरं ऊणाऽणुभावेहिं ॥ १२ ॥ तो सुसमदूसमाए
पवाहरुवेण कोडिकोडीओ । अयरण दोणिण सिंडु जिणेहिं जियरागदोसेहिं ॥ १३ ॥ तीए पुरिसाणमाउं एगं पलियं तहा पमाणं
च । एगं च गाउयं तीइ आदीए भणांति समयणू ॥ १४ ॥ उवभोगपरीभोगा तेसिपि य कप्पपादवेहितो । होंति किलेसेण विणा
पायं ऊणाऽणुभावेहिं ॥ १५ ॥ सूसमदूसमावसेसं पठमजिणो धम्मणायगो भयवं । उप्पन्नो कथपुन्नो सिप्पकलादंसगो उसहो
॥ १६ ॥ तो दुसमसुसमूणा बायालीसाए वरिसमहसेहिं । सागरकोडाकोडी एगेव जिणेहिपण्णता ॥ १७ ॥ तीए पुरिसाणमायुं
पुच्चपमाणेण तह पमाणं च । धणुसंखानेहिंडुं विसेससुत्ताओ णायच्चं ॥ १८ ॥ उवभोगा परीभोगा पवरोसहिमाइहि विष्णेया ।
जिणचक्किवासुदेवा सच्चे य इमीए वोलीणा ॥ १९ ॥ इगवीससहस्राइं वासाणं दूसमा इमीए य । जेविय माणुवभोगादीया व

कालचक्र-
स्वरूपं

॥ ८५ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [४२-४३] / गाथा ||८१...||

प्रति
सूत्रांक
[४२-४३]

गाथा

दीप
अनुक्रम
[१३५-
१३६]

नन्दी-
हारिमद्रीय
बृचौ

॥ ८६ ॥

दीर्घं हायंता ॥ २० ॥ एतो उ किलिहृतरा जीतपमाणादिएहिं निहिडा । अविदूसमति धोरा वाससहस्राइ हगवीसं ॥ २१ ॥ ओसपिणीए एसो कालविभागो जिणेहिं निहिडो । एसोच्चय पडिलोंमं विशेष्युस्सपिणीएवि ॥ २२ ॥ एतं तु कालचकं सिस्स-जणाणुग्गहङ्काया भणियं । संखेवेण महत्थो विसेसुत्ताओ णायन्दो ॥ २३ ॥ ‘णोउस्सपिणी’ मित्यादि, नोउत्सपिणीमवस-पिणी च प्रतीत्य अनाघर्यवसितं, महाविदेहज्वेव कालस्यावस्थितत्वादिति भावः, भावतः णमिति पूर्ववत् ‘य’ इत्यनिहिष्ट-निर्देशं ये केचन यदा पूर्वोङ्कारो जिनैः प्रज्ञासा २ भावाः पदार्थाः ‘आघविज्जन्ति’ चिं प्राकृतशैल्या आख्यायन्ते, सामान्यविशेषाभ्यां कथ्यन्ते इत्यर्थः; प्रज्ञाप्यन्ते नामादिभेदाभिधानेन, प्रसूप्यन्ते नामादिस्वस्पकथनेन, यथा ‘पर्यायानभिधेय’ मित्यादि, दर्शयन्ते उपमानभावतः यथा गौस्तथा गवय इत्यादि, निदर्शयन्ते हेतुदृष्टान्तोपन्यासेन, उपदर्शयन्ते उपनयनिगमनाभ्यामिति, सकलनयाभिप्रायतो वा तान् भावान् तदा तत्कालापेक्षया प्रतीत्य सादि सपर्यवसितं, एतदुक्तं भवाति-प्रज्ञापकोपयोगस्वरप्रयत्ना-सनविशेषतः प्रतिक्षणमन्यथा चान्यथा चावस्थितः सादि सपर्यवसितं, तथा चोक्तम्-“उपयोगसरप्रयत्नासामणभेदादिया य पति-सप्यं । भिन्ना पञ्चवगसा सादिसप्तजन्तं तम्हा ॥ १ ॥” अथवा प्रज्ञापनीयभावापेक्षया गतिस्थितिग्रुणकादेकप्रदेशाद्यवगाहै-कादिसमयस्थित्येकवर्णादिप्रतिपादनात् सादिसपर्यवसितं, क्षायोपशमिकभावापेक्षया पुनरनादपर्यवसितं, प्रवाहरुपेण तस्यानाघ-पर्यवसितत्वात्, अथवाऽत्र चतुर्भगिका सादि पर्यवसितं १ सादि अपर्यवसितं २ अनादिसपर्यवसितं ३ अनादिअपर्यवसितं ४, तत्र प्रथमभंगकप्रदर्शनायाह-‘भद्रासिद्धियस्स’ इत्यादि, भवसिद्धिको-भव्यस्तस्य श्रुतं सम्यक्षुतं सादि सपर्यवसितं, उपयोगाद्य-पेक्षया भावितमेव, द्वितीयभंगस्तु शून्यः, प्रसूपणामात्रतो वा अभव्यस्य, वर्चमानकालापेक्षया अनागताद्वामधिकृत्य मिध्याश्रुत-

कालचकं-
सादिसपर्य-
सितादि

॥ ८६ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [४२-४३] / गाथा ||८१...||

प्रति
सूत्रांक
[४२-४३]

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ती
॥ ८७ ॥

मिति, तृतीयभंगस्तु सम्यक्त्वासौ भव्यस्य मिथ्याश्रुं, चतुर्थं भंगं पुनरुपदर्शयन्नाह—‘अभवैत्यादि, अभवसिद्धिका-अभव्यस्तस्य श्रुं मिथ्याश्रुं अनाद्यपर्यवसितं, तस्य सदैव संसारवच्चित्वात्। इह च श्रुतस्योपक्रान्तत्वात् तृतीयचतुर्थं भंगकद्ये अनादिश्रुतभाव उक्तो-ज्ञयथा मतेष्यमेव द्रष्टव्यः, मतिश्रुतयोरन्योऽन्यानुगतत्वात्, अत्राह-सोऽनादिज्ञानभावः किं जघन्य उत विमध्यम आहोश्विदु-त्कृष्ट इति, अत्रोन्यते, जघन्यो विमध्यमो वा, न तृकृष्टः, कथं? यतस्तस्येदं प्रभाणं ‘सञ्चागासपदेसग्ग’ मित्यादि, सर्वं च तदाकाशं च सर्वाकाशं, लोकालोकाकाशमित्यर्थः; तस्य प्रदेशाः, प्रकृष्टा देशाः प्रदेशा निविभागा भागा इत्यर्थः; तेषामग्रं-परिभाणं सर्वाकाशप्रदेशाग्रं, सर्वाकाशप्रदेशैः, किं ?, अनन्तगुणितं अनन्तशो गुणितं अनन्तगुणितं, एकैकस्मिन्नाकाशप्रदेशे अनन्तागुरुलघुपर्यायभावात्, पर्यायाक्षरं-पर्यायपरिभाणाश्वरं निष्पद्यते, सर्वद्रव्यपर्यायपरिभाणमिति भावार्थः; स्तोकत्वाच्चेह धर्मस्तिकायादयो नोक्ताः, अथ-तस्तु गृहीता एव, इह च ज्ञानमक्षरं गृह्यते, तथा तज्जेयं, तथा अकारादि च, सर्वथा उप्यविरोध इति, अस्य च सर्वजीवानामपि चाक्षरस्यानन्तभागो नित्योद्घाटितः, सदाऽग्राहृत इत्यर्थः, स पुनरनन्तभागोऽप्यनेकविधिः, तत्र सर्वजघन्यश्चेतन्यमात्रं, तत्पुनर्न कदाचिदुत्कृष्टवरणस्याप्याव्रियते, जीवस्वाभाव्याह, आह-च ग्रन्थकारः ‘जहु पुण’ इत्यादि, यदि पुनः सोऽपि आव्रियेत, ततः किं ?, तेन जीवः अजीवतां प्राप्नुयात्, तेनाधृतेन जीवः-चैतन्यलक्षणाः स्वलक्षणपरित्यागादजीवतां प्राप्नुयात्, नचैतद् दृष्टमिष्ट वा, सर्वस्य सर्वथा स्वभावातिरस्काराद्, अत्रैव दृष्टान्तभाह- ‘सुदृढवी’ त्यादि, मेघसमुदये चन्द्रसूर्यप्रभाजालतिरस्कारीणं सति भवति प्रभा चन्द्रसूर्ययोः, सर्वस्य सर्वथा स्वभावातिरस्कारादिति। अत्राह- ‘सञ्चागासपदेसग्गं सञ्चागासपदेसहि अण्ठतगुणियं पञ्चव-गमकखरं निष्फङ्गती’ त्याविशेषितमेवाक्षरमुक्तम्, अविशेषामिधानाचेदं केवलमिति गम्यते, इह तु श्रुताधिकारादकारादि प्रकृतं यतस्तत्

सादिसपर्य-
वसितादि

दीप
अनुक्रम
[१३५-
१३६]

॥ ८७ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [४२-४३] / गाथा ||८१...||

प्रति
सूत्रांक
[४२-४३]
गाथा
||८१...||

नन्दी-
हारिमद्रीय
वृत्ती
॥ ८८ ॥

कथं केवलपर्यायपरिमाणतुल्यं भवेद् ?, उच्यते, नन्वत्राप्यपर्यवसितश्रुताधिकारादकाराद्येव गम्यते, अथ मतिः- ‘सव्वजीवाणंपियं पं अक्खरस्स अण्टतभागो णिच्चुग्धाडिओ’न्ति सर्वजीवग्रहणात् तच्छ्रुतं, यतः समस्तद्वादशांगविदां तत् समस्तमिति, यद्येवं केवलस्यापि न सर्वजीवानामेवानन्तभागोऽवतिष्ठते, सर्वज्ञसद्वावात्, अतो न तत् केवलाक्षरमपि, कस्यासावनन्तभागोऽस्तु ?, तथा अविशेषण सर्वजीवग्रहणे सत्यपि ग्रकरणादपिशब्दद्वा केवलिनो विहायान्येषां अनन्तभागो गम्यते, अत एव किं न श्रुतात्मकम्-क्षरमंगीकृत्य समस्तद्वादशांगविदो विहायान्येषां अनन्तभागो गम्यते, तस्मात् स्वपरपर्यायभेदाद्बुभयमप्यविरुद्धमिति, तथाऽप्यत्रापर्यवसितश्रुताधिकारादकाराद्येव न्यायानुपाति, तत् पुनरनन्तपर्यायम्, इह अ अ अ इत्यकार उदाचोऽनुदातः स्वरितः, स सानुनासिको निरनुनासिकश्च, एवं दीर्घः प्लुतः, एवं तावदष्टादशप्रभेदं अवर्णं ब्रवते, एवं यावतः केवल एवाकारो लभते सानुनासिकादीन् तथाऽन्यवर्णसहितो वा तेऽप्यस्य स्वपर्यायाः, ते चानन्ताः, कथम्?, अभिलाप्यवाहनिभित्तभेदात्, तस्य च परमाणुशुकादिभेदेनानन्तत्वात्, ध्वनेश्च तथा तथाभिधायकत्वपरिणामे सति तत्तदर्थप्रतिपादकत्वादिति, सांकेतिकशब्दार्थसम्बन्धवादिमतमप्याधश्यके नयाधिकारे विचारधिष्यामः, ततश्चेते स्वपर्यायाः, शेषास्तु सर्व एव घटादिपर्यायाः परपर्याया इति, ते गुनः स्वपर्यायेभ्योऽनन्तरुणाः, आह-स्वपर्यायाणां तावत्पर्यायता युक्ता, घटादिपर्यायास्तु विभिन्नवत्वाश्रितत्वात् कथं तस्येति व्यपदिश्यन्ते?, उच्यते, स्वपर्याय-विशेषणोपयोगात्, इह ये यस्य स्वपर्यायविशेषणतयोपयुज्यन्ते ते तस्य पर्यायतया व्यपदिश्यन्ते, यथा घटस्य रूपादयः, उपयुज्यन्ते चाकारस्वपर्यायाणां विशेषणतया घटादिपर्यायाः, तानन्तरेण स्वपर्यायव्यपदेशाभावात्, तथा वस्तुस्थित्याऽपि च घटादिपर्याया अभावरूपेणाकारस्य व्यवस्थितत्वाद् घटादिपर्यायाणां अकारपर्यायतायामविरोध इति, इयमत्र भावना-घटादिपर्यायाणामनन्तत्वा-

सादिसपर्य-
वसितादि

॥ ८८ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [४३-४४] / गाथा ||८९...||

प्रति
सूत्रांक
[४३-४४]

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ती
॥ ८९ ॥

तेभ्यश्चाकारस्य स्वभावभेदेन व्यावृत्तत्वात्, स्वभावभेदेन व्यावृत्यनभ्युपगमे च घटादिपर्याणाणामेकत्वप्रसंगाद् अतः स्वभावभेदनिबन्धनत्वादकारपर्यायता तेषामिति, तस्मात् स्वपरपर्यायापेक्षया खल्वकारस्य सर्वद्रव्यपर्यायराशितुल्यधर्मताऽविरोध इति, न चेदमुत्सर्पं, यत आगमेऽप्युक्तम्—“जे एगं जाणति से सबं जाणति, जे सबं जाणति से एगं जाणति”ति, अस्यायमर्थः-य एकं वस्तुपलभते सर्वपर्यायैः स सर्वमुपलभते, कथैकं सर्वपर्यायैरुपलभते य एव सर्वं सर्वथोपलभत इत्यतः-सर्वमजानानो नाकारं सर्वथोपलभत इति, ततश्चास्मात् स्वतात् सर्वमेव वस्तु सर्वद्रव्यपर्यायराशितुल्यधर्मकं, इह त्वक्षराधिकारादक्षरमुक्तमिति, इत्वैतदकाराद्येव प्रतिपत्तव्यं, अस्मिन्ब्रवाऽधिकारेऽक्षरस्यानन्तभागो नित्योद्घाटित इत्युपन्यस्तत्वात्, केवलस्य चाविभागसम्मूर्णत्वेन निकृष्टानन्तभागासम्भवाद् अवधेरप्यसंख्येयश्रकृतिभेदमिन्नत्वान्मनःपर्यायज्ञानस्याप्योवत् ऋजुविपुलभेदमित्यत्वात् पारिशेष्यादकारादिश्रुताक्षर[स्य] निवन्धनज्ञानस्यैवासावित्यलं प्रसंगेन, ‘सेतं’ इत्यादि निगमनद्रयमणि निगदिसिद्धम् ॥

दीप
अनुक्रम
[१३६-
१३७]

‘से किं त’ मित्यादि ॥ (४४-२०२) ॥ अथ किं तद्गमिकम् ?, इहादिमध्यावसानेषु किञ्चिद्विशेषतः पुनस्तद्वाचारणलक्षणो गमः, यथाऽऽदिविशेषे तावत् ‘इह छज्जीवणिके’ त्यादि, गमा अस्य विद्यन्ते इति ‘अत इनिठना’ विति (५-२-१२५) गमिकं, इदं च प्रायोश्च्या दृष्टिवादे, तस्यैव गमवहुलत्वात्, अगमिकं तु प्रायो गाथाद्यसमानग्रन्थत्वात् कालिकश्रुतमाचारादि, ‘से त’ मित्यादि निगमनद्रयं कण्ठं । ‘तं समासनो दुविहं पञ्चतं’ तद्गमिकागमिकं अथवा तदोषश्रुतमहुपदेशानुसारि समासतः संक्षेपण द्विविधं प्रज्ञां, तद्यथा-अङ्गप्रविष्टं अङ्गवाहं च, अत्राह-पूर्वमेव चतुर्दशभेदोदेशाधिकारं अङ्गप्रविष्टं च अगवाहं चेत्युपन्यस्तं, किमर्थं पुनस्तत् समासत इत्याद्युपन्यासेन तदेवोदिश्यत इति !, अत्रोच्यते, सर्वभेदानामेवाज्ञानङ्गप्रविष्टभेदद्रव्यान्त-

गमिकादि

॥ ८९ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** अत्र श्रुतज्ञानस्य गमिक-अगमिक भेदयोः वर्णनं आरभ्यते

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [४४] / गाथा ||८९...||

प्रति
सूत्रांक
[४४]
गाथा
||८९..||

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ती
॥ ९० ॥

भीवेनाहृतप्रणीतत्वे च आधान्यरूपापनार्थमिति, तत्र ‘पाददुग्ं २ जडो २ रु२ गातदुयगं च २ दो य बाहूओ २ । गीवा १ सिरं
च १ पुरिसो वारसअंगो सुयविसिङ्गो ॥१॥’ श्रुतपुरुषस्याङ्गाषु प्रविष्टं, अंगभावव्यवस्थितमित्यर्थः, अथवा ‘गणधरक्यमंगगर्थं
जं कत थेरेहि बाहिरं तं तु । निथं अंगपविष्टं अणिययसुय बाहिरं भणियं ॥१॥’ तत्राल्पतरवक्तव्यत्वादंगबाहमधिकृत्य प्रश्नस्त्र-
त्रमाह—‘से किं त’ मित्यादि, अथ किं तदंगवाहं ?, श्रुतपुरुषात् व्यतिरिक्तं अंगवाहं द्विविधं परोक्षं, तद्यथा-आवश्यकं च
आवश्यकव्यतिरिक्तं च, ‘से किं त’ मित्यादि, अथ किं तदावश्यकम् ?, अवश्यक्रियानुष्टानादावश्यकं, गुणानां वा अभिविधिना
वश्यमात्मानं करोतीत्यावश्यकम्, पद्विधं प्रज्ञसम्, तद्यथा-सामायिकमित्यादि, “सावज्जजोगविरती १ उक्तित्वं २ गुणवत्तो य
पद्विवत्ती ३ । खलियस्स पिंदणा ४ वणतिगिर्छ ५ गुणधारणा ६ चेव ॥ १ ॥” अधिकारगाथा, एतदनुसारेण आवश्यकपि-
ण्डार्थो वक्तव्यः, ‘से त’ मित्यादि, तदेतदावश्यकम् ॥ ‘से किं त’ मित्यादि, अथ किं तदावश्यकव्यतिरिक्तं ?, २ द्विविधं प्रज्ञसं,
तद्यथा-कालिकं चोत्कालिकं च, तत्राल्पतरवक्तव्यत्वादुत्कालिकमधिकृत्य प्रश्नस्त्रमाह—‘से किं त’ मित्यादि, अथ किं तदुत्का-
लिकम् ?, उत्कालिकमनेकविधं प्रज्ञसं, तद्यथा-दृश्यैकालिकं प्रतीतं, कल्पाकल्पप्रतिपादकं कल्पाकल्पं, तथा कल्पनं कल्पः—
स्थविरकल्पादिः तत्रप्रतिपादकं श्रुतं २, तत् पुनः द्विभेदं—चुल्लकप्पसुर्यं महाकप्पसुर्यं, एकमल्पग्रन्थमल्पार्थं च, द्वितीयं महाग्रन्थं
महार्थं च, शेषभेदाः प्रायो निगदसिद्धास्तथापि लेशतोऽप्रसिद्धतरान् व्याख्यास्यामः, जीवादीनां प्रज्ञापनं प्रज्ञापना वृहत्तरा महा-
प्रज्ञापना, प्रमादाप्रमादस्वरूपभेदफलविधिप्रतिपादकमध्ययनं प्रमादाप्रमादं, प्रमादस्वरूपं महाकर्मन्धनप्रभवाविष्यातदुखान-
लज्जालाकलापयरीतमशेषमेव संसारवासगृहं पश्यस्तन्मध्यवर्त्येषि सति तन्निर्गमनोपाये वीतरागप्रणीतधर्मचिन्तामणौ यतो विचि-

उत्कालिक
श्रुतं

॥ ९० ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** अत्र श्रुतपुरुषस्य द्वादश-अङ्गानां स्पष्टीकरणं दीयते ।

*** अथ अंगबाह्य-सूत्राणां भेदाः प्रदर्शयते तन्मध्ये कालिक-उत्कालिक सूत्राणां वर्णनं

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [४४] / गाथा ||८९...||

प्रति
सूत्रांक
[४४]
गाथा
||८९..||

नन्दी-
हरिभद्रीय
शृङ्खला
॥ ९१ ॥

त्रकमोदयसाचिव्यजनितात् परिणामविशेषादपश्यन्निव तद्यमविगणन्य विशिष्टपरलोकाक्रियाविमुख एवास्ते सत्त्वः स खलु प्रमाद-
इति, तद्देदाः मद्यादयस्तत्कारणत्वाद्, उक्तञ्च—‘मज्जं विसथ कसाया णिहा विगहा य पंचमी भणिया।’ फलविषाक्तो दाह-
णः, उक्तं च—‘अयो विषमृष्टभोक्तुं क्षमं भवेत् क्रीडितुं हुताशेन। संसारबन्धनगतैर्न तु प्रमादः क्षमः कर्तुम् ॥ १ ॥ अस्यामेव
हि जातौ नरमृपहन्यादिवं हुताशो वा। आसेवितः प्रमादो हन्याज्जन्मान्तरशतानि ॥ २ ॥ यत्र प्रथान्ति पुरुषाः स्वर्गं यच्च
प्रयान्ति विनियातम् । तत्र निमित्तमनार्यः प्रमाद इति निश्चितमिदं मे ॥ ३ ॥ संसारबन्धनगतो जातिजराव्या-
विमरणदुःखार्चः । यशोद्विजते सत्त्वः स द्वयराधः प्रमादस्य ॥ ४ ॥ आज्ञाप्यते यदवशः तुल्योदरपाणिपादवदनेन ।
कर्म च करोति बहुविधमेतदपि फलं प्रमादस्य ॥ ५ ॥ इह हि प्रमत्तमनसः सोन्मादवदनिभृतेन्द्रियाश्वपलाः । यत् कृत्यं तदकृ-
त्वा सततमकार्येष्वाभिपतन्ति ॥ ६ ॥ तेषामभियतितानामुद्ग्रान्तानां प्रमत्तहृदयानाम् । वर्द्धन्ते एव दोषाः वनतरव इवाम्बुसेकेम
॥ ७ ॥ दृष्ट्वाऽप्यालोकं नैव विश्रम्भितव्यं, तीरं नीताऽपि आम्यते वायुना नौः । लङ्घ्वा वैराग्यं अष्टयोगः प्रमादाच्चित्रं व्याध-
तो ब्रह्मदत्तो नरेशः ॥ ८ ॥ इत्यादि, एवं प्रतिपक्षद्वारेणाप्रमादस्वरूपादयो वाच्या इति, ‘नन्दी’ त्वादि सुगमं, सूर्यप्रज्ञसिः
सूर्यचरितप्रज्ञापनं यस्थां ग्रन्थपद्मतौ सा सूर्यप्रज्ञसिः, पौरुषीमण्डलं पुरुषः शंकुः शरीरं वा तस्माच्चिप्तवा पौरुषी द्वयम्, अत्र भाव-
ना-यदा सर्वस्य वस्तुनः स्वप्रमाणा छायोपजायते तदा पौरुषीति, एतच्च पौरुषीमानं उत्तरायणान्ते दक्षिणायनादौ चैकं दिनं
भवति, तत ऊर्ध्वमंगुलस्थाष्टावेकषष्टिभागा दक्षिणायने वर्द्धन्ते उत्तरायणे च इसंतीति, एवं यत्र पौरुषी मण्डले मण्डलेऽन्याऽन्या
प्रतिपाद्यते तदध्ययनं पौरुषीमण्डलं । मण्डलप्रवेशः, यत्र हि चन्द्रसूर्योर्दक्षिणोत्तरेषु मण्डलेषु मण्डलान्मण्डलप्रवेशो व्यावर्ण्यते

उत्कालिक
श्रुतं

॥ ९१ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [४४] / गाथा ||८९...||

प्रति
सूत्रांक
[४४]
गाथा
||८९..||

नन्दी-
हारिभद्रीय
शृङ्खला
॥९२॥

तदध्ययनं मण्डलश्रवेश इति । विद्याचरणविनिश्चयः विशेषति ज्ञानं तच्च दर्शनसहचरितम्, अन्यथाऽभावात्, चरणं चारित्रं एतेषां फलविनिश्चयप्रतिपादको ग्रन्थः विद्याचरणविनिश्चय इति । गणिविद्या गुणगणोऽस्यास्तीति गणी, स चाचार्यः, तस्य विद्या—ज्ञानं गणिविद्या, तत्राविशेषेऽप्ययं विशेषः—‘जोतिसणिभित्तणाणं गणिणो पञ्चावणादिकज्जेसु । उवयुज्जइ तिहिकरणादिजाणन-तथउच्चादा दोसो ॥ १ ॥’ ध्यानविभक्तिः—ध्यानानि—आर्तध्यानादीनि तेषां विभजनं यस्यां ग्रन्थपद्मतौ सा ध्यानविभक्तिः, मरणानि प्राणत्यागलक्षणानि अनुसमयादीनि वर्तन्ते, यथोक्तम्—‘अनुसमयं संतरं चेत्यादि, एतेषां विभजनं यस्यां सा मरणविभक्तिः । आत्मनो-जीवस्यालोचनाप्रायश्चित्प्रतिपद्यादिप्रकारण विशुद्धिः कर्मविगमलक्षणा प्रतिपादयते यत्र तदध्ययनं आत्मविशुद्धिः । वीतरागश्रुतं सरागव्यपोहेन वीतरागस्वरूपं प्रतिपादयते यत्राध्ययने तद्वीतरागश्रुतं, संलेखनाश्रुतं द्रव्यभावसंलेखना प्रतिपादयते यत्र तदध्ययनं संलेखनाश्रुतं, तत्र द्रव्यसंलेखनोत्सर्वतः—‘चत्तारि विचित्राइं विगतीणिज्जाहियाइं चत्तारि । संवच्छेरे य दोन्नि उ एगंतरियं च आयामं ॥ १ ॥ णातिविगिद्वा य तवो छम्मासे परिमियं च आयामं । अब्रेऽवि य छम्मासे होति विगिद्वं तवोकम्मं ॥ २ ॥’ वासं कोडीसहिं आयामं काउमाणुपुच्चीए । गिरिकंदरं तु गंतुं पादचगमणं अह करेति ॥ ३ ॥’ मावसंलेखना तु क्रोधादिकषायप्रतिपक्षाभ्यास इति । विहारकल्पः विहरणं विहारः तस्य कल्पो—व्यवस्था स्थविरकल्पादीनामुच्यते यत्र ग्रन्थेऽसौ विहारकल्पः । चरणविधिः चरणं ब्रतादि, तथा चोक्तम्—व्यवस्थाप्रत्याख्यानं, एत्थ विधी—गिलाणं किरियातीतं णाउं गीयत्था पञ्चक्षवर्वेति दिणे २ द्रव्यहासं करेन्ता सन्तः अंते य सञ्चदव्यदायणाए भत्ते वेरग्गं जणेत्ता भत्ते णित्तण्हस्स भवचरिमप-

उत्कालिक
शुरु

॥ ९२॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [४४] / गाथा ||८९...||

प्रति
सूत्रांक
[४४]
गाथा
||८९..||

नन्दी-
हारिभद्रीय
शृङ्गी
॥ ९३ ॥

चक्षुराणं करोति, एयं जत्थ अज्ञयणे सवित्थरं वर्णिणज्जाति तदज्ञयणं आउरपचक्षुराणं, महाप्रत्याख्यानं महच्च तद् प्रत्या-
ख्यानं चेति समासः, एसित्थ भावत्थो-थेरकप्प्येण जिणकप्प्येण वा विहरेत्ता अंते थेरकप्प्यिया बारसवासे संलेहं करेत्ता जिणकप्प्यिया
पुण विहारेणव संलीढा तहावि जहाजुचं संलेहं करेत्ता निवाधातं सचेडा चेव भवचरिमं पच्चक्खंति, एयं सवित्थरं जत्थज्ञयणे
वर्णिणज्जाति तमज्ञयणं महापचक्षुराणं । एयाणि अज्ञयणाणि जहा अभिधाणत्थाणि तहा वर्णियाणि, ‘सेत’ मित्यादि निग-
मनं, तदेतदुत्कालिकं, उपलक्षणं चैतदित्युक्तमुत्कालिकं । ‘से किं त’ मित्यादि, अथ किं तद् कालिकं?, कालिकमनेकाविधं प्रज्ञसं,
तद्यथा-उत्तराध्ययनानि उचराणि-प्रधानानि रूद्या चोत्तराध्ययनानि, ‘देशे’ त्यादि प्रायो निगदसिद्धं, निशीशवच्छीशीथं इदं
प्रतीतमेव, अस्मादेव ग्रन्थार्थाभ्यां महचरं महानिशीथं, जम्बूद्वीपप्रज्ञसिः, इहावलिकाप्रविष्टेतरविमानप्रविभजनं यत्राध्ययने
तद्विमानप्रविभक्तिः, तच्चेकमल्यग्रन्थार्थं तथाऽन्यन्महाग्रन्थार्थं, अतः क्षुलिलका विमानप्रविभक्तिर्भवती विमानप्रविभक्तिरि-
ति । अङ्गचूलिका अंगस्य-आचारोदचूलिका अंगचूलिका, यथाऽऽचारस्यानेकविधा इहोत्कारुक्तार्थसंगहात्मिका चूलिका वर्ग-
चूलिका, इह वर्गोऽध्ययनादिसमूहः, यथाऽन्तकृदशास्वष्ट वर्गा इत्यादि, तेषां चूलिका २, व्याख्या-भगवतीत्यस्याऽचूलिका
२, अरुणोपपातः, इहारुणो नाम देवस्तत्समयनिवद्वो ग्रन्थस्तदुपपातहेतुः अरुणोपपातः, जाहे तमज्ञयणं उवउचे समणे समणे
पारियद्वेति ताहे से अरुणो देवे ससमयनिवद्वत्तणाओ चालियासणे सभषुभन्तलोयणे पउत्तावही वियाणिय द्वड्पहडे चलचवलकुंडल-
धरे दिव्वाए जुत्तीए दिव्वाए विभूईए दिव्वाए गतीए जेणामेव से भगवं समणे तेणामेव उवागच्छति, उवागच्छता भक्तिमरोण-
यवयणे विमुक्तवरकुसुमवासे ओवयति, ओवतिचा ताहे से समणस्स पुरतो ठिच्चा अंतर्धिधए क्षयंजलिए उवउचे संवेगविसुज्जमा-

कालिकश्चुतं

॥ ९३ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४४] / गाथा ८९...
<p>प्रति सूत्रांक [४४]</p> <p>गाथा ८९... </p> <p>दीप अनुक्रम [१३७]</p>	<p>नन्दी- हारिभद्रीय बृत्तौ ॥ ९४ ॥</p> <p>णज्ञवसाणे सुणमाणे चिद्वृद्ध, समते य भण्ड-सुसज्जाइयं २, वरं वरेहिति, ततो से इहलोगणिष्यिवासे समतिणमणिष्युचलेद्धुकंचणे सिद्धिवधूणिवभरणुरायचित्ते समणे पडिभण्ड-ए मे वरेण अद्वौचि, ततो से अरुणदेवे अथिगतरजातसंवेगे पथाहिणं करेता वंदि- त्ता पमंसित्ता पडिगच्छइ, एवं चरणोववायादिसुवि भाणियच्चं, उत्थानश्रुतं अध्ययनं तं पुण सिंगणाइथकज्जेसु जस्सेगकु- लस्स वा गामस्स वा जाव रायहाणीए वा सच्चेव समणे कयसंकप्ये आसुरुते अप्यसन्नेसे विसमासणत्ये उवउत्ते समा- णे उद्धाणसुअज्ञयं परियद्वेति एककं दो तिनि वा वारे, ताहे से कुले वा गामे वा जाव रायहाणी वा ओहयमणसंकप्ये विलवंते दुयं २ पहावंते उद्देति, उच्चसतिति बुत्तं भवति, तथा समुत्थानश्रुतं अध्ययनं तं पुण समचकज्जे तस्सेव कुलस्स वा गामस्स वा जाव रायहाणीए वा सच्चेव समणे कयसंकप्ये तुडे पसण्णे पसण्णलेसे सममुहासणत्ये उवउत्ते समाणे समुद्धाणसुतज्ञयं परियद्वेति एकं दो तिनि वा वारे, ताहे से कुले वा जाव रायहाणीए वा पहद्वचित्ते पसञ्चमणे कलयलं कुणमाणे मंदाए गतीए सललिंयं आगच्छइ २ त्ता समुद्देति, आवासेतिति बुत्तं भवतीत्यर्थः; एवं कयसंकप्यस्स परियद्विन्तस्स पुञ्चुद्वितं समुद्देति । णागपरिया- वणियाओ नागपरिज्ञा, नागच्चि-नागकुमाराः; तस्समयणिवद्वमज्जयणं, से जया समणे उवउत्ते परियद्वेति तदाऽकयसंकप्यस्सवि- ते णागकुमारा तत्थत्था चेव तं समणं परियाणंति वंदंति नमंसंति बहुमाणं च करोति, सिंगणादियकज्जेसु य वरदा भवन्तीत्यर्थः; णिरयावलिया जासु आवलियपविद्वेतरे य णिरया तम्गामिणो य णरतिरिया पसंगओ वच्छिज्जंति । कण्पियाउत्ति सौधर्मादिक- ल्पगतवक्तव्यतागोचरा ग्रन्थपद्धतयः कल्पिका उच्यन्ते । एवं कल्पावतंसिकाः सोधर्मीसाणकप्येसु जाणि कण्पविमाणाणि ताणि कप्यवडिसयाणि, तेसु य देवीओ जा जेण तवेविसेसेण उववन्ना इड्डि च पत्ता एवं वच्छिज्जंति जासु ताओ कप्यवडेसियाओ बु-</p> <p>कालिकश्रुतं ॥ ९४ ॥</p>
	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p>

आगम
[४४]

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [४४] / गाथा ||८९...||

प्रति
सूत्रांक
[४४]
गाथा
||८९...||

नन्दी-
हरिभद्रीय
वृत्ती
॥ ९५ ॥

चर्चिति । तथा पुष्टियाउत्ति इह यासु ग्रन्थपद्मतिषु गृहवासमुक्लनपरित्यागेन प्राणिनः संयमभावमुष्टिताः सुखिताः पुनः संयमभावपरित्यागतो दुःखावासिमुक्लिताः पुनस्तत्परित्यागादेव पुष्टिताः प्रतिपाद्यन्ते ताः पुष्टिता उच्यन्ते । अधिकृतार्थविशेषप्रतिपादकास्तु एष्पञ्चला इति । तथा अन्धकवृष्टिणनराधिपवक्तव्यताविषया अन्धकवृष्टिणदद्वा उच्यन्ते । ‘एव—माहयाइं इच्छादि’, एवमादीनि सर्वथा किमन्त्याख्यास्यन्ते ?, चतुरशीतिश्रीर्थकसहस्राणि भगवतोऽर्हतः श्रीक्रष्णमस्पादितीर्थकरस्य, तथा संख्येयानि प्रकीर्णकसहस्राणि भृत्यमानान्—अजितादीनां पार्श्वपर्यन्तानां जिनवराणां, तीर्थकरणामित्यर्थः, एतानि च यावन्ति तानि प्रथमानुयोगतोऽवसेयानि, तथा चतुर्दश श्रकीर्णकसहस्राणि अर्हतः, कस्य ?, वर्द्धमानस्वामिनः, अथमत्र भावार्थः—भगवतो उसहस्र चउरासीति समणसाहस्रितो होत्था, पयन्नगज्ञयणाणि य सव्वाणि कालियउक्तालियाणं चउरासीति-सहस्राणि, कथं ?, यतो ताणि चउरासीतिसमणसहस्राणि अरहंतमग्नोवदिष्टे जं सुयमणुसरित्ता किंचि णिज्जूहते ताणि सव्वाणि परिअग्नाणि, अहवा सुयमणुसारतो अप्यणो वयणकोसलत्तेण जं धम्मदेसणादिषु भासंते तं सब्बं पहचानं, जम्हा अणन्तगमपञ्जवं सुत्तं दिङ्गं, तं च वयणं यियमा अन्नयरगमाणुत्राती तम्हा तं पहचानं, एवं चउरासीतिपइन्नगसहस्राणि भवतीत्यर्थः, एण्ण विहिणा मञ्जिसमतित्थगराणं संखेज्जाइं पहचानगसहस्राणि, समणस्सवि भगवओ महावीरस्स जम्हा चोहस समणसाहस्रीओ उक्तो-सिया समणसम्प्यया तम्हा चोहसपइन्नगज्ञयणसहस्राणि भवति, एत्थ पुण एगे आयरिया एवं पञ्चविति-किल एतं चुलसीइसह-स्सादिगं उसभादिजिणवराणं समणपरिमाणं पहाणसुत्ताणिज्जूहणसमत्थं समणे पहच्च भणियं, साभज्जसमणा पुण बहुतरा तत्काले, अन्ने भणंति—उसभादीणं भवत्थाणं संचराणं एतं चुलसीदिसहस्रादिगं पमाणं, पवाहेण पुणो एगतित्थेसु बहुगा दहुच्च्वा, तत्थ जे

कालिकश्चुतं

॥ ९५ ॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [४५-४६] / गाथा ||८१...||

प्रति
सूत्रांक
[४५-४६]
गाथा
||८१...||

नन्दी-
हारिभद्रीय
शृङ्खला
॥ ९६ ॥

पमाणभूयसुत्तणिज्जूहणसमत्था अब्रकालिगावि ते एत्थ अहिगया, एए ते सुष्पसिद्धूप्पइच्चगणिज्जूहगा चेव दहुव्वा, यत आह—
‘अथवेत्यादि, अथवेति प्रकारान्तरप्रदर्शनं, यस्य क्रषभादेस्तीर्थकृतः यावन्तः शिष्या औत्पत्तिक्या वैनियिक्या कर्मज्या पारिणामिक्या च चतुर्विधया बुध्या उपपेत्ताः—समन्विताः तस्य तावन्त्येव प्रकीर्णकसहस्राणि, प्रत्येकबुद्धा अपि तावन्त एव, अत्रैके व्याचक्षते—किल प्रत्येकबुद्धूप्पिध्यान्येव तान्यवगन्तव्यानि, प्रकीर्णकप्रमाणेन प्रत्येकबुद्धप्रमाणप्रतिपादनात्, स्पादेतत्-प्रत्येकबुद्धानां शिष्यभावो विरुद्ध्यत इति, एतदप्यसत्, तेषां प्रत्येकबुद्धत्वादाचार्यमेवाधिकृत्य शिष्यभावस्य निषिद्धत्वात्, तीर्थकरप्रणितशासनप्रतिपञ्चत्वेन तु तच्छिष्यभावो न विरुद्ध्यत इति, अन्ये पुनरित्थमिदधति—सामान्येनेह प्रकीर्णकैस्तुल्यत्वात् प्रत्येकबुद्धानामत्राभिघानं, न तु नियोगतः प्रत्येकबुद्धूप्पिध्यानि प्रकीर्णकाणीत्यलं विस्तरेण। ‘सेत’ मित्यादि, तदेतत् कालिकं, तदेतदावश्यकव्यतिरिक्तं, तदेतदनंगप्रविष्टमिति ॥

‘से किं त’ मित्यादि ॥(४५-२०९)॥ अथ किं तदंगप्रविष्टम्?, अंगप्रविष्टं द्वादशविधं प्रज्ञसं, तदथा-आचारः सूत्रकृतमित्यादि ।

‘से किं त’ मित्यादि ॥(४६-२०९)॥ अथ किं तदाचारवस्तु?, यदा अथ कोऽयमाचारः?, आचरणमाचारः आचर्यत इति वा आचारः शिष्टाचरितो ज्ञानाद्यसेवनविधिरिति भावार्थः, तत्प्रतिपादको ग्रन्थोऽप्याचार एवोच्यते, अनेन चाचारेण करणमूतेन श्रमणानामाचारादि आख्यायत हृति योगः, अथवा आचारे णमिति वाक्यालंकारे श्रमणानां प्राग्निरूपितशब्दार्थानां निर्गन्थानां बाह्याभ्यन्तरग्रन्थरहितानां, आह-श्रमणा निर्गन्था एव भवन्ति, विशेषणं किमर्थ?, उच्यते, शाक्यादिव्यवच्छिदार्थं, उक्तं च—“निगंथ सक तावस गेरुय आजीव पंचहा समणा” तत्राचारो ज्ञानाद्यनेकमेदभिन्नो गोचरोभिक्षाग्रहणविधिलक्षणः विनयो ज्ञानादि

आचारांगं

॥ ९६ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** अथ अंगप्रविष्ट-सूत्राणां वर्णनं आरभ्यते, तदन्तर्गत ‘आचार’ सूत्रस्य वर्णनं ।

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [४७-४६] / गाथा ||८१...||

प्रति
सूत्रांक
[४७-४६]
गाथा
||८१...||

नन्दी-
हारिभद्रीय
शृङ्खला
॥ १७ ॥

ैनयिकं फलं कर्मक्षयादि चिक्षा ग्रहणसेवनामेदभिन्ना, विनेयशिष्ठेत्यन्ये, विनेयः- शिष्यः, भाषा सत्या १ असत्यामृषा २, च अभाषा असत्या १ सत्यामृषा २ वा चरणं-व्रतादि करणं-पिण्डविशुद्ध्यादि ‘जातामातविक्तीओ’त्ति यात्रा- संयमयात्रा मात्रा- तदर्थमेवाहारमात्रा वर्त्तनं इत्तिः, विविधरभिग्रहविशेषैरिति, आचारश्च गोचरश्चेत्यादिद्वन्द्वः क्रियते, ततश्चाचारगोचरविनय- वैनयिकशिशामापाचरणकरणयात्रामात्राइत्य आस्थायन्ते, इह च यत्र क्वचिदन्यतरोपादाने अन्यतस्तार्थभिद्यानं तत् सर्वं ततप्राधान्यरूपापनार्थमेवावसेयं, सो य समासतो इत्यादि, स आचारः समासतः संक्षेपतः पंचविधः प्रज्ञसः, तद्यथा- ज्ञानाचारः-काले विषए बहुमाणे उवहाणे तह अनिष्टहणे । वंजण अत्थ तदुभए अट्टविहो णाणमायारो ॥ १ ॥ दर्शनाचारः- ‘यिस्संक्रिय गिक्कसिय णिवितिगिच्छा अभृठदिद्वी य । उवद्वृह घिरीकरणे बच्छल्ल पभावणे अट्ट ॥ २ ॥ अतिसेस इड्डि आयरिय वादि धम्मक्रधि खमगणेभित्ती । दिज्जा राया गणसम्मया य तित्थं पभावेति ॥ ३ ॥ चारित्राचारः-पणिहाणजोगजुत्तो पंचहिं समितिहिं तिहि य गुरीहिं । एस चरित्तायारो अट्टविहो होति नायब्दो ॥ ४ ॥ तपाचारः-चारसविहामिति तवे सद्विभतरवाहिरे जिणुवदिडु । अगिलाएँ अणाजीवी णायब्दो सो तवायारो ॥ ५ ॥ वीर्याचारः-अणिगूहियबलविरिओ परक्कमह जो जहुत्तमाउत्तो । जुंजति य जहाथामं णायब्दो वीरियायारो ॥ ६ ॥ ‘आयरे णं परित्ता वायणा’ आचारे णामिति वाक्यालंकारे परित्ता-संख्येयाः, आद्य-न्तोपलब्धेरनन्ता न भवतीत्यर्थः, काः? वाचनाः-सूत्रार्थप्रदानलक्षणाः, अवसर्पिणीकालं वा प्रतीत्य, परित्तति संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि उपक्रमादीनि, अध्ययनानामेव संख्येयत्वात् प्रज्ञापकवचनगोचरत्वात्, संख्यज्ञा वेदा, वेदा छन्दोविशेषा, संख्यज्ञा सिलोगा श्लोकाः प्रतीता अनुष्टुपछन्दसा, संख्येज्ञाओ णिजजुर्तीओ निरुक्तानां शुक्तिनिर्युक्तयुक्तिरिति वाच्ये युक्तशब्दलो-

आचारांगं

॥ १७ ॥

दीप
अनुक्रम
[१३८-
१३९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [४५-४६] / गाथा ||८१...||

प्रति
सूत्रांक
[४५-४६]

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ती
॥ ९८ ॥

आचारांगं

गाथा
||८१...||

दीप
अनुक्रम
[१३८-
१३९]

पान्नियुक्तिरिति, एताथे निष्ठेपनिष्ठुक्त्याद्याः संख्येया इति, संख्येज्जाओऽपदिवत्तीओऽद्व्यादिपदार्थाभ्युपगमाः प्रतिपत्तयै, प्रति-
वाच्यभिग्रहाविशेषा वा ‘से पा’ मित्यादि, स आचारः पामिति वाक्यालंकरे अंगार्थतया अंगार्थत्वेन, अर्थग्रहणं परलोकचितां
प्रति सूत्रादर्थस्य गरीयस्त्वर्व्यापनार्थं, सूत्रार्थोभयरूपो वाऽयमिति ख्यापनार्थं, प्रथमसंगं स्थापनामधिकृत्याद्यमंगमित्यर्थः, द्वौ
श्रुतस्कन्धौ अध्ययनसमुदायलक्षणौ, पंचविंशतिरध्ययनानि, तद्यथा- सत्थपरिक्षा १ लोगविजयो २ सीतोसणिज्ज ३ सम्मतं ४।
आवृति ५ शुञ्च ६ विमोहो ७ महापरिक्षो ८ वहाणसुय ९ ॥ १० ॥ पठमो सुथखंधा । पिंडेसण १ सेज्जि २ रिया ३ भासज्जाया
य ४ वस्थ ५ पाएसा ६ । उग्गहपडिमा ७ सत्त्व य सत्तिक्या ७ भावण १५ विमुत्ती १६ ॥ २ ॥ एवमेतानि निशीथवार्जीनि
पंचविंशतिरध्ययनानि, तथा पंचाशीत्युद्देशनकालाः, कथं १, उच्यते, अंगस्य श्रुतस्कन्धस्याध्ययनस्योद्देशकस्य च एतेवां चतुर्णा-
मप्येकं एव, एवं सत्थपरिक्षाए सत्त्व उद्देशणकाला, लोगविजयस्स छ सीतोसणिज्जस्स चउरो संमत्तस्स चउरो लोगसारस्स छ ध्रुतस्स
पंच एवं विमोहज्ज्ययणस्स अटु, महापरिक्षाए सत्त्व७ उवहाणसुत्तस्स चउरो, पिंडेसणाए एकाकारस ११ सेज्जाए तिक्षि ३ इरियाए
तिक्षि ३ भासज्जाए दोक्षि २ वत्थेसणाए दो २ पाएसणाए दो २ उग्गहपडिमाए दोक्षि २ सत्तिक्याए सत्त्व ७ भावणाए एको १
विमुत्तीए एको१, एवमेष संपिंडिया पंचासीई भवन्ति, एथ संगहगाहा-सत्त्व य छच्चउ चउरो छ पंच अटेव सत्त्व चउरो य ।
एकाकार ति तिथ दो दो दो दो सत्तेक एको य ॥ १ ॥ एवं समुद्देशनकालावि भाणियव्वा । अष्टादश पदसहस्राणि पदाग्रेण, इह
यत्रार्थोपलब्धिस्तत् पदं, चोदक आह- यदि दो सुत्कखंधा पणुवीसं अज्ज्ययणाणि अड्डारस पदसहस्राणि पदग्रेणं भवन्ति तो जं
भाणियं ‘णवंभवंभरमइओ अड्डारसपदसहस्रिसओ वेद’ति एवं विरुज्जाइ, आचार्य आह-णु एत्थवि भाणियं ‘हवह य सपंचचूले

॥ ९८ ॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४५-४६] / गाथा ८१...
प्रति सूत्रांक [४५-४६] गाथा ८१...	<p>नन्दी- हारिभद्रीय वृत्ती ॥ ९० ॥</p> <p>नहुबहुअयरो पयगोणं’ति, इह सुत्तालावयपदेहि सहितो वहु बहुयरो य वक्तव्य इत्यर्थः; अथवा दो सुयखंधा पणुवीसं अज्जश्य- णाणि एयं आयारग्गसहितस्स आयारस्स पमाणं भणियं, अड्डारसपयसहस्साणि पुण पठमसुयक्खंधस्स णवंभवेरभतियस्स पमाणं, विचित्तत्थवद्गणि य सुत्ताणि गुरुवदेसतो तेसि अत्थो जाणियव्वो, संख्यज्ञा अक्खरा संख्यान्वक्षराणि, वेदादीनां संख्येयत्वात्, अणन्ता गमा: इह गमा अर्थगमा गृह्णन्ते, अर्थपरिच्छेदा इत्यर्थः; ते चानन्ताः, एकस्मादेव सूत्रात्तद्भविशिष्टानन्तधर्मात्मक- वस्तुप्रतिपत्तेः, अन्ये तु व्याचक्षते-अभिधानाभिधेयवशतो गमा इति, ते चानन्ताः, ते पुनरनेन विधिना अवसेयास्तद्यथा- सुयं मे आउसं ! तेण भगवया आउसंतेण भगवया सुयं मे आउसंवदा, सुयं मे आउसं तहिं, सुयं मे आउसं, आउसं सुयं मे, आसुयं मया तुं सुयं मया, आ तया सुयं मया, आ तहिं सुयं मया आ, एवमादिभिर्भूष्यमानं किलानन्तगममिति, अणन्ता पञ्जवा स्वपरभेदभिन्ना, अक्षरार्थपर्याया इत्यर्थः; परित्ता तसा व्यस्यन्तीति त्रसा-द्वीद्रियादप्यस्ते च परित्ता, अणन्ता थावरा वनस्पतिका- यसहिताः परिगृह्णन्ते सास्यकद्विष्टवद्गणिकाइयस्ति शाश्वता द्रव्यार्थतया-उविच्छेदेन प्रवृत्तेः कृताः पर्यायार्थतया प्रतिसमयम- न्यथात्वावाप्ता निषद्धाः सूत्र एव निकाचिता निर्युक्तसंग्रहणहेतुदाहरणादिभिः जिणपञ्चत्ता जिनैः प्रज्ञपता भावाः पदार्थाः; आवविज्जंतीत्यादि धुवगण्डिका पूर्ववत्। साम्रतमाचारांगग्रहणफलप्रतिपादनायाह-‘से एव’ मित्यादि, स इत्याचारार्गग्राहकोऽ- भिसम्बध्यतेः, एवं आयन्ति अस्मिन् भावतः सम्यगधीते सति एवमात्मा भवति, तदुक्तक्रियापरिणामात्माव्यतिरेकात् स एव भवतीत्यर्थः; एवं क्रियासारभेव ज्ञानाभिति ख्यापनार्थं क्रियापरिणामभिधायाधुना ज्ञानमविकृत्याह- ‘एवं णाय’ति इदमधीत्य- एवं ज्ञाता भवति यथैवेहोक्तमिति, एवं विज्ञायति एवं विविधो विशिष्टो वा ज्ञाता विज्ञाता एवं विज्ञाता भवति, तन्त्रान्तरीय-</p>
दीप अनुक्रम [१३८- १३९]	<p>सूत्रकृतांग ॥ ९१ ॥</p>

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** अत्र मूल संपादने सूत्रकृतांग इति मुनितं, तत् मुद्रण स्खलना मात्र, एते पृष्ठे ‘आचार’ सूत्र परिचय एव वर्तते

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [४७] / गाथा ||८९...||

प्रति
सूत्रांक
[४७-४६]
गाथा
||८९..||

नन्दी-
हरिभद्रीय
वृत्ती
॥१००॥

ज्ञातृभ्यः प्रथानतर इत्यर्थः, एवं चरणकरणपरुषणाया आधविडजतीत्यादि, निगमनवाक्यं भावितार्थमेव ॥
‘से किं तं सूयगडे’ ॥(४७-२१२)॥ ‘सूचू सूचायां’ सूचनात् सूत्रं सूत्रेण कृतं सूत्रकृतं, तत्र लोक्यते अनेन वाऽस्मिन् वा
लोकः सूच्यत इत्यादि निगदसिद्धं यावत् ‘आसीत्सत्स’ किरियावादिसत्सत्स’ अशीत्यधिकस्य क्रियावादिशतस्य, व्युहं
कृत्वा स्वसमयः स्थाप्यत इति योगः, एवं शेषपदेष्वपि क्रिया योजनीयेति, तत्र न कर्तारं विना क्रियासम्भव इति तामात्यसमवा-
यिनीं वदन्ति तच्छीलाथ ये ते क्रियावादिनः, ते पुनरात्माद्यस्तित्वप्रतिपत्तिलक्षणाः अमुनोपायेनाशीत्यधिकशतसहृदया विज्ञयाः,
जीवाजीवाश्रवबन्धपंदरनिर्जरापुण्यपायमोक्षाख्यान् नव पदार्थान् विरचय्य परिपाण्या जीवपदार्थस्याधः स्वरमेदावृपन्यसनीयौ,
तयोरधो नित्यानित्यभेदौ, तथोरत्यथः कालेश्वरात्मनियतिस्त्रभावभेदाः पञ्च न्यसनीयाः, पुनश्चैव विकल्पाः कर्तव्याः अस्ति जीवः
स्वतो नित्यः कालत इत्येको विकल्पः, विकल्पार्थधायां-विद्यते खल्यात्मा स्तेन रूपेण नित्यश्च कालवादिनः, उक्तेनैवाभिलापेन
द्वितीयो विकल्प ईश्वरकारणिनः, तृतीयो विकल्पः आत्मवादिनः ‘पुरुष एवेदं सर्वे’ मित्यादि, नियतिवादिनश्चतुर्थविकल्पः, पञ्च-
मविकल्पः स्वभाववादिनः, एवं स्वत इत्यजहता लब्धाः पञ्च विकल्पाः, एवमनित्यत्वेनापि दशैव, एते विशतिर्जीवपदार्थेन
लब्धाः, अजीवादिष्वप्यष्टस्वेवमेव प्रतिपदं विशतिर्विकल्पानाम्, अतो विशतिर्वयगुणा शतमशीत्युत्तरं क्रियावादिनामिति ।
‘चउरासीते अक्रियावादीणं’ चतुरशीतेरक्रियावादिनां, क्रिया पूर्ववत्, न हि कस्यचिद्व्यवस्थितस्य पदार्थस्य क्रिया
समास्त्व, तद्वावे चावस्थितेरभावादित्येवंवादिनोऽक्रियावादिनः, तथा चाहुरेक-‘क्षणिकाः सर्वसंस्काराः, अस्थितानां कुतः क्रिया? ।
भूतिर्येषां क्रिया सैव, कारकं सैव चोच्यत ॥ १ ॥” इत्यादि, एते चात्मादिनास्तित्वप्रतिपत्तिलक्षणा अमुनोपायेन चतुरशीतिर्द्रष्ट-

सूत्रकृतांगं

॥१००॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** अथ अंगप्रविष्ट-सूत्राणां वर्णनं आरम्भ्यते, तदन्तर्गत ‘सूत्रकृत्’ सूत्रस्य वर्णनं ।

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [४७] / गाथा ||८९...||

प्रति
सूत्रांक
[४७]
गाथा
||८९...||

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ती
॥१०१॥

व्याः, एतेषां हि पुण्यावृष्ट्यविवर्जितपदार्थसप्तकन्यासस्तथैव जीवस्याधः स्वपराविकल्पभेदद्वयोपन्यासः, असच्चादात्मनो नित्या-नित्यभेदौ न स्तः, कालादीनां तु पञ्चानां षष्ठी यद्यच्छा न्यस्यते, पश्चाद्विकल्पाभिलापः-नास्ति जीवः स्वतः कालत इत्यादयः षड्विकल्पाः, एकत्र द्वादश, एवमजीवादिष्वपि पद्मु प्रतिपदं द्वादश विकल्पाः, एवं द्वादश सप्तगुणाश्चतुरशीतिविकल्पा नास्तिकानामिति । ‘सत्त्वद्विर अन्नाणिथवादीणं’ ति सप्तष्टिरज्ञानिकवादिनां, क्रिया प्राप्यत्, तत्र कुत्सितं ज्ञानमज्ञानं तदेषामस्तीत्य-ज्ञानिकाः, नचैव लघुत्वात् प्रक्रमस्य ग्राग वहुवीहिणा भवितव्यं, ततश्चाज्ञाना इति स्यात्, नैष दोषः, ज्ञानान्तरमेवाज्ञानं, मिथ्यादर्शनसहचरित्वात्, ततश्च जातिशब्दत्वात् गौरस्वरदरण्यमित्यादिवद्ज्ञानिकत्वमिति, अथवा अज्ञानेन चरन्ति तत्प्रयोजना वा अज्ञानिकाः, असंचित्यकृतवन्धवैफल्यादिग्रतिपत्तिलक्षणाः, ते च अमुनोपायेन सप्तष्टिज्ञातव्याः; तत्र जीवादीन् नव पदार्थान् पूर्ववद् व्यवस्थाप्य पर्यन्ते चोत्पत्तिमुष्यन्यस्याधः सप्त सदादधः उपन्यसनीयाः, सच्चमसच्च सदसच्च अवाच्यत्वं सदवाच्यत्वं असदवाच्यत्वं सदसदवाच्यत्वमिति च, एकैकस्य जीवादेः सप्त सप्त विकल्पाः, त एते नव सप्तकाः त्रिषष्ठिः, उत्पत्तेस्तु चत्वार एवाद्या विकल्पाः, तथाद-सच्चमसच्च सदसच्च अवाच्यत्वं चेति, त्रिषष्ठिमध्ये प्रक्षिप्ताः सप्तष्टिर्भवन्ति, को जानाति जीवः सचित्येको विकल्पः, ज्ञातेन वा किं ?, एवं असदादयोऽपि वाच्याः, उत्पत्तिरपि किं सतोऽसतो सदसतोऽवाच्यस्येति वा को जानातीत्येतत् ?, न कश्चिदपीत्यभिश्रायः । ‘बत्तीसाए खेणहयवादीणं’ द्वाविनिश्चतो वैनयिकवादिनां, क्रिया पूर्ववद्, तत्र विनयेन चरन्ति विनयो वा प्रयोजनमेषामिति वैनयिकाः, एते चानवधृतलिङ्गाचारशास्त्रा विनयप्रतिपत्तिलक्षणा अमुनोपायेन द्वाविनश्चद्वगन्तव्याः-सुरनृपतिज्ञातियतिस्थविराधममातृषितृणां प्रत्येकं कायेन वाचा मनसा दानेन च देशकालोपपनेन विनयः कार्यः इत्येते चत्वारो भेदाः सुर-

सूत्रकृतांगं
स्थानांगं च

॥१०१॥

दीप
अनुक्रम
[१४०]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** अत्र मूल संपादने सूत्रकृतांग-स्थानांग इति मुद्रितं, तत् मुद्रण स्खलना मात्र, एते पृष्ठे ‘सूत्रकृतांग’ सूत्र परिचय एव वर्तते

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४७-४९] / गाथा ८१...
प्रति सूत्रांक [४७-४९]	<p>नन्दी- हारिभद्रीय शुच्चौ ॥१०२॥</p> <p>दिव्यस्थृतुं स्थानेषु, एकत्र मेलिता द्वाविशादिति । सर्वसहस्राणां प्रतिपादयन्नाह-‘तिष्ठ हं तेसद्वाण’ मित्यादि, ब्रगाणां त्रिषष्ठ्याधि-कानां प्रावादुकशतानां, विचित्रैकैकनयमतावलम्बिनां प्रवादिशतानामित्यर्थः, व्युहं-प्रतिश्वेषं कृत्वा स्वसमयः स्वसिद्धान्तः स्थाप्यते, शेषं किञ्चिद् व्याख्यातं किञ्चित् सुगममिति यावत् ‘सेतं सूक्ष्यगडे’ चि कप्त्यम् ।</p> <p>‘से किंत’मित्यादि ॥(४८-२३८)॥ अथ कि तत् स्थानं ?, तिष्ठन्त्यस्मिन् प्रतिपाद्यतया जीवादय इति स्थानं, तथा चाह-‘ठाणे ण’ मित्यादि, स्थानेन स्थाने वा जीवाः स्थाप्यन्ते, व्यवस्थितस्वरूपप्रतिपादनायेति हृदयं, शेषं प्रायो निगदसिद्धमेव, नवरं ‘टंक’चि छिन्नतडं टडकं ‘कूँड’ति पञ्चतोवरि, जहा वेयद्वासोवरि नव सिद्धायथणादिया कूडा, ‘सेल’चि हिमवंतादिया सेला, ‘सिहरिणो’चि सिहरेण सिहरिणोचि, ते य वेयद्वाइया ‘पब्भार’ति जं कूँडं उवरि अन्वसज्जुयं तं पब्भारं, जं वा पञ्चवस्स उवरिभागे हस्तिकुंभागिती कुहुहं षिगगयं तं पब्भारं भवह ‘कूँड’ति गंगादीणि कुडानि ‘गुह’चि तिमिसादिया गुहा ‘आगरा’ रूपसुवचरणादिउप्पत्तिद्वाणा आगरा ‘दह’ति पौडरीयादीया दहा ‘णदीउ’ति गंगासिंधुमादीओ, शेषं क्षुण्णार्थं यावन्निगमनमिति ।</p> <p>‘से किं त’मित्यादि ॥(४९-२२९)॥ अथ कोऽयं समवायः?, सम् अव अयः समवायः, सम्यगधिकपरिच्छेद इत्यर्थः, तद्व-तुकथ ग्रन्थोऽपि समवायः, तथा चाह-समवायेन समवाये वा जीवाः समाश्रीयन्ते, अविपरीतस्वरूपगुणभूषिता बुद्ध्या अंगीक्रियन्त इत्यर्थः, अथवा जीवाः समस्यन्ते- कुप्ररूपणाभ्यः सम्यक्प्ररूपणायां क्षिप्यन्ते, शेषं निगदसिद्धमानिगमनम् । नवरं ‘एगादियण-’ मित्यादि, अत्रैकाद्येकोत्तरं स्थानशतं भवति, यथा ‘एगे आया’ इत्यादि, शेषं ऊत्रसिद्धं यावन्निगमनमिति ।</p>
गाथा ८१..	समवाया- दयः ॥१०३॥
दीप अनुक्रम [१४०- १४२]	॥१०२॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** अथ अंगप्रविष्ट-सूत्राणां वर्णनं आरभ्यते, तदन्तर्गत ‘स्थान एवं समवाय’ सूत्रयोः वर्णनं ।

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [७०-७१] / गाथा ||८१...||

प्रति
सूत्रांक
[७०-७१]
गाथा
||८१..||

नन्दी-
हरिभद्रीय
शृङ्गी
॥१०३॥

‘से किं त’मित्यादि॥(५०-२२९)॥अथ केयं व्याख्या? व्याख्यानं व्याख्या, सथा चाह-व्याख्यायां जीवादयो व्याख्यायन्ते, इह सर्यं चेव अज्ञायणसञ्च, शेषं प्रकटार्थं यावत् ‘सेतं विवाहे’नि निगमनम् ॥
‘से किं त’मित्यादि ॥(५१-२३०)॥ अथ कास्ताः ज्ञाताधर्मकथाः? ज्ञातानि-उदाहरणानि तत्प्रधाना धर्मकथाः ज्ञाताधर्मकथाः; आह च-‘णायाधम्मकहासु णं’इत्यादि, ज्ञातानां-उदाहरणभूतानां नगरादीनि व्याख्यायन्ते, ‘दस धम्मकहाणं वर्गा’ इत्यादि, एत्थ भावणा-एगूणवीसं णायज्ञायणाणि, णायच्चि आहरणा, दिङ्कुंतिओ उवषिज्जति जेहिं वा ताणि णाताणि-अज्ञायणा, एए पढमसुयखंधे, अहिंसादिलक्खणस्स धम्मस्स कहाओ धम्मकहाओ धम्मियाओ वा कहाओ धम्मकथाओ, अक्खाणगच्चि बुर्जं भवति, एथाणि वितियसुयखंधे, पढमवितियसुयखंधभणियाणं णायाधम्मकहाणं नगरादिया भवति, वितियसुयखंधे दस धम्मकहाणं वर्गा, वर्गोच्चि सम्भूतो, तच्चिसेसणविसिद्धा दस अज्ञायणा चेव ते दद्वच्छा, एगूणवीसं णाया दस धम्मकहाओ, तत्थ णातेसु आदिमा दस णाता णाया चेव, ण तेसु अक्खाइयादिसंभवो, सेसा णव णाया, तेसु पुण एकेके णाते पंच २ चत्तालाइं अक्खाइयासयाइं, एत्थवि एकेकाए अक्खाइयाए पंच २ उवक्खाइयसयाइं, तत्थवि एकेकाए उवक्खाइयाए पंच पंच अक्खाइयो-चक्खाइयसयाइं, एवमेयाइं संपिंडियाइं, किं संजायं ?, एगूणवीसं कोडिसर्यं लक्खा पञ्चासमेव बोद्धव्या । एवं दिते समाणे अधिगत-सुचस्स पत्थावो ॥ १ ॥ तंजहा-दस धम्मकहाणं वर्गा, तत्थ णं एगमेगाए धम्मकहाए पंच पंच अक्खाइयसयाइं, एगमेगाए अक्खाइयाए पंच २ उवक्खाइयसयाइं, एगमेगाए उवक्खाइयाए पंच २ अक्खाइयोचक्खाइयसयाइं, एवमेयाइं संपिंडियाइं, किं संजात- ‘पणुवीसं कोडिसर्यं एत्थ य समलक्खणाइया जम्हा । णवणायगसंबद्धा अक्खाइयमाइया तेण ॥ १ ॥ ते सोहिजंति

ज्ञाताधर्म-
कथाद्याः

॥१०३॥

दीप
अनुक्रम
[१४३-
१४४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** अथ अंगप्रविष्ट-सूत्राणां वर्णनं आरभ्यते, तदन्तर्गत ‘विवाह-पन्नतित एवं ज्ञाताधर्मकथा’ सूत्रयोः वर्णनं ।

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [७२-५३] / गाथा ||८१...||

प्रति
सूत्रांक
[७२-५३]
गाथा
||८१..||

नन्दी-
हारिमद्रीण
इच्छौ
॥१०४॥

कुडं इमाओ रासीओ वेगलाणं तु । पुणरुत्तवज्ज्याणं पमाणमित्यं निणिद्विडं ॥ २ ॥ सोधिए य समाणे अदुडाओ कहाणगको-डीओ चेव हवंति, अत एवाह-एवमेव सपुष्वावरेण भणियपगारेण, गुणणसोहणे कतेचि बुत्तं भवति, अधुडाओ कहाणगकोडीओ भवंतीतिमक्षायं, प्रकटार्थमित्येवं गुरवो व्याचक्षते, अन्ये पुनरन्यथा, तदभिप्रायं पुनर्वयमतिगम्भीरत्वाभावगच्छामः, परमार्थं त्वत्र विशिष्टश्रुतविदो विदन्तीत्यलं प्रसंगेन, शेषं सुगमं यावत् ‘संखेज्जा पदसयसहस्सा पदगेणं, ते य किल पंच लक्खा छाव-चारं च सहस्सा पदगेणं, अहवा सुक्षालावयपयगेणं संखेज्जा पदसहस्सा भवंति, एवं सब्वत्थ भावेयवं, शेषं सूत्रसिद्धं यावनि-गमनमिति ॥

‘से किं त’मित्यादि॥(५२-२१)।उपासकाः-आवकाः तद्वत्क्रियाकलापनिवदा दशाः-दशाध्ययनोपलक्षिताः उपासकदशाः, तथा चाह-‘उवासगदसासु’ णं इत्यादि सूत्रसिद्धं यावत् ‘संखेज्जा पदस(यस)हस्सा पदगेणं, ते च किल एकारस लक्खा बावचं पयगेणं’ ति, शेषं कण्ठञ्चमानिगम्भनमिति ।

‘से किं त’ मित्यादि (५३-२३२) अन्तो विनाशः स च कर्मणस्तत्फलभूतस्य वा संसारस्य कृतो यैस्तेऽन्तकृतस्ते च तीर्थकरादयस्तेषां दशाः प्रथमवर्गे दशाध्ययनानीति तत्संख्यया अन्तकृदशा इति, तथा चाह—‘अंतकृदसासु ण’ मित्यादि, पाठसिद्धं यावत् ‘अंतकिरियाओ’ चि भवापेक्षया अन्त्याश ताः क्रियाश्रेति समाप्तः, ताश्च शैलेश्यवस्थाद्या गृह्णन्ते, शेषं प्रक-टार्थं यावत् ‘अदु वग्गा’ एत्यु ‘वग्गो’ चि समूहो, सो य अंतगडाणं अज्ञयणाणं वा, सव्याणि अज्ञयणाणि जुगवं उहिसंति,

अन्तकृता-
दशः

॥१०४॥

दीप
अनुक्रम
[१४५-
१४६]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** अथ अंगप्रविष्ट-सूत्राणां वर्णनं आरभ्यते, तदन्तर्गत ‘उपासकदशा एवं ’अंतकृत्दशा सूत्रयोः वर्णनं ।

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [७४-७६] / गाथा ||८१...||

प्रति
सूत्रांक
[७४-७६]
गाथा
||८१..||

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ती
॥१०५॥

अतो भण्णये—अङ्गु उद्देशणकाला, इच्छादि, संखेज्जा पदसहस्रा पदग्रेण, ते य किल एवतिया-तेवीसं लक्खा चउरो य सहस्रा पदग्रेणं ति, शेषं सूत्रसिद्धं यावच्चिगमनमन्मिति ।

‘से किं त’मित्यादि ॥ (५४-२३३) ॥ उत्तरः-प्रधानः, नास्योचरो विद्यत इति अनुत्तरः उपपतनमुपयातः जन्मेत्यर्थः, अनुत्तरः प्रधानः संसारेऽन्यस्य तथाविद्यस्याभावात् उपपतो येषामिति समाप्तः, तद्वक्तव्यताग्रतिबद्धा दशाः दशाध्ययनोपलक्षिता अनुत्तरोपपातिकदशाः, तथा चाह- ‘अपुत्तरोचवाहयदसासु ण’मित्यादि सूत्रसिद्धं यावत् तिन्नि ‘वग्ग’ति इहाध्यनसमूहो वर्गः, वर्गे २ दशाध्ययनानि, वर्गश्च सुगपदेवोद्दिश्यत इत्यत आह-‘तिन्नि उद्देशणकाला ‘इत्यादि, ‘संखेज्जा पदसहस्रा पदग्रेण, ते य किल छायालीसं लक्खा अङ्गु य सहस्राचि, शेषं प्रकटार्थं यावच्चिगमनमन्मिति ।

‘से किं त’मित्यादि ॥ (५५-२३४) ॥ प्रदूनः प्रतीतस्तन्निर्वचनं व्याकरणं, बहुत्वाद्बहुवचनं, प्रश्नव्याकरणेषु ‘अङ्गोत्तरं पसिणसयं’ इत्यादि, अंगुष्ठाहुपासिणादियाओ पसिणाओ, जे पुण विज्जामता विधीए जविज्जमाणा अपुच्छिया चेव सुभासुभं कहीति एता अपासिणातो, तहा अंगुष्ठपसिणभावं च यदुच्च साधेति जा विज्जाओ ताओ पसिणापसिणाओत्ति, अथवा अणतरं जा कहीति ता पसिणा परंपरं पसिणापसिणत्ति, तं पुण विज्जाकहीतं तस्स परंपरं भवति, अन्ने य दिव्वा विचित्ता विज्जातिसया, शेषं निगदसिद्धं यावत् ‘संखेज्जा पदसहस्रा पदग्रेण, ते य किल बाणउतिलक्खा सोलस य सहस्राचि, शेषं गतार्थं यावदन्त इति ।

‘से किं त’मित्यादि ॥ (५६-२३४) ॥ विषचनं विपाकः, शुभाशुभकर्मयरिणाम इत्यर्थः, तत्प्रतिपादकं श्रुतं विषाकश्रुतं, शेषमानिगमनं सूत्रसिद्धमेव, नवरं ‘संखेज्जा पदसहस्रा पदग्रेण, एते य एगा पदकोडी चुलसीइं च लक्खा चत्तीसं च सहस्राचि ।

विपाक-
दृष्टिवादौ

॥१०५॥

दीप
अनुक्रम
[१४७-
१४९]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** अथ अंगप्रविष्ट-सूत्राणां वर्णनं आरभ्यते, तदन्तर्गत ‘अनुत्तरोपपातिक, प्रश्नव्याकरण एवं विपाकश्रुत’ सूत्राणां वर्णनं ।

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [७] / गाथा ||८२-८४||

प्रति
सूत्रांक
[५७]
गाथा
||८२-
८४||

नन्दी-
हारिभद्रीय
बृत्ती
॥१०६॥

‘से किं त’ मित्यादि ॥ (५७-२३५) ॥ हृष्टो दर्शनानि, वदनं वादः, हृषीनां वादः दृष्टिवादः, हृषीनां वा पातो यत्रासौ दृष्टिपातः, सर्वनयदृष्टय एवेहात्यायन्त इत्यर्थः, तथा चाह—दृष्टिवादेन दृष्टिपातेन दृष्टिवादे दृष्टिपाते वा सर्वभावप्रस्तुणा आरुयायते, ‘से य समासओ पञ्चविहे पञ्चत्ते’ इत्यादि, सर्वभिदं प्रायो व्यवच्छिन्नं तथापि लेशतो यथाऽऽगतसम्प्रदायं किंचिद् व्याख्यायत इति, तत्र द्वत्रादिग्रहणयोग्यतासम्पादनसमर्थानि परिकर्माणि, गणितपरिकर्मवद्, तं च परिकर्मसुयं सिद्धसेणियादिप-रिकर्मभूलभेदतो सत्त्विहं, उत्तरभेदतो तेरासीतिविहं, माउगपदानि, एवं च सबं मूलुत्तरभेदं सुचत्त्वतो वोच्छिन्नं यथागतसम्प्रदायं वा वाच्यं, एएसि परिकर्माणं छ आदिमा य परिकर्मा ससमझया चेव, गोसालयपवत्तिया आजीवगपासंडिसिद्धतमएण्ण पुण चुयअच्युयसेणियापरिकर्मसहिया सत्त पञ्चविजञ्जन्ति, इयाणि परिकर्ममे णयचित्ता, तत्थ णेगमो दुष्टिहो—संगहितो असंगहितो य, संगहिओ संगहं पविष्टो, असंगहिओ ववहारं, तम्हा संगहो ववहारो ऋजुसुत्तो सदादिया य एको एवं चउरो णया, एतेहिं चउहिं णएहिं छ ससमझयाइं परिकर्माइं चिंतिजञ्जन्ति, अतो भणियं-छ चउकणया भवन्ति, ते चेव आजीविया तेरासिया भणिया, कम्हाइं, उच्यते, जम्हा ते सबं जगत् च्यात्मकमिच्छन्ति, यथा जीवोऽजीवो जीवाजीवा, लोए अलोए लोशालोए, संते असंते संतासंते, एवमादि, णयचित्ताए ते तिविहं णयभिच्छन्ति, तंजहा—दञ्चद्वितो पजजवद्वितो उभयद्विओ, अओ भणियं—सत्त तेरासियति, सत्त परिकर्माइं तेरासियपासंडत्था, तिविहाए णयचित्ताए चिंतयन्तीत्यर्थः, से तं परिकर्ममन्ति निगमनं । ‘से किं तं सुत्ताइं? २ उज्जुसुयादियाइं बावीसं भवन्ति’ इह सर्वद्रव्यपर्यायनयाद्यस्त्रवचनात् द्वत्राणि, अमून्यपि च द्वत्रार्थतो व्यवच्छिन्नान्येव, यथाऽऽगतसम्प्रदायतो वा वाच्यानि, एतानि चेव बावीसं सुत्ताइं विभागतो अट्टासीति हवन्ति, कथं? उच्यते, इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं

परिकर्माणि
द्वत्राणि च

॥१०६॥

दीप
अनुक्रम
[१५०-
१५४]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** अथ अंगप्रविष्ट-सूत्राणां वर्णनं आरम्भ्यते, तदन्तर्गत ‘दृष्टिवाद’ सूत्रस्य वर्णनं ।

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [७] / गाथा ८२-८४
<p>प्रति सूत्रांक [५७] गाथा ८२- ८४ </p> <p>दीप अनुक्रम [१५०- १५४]</p>	<p>नन्दी- हरिभद्रीय वृत्ति ॥१०७॥</p> <p>लिङ्गछेदणाइयाइं, ‘ससमयसुत्तपरिवाडीए’ ति सुतं, एत्थं जो णओ सुतं लिङ्ग छेदण इच्छाइ सो लिङ्गछेदणओ, जहा-“धम्मो मंगलमुक्तिङ्ग” ति सिलोगो सुत्तथओ पसेयं छेदनयाठिओ ण वितियादिसिलोए अबेक्षवइ, प्रत्येककल्पितपर्यन्त इत्थर्थः, एयाणि एवं बाबीसं ससमया सुत्तपारवाडीए सुत्ताणि ठियाणि, तथा इच्छेहयाइं बाबीसं सुत्ताइं अच्छिङ्गछेदणाइयाइं आजीवियसुत्तपरिवाडीएति सुत्तमेव इति णओ सुतं अच्छिन्नं छेदण इच्छाइ सो अलिङ्गछेदणयो, जहा धम्मो मंगलमुक्तिङ्गहुंति सिलोगो, एस चेव अत्थओ वितियादिसिलोगमवेक्षमाणोति वितियादिया य पढमंति अन्योऽन्यसापेक्षा इत्थर्थः, एयाणि बाबीसं आजीवियगोसालपवत्तिय-पासंडपरिवाडीए, अबेक्षररथणविभागाङ्गायाणिवि अत्थतो अबोन्नमवेक्षमाणाणि हवंति, इच्छेयाइं इत्यादि सुतं, तत्थ ‘निकाणियाइं’ ति नयत्रिकाभिप्रायतश्चिन्त्यत इत्थर्थः, ब्रैराशिकाशाजीविका एवोच्यन्ते, तथा ‘इच्छेताइं’ इत्यादि सूत्रं, एत्थ ‘चउणाइयाइं’ ति नयत्रतुष्काभिप्रायतश्चिन्त्यत इति भावना, ‘एवमेवे’ त्यादि सूत्रम्, एवं चउरो बाबीसाओ अद्वासीतिसुत्ताइं भवंति ‘से तं सुत्ताइं’ निगमनवाक्यम् । ‘से किं तं पुञ्चगते ?’ इत्यादि, कम्हा पुञ्चगतं, उच्यते, जम्हा तित्थगरो तित्थपवत्तणकाले गणधरणं सञ्चसुत्ताधारत्तथतो पुञ्चं पुञ्चगयसुत्तत्थं भासइ तम्हा पुञ्चात्त भाणिया, गणधरा पुण सुत्तरथणं करेन्ता आयारादिकमेण रपेति ठवंति य, अबायरियमतेणं पुण पुञ्चगयसुत्तथो पुञ्चं अरहया भासिओ गणधरेहिवि पुञ्चगयं सुयं चेव पुञ्चं रहयं, पच्छा आयारादि, चोदक आह-णणु पुञ्चावरविरुद्धं, कम्हाै, जम्हा आयारणिज्ञुत्तीए भाणियं-सञ्च्वेसि आयारो० गाहा, सत्यमुक्तं, किंतु सा ठवणा, इमं पुण अबेक्षररथणं पद्मुच्च भणियं, पूर्वं पूर्वाणि कृतानीत्यर्थः, ताणि य उप्पायपुञ्चादीणि चोहस-पुञ्चाणि पञ्चाणि, पढमे उप्पायपुञ्चं, तत्थ सञ्चदञ्चाणं पज्जवाण य उप्पायभावमंगीकाउं पञ्चवणा कथा, तस्स य पथपरिमाणं</p> <p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरजीरचिता वृत्तिः</p>

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [७] / गाथा ८२-८४
<p>प्रति सूत्रांक [५७] गाथा ८२- ८४ </p> <p>दीप अनुक्रम [१५०- १५४]</p>	<p>नन्दी- हरिभद्रीय वृत्ती ॥१०८॥</p> <p>पूर्वगतं बद्धयोगवा</p> <p>॥१०८॥</p> <p>एगा पथकोडीओ । वितियं अग्नेणियं, तस्थवि सञ्चदव्याप्त वज्जवाण य सञ्चजीवाजीवाविसेसाण य अग्ने-परिमाणं वन्निज्जतिसि अग्नेणियं, तस्स पथपरिमाणं छञ्जलिं पथसयसहस्राणि । ततियं वीरियपवायं, तस्थवि अजीवाणं जीवाणं सकम्मेतरं वीरियं पवयइति वीरियपवायं, तस्स विसत्तरिय पथसमसहस्राणि । चउत्थं अतिथणतिथपवायं, जं लोए जहा वा अतिथ जहा वा णत्थ अथवा सियवादाभिष्पाततो जहेवास्ति नास्तीत्येवं प्रवदति इति अतिथणतिथपवायं भणियं, तंपि पदपरिमाणतो साङ्के पदसयसहस्राणि । पंचमं णाणपवादंति, तम्मि भतिणाणादिपंचकस्स गाहेण परुवणा जम्हा क्या तम्हा णाणपवायं, तम्मि पदपरिमाणं एगा कोडी एगपदॄणा । छट्ठं सञ्चप्पवायं, सञ्चं—संजमो सञ्चवयणं वा, तं सञ्चं जत्थ सभेयं सपडिवक्खं च वन्निज्जइ तं सञ्चप्पवायं, तस्स पदपरिमाणं एगा पथकोडी छप्पयाहिया । सत्तमं आयप्पवायं, आयत्ति आत्मा, सोऽपेगहा जत्थ यथदरिसणोहिं वन्निज्जइ तं आयप्पवायं, तस्सवि पदपरिमाणं छव्वीसं पदकोडीओ । अद्वमं कम्मपवायं, णाणावरणादियं अद्विहिं कम्मं पथतिटिअ-षुभागपदेसादिएहिं भेदेहिं अन्नेहि य उत्तरुत्तरभेदेहिं जत्थ वन्निज्जइ तं कम्मपवायं, तस्सवि पथपरिमाणं एगा पथकोडी असीति च पथसहस्रा भवंति । णवमं पञ्चकखाणप्पवायं, तस्स य पदपरिमाणं चरासीति पथसहस्रा भवंति । दसमं विज्ञाणुप्पवायं, तस्थ अणगे विज्ञातिसया वणिया, तस्स य पदपरिमाणं एगा पथकोडी दस पथसहस्रा । एकारसमं अवंश्चन्ति, वंशं णाम णिप्फलं ण वंशमवंशं, सफलमित्यर्थः, सव्वे णाणववसंजमजोगा सफला वन्निज्जंति, अप्पसत्था य पमादादिया सव्वे असुहफला वन्निया, अतो अवंशं, तस्सवि पथपरिमाणं छव्वीसं पदकोडीओ । वारसमं पाणाडं, तस्थ आउ-ग्राणविधानं सव्वं सभेयं अन्ने य प्राणा वन्निता, तस्स पथपरिमाणं एगा पथकोडी छप्पमं च पदसयसहस्राणि । तेरसमं किरियाविसालं, तस्थ कायकिरियाहिंसादओ</p>
	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरजीरचिता वृत्तिः</p>

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [७] / गाथा ||८२-८४||

प्रति
सूत्रांक
[५७]
गाथा
||८२-
८४||

नन्दी-
हरिभद्रीय
ब्रह्मी
॥१०९॥

विसालात्ति सभेया संजमकिरियाओ वंधकिरियाविहाणा य, तस्सवि पथपरिमाणं णव कोडीओ । चोइसमं लोगविन्दुसारं, तं च इमम्मि लोए सुअलोए वा बिंदुभिव अक्खरसस सघ्वत्तमं सव्वक्खरसचिवायपरितचणओ लोगविन्दुसारं भणियं, तस्स य पथपरिमाणं अद्वत्तेरसपयकोडीओ । से तं पुष्टवगते ॥

दीप
अनुक्रम
[१५०-
१५४]

‘से किं त’मित्यादि, अनुरूपः अनुकूलो वा योगोऽनुयोगः, सूत्रस्य निजेनाभिधेयेन सार्द्धमनुरूपः संबंध इत्यर्थः, स च द्विविधः प्रज्ञस्तथाया-मूलप्रथमानुयोगश्च गण्डिकानुयोगश्च, ‘से किं त’मित्यादि, इहैकवक्तव्यताप्रथयनान्मूलं तावचीर्थकरास्तेषां प्रथमः—सम्यक्त्वासिलक्षणपूर्वभवादिगोचरोऽनुयोगो मूलप्रथमानुयोगः, तथा चाह-‘मूलपदमाणुयोगे ण’मित्यादि, सूत्रसिद्धं यावत् ‘से तं मूलपदमाणुयोगे’ । ‘से किं त’मित्यादि, इहैकवक्तव्यतार्थाधिकारानुगता गण्डिका उच्यन्ते तासामनुयोगः-अर्थ-कथनविधिः गण्डिकानुयोगः, तथा चाह-‘गण्डियाणुयोगे ण’मित्यादि, तथ्य कुलगरगण्डियातु कुलगराणं विमलवाहणादीणं पुञ्ज-मण्णामादि कहिज्जह, एवं सेसासुवि अभिधाणवसतो भावेयव्वं जाव चित्ततरगण्डियाओ, चित्राः-अनेकार्था अन्तरे-ऋषभाजिततीर्थ-करान्तरे गण्डिका-एकवक्तव्यताधिकारानुगताः, एतदुक्तं भवति-ऋषभाजिततीर्थकरान्तरे तद्वशजभूपतीनां शेषगतिगमनव्युदातेन शिवगतिगमनामुत्तरोपपात्रासिग्रतिपादिकाश्रित्रान्तरगण्डिका इति । एयासि परूपणे पुञ्जायरिएहिं इमो विही दिष्ठो—

आदिच्चजसार्हाणं उसमस्त पउञ्जए णवतीर्णं । सगरसुताण सुबुद्धी इण्मो संखं परिकहेह ॥१॥ चोइस लक्खा सिद्धा णिव-तीणिको य होति सञ्चडे । एकिकड्हाणे पुण सुरिसज्जुगा होतञ्संखेज्जा ॥२॥ पुणरवि चोइस लक्खा सिद्धा णिवतीण दोषि सञ्चडे ।

गण्डिकानु-
योगे
चित्रान्तर-
गण्डिकाः

॥१०९॥

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [७] / गाथा ||८२-८४||

प्रति
सूत्रांक
[५७]
गाथा
||८२-
८४||

नन्दी-
हारिमद्रोण
बृत्तौ
॥११०॥

दुगठाणेवि असंखा पुरिसजुगा होंति पायच्चा ॥ ३ ॥ जाव य लक्खा चोइस सिद्धा पञ्चास होंति सब्बडे । पञ्चासद्वाणेऽवि तु पुरिसजुगा होंतिऽसंखेज्जा ॥ ४ ॥ एगुत्तरा उ ठाणा सब्बडाणे य जाव पञ्चासा । एवेकेकगठाणे पुरिसजुगा होंतऽसंखेज्जा ॥ ५ ॥ विवरीयं सब्बडे चोइसलक्खा उ णिवुतो एगो । सच्चेव य परिवाडी पञ्चासं जाव सिद्धीए ॥ ६ ॥ तेण परं तु लक्खा दो दो ठाणा य समग्र चब्बंति । सिवगतिसब्बडेहिं इण्मो तेसिं विही होइ ॥ ७ ॥ दो लक्खा सिद्धीए दो लक्खा नरवतीण सब्बडे । एवं तिलक्ष्य चउपचं जाव लक्खा असंखेज्जा ॥ ८ ॥ सिवगतिसब्बडेहिं चिचंतरगंडिया ततो चउरो । एगा एगुत्तरिया एगादि- विउत्तरा वितिया ॥ ९ ॥ तसिएगादितिउत्तरा तिगमादिविउत्तरा चउत्थेयं । पढमाए सिद्धिको दोषि य सब्बडेसिद्धमिम ॥ १० ॥ तचो तिश्च नरिंदा सिद्धा चत्तारि होंति सब्बडे । इय जाव असंखेज्जा सिवगतिसब्बडेसिद्धेहिं ॥ ११ ॥ ताहे विउत्तराए सिद्धिको तिथि होंति सब्बडे । एवं पंच य सत्त्य जाव असंखेज्ज दोषिति ॥ १२ ॥ एग चउ सत्त्य दसर्गं जाव असंखेज्ज होंति दोषिति । सिवगतिसब्बडेहिं तिउत्तराए मुणेयच्चा ॥ १३ ॥ ताहे-तिथगाइ विउत्तराए अउण्चीसं तु तितग ठावेतुं । पढमे णतिथ क्खेवो सेसेसु इमो भवे खेवो ॥ १४ ॥ दुग पण णवगं तेरस सत्तरस दुवीस छच्च अड्डव । आरस चोइस तह अड्डवीस छब्बीस पणुवीसा ॥ १५ ॥ एकारस तेवीसा सीयाला सतरि सतहत्तरी तह य । इग दुग सत्तासीई एगुत्तरिमेव बावडी ॥ १६ ॥ अउण्चरि चउवीसा छायाल सथं तहेव छब्बीसा । एए रासीक्खेवा तिगअंतं जहाकमसो ॥ १७ ॥ सिवगतिसब्बडेहिं दो दो ठाण विसमु- चरा णेया । जावुण्चीसद्वाणे उण्तीसं पुण छब्बीसाए ॥ १८ ॥ विसमुचरा य पढमा एवमसंख विसमुचरा णेया । सब्बस्थवि अंतिङ्गं अश्वाए आदिमं ठाणं ॥ १९ ॥ अउण्चीसं वारे ठावेतुं णतिथ पढमए खेवो । सेसेसुऽड्डवीसाए सब्बस्थ दुगादिओ खेवो ॥ २० ॥

गंडिकासु-
योगे
चित्रान्तर-
गंडिकाः

॥११०॥

दीप
अनुक्रम
[१५०-
१५४]

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
[४४]

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [७] / गाथा ||८२-८४||

प्रति
सूत्रांक
[५७]
गाथा
||८२-
८४||

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ती
॥१११॥

सिवगतिपदमादीए चितियाए तह य होति सब्बहुे । इय एगंतरियाईं सिवगइसब्बहुठाणाईं ॥ २१ ॥ एवमसंखेज्जाओ चित्तंतर-
गंडियाओ पेयच्चा । जाव जियसकुराया अजियजिणपिया समुप्पश्चो ॥ २२ ॥ एवं गाहाहि चित्तंतरगंडियाओ समत्ताओ । इमा
य एथासि ठवणा—

एचिया लक्खा सिद्धिगया
एचिया सब्बहु गया,

एवं जाव असंखा पुरिसज्जुगा सिद्धा एसा पढमा, अओ परं

१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	५०

सब्बहुंपि गया एचिया लक्खा
सिद्धा एचिया लक्खा ॥ एवंपि असंखेज्जा पुरिसज्जुगा सिद्धा,
एसा वीया, अओ परं

सब्बहुंवि गया एचिया लक्खा,
सिद्धा एचिया लक्खा

२	३	४	५	६	७
२	३	४	५	६	७

एवं जाव असंखेज्जा आवलिया,

गंडिकानु-
. योगे
चित्रान्तर-
गंडिकाः

॥१११॥

दीप
अनुक्रम
[१५०-
१५४]

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
[४४]

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [७] / गाथा ||८२-८४||

प्रति
सूत्रांक
[५७]
गाथा
||८२-
८४||

नन्दी-
हरिभद्रीय
बृत्तो
॥११२॥

दुग्गाहएगुच्चरा दोवि गच्छंति

१	३	५	८	९
२	४	६	८	१०

आवलिया दूरगमणओ पंचासौइमे ठाणे चिह्नंति तङ्गा भेड़ा,

अतः परं चतुर्स्रो गण्डिका एकोत्तरिकादिकाः प्रदर्श्यन्ते-शिवगतौ सर्वार्थे च एवं असंखेज्जा चित्तंतरगण्डिया, एगाह एगुच्चरिया पठमा जेया, सिद्धा एत्तिया सब्बडे एत्तिया चेव, एवं जाव असंखेज्जा, एगादिविउच्चरा चित्तंतरगण्डिया, एगाह एगुच्चरिया पठमा जेया, सिद्धा एत्तिया सब्बडे एत्तिया चेव, एवं जाव असंखेज्जा चित्तंतरगण्डिया, एगादितिउच्चरा

१	५	९
३	७	११

वितिया

तङ्गा तवश्चतुर्थी ज्यादिका इच्छादिविषमोत्तरप्रक्षेपा एकोनश्चित्रिदंकाव् संस्थाप्य निदर्शते,

१	७	१३
४	१०	१६

एत्तिया सब्बडे
शिवगतौ सिद्धा

३	८	१६	२५	११	१७	२९	१४	५०	८०	५	७४	७२	४९	२९
५	१२	२०	९	१५	३१	२८	२६	७३	४	९०	६५	२८	१०६	०

गण्डिकालु-
योगे
वित्रान्तर
गण्डिकाः

॥११२॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
(४४)

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [७] / गाथा ||८२-८४||

प्रति
सूत्रांक
[५७]
गाथा
||८२-
८४||

नन्दी-
हारिभद्रीय
वृत्ती
॥११३॥

एतिया पुणोवि
सिवगतौ

सब्बडुसिद्धौ तु

पञ्चाशदादौ

कृत्वा

एकोनत्रिंशत्

स्थानानि

संस्थाप्य

इच्छादिप्रक्षेपकेन

यावत्

पश्चिमस्थाने

एकाशीतिभवति

२९	३४	४२	५१	३७	४३	५५	४०	७६	१०६	३१	१००	९८	७१	५५
----	----	----	----	----	----	----	----	----	-----	----	-----	----	----	----

३१	३८	४६	३५	४१	५७	५४	५२	९९	३०	११६	९१	५३	१२५	०
----	----	----	----	----	----	----	----	----	----	-----	----	----	-----	---

५५	६०	६८	७७	६३	७९	८१	६६	१०२	१३२	५७	१२६	१२४	१०१	८१
----	----	----	----	----	----	----	----	-----	-----	----	-----	-----	-----	----

६७	५४	७२	६१	६७	८३	८०	७८	१२५	५६	१४२	११७	७९	१५५	०
----	----	----	----	----	----	----	----	-----	----	-----	-----	----	-----	---

एवं पुनः पुनः पञ्च-

अनेन उचरा असंख्याश्चित्रान्तरग-

गंडिकानु-
योगे
चित्रान्तर-
गंडिकाः

णिका मेया, सेसं गाहाणुसारेण नेयव्वं जाव असंखेज्जा, शेषं निगदसिद्धं यावत् ‘से तं अणुओगे’

‘से किं तमित्यादि ॥ चूडा इव चूडा, इह दृष्टिवादे परिकर्मसुत्रपूर्वालुयोगोक्तालुक्तार्थसंग्रहपरा ग्रन्थपद्धतयचूडा इति, एताश्चाद्यानां चतुर्णामेव पूर्वाणां भवन्ति, न शेषाणामिति, अत एवाह—‘आदिल्लाण’ मित्यादि, संख्याताः । सम्याति पूर्वाणामित्यं यथासंख्यं “‘चउ वारसङ्घ दस या हवंति चूडा चउण्ह पुच्चाणां । एए य चूलवत्स्यू सञ्चुवर्णं किल पांडिज्ञाति ॥ १ ॥” शेषमानिगमनं स्थानसिद्धमेव, नवरं ‘संखेज्जा वत्सु’ति पणुवीसुत्तराणि दो स्थाणि, ‘संखेज्जा चूलवत्सु’ति चउतीसं ॥ साम-
तमोघतो द्वादशांगविषयमेव दर्शयन्नाह—

॥११३॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [७८] / गाथा ८५
प्रति सूत्रांक [५८] गाथा ८५	<p>नन्दी- हारिभद्रीय शृङ्खला ॥११४॥</p> <p>‘इच्छेय’ भित्यादि ॥(५८-२४७)॥ इत्येतस्मिन् द्वादशाङ्गे गणिपिटक इति पूर्ववत्, अनन्ता भावाः प्रज्ञसा इति योगः, तत्र भवन्तीति भावाः जीवाद्यः पदार्थाः, एते च जीवधुदलानन्तत्वात् अनन्ता इति, तथा अनन्ता अभावाः, सर्वभावानामेव परस्पेणासत्त्वात् त एवानन्ता अभावा इति, स्वपरसत्त्वाभावाभावोभयाधीनत्वात् वस्तुतत्त्वस्य, तथाहि-जीवो जीवात्मना भावोऽ-जीवात्मना चाभावोऽन्यथाऽजीवत्वप्रसंगाद्, अत्र चहु वक्तव्यं ततु नोच्यते गमनिकामात्रत्वात् आरम्भस्य, अन्ये तु धर्मपेक्षया अनन्ता भावाः अनन्ता अभावाः प्रतिवस्त्वस्तित्वनास्तित्वाभ्यां प्रतिबद्धा इति व्याचक्षते, तथाऽनन्ता हेतवः, तत्र हिनोतिनाम-यति जिज्ञासितवर्धमविशिष्टानर्थानिति हेतुः, ते चानन्ता वस्तुनोऽनन्तधर्मात्मकत्वात् तत्प्रतिबद्धवर्धमविशिष्टवस्तुगमकत्वाच्च हेतोः, स्वत्रस्य चानन्तगमपर्यायात्मकत्वादिति, यथोक्तहेतुप्रतिपक्षतोऽनन्ता अहेतवः, तथाऽनन्तानि कारणानि मृत्युपिण्डतन्त्रादीनि घट-पटादिनिर्वर्त्तकानि, तथाऽनन्तान्यकारणानि, सर्वकारणानामेव कार्यान्तराकारणत्वात्, न हि मृत्युपिण्डः पटं निर्वर्त्तयतीति, एवं भावाभावाः हेत्वहेतवः कारणाकरणानि, जीवाः-प्राणिनस्तथा अजीवा-दृश्यणुकादयः, तथा भव्याः-अनादिपारिणामिकभव्यभावयुक्ताः, एतेऽनन्ताः प्रज्ञसा:, तथा अभव्याः-अनादिपारिणामिकाभव्यभावयुक्ताः, एतेऽनन्ताः प्रज्ञसा: इति योगः, तथा सिद्धा अनन्ताः, तथा अनन्ता असिद्धाः प्रज्ञसा इति, इह भव्याभव्यानामानन्त्येऽभिहिते अनन्ता असिद्धा इति यत् पुनरभिधानं तद सिद्धेभ्योऽनन्तगुणतत्त्वस्यापनार्थमिति ॥ साम्रतं द्वादशांगविराधनाराधनानिष्पञ्चं त्रैकालिकं फलगुपदर्शयन्नाह-‘इच्छेय’ भित्यादि, इत्येतद् द्वादशांगं गणिपिटकं अरीतकोले अनन्ता जीवा आज्ञया विराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारं ‘अणुपरियहिंसु’ चि अनुपरात् चिमन्त आसन्, इदं हि द्वादशांगं स्त्रार्थोभयभेदेन त्रिविधं, ततश्चाज्ञया-सूत्राज्ञयाऽभिनिवेशतोऽन्यथापाठादिलक्षणया विराध्य</p> <p>चूलाः द्वादशांग- आराधना- विराधना- फल</p> <p>॥११४॥</p>
दीप अनुक्रम [१५५- १५६]	

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

*** द्वादशांगे: आराधन-विराधनायाः फलम्

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [७८] / गाथा ८५
प्रति सूत्रांक [५८] गाथा ८५	<p>नन्दी- हारिभद्रीय वृत्ती ॥११५॥</p> <p>अतीतकाले अनन्ता जीवाथतुरन्तं संसारकान्तारं-नारकतिर्थैऽनरामरविविधवृक्षजालदुस्तरं भवाटवीगहनमित्यर्थः, अनुपरावृत्ता-आसन् जमालित्वत्, अर्थाङ्गया पुनरभिनिवेशतोऽन्यथाप्ररूपणादिलक्षणया गोष्ठामाहिलवत्, उभयाङ्गया पुनः पंचविधाचारपरिज्ञानकरणोद्यतगुवादेशादिलक्षणया गुरुप्रत्यनीकद्रव्यलिङ्गधार्यनेकश्रमणवत्, अथवा द्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षयाऽगमोक्तानुष्ठानमेवाहा, एताद्विराधनयैवानुपरावृत्ता आसन्, उक्तंच-“सच्चाओवि गतीओ अविरहिया णाणदंसणधरेहि” इत्यादि, ‘इच्छेय’-मित्यादि, गतार्थमेव, नवरं ‘परित्ता जीवा’ हति संख्येया जीवाः, वर्तमानविशिष्टविराधकमनुष्यजीवानां संख्येयत्वात्, ‘अणुपरियद्वंति’ चिं अनुपरावर्त्तन्ते, ब्रह्मन्तीत्यर्थः, ‘इच्छेत’मित्यादि, इदमपि भावितार्थमेव, नवरं ‘अणुपरियद्विसंति’ चिं अनुपरावर्त्तिष्यन्ते, पर्यटिष्यन्ति इत्यर्थः॥ ‘इच्छेत’मित्यादि, इत्येतद् द्वादशांगं गणिपिटकं अतीतकालेऽनन्ता जीवा आराघ्यचतुरन्तं संसारकान्तारं ‘वीतिवृहस्ति’ ति व्यतिक्रान्तवन्तश्चतुर्गतिकसंसारोलंघनेन मुक्तिमवाप्ना इत्यर्थः, ‘इच्छेय’मित्यादि, गतार्थनवरं ‘वीहवयंनि’ चिं व्युत्क्रामन्ति, ‘इच्छेद’मित्यादि गतार्थमेव, नवरं ‘चितीवयिस्संति’ चिं व्युत्क्रमिष्यन्ते, एतत्प्रभावात् सेत्स्यन्तीत्यर्थः। यदिदमनिष्टतरभेदभिन्नं फलं प्रतिपादितमेतत् सदाऽवस्थायित्वे सति द्वादशांगस्योपजायत इत्यत आह-‘इच्छेय’मित्यादि, इत्येतद् द्वादशांगं गणिपिटकं न कदाचिन्नासीद् अनादिस्वात्, न कदाचिन्भवति सदैव भावात्, न कदाचिन्भविष्यति, अपर्यवसितत्वात्, किं तहिं-‘भुविं च’त्यादि, श्रवत्वादेव नियसं, पञ्चास्तिकार्थेषु लोकवचनवत्, नियतत्वादेव शाश्वतं, समयावलिकादिषु कालवत्, शाश्वतत्वादेव वाचनादिग्रदानेऽप्यक्षयं, गंगासिन्धुप्रवाहेऽपि पौण्डरीकहदवत्, अक्षयत्वादेवाक्षयं, मानुषोत्तरादूर्धविःसमुद्रवत्, अव्ययत्वादेव स्वप्रमाणेऽवस्थितं, जम्बूद्वीपादिवत्, अवस्थितत्वादेव नित्यमाकाशवत्, साम्रतं दृष्टि-</p> <p>द्वादशांग्य- आराघ्यना- विराधना- फल</p> <p>॥११५॥</p>
दीप अनुक्रम [१५५- १५६]	

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४४)	[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४] / गाथा ८५-८६ 	
प्रति सूत्रांक [५८] गाथा ८५- ८६	नन्दी- हरिभद्रीय वृत्ती ॥११६॥	<p>न्तमाह-‘से जहा णामे’त्यादि, तदथा नाम पंचास्तिकायाः-धर्मास्तिकायादयः न कदाचिभासन् न कदाचिन्न सन्ति न कदाचिन्भ भविष्यन्ति, अभूतन् भवन्ति भविष्यन्ति च, धुवा इत्यादि पूर्ववत्, ‘एवामेवे’ त्यादि निगमनं निगदसिद्धमेव। ‘से समासओ’ इत्यादि, तदृद्वादशांगं समासतश्चतुर्विंश्च प्रज्ञसं इत्यादि, प्रायो गतार्थमेव, नवरं द्रव्यतः श्रुतज्ञानी उपयुक्तः सन् सर्वद्रव्याणि जा- नाति पश्यतीत्यत्रामिन्ददशपूर्वधरादिः श्रुतकेवली परिगृह्यते, तदारतो भजना, सा पुनर्मलविशेषतो ज्ञातव्येति, अत्राह-ननु पश्य- तीति कथं?, सकलगोचरदर्शनायोगाद्, अत्रोच्यते, प्रज्ञापनायां श्रुतज्ञानपश्यतायाः प्रतिपादितत्वादनुत्तरविमानादीनां चाले- ख्यकरणात् सर्वथा चादृष्टस्यालेख्यकरणानुपपत्तेः, एवं क्षेत्रादिष्वपि भावनीयमिति, अन्ये तु न पश्यतीत्यभिदधति ॥ साम्रातं संगहगाथामाह—</p> <p>‘अक्षर सन्धी’ त्यादि ॥(*८६-२४९)॥ इयं गतार्थैव, नवरं सप्ताप्येते सप्रतिपक्षाः, ते चैव-अक्षरश्रुतमनक्षरश्रुतमित्यादि, इदं पुनः श्रुतज्ञानं सर्वातिशयरत्नसमुद्रकल्पं, तथा प्रायो गुर्वायततत्वात् पराधीनं, अतो विनेयानुग्रहार्थ यो यथा चास्य लाभस्तथा दर्शयन्नाह—</p> <p>‘आगम०’ गाहा॥(*८७-२८९)॥ आगमनमागमः, आङ अभिविधिमर्यादार्थत्वात् अभिविधिना मर्यादया वा गमः-परिच्छेद आगमः, स च केवलमत्यवाधिलक्षणोऽपि भवति अतस्तद्रव्यवच्छिन्न्यर्थमाह— शास्यतेऽनेति शास्त्रं-श्रुतं, आगमग्रहणं तु पर्षि- तंत्रादिकुशाखव्यवच्छेदार्थं, तेषामनागमत्वात्, सम्यक्परिच्छेदात्मकत्वाभावादित्यर्थः, शास्त्रतया च रूढत्वात्, तत्र आगम-</p>
दीप अनुक्रम [१५८- १६०]		श्रुतस्य- विषयःभेदा लाभश्च ॥११६॥

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम
[४४]

[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः)

मूलं [७८...]/ गाथा ||८७-८९||

प्रति
सूत्रांक
[५८]
गाथा
||८७-
८९||

नन्दी-
हारिभद्रीय
बृच्छा
॥११७॥

आसौ शास्त्रं च आगमशास्त्रं तस्य ग्रहणमिति समाप्तः, गृहीतिर्ग्रहणं, यद् बुद्धिगुणैर्वक्ष्यमाणलक्षणैः करणभूतेरष्टमिदैषं तद् ब्रुवेते श्रुतज्ञानस्य लाभः श्रुतज्ञानलाभस्तं तदेव ग्रहणं ब्रुवेते, के ?-पूर्वेषु विशारदा-विपक्षितो धीराः, व्रतानुपालने स्थिरा इत्यर्थः, अयं गाथार्थः ॥ बुद्धिगुणैररष्टमित्युक्तं ते चामी—

‘सुस्सूसन्ति’ गाहा ॥(*८८-२४९)॥ विनययुक्तो गुरुमुखात् श्रोतुमिच्छति शुश्रूषते, पुनः पृच्छति प्रतिपृच्छति, तत् श्रुतमशं-किंतं करोतीति भावार्थः, पुनः कथितं सच्छृणोति, श्रुत्वा गृह्णाति, गृहीत्वा चेहते-पर्यालोचयति, किमिदमित्थमुतान्यथेति, च-शब्दः समुच्चयार्थः, अपिशब्दात् पर्यालोचयन् किंचित् स्वबुध्याऽप्युत्प्रेक्षते, ततस्तदनन्तरमपोहते च, एवमेतदादिष्टमाचार्येणोति, पुनस्तमर्थमागृहीतं धारयति करोति च सम्यक् तदुक्तमनुष्ठानमिति, तदुक्तमनुष्ठानमपि च श्रुतप्राप्तिहेतुर्भवति, तदावरणक्षयोप-शमादिनिमित्तत्वाचस्येति, अथवा यद्यदाज्ञापयति गुरुस्तद् सम्यगनुग्रहं मन्यमानः श्रोतुमिच्छतीति, पूर्वसन्दिष्टश्च सर्वकार्याणि कुर्वन् पुनः पृच्छति प्रतिपृच्छति पुनरादिष्टः सन् सम्यक् शृणोति, शेषं पूर्ववत् ॥ बुद्धिगुणा व्याख्यातास्तत्र शुश्रूषतीत्युक्तं, इदानीं श्रवणविधिप्रतिपादनायाह—

‘मूर्खं’० गाहा ॥(*८९-२४९)॥ मूर्खमिति मूर्खं शृणुयात्, एतदुक्तं भवति-प्रथमश्रवणे संयतगात्रस्तुष्णीं खल्वासीत, तथा द्वितीये हुंकारं च, ईषद्वन्दनं कुर्यादित्यर्थः, तृतीये वाढकारं कुर्यात् वाढमेवमेतत्त्रान्यथेति, चतुर्थश्रवणे गृहीतपूर्वापरस्त्राभिप्राप्तो मनाक् प्रतिपृच्छां कुर्यात्, कथमेतदिति, पंचमे तु मीमांसां कुर्यात्, मातुमिन्डा मीमांसा प्रमाणजिज्ञासेतियावत्, ततः षष्ठे

बुद्धिगुणाः
श्रवण-
विधिः

॥११७॥

दीप
अनुक्रम
[१६०-
१६२]

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

<p>आगम (४४)</p>	<p>[भाग-७] “नन्दी”- चूलिकासूत्र-१ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [७९] / गाथा ९० </p>		
<p>प्रति सूत्रांक [५९] गाथा ९० </p>	<p>नन्दी- हारिभद्रीय- श्वर्ण ॥१८॥</p>	<p>श्रवणे तदुत्तरोत्तरगुणप्रसंगपारगमनं चास्य भवति, परिनिष्ठा सप्तमे श्रवणे भवति, एतदुक्तं भवति-गुरुवदनुभाषत एव सप्तमे श्रवणे इति ॥ एवं तावत् श्रवणविधिरुक्तः, इदानीं व्याख्यानविधिमभिवित्सुराह— ‘सुत्तत्त्वं’ गाथा ॥(५९-२४९)॥ द्वार्थमात्रप्रतिपादनपरः स्त्रार्थः, अनुयोग इति गम्यते, खलुशब्दस्त्वेवकारार्थः, स चावधारणे, एतदुक्तं भवति-गुरुणा स्त्रार्थमात्राभिधानलक्षण एव प्रथमोऽनुयोगः कार्यः, मा भूत् प्राथमिकविनेयानां मतिभोहः, द्वितीयोऽनुयोगः स्त्रस्पर्शकनिर्युक्तिभिशः कार्य इत्वेवंभूतो भणितो जिनैश्चतुर्दशपूर्वधैरथ, तृतीयश्च निरवशेषः, प्रसक्तानुप्रसक्तमप्युच्येत एवं-लक्षणो नित्यशेषः कार्य इति ‘एष’ उक्तलक्षणो विधानं विधिः प्रकार इत्यर्थो ‘भणितः’ प्रतिपादितो जिनादिभिः, क्व ?-स्त्रस्य निजनाभिधेयेन सार्धमनुकूलो योगोऽनुयोगः स्त्रान्वाख्यानमित्यर्थः, तस्मिन्ब्रुयोग इति गाथार्थः, आह-परिनिष्ठा सप्तम इत्युक्तं, त्रयश्चानुयोगप्रकाराः, तदेतत् कथमिति, अत्रोच्यते, विनेयमणं विज्ञाय त्रयाणामन्यतमप्रकारेण सप्तवारकरणादविरोधादित्योधविनेयविषयं तावत् श्वर्णं, न पुनः स एव नियमविधिः, उद्घट्टितज्ञविनेयानां सकृत् श्रवण एवाशेषग्रहणदर्शनादलं विस्तरेण ॥ ‘सत्’मित्यादि ॥(५९-२५९)॥ तदेतत् श्रुतज्ञानमिति निगमनं, ‘सत्’मित्यादि, तत् परोक्षमिति निगमनमेव । नन्द्यध्य-नविवरणं समाप्तम् ॥</p>	<p>अवणव्या- ख्यान विधिः उपसंहारथ</p>
<p>दीप अनुक्रम [१६२- १६३]</p>	<p>यदिहोत्स्वप्नमक्षानाद् , व्याख्यातं तद् बहुश्रूतेः । क्षन्तव्यं कस्य सम्मोहश्छलवस्थस्य न जायते ? ॥ १ ॥ नन्द्यध्ययनविवरणं कृत्वा यदवास्तुभिह मया पुष्पम् । तेन खलु जीवलोको लभतां जिनक्षासने नन्दीम् ॥ २ ॥ कृतिः सिताम्बराचार्यजिनभद्रपादसेवकस्याचार्यश्रीहरिभद्रस्येति । नमः श्रुतदेवतायै भगवत्यै । समाप्ता नन्दिट्टिका॥ग्रन्थां२३३६॥</p>	<p>॥१८॥</p>	

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४४] चूलिकासूत्र [१] नन्दीसूत्र मूलं एवं हरिभद्रसूरजीरचिता वृत्तिः

**मुनिश्री दीपरत्नसागरेण पुनः संपादितः (आगमसूत्र ४४)
“नन्दीसूत्र” (हारिभद्रिया-वृत्तिः) परिसमाप्तं**

नमो नमो निम्नलदंसणस्स
पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरुभ्यो नमः

भाग-7

पूज्य आगमोद्धारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधितः संपादितश्च
“नन्दी-चूलिकासूत्र” [हरिभद्रसूरिजी-रचिता वृत्तिः]

(किंचित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलितः
“नन्दीसूत्र” मूलं एवं वृत्तिः” नामेण परिसमाप्तः

‘सवृत्तिक-आगम-सूत्ताणि-2’ श्रेणि, भाग-7

अत्र नन्दीसूत्रं परिसमाप्तं

अथ अनुयोगद्वारं आरक्ष्यते

[४७] श्री अनुयोगद्वार सूत्रम्

नमो नमो निम्नलदसणस्स
पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरुभ्यो नमः

“अनुयोगद्वार” मूलं एवं वृत्तिः [हरिभद्रसूरिजी रचिता वृत्तिः]

[आद्य संपादकः - पूज्य आगमोदारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म. सा.]
(क्रिञ्चित् वैशिष्ठ्य समर्पितेन सह)

पुनः संकलनकर्ता → **मुनि दीपरत्नसागर** (M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि-२-श्रेणी भाग-७

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

<p>आगम (४७)</p> <p>प्रत सूत्रांक [-] गाथा ॥-॥</p> <p>दीप अनुक्रम [-]</p>	<p>“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [-] / गाथा [-]</p> <p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <div style="text-align: center;"> <p>प्रसिद्धताकारिणी—रत्नाम् श्रीकृष्णभद्रेवजी केशारीमलजी श्वेतांबरसंस्था. कालीयावाडीवास्तव्यश्रेष्ठिरायचंद्रदुर्लभदासमग्नलालनेमचन्द्राभ्यां, श्रीमद्विजयकमलसूरिकृतोपदेशात् दत्तसाहाय्येन.</p> <p>मुद्रणकृत—इन्दौर पीपलीबजार श्रीजैनवन्धुयन्त्रालयाधिपः शाः जुहारमल भिश्रीलाल पालरेचा. वीर संवत् २४५४ विक्रम संवत् १९८४ क्राइस्ट १९२८ प्रतयः ५०० पर्यं २-०-०</p> </div>
	<p>*** ‘अनुयोगद्वार’ हारिभद्रिया-वृत्ते: मूल टाईटल-पृष्ठ</p>

[अनुयोगद्वार- मूलं एवं वृत्तिः] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत सबसे पहले “अनुयोगद्वार सूत्र” के नामसे सन १९२८ (विक्रम संवत १९८४) में ऋषभदेवजी केशरिमलजी श्वेताम्बर संस्था द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब। ये वृत्ति एक छोटी वृत्ति है, इस के अलावा श्री मल्लधारी हेमचन्द्राचार्यजी की रचित एक बड़ी वृत्ति भी है, जो हमारी ‘आगम-सुत्ताणि-सटीक’ श्रेणिमें हमने मुद्रित करवाई है। इस के अलावा ‘अनुयोगद्वार चूर्णि’ भी है, जो हमारे चूर्णि-साहित्य के प्रकाशनोंमें प्रकाशित हुइ है।

⊕ हमारा ये प्रयास क्यों? ⊕ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले, ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोंमें १२५०० से ज्यादा पृष्ठोंमें प्रकाशित करवाए हैं, किन्तु लोगों की पूज्यश्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरूप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्कैन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया, जिसमें बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर शीर्षस्थानमें आगम का नाम, फिर सूत्र आदि के नंबर लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा सूत्र आदि चल रहे हैं उसका सरलतासे जान हो शके। बायीं तरफ आगम का क्रम और इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है, उसके साथ वहाँ ‘दीप अनुक्रम’ भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोंमें प्रवेश कर शके।

⊕ हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोंमें एक सामान और क्रमशः आगे बढ़ते हुए ही है, इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए हैं, मगर प्रत में गाथा और सूत्रों के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहाँ सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए हैं और जहाँ गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची या ‘गाथा’ शब्द लिखा है। हर पृष्ठ के नीचे विशिष्ठ फूटनोट दी है।

⊕ शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी म०सा० की प्रेरणासे और श्री ----- की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये ‘सवृत्तिक_आगम_सूत्राणि_२_भाग-७ का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते हैं।

..मुनि दीपरत्नसागर.....

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१] / गाथा [-]
प्रति सूत्रांक [१] गाथा ॥-॥	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
दीप अनुक्रम [१]	<p style="text-align: center;">हरिभद्राचायकृता अनुयोगद्वारटीका।</p> <p>जेनवेरेन्द्रित्रिदशेन्द्रनेरम्भपूजित वीरम् । अनुयोगद्वाराणां प्रकटार्थां विवृतिमाभिधस्ये ॥ १ ॥ प्रकान्तोऽयमह-दप्राप्तिहेतुस्त्राच्छेयोभूते वर्तते, श्रेयासि वहुविज्ञानि भवन्ति, तथा चोक्तम्-“श्रेयांसि वहुविज्ञानि भवन्ती” त्यादि विज्ञविनामध्यरात्रये मङ्गलाविकृते नन्दिः प्रतिपादितः, साम्प्रतमनुयोगद्वाराभ्ययनमारभ्यते, अथास्यानुयोग-इति, उच्यते, इदा हद्वृत्तानुयोगस्य अकान्तत्वात्तस्य चानुयोगद्वारमन्तरेण प्रतिपादयितुमशक्यत्वादनुयोगद्वाराणां</p> <p>च साकल्यतोऽपि प्रायः प्रत्यब्ययनमुपयोगित्वाऽन्यद्वयमध्याख्यानसमनन्तरमेवानुयोगद्वाराभ्ययनावकाश इत्यमधिसंबंधः, तदनेन सम्बन्धेनाऽऽयातमिदमनुयोगद्वाराभ्ययनं, अस्य चाभ्ययनान्तरत्वात् साकल्यतोऽपि प्रायः सकलाभ्ययनक्षयापकत्वान्महार्थत्वाल्लिप्तादावेद मङ्गलशब्दाभिधान-पूर्वकमुपन्यासमुपदर्शयता ग्रन्थकारेणोदमभ्यधायि ‘णाणं पंचविहं पणणात्’ मित्यादि,(१-१)अत्राह-इह मङ्गलाधिकारे नन्दिः प्रतिपादित एव, ततश्चानर्थक एव अस्य सूत्रस्योपन्यास इति, अत्रोच्यते, नैतदेवं, अस्याक्षेपस्य चाभ्ययनान्तरत्वादित्यादिनैवानवकाशत्वात्, अनियमप्रदर्शनार्थत्वाच्च तथाह-नायं नियमो नन्द्यभ्ययनानुयोगमन्तरेणास्यानुयोगो न कर्तव्य इति, यदां यदा च कियत तदा सार्थक एव इति, यथोक्तोपन्यासस्तु प्राप्तोवृत्त्यपेक्षयाऽनवद्य एव, अन्ये तु व्याचक्षते-कञ्चिदाचार्यं केशजातिष्ठृतिशूगुणालङ्कृतं कश्चिद्विनेयः सविनयमुक्तवान्-भगवन् ! अनुयोगद्वार-प्रस्तपण्या मे क्रियतामनुग्रहः, ततस्तमसावाचर्यो योग्यमधिगम्य अव्यवकिञ्चित्तयेऽनुयोगद्वारप्रस्तपण्यां प्रवर्त्तमानो विज्ञविनायकोपशान्तये</p> <p style="text-align: right;">॥ १ ॥</p>
	*** ज्ञानस्य पंच-भेदानाम उल्लेखः

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२] / गाथा [-]
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [२] गाथा ॥-॥	<p>श्रीअनु० हारि.इत्यौ ॥ २ ॥</p> <p>मावभङ्गलाधिकारे इदमुपन्वस्तवान्-‘ णाण ’ भित्यादि, अस्य सूत्रस्य समुदायार्थोऽवयवार्थं नन्द्यन्वयनटीकायां प्रपञ्चतः प्रतिपादितः एवेति नेह प्रतिपादयत् इति । ‘तत्थ’ इत्यादि, (२-३) सत्र-तस्मिन् ज्ञानपञ्चके चत्वारि ज्ञानानि—मत्यवधिमनःपर्यायकेवलास्यानि, किं ?, व्यवहारनयाभिप्रायतः साक्षादसंव्यवहार्यत्वात्स्थाप्यानीव स्थाप्यानि, यत्त्रैवमतः स्थापनीयानि, तिष्ठतु तावत् न तैरिहाविकारः, अथवा स्वरूपप्रतिपादनेऽप्यसमर्थत्वात्स्थाप्यानि, इह चानुयोगद्वारप्रक्रमेऽनुपयोगित्वात्स्थापनीयानि, अथवा स्थाप्यानि सांन्यासिकानि, न तेषामिहानुयोगः, मुनर्विवृणोति-स्थापनीयानीत्यर्थः, यत्त्रैवमतः ‘नो उदिस्सन्ती’ त्यादि, नो उदिश्यन्ते नो समुदिश्यन्ते नो अनुक्षायते, तत्र त्वयेवमन्वयनं पठितव्यमित्युरेतः १ तदेवाहीनादिलक्षणोपेतं पठित्वा गुरोनिवेदयति, तत्रैवंविधं विश्वरपरिवितं कुर्विति समनुक्षा समुदेशः २ वत्ता कुर्वता गुरोनिवेदयते प्रन्थधारणं शिष्याभ्यापनं च कुर्विति अनुक्षा ३ ‘ सुयणाणस्मै ’ त्यादि, इह श्रुतज्ञानस्य स्वपरप्रकाशकत्वाद् गुर्वादिरायस्तत्वाच्च बिन्दुहेशः समुदेशः अनुक्षा अनुयोगश्च प्रवर्त्तत इति, संक्षेपेणोदेशादीनामर्थःकथित एव । अदुना शिष्यज्ञननुप्रहार्थं विस्तरेण कथयते-तत्थ आयारादिअंगस्त उत्तरज्ञक्यणादिकालियसुयस्वंधस्य य उवचाह्यादिदक्षालियउवगज्ञयणस्य य इसो उदेच्छणविही, पुञ्च सञ्ज्ञायं पट्टवेत्ता ततो सुयगाही विणाति करेह-इच्छाकारेण शुगं भेद सुयमुदिसह, ततो गुरु इच्छामोति भणति, ततो सुयगाही वंदणयं देह, पदम् १, ततो गुरु उडित्ता चेह वंदह, ततो वंदियपञ्चशुद्धियसुयगाहीं वामपासे ठवेत्ता जोगुक्खेवुस्संगं सगवीसुस्सासकालियं करेह, ततो उस्सरित-कहुतचब्दीसत्थओ तहुहिओ चेव पंचनमोक्षारं तिणिण वारं उच्चारेत्ता ‘ नाणं पंचविहं पणत्त ’ भित्यादि उदेसनन्दीं कहुह, तीसे य अते भणादि-इमं पुण पठ्वर्णं पकुञ्च इमस्स सापुरस्स इमं अंगं सुयसंखं अज्ञयणं वा उदिस्सामि, अहंकारवज्जन्तयं भणादि-स्मास-मण्डपं हत्थेणं सुतेणं अस्थेणं तदुभएणं च उदिष्टं, नंतरं सीसो इच्छामोति भणिता वंदणं देह, वितियं, ततो उदितो भणादि-संदिसह किं</p> <p style="text-align: right;">नन्दी व्याख्याना नियमः उदेशादि विधिः</p> <p style="text-align: right;">॥ २ ॥</p>
	*** सूत्राणां उदेशादि-विधिः

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२] / गाथा [-]
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [२]	श्रीअनु० हारि.तृष्णै ॥ ३ ॥
गाथा ॥-॥	भणामो १, ततो गुरु भणादि-बंदित्ता पवेयसुन्ति, ततो सीसों इच्छामोत्ति भणित्ता बंदणगं देइ, तइयं, सीसो पुण उडितो भणादि-तुम्हेहिं मे अमुगं सुयमुरिडं इच्छामि अगुसाड्हे, ततो गुरु भणति-जोगं करेहिति, एवं संरिठो इच्छामोत्ति भणित्ता बंदणं देइ चउत्थयं, एत्थंतरे णमोकार-परो गुरु पदकिल्पणेऽ, पदकिल्पणित्ता पुरओ ठिक्का भणादि-तुम्हेहिं मे अमुगं सुयमुरिडं, ततो गुरुणा जोगं करेहिति संरिठो तजो इच्छामोत्ति भणित्ता बंदित्ता य पदकिल्पणं करेइ, एवं तइयबारंपि, एते य ततोऽवि बंदणा एकं चेव बंदणद्वाणं, तइयपदकिल्पणंते य गुरुस्स पुरओ चिट्ठइ, ताहे गुरु निसीदति, निसण्णयस्स य गुरुणो पुरओ अद्वावणयकाओ भणति-तुम्हं पवेदितं संदिसह साहूणं पवेदामि-ति, ततो गुरु भणाति-पवेदिहिति, ततो इच्छामोत्ति भणित्ता पंचमं बंदणगं देइ, बंदियपच्चुद्धितो य कयपंचमोकारो छट्ठं बंदणयं देइ, पुणो य बंदियपच्चुद्धिओ तुम्हं पवेदितं संदिसह करेभि उस्सगं, ततोणं गुरु भणति-करेहि, ताहे बंदणयं देइ सत्तमयं । एते च सुतपञ्चया सत्त बंदणगा । ततो बंदियपच्चुद्धितो भणति-अमुगस्स सुयस्य उद्दिसावणं करेभि उस्सगं अन्नत्थ ऊससिएणं जाव योसि-शमिति, ततो सचाशीसुस्सासकाळं ठिक्का लोगस्स उज्जोअगरं चितित्ता उस्सारित्ता भणादि-णमो अरहताणंति, लोयस्सउज्जोअगरं काङ्क्षित्ता सुयसमत्तउहेसकिरियत्तणओ अज्ञे केहृबंदणयं देइ, जं पुण बंदणगं देति तं न सुतपञ्चतं, गुरुवकारित्ति विणयपडिवत्तिओ अट्टमं बंदणं देति । एवं अंगादिसुं समुरेसेऽवि, णवरं पवेदिते गुरु भणति-थिरपरिजितं करेहिति, पांदी य ण काङ्क्षजति, जोगुक्खेबुस्सगो य ण कीरइ, ण य पदकिल्पयं तजो वारे करिज्जति, जेण पिसण्णो गुरु समुरेसाति, एवं अंगादिसु अणुण्णाए जहा उद्देते तहा सठवं कडजति, णवरं पवेदिते गुरु भणति-सम्म धारय अण्णेयि च पवेयसुन्ति, जोगुक्खेबुस्सगो ण य भवति, एवं आवस्सगादिसु पइणगेसु य तंदुलवेयालियादिसु एसेब विही, णवरं सज्जाओ ण पडविज्जइ, जोगुक्खेबउस्सगो ण कीरइ, एवं सामादियादिसुवि अज्ञयणेसु उद्देसएसु य उद्दिसमाणेसु चिह्नदणपद-
	उद्देशादि विधिः ॥ ३ ॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२] / गाथा [-]
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [२] गाथा ॥-॥	<p>श्री अनु- दारि-वृत्ती ॥ ४ ॥</p> <p>किलणादिविसेसकिरियाविजिया यत्त चेव वंदणगा पुष्टवकम्भेणेव भवंति, जया पुण अणुओगे अणुण्णाविड्जति तदा इमो विही-पसत्थेसु तिहीकरणमुहुच्चपक्षत्तेसु पसत्थे य खेत्ते जिषाययणादौ भूमी पमज्जिता दो णिसेज्जाओ कीरांति, एका गुरुणो वित्तिया अक्खाणंति, तओ चरिमङ्गाले पवेदिते णिसेज्जाए पिष्मणा गुरु अहजाउवगरणोड्डिओ सीसो ततो देविते गुरु सीसो य मुहयोक्त्रियं पडिलेहिन्ति, तओ सीसो बारसावत्तयं वंदणगं दाऽ भणति-संदिसह सज्जायं पट्टवेषि, तओ दुयाविसंज्ञायं पट्टवेति, ततो पट्टविते गुरु णिसेदति, ततो सीसो बारसा-वत्तेण वंदति, ततो दोविउद्देत्ता अणुओगं पट्टवेति, ततो पट्टविते गुरु णिसेदति, ततो सीसो बारसावत्तेण वंदति, वंदिते गुरुणा अक्खामंतणे करे गुरु णिसेज्जाओ उड्डेति, ततो णिसेज्जं पुरओ काऽ अधीयसुयं सीसं वामपासे ठवेत्ता चेतिए वंदति, समत्ते चेश्यवंदणे गुरु ठितो चेव यामोङ्गारं कङ्कित्ता पांदि कङ्कुति, तीसे य अन्ते भणति-इमस्स साहुस्स अणुओगं अणुजाणामि खमरसमणां हृथ्येण दववगुणपञ्जबेहिं अणुण्णाओ, ततो सीसो वंदणगं देइ, उड्डितो भणति-संदिसह किं भणामो ?, तओ गुरु भणति-वंदणं दाऽ पवेदेह, ततो वंदति, वंदित्ता उड्डितो भणति तुवभेहिं मे अणुओगो अणुण्णाओ, इच्छामो अणुसर्हि, ततो गुरु भणति-सम्म भारय अणेण्सि च पवेदय, ततो वंदति, वंदित्ता गुरुं पदकिल्प णेति, एवं ततो वारे, ताहे गुरु णिसेज्जाए णिसीयति, ताहे सीसो पुरओ ठितो भणति-तुवभं पवेदितं संदिसह साहूणं पवेदयामि, एवं शेषं प्राप्वत् । ततो उस्सगमस्वंते वंदेत्ता सीसो गुरुं सह णिसेज्जाए पदकिल्पणीकरेति, वंदेह य, एवं ततो वारा, ताहे उड्डेत्ता गुरुस्स दाहिणभुया-सणे णिसीदति, ततो से गुरु गुरुपरंपरागए मंत्रपाए कहेति ततो वारा, ततो वङ्गुदियातो ततो अक्खमुद्धीतो गंधसहियातो देति, ताहे गुरु णिसेज्जाओ उड्डेत्ता सीसो वत्थ णिसीदति, ताहे सह गुरुणा अहासणिणाहिता साहू वंदणं देति, ताहे सोऽविणिसेज्जाठिओ अणुओगी ‘णाणं पञ्चविदं पण्णत्त’ मित्यादि सुतं कङ्कुति, कङ्कित्ता जहासर्त्त वक्खाणं करेति, वक्खाणे य करे साहूणं वंदणं देति, ताहे सो उड्डेह, णिष्म-</p> <p>उद्देशादि विधिः</p> <p>॥ ४ ॥</p>
दीप अनुक्रम [२]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [३-६] / गाथा [-]	
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
प्रत सूत्रांक [३-६]	भीजतु० हारिवृत्तौ ॥ ५ ॥	ज्ञात्वा, पुणो गुरु चेव तत्थ निसीयते, तओ अणुओगविसञ्जणत्वं कावस्सग्मं करेति कालस्स य पाण्डिकमंति, ततो अणुण्णायाणुओगो सङ्घ निकृद्धं पवेदेति । एवमेते उद्देशादयः क्षतज्ञानस्यैव प्रवर्त्तन्ते, न शेषज्ञानानामिति, न चेहोदेशादिभिराधिकारः, किं तर्हि ? , अनुयोगेन, तस्यैव प्रकान्तत्वादिति, ‘जति सुतणाणस्ते’ त्यादि (३-६) (४-६) (५-७) सर्वं निगदृसिद्धं यावत् ‘इमं पुण पट्टवणं पडुच्च आवस्सगस्साणुओगो’ति, नवरमिमां पुनरधिकृतां प्रस्थापनां प्रतीत्य, प्रारम्भप्रस्थापनामेनामाश्रित्यावश्यकस्य, अवश्यं क्रियानुष्ठानादावश्यकं तस्यानुयोगः— अर्थकथनविधिस्तेनाधिकार इत्यर्थः, इहानुयोगस्य प्रक्रान्तत्वात्तद्रत्वक्त्वयतालम्बनायाः स्वल्पस्या द्वारागाथायाः प्रस्तावः, सद्यथा-‘गिक्सेवेगद्ध निहति विही पवित्री य केण वा कस्स । तद्वार भद्रे लक्षणं तदरिहपारिसा य सुन्तत्यो ॥१॥ अस्याः समुदायार्थमव-यवार्थं च ग्रन्थान्तरे स्वस्थान एव व्याख्यास्यामः, अत्र तु कस्येति द्वारे ‘इमं पुण पट्टवणं पडुच्च आवस्सगस्स अणुओगो’ति सूत्रनिपातः, ‘जह आवस्सगस्ते’त्यादि, (६-९) प्रश्नसूत्रं, निर्वचनसूत्रं चोत्तानार्थमेव । नवरमाह चोदकः-इहावश्यकं किमङ्ग्रनीत्यादिप्रश्न-सूत्रस्यानवकाश एव, नन्द्यनुयोगादेवावगतत्वात्, तथाहितत्रावश्यकमनंगप्रविष्टश्रुताधिकार एव व्याख्यातं, तथेहाप्यङ्गवाहोत्कलि-कादिकमेणैव आवश्यकस्योदेशादीनां प्रतिपादितत्वादिति, अत्रोच्यते, यत्तावदुक्तं ‘नन्द्यनुयोगादेवावगतत्वा’ दिति तदयुक्तं, यतो नायं नियमोऽवश्य-मेव नन्दिरादौ व्याख्येयः, कुतो गम्यत इति चेत्, अधिकृतसूत्रोपन्यासान्यथानुपपत्तेः, इदमेव सूत्रं ज्ञापकमनियमस्येति, मङ्गलार्थमवश्यं व्याख्येय इति चेत् न, ज्ञानपंचकाभियानग्रात्यस्यैव मङ्गलत्वात् । यत्कोऽं ‘इहाप्यनङ्गप्रविष्टोत्कालिकादिकमेणैवाऽवश्यकस्योदेशादयः प्रतिपा-दिता’ इति, एतदपि न वाधकमन्यार्थत्वात्, इहाङ्गप्रविष्टादिभेदभित्रस्य श्रुतस्योदेशादयः प्रवर्त्तन्ते इति ज्ञापनार्थमेतदित्यन्यार्थता, अन्ये तु व्याचक्षते-चारित्र्यपि भिस्कर्मक्षयोपशमजन्यत्वात् ज्ञानस्यानाभोगबहुलो भवति माष्टुषवत् सोऽपि प्रज्ञापनीय पवेति दर्शनार्थं ॥ ५ ॥
	*** ‘आवश्यक’स्य निक्षेपाः	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [७-९] / गाथा [१]	
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
प्रत सूत्रांक [७-९]	श्रीअनु० हारि॒श्चौ॑ ॥ ६ ॥	इहाधिक्वानुयोगीविषयीकृतशास्त्रानाम आवश्यकश्रुतस्तन्धाध्ययनानि, नाम च यथार्थादिभेदात् त्रिविधं, तथाथा-यथार्थमयथार्थमर्थशून्यं च, तत्र यथार्थं प्रवीपादि अयथार्थं पलाशादि अर्थशून्यं डित्यादि, तत्र यथार्थं शास्त्राभिधानभिष्यते, तत्रैव समुदायार्थपरिसमाप्तेः, यत एवमतस्तन्धिरुपयज्ञाह-‘तम्हा आवस्तुयं’ इत्यादि, (७-१०) तस्मादावश्यकं निष्क्रेप्याभीत्यादि उपन्याससूत्रं प्रकटार्थमेव, चोदकस्त्राह-‘खंधो नियमज्ञायणा अज्ञायणाविय य एवं खंधवश्चिरिता । तम्हा एव दोविं गेज्ज्ञा अण्णतरं गेष्ट चोदेति ॥ १ ॥’ आचार्यस्त्राह-‘खंधोत्ति सत्थनामं तस्स य सत्थस्स भेद अज्ञायणा । कुड भिण्णत्था एवं दोष्ट गेष्ट भणति तो सूरी ॥ १ ॥’ साम्प्रतं यदुक्तं ‘आवश्यकं निष्क्रेप्याभीत्यं’ इत्यादि, तत्र जघन्यतो निष्क्रेपमेवनियमनायाह-‘जत्थ’ गाहा (१-१०) व्याख्यायत्र जीवादौ वस्तुनि यं जानीयात्, कं ?-निष्क्रेपं, न्यासमित्यर्थः; यत्तदोन्नित्याभिसंबंधात् तत्रिक्षिपेत् निरवशोर्पं-समर्पं, यत्रापि च न जानीयात्समर्पं निष्क्रेपजालं ‘चतुर्थं’ नामादि भावान्तं निष्क्रिपेत् तत्र, यस्मादव्यापकं नामादिचतुर्ष्यमिति गाथार्थः। ‘से किं त’ भित्यादि (८-१०) प्रश्नसूत्रं, अत्र ‘से’ शब्दो मागधदेशीप्रसिद्धः अथशब्दार्थं वर्तते, अथशब्दश्च वाक्योपन्यासार्थः- तथा चोक्तं ‘अथ प्रक्रियाप्रश्नानन्तर्यमङ्गलोपन्यासार्थप्रतिवचनसमुच्चयेषु, किमिति परिप्रश्ने, तदिति सर्वनाम पूर्वप्रक्रान्तावमशी, अतोऽर्थं समुदायार्थः-अथ किं तदावश्यकं ?, एवं प्रश्ने सति आचार्यः शिष्यवचनानुरेधेनादराधानार्थं प्रत्युत्तारं निर्देशाति- अवश्यकत्तच्यमावश्यकं, अथवा गुणानामावश्यमात्मानं करोतीत्यावश्यकं यथा अंतं करोतीत्यावश्यकः, प्राकृतशैल्या वा ‘वस निवास’ इति गुणशूल्यमात्मानमावश्यति गुणैरित्यावासकं, चतुर्थिं प्रज्ञासं-चतुर्था विधा अस्येति चतुर्थिं प्रज्ञासं-प्ररूपितं अर्थतस्तीर्थंकुद्दिःसूत्रतो गणधरैः, तथाथा-नामावश्यकमित्यादि, ‘से किं त’ भित्यादि (९-११) तत्र नाम अभिधानं नाम च तदावश्यकं च नामावश्यकं, आवश्यकाभिधानमित्यर्थः, इह नाम इदं लक्षणं ‘यद्वस्तुतोऽभिधानं स्थितमन्यार्थं तदर्थनिरपेक्षम् । पर्यान्नभिधेयं च नाम याहृच्छकं च तथा ॥ १ ॥ यस्य वस्तुनः ‘ण’मिति
गाथा ॥१॥		आवश्यक- निष्क्रेपाः
दीप अनुक्रम [७-१०]		॥ ६ ॥

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">..... मूलं [१०] / गाथा [१...]</p>
	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p>
<p>प्रत सूत्रांक [१०]</p> <p>गाथा [१...]</p> <p>दीप अनुक्रम [११]</p>	<p>श्रीअनु० हारि.वृत्ति ॥ ७ ॥</p> <p>वाक्यालङ्कारे जीवस्य वा यावत्तदुभयानां चावश्यकमिति नाम क्रियते ‘सेत्’ मित्यादि, तदेतत्रामावश्यकमिति समुदायार्थः, अवयवार्थ-स्वर्थं-‘आवश्यकंति नामं कोई कासरि जहिन्छिया कुणति । दीसइ लोए एवं जह साहिग देवदत्तानी ॥ १ ॥ अज्ञीवेसुवि केसुवि आवासं भणति एगदर्वं तु । जह अज्ञितदुममिणं भणंति सप्तस्त आवासं ॥ २ ॥ जीवाण बहूण जहा भणंति अगाणि तु मूसगावासं । अज्ञीवा-विहु बहवो जह आवासं तु सउगिस्स ॥ ३ ॥ उभयं जीवाजीवा तणिकणणं भणंति आवासं । जह राईणावासं देवावासं विमाणं वा ॥ ४ ॥ समुदायणुभयाणं कप्पावासं भणंति इंद्रस्त । नगरनिवासावासं गावावासं च इच्छादि ॥ ५ ॥ ‘से किं’ तमित्यादि (१०-१२) तत्र स्थाप्यत इति स्थापना स्थापना चावश्यकं चेति स्थापनावश्यकं, आवश्यकश्चतः स्थापनालक्षणं चेद-‘यत्तु तदर्थवियुक्तं तदभिप्रायेण यश्च तत्करणिः लेप्यादि कर्मे तस्थापनेति क्रियतेऽल्पकालं च ॥ ६ ॥, यत् ‘ण’ मिति वाक्यालङ्कारे काष्ठकर्मणि वा यावदावश्यकमिति स्थापना स्थाप्यते, ‘सेत्’ मित्यादि, तदेतस्थापना ७७वश्यकमिति समुदायार्थः, अवयवार्थस्त्वर्थं-‘आवश्यकंति करेन्तो ठवणाए जं ठविज्जए साह । तं तह ठवणा-वासं भणंति साहेजिमेहि तु ॥ ७ ॥’ काष्ठे कर्म काष्ठकर्म तच्च कुट्टिमं तस्मिन्, चित्रकर्म प्रतीतं, पुस्तकर्म धीउलिकादि वस्त्रपल्लव-समुदायं वा संपुटकं मध्यवर्तिकालेख्यं वा पत्रच्छेदनिष्कणं वा, उत्तं च-‘धीउलिकादि वेलिलयकर्ममादिनिवत्तियं च जाणादि । संपुढगवासि-लिहियं पत्तच्छेजे य पोत्थंति ॥ ८ ॥’ लेप्यकर्म प्रतीतं, ग्रन्थिसमुदायजं पुष्पमालावत् जालिकावद्वा, निर्वर्त्तयन्ति च केचिदतिशयनैपुण्या-न्वितास्तत्राप्यावश्यकवन्तं साधुमित्येवं वेष्टिमादिष्वर्पि भावनीयं, तत्र वेष्टिमं वेष्टनकसंभवमानन्दपुरे पूरकवत्, कलाकुशलभावतो वा काश्चिद् वस्त्रवस्त्रनेन चावश्यककियायुक्तं यतिमवस्थापयति पुरिमं-भरिमं सगर्भरीतिकिदिष्वृतप्रतिमादिवत्, संचातिमं कंचुकवत्, अक्षः-चन्दनकः-बराटकः-कपर्दकः, एतेषु एको वा आवश्यककियावान् अनेके वा तद्वंतः सङ्घावस्थापनाया वा असङ्घावस्थापनया वा, तत्र तदाकारवती सङ्घाव-</p> <p>आवश्यक- निष्ठेपाः</p> <p>॥ ७ ॥</p>

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [११-१३] / गाथा [१...]	
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
प्रत सूत्रांक [११-१३]	श्रीअनु० हारि.इत्तौ। ॥८॥	स्थापना अतदाकारवती चासद्वाचस्थापनेति, उक्तं च-“अक्षे बराङ्गे वा कडे पोत्ये व चित्तकम्भे वा । सब्भावमसब्भावं ठवणाकायं विधाणाहि ॥ १ ॥ लेपगहत्यी हत्यिति एस सब्भाविया भवे ठवणा । होइ असब्भावे पुण हत्यिति निराकीती अक्षो ॥ २ ॥’ आव- श्यकमिति कियाक्रियावतोरभेदात्तद्वानत्र गृह्णते, स्थापना स्थाप्यते-स्थापना क्रियते ‘से त’ मित्यादि, तदेतस्थापनाऽऽवश्यकं । साम्प्रतं नामस्थापनयोरभेदाशंकापोहोयरं सूत्रं ‘नामठवणाण’ मित्यादि, (११-१५) कः प्रतिविरोषो नामस्थापनयोरिति समासार्थः । आक्षेपपरि- हारलक्षणे विस्तार्यस्त्वयं-‘भावरहितमिदवे णामटुवणाओ दोवि अविसिद्धा । इतरेतरं पदुचा किह व विसेसो भवे तासि १ ॥ १ ॥ काळकंतोऽत्थ विसेसो णामं ता धरति जाव तं दब्यं । ठवणा दुहा य इतरा यावकहा इतरा इणमो ॥ २ ॥ इह जो ठवणिदंदओ अक्षो सो पुण ठविज्जए राया । एविचर आवकहा कलसादीं जा विमाणेषु ॥ ३ ॥ अहव विसेसो भण्णति अभिभाणं वत्थुणो णिरागारं । ठवणाओ आगारो सोवि य जामस्स णिरवेक्षो ॥ ४ ॥ ‘से किं त’ मित्यादि, (१२-१४) तत्र द्रवति-गच्छति तांस्तान् पर्यायानिति द्रव्यं, द्रव्यं च तदावश्यकं च द्रव्यावश्यकं, भावावश्यककारणमित्यर्थः, द्रव्यलक्षणं चेद- ‘भूतस्य भाविनो वा भावस्य हि कारणं तु यस्तोके । तद्रव्यं तत्त्वज्ञैः सेचतनाचेतनं कथितम् ॥ १ ॥’ इह चावश्यकशब्देन प्रशस्तभावाधिष्ठिता देहाद्य एवोऽन्यते, तद्विकलास्तु त एव द्रव्यावश्यकमिति, उक्तं च-‘देहागमकिरियाओ दव्वावासं भण्णति सद्व्यष्टौ । भावाभावत्तणओ दव्वजितं भावरहितं वा ॥ १ ॥’ विवश्या विवक्षितभाव- रहित एव देहो गृह्णते, जावो न सामान्यतो, भावशून्यत्वानुपपत्तेरलं प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रस्तुमः, द्रव्यावश्यकं द्विविधं प्रकृतम्, तद्यथा-आगमतः- आगममाश्रित्य नोआगमतश्च, नोशब्दार्थः यथाऽवसरमेव वक्ष्यामः, चशब्दौ द्वयोरपि तुल्यपक्षतोद्भावनार्थौ । ‘से किं त’ मित्यादि, (१३-१४) आगमतो द्रव्यावश्यकं ‘जस्स ण’ मित्यादि, यस्य कस्यचित् ‘ण’ निति वाक्यालङ्कारे आवश्यकमित्यतत्पदं, इह चाथिकृत-
गाथा ॥१...॥		आवश्यक- निक्षेपाः
दीप अनुक्रम [१२-१४]		॥८॥
	*** आवश्यकस्य द्रव्य-निक्षेप अधिकारः	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [११-१३] / गाथा [१...]	
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
प्रत सूत्रांक [११-१३]	श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥९॥	पश्चालभ्वनं शास्त्रमभिगृहते, शिक्षिते भवति, स तत्र वाचनादिभिर्वर्तमानोऽपि द्रव्यावश्यकमिति किञ्च, अत्र च ‘सुपां लुगि’ त्वादिना छंदासि एन(इति)शिक्षितमित्यपि भवति, तत्र शिक्षितमित्यंतं जीवमधीतमित्यर्थः; शितमिति चेतसि स्थितं न प्रच्युतमित्यावत्, जितमिति परिपाठीं कुर्वते द्रुतमागच्छतीत्यर्थः; मितमिति वर्णादिभिः परिसंख्यातमिति हृदयं, परिजितमिति सर्वतो जिरं परिजिरं, परावर्तनां कुर्वते यदुत्कमेणात्यागच्छतीत्यमित्रायः; नाम्ना समं नामसमं, नाम-अभिधानं, एतदुर्क्तं भवति-स्वनामवत् शिक्षितादिगुणोपेतमिति, घोषा-उदाच्चादयः वाचनाचार्यभित्तियोगैः समं घोषसमं, अश्वरन्धनं हीनाक्षरं न हीनाक्षरमहीनाक्षरं, अधिकाक्षरं नाधिकाक्षरमनदक्षरमिति, विषय-स्तरत्वमालागतरत्वानीव न व्याविद्वानि अक्षराणि यस्मैस्तदव्याविद्वाक्षरं, उपलाकुलभूमिलाङ्गलवन्न स्वलितमस्थालितं, न मिलितमस्थितिं असद्वशाधान्यमेलकवत् न विषयस्तपदवाक्यग्रन्थमित्यर्थः; असंसर्कपदवाक्यविच्छेदं चेति, अनेकशास्त्रग्रन्थसंकरात् अस्थानछिन्नग्रन्थनाद्वा न व्यत्याऽऽस्त्रेष्ठितं कोलिकणाथसवत् भेरीकथावच्छेत्यव्यत्याप्नेष्ठितं, अस्थानछिन्नग्रन्थनेन व्यत्यामेष्ठितं यथा ‘प्राप्तराज्यस्य रामस्य राक्षसा विष्वनं गते’ त्वादि, प्रतिपूर्णं ग्रंथतोऽर्थतत्त्वं, तत्र ग्रन्थतो मात्रादिभिर्यत्प्रतिनियतप्रमाणं छंदसा वा नियतमानमिति, अर्थतः परिपूर्ण नाम न साक्षात्क्षमव्यापकं स्वतंत्रं चेति, उदात्तादिघोषाविकलं परिपूर्णघोषं, आह-घोषसमभित्युरुं ततोऽस्य को विशेषः? इति, उच्यते, घोषसममिति शिक्षितमधिकृत्योक्तं प्रतिपूर्णघोषं तूष्णायमाणं गृह्णत इत्यर्थं विशेषः, कंठश्वैष्ठौ कंठोष्ठं प्राण्यङ्गत्वादेकचङ्गावस्तेन विप्रमुक्तमिति विश्वः; नाव्यक्तवालमूकभाषितवत्, वाचनया उपगतं गुरुवाचनया हेतुभूतयाऽवाप्तं, न कर्णावाटकेन शिक्षितमित्यर्थः; पुस्तकाद्वा अधीतमिति, स इति सत्त्वः ‘ए’ मिति वाक्यालङ्घारे तत्राऽऽवश्यके वाचनया प्रतिप्रदेशेन परावर्तनेन धर्मकथया वर्तमानो द्रव्यावश्यकमिति वाक्यशेषः नानुप्रेक्षया व्यापृते द्रव्यावश्यकं, कस्माद् ? ‘अनुपयोगे द्रव्य’ मिति कृत्वा, अनुप्रेक्षया तु तदभावः; तत्र ग्रन्थतो शिष्याऽध्यापनं वाचन-
गाथा ॥१..॥		द्रव्यावश्य- काविधिकारः .
दीप अनुक्रम [१२-१४]		॥९॥

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">..... मूलं [११-१३] / गाथा [१...]</p>		
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः		
प्रत सूत्रांक [११-१३]	श्रीअनु० हारि.हृत्ती ॥१०॥	<p>अनवगतार्थादौ गुरुं प्रति प्रश्नः प्रतिप्रभः ग्रन्थस्य पुनः पुनरभ्यसनं परावर्तनं अहिसालक्षणवर्मान्वालयानं धर्मकथा प्रधार्थानुचिन्तनमनुप्रेक्षा, आह-आगमतोऽनुपयुक्ते द्रव्यावश्यकमित्येतावतैवाभिलक्षितार्थसिद्धेः शिक्षितादिश्रुतगुणोक्तिर्त्तनमनर्थकमिति, उच्यते, शिक्षितादिश्रुत-गुणकीर्तने कुर्वन्निर्वाचाप्यति यथेह सकलदोषाविप्रमुकमपि श्रुतं निगदतो द्रव्यश्रुते भवति, द्रव्यावश्यकं च, एवं सर्वं एव इयोदिकिया-विशेषः अनुपयुक्तस्य विफल इति, उपयुक्तस्य तु यथा स्वलितादिवोषदुष्टमपि निगदतो भावश्रुतेभवमीयोदयोऽपि क्रियाविशेषाः कैरमलापगमायेति, एत्थ य अवायदंसणत्थं हीणकस्तरंमि उदाहरणं-इह भरहंमि रायगिर्ह नगरं, तथ्य राया सेणिओ नाम होत्था, तस्स पुत्रो पयाणु-सारी चउच्चिवहुद्विसंपत्तो अभओ णाम होत्था, अण्णया देणं कालेण तेणं समरणं समणे भगवं महावीरे इह भरहंमि विहरमाणे तंमि नगरे समोसर्तिसु, तथ्य य बहवे सुरसिद्धविज्ञाहरा धम्मसवणनिमित्तं समागच्छिसु, तस्य धम्मकालवसाणे णियणियभवणाणि गच्छताणं एगस्स विज्ञाहरस्स णहगामिणीए विज्ञाए एकमक्षरं पम्हुट्टमासी, तथो तं वियलविज्ञं णियगभवणं गंतुमच्चाएन्तं र्मङ्कु इबोप्पदणिषयमाणं सेणिए अदक्षु, ततो सो भगवंतं पुच्छिसु, से य भगवं महावीरे अकाहिसु, तं च कहिज्जमाणं निसुणेत्ता सेणियपुत्रे अभए विज्ञाहरं एवं वयासी-जह ममं सामण्णसिद्धि करेसि ततोऽहं से अक्षरं लंभामि पयाणुसारित्तणओ, से य काहिसु, ततो से अभए तमक्षरं लभिसु, लभित्ता य विज्ञाहरस्स काहिसु, ततो से य पुण्णविज्ञो तीए विज्ञाए अभयस्स साहणोवायं कहेत्ता णियगभवणं गमिसुलि, एस दिङ्हंतो, अथमत्येवणओ-जहा तस्स विज्ञाहरस्स हीणकवरदोसेणं जहगमणमेव पम्हुट्टमासी, तंमि य अहुते विहला विज्ञा, एवं हीनाक्षे-उर्ध्मेदोऽर्थ-भेदात् क्रियाभेदादथस्तत्रो मोक्षाभावस्तदभोवे च दीक्षावैयर्थ्यमिति अहियक्षवरंमि उदाहरणं-पाडलिपुते पायरे चंद्रगुच्छुतस्स बिदुसारस्स पुत्रो असोगो नाम राया, तस्स असोगस्स पुत्रो कुणालो नाम, उडजेणी से कुमारभोत्तीए दिण्णा, मा सुङ्कुड, अण्णता तस्स रण्णो निवेदित-जहा कुमारे</p>	द्रव्यावश्य- काधिकारः ॥१०॥
गाथा ॥१..॥			
दीप अनुक्रम [१२-१४]			॥१०॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [११-१३] / गाथा [१...]	
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
प्रत सूत्रांक [११-१३]	श्रीअनु० हरि.वृत्तौ ॥ ११ ॥	साइरेगढवासो जाओति, ताहे रणा सथमेव लेहो लिहिओ जहाऽहीयतु कुमारो, कुमारस्स य मादीसञ्चक्षीए रणा पासडियाए तत्थ पन्छणो बिन्दु पाडिओ, रणा अवाइय मुहिता उजेणी पेविओ, वाइओ, वायगा पुच्छियांकि लिहियै, ते गेच्छंति कहिं, ताहे कुमारेण सथमेव वाइओ, चितियं चउणेण-अन्हं भोरियवंसियाणं अष्टिहया आणाओ, कहमहं अष्टणो पिडणो आणं भंजानि॒, तओ अणेण तत्तसलागाए अच्छीणि अंजियाणि, ताहे रणा णायं, परितपिवा उजेणी अणास्स कुमारस्स दिणा, तस्सवि कुमारस्स अणो गामो दिणो, अणया तस्स कुणालस्स अंधयस्स पुत्तो जाओ, णामं च से कयं संपती, सो अंधयो कुणालो गंधन्वे अटीवकुशले, अणया य अणागो उजेणीए गायंतो हिंडइ, तत्थ रणो निवेदियं जहा एरिसो सो गंधविव जो अंधलओति, तओ रणा भणियं-आणेहति, ताहे आणिओ जवणियं-तरिओ गायति, जाहे अतीव असोगो अकिलत्तो, ताहे भणति-कि ते देमि॑, तओ एत्थ कुणालेण गीते-‘चंदगुतपबोचो उ, बिंदुसारस्स नत्तुओ । असोगसिरिणो पुत्तो, अंधो जायति कागिणि॑ ॥ १ ॥ ताहे रणा पुच्छितं-को एस तुम॑, तेण कहितं-तुब्बं चेव पुत्तो, ततो जवणियं अवसारेदं कठे पबेन्नु असुपातो कओ, भणियं च-कि देमि॑, तेण भणियं-कागिणि॑ मे देहि, रणा भणियं-कि कागिणिए व तुमं करिहिसि जं कागिणि॑ जायसि, ततो अमज्जेहिं भणियं-सामि॑ रायपुत्ताणं रडजं कागिणि॑ भणति, रणा भणियं-कि तुमं काहिसि रजेणां॑, कुणालेण भणियं-मम पुत्तो अंथि संपतीणाम कुमारो, तओ से दिणं रडजं, सो चेव उवणओ णवरमहिवक्खरेणंति अभिलालो कायङ्वो, अहचा भावाहिए लोकियं इमं अक्खाण्यं-कामियसरस्स तीरे य बंजुलरक्खो महतिमहालओ, तत्थ किर रुख्ये अबलागिंवं जो सरे पहति सो जह तिरिक्खजोणिओ तो मणुस्सो होति, अह मणुस्सो पडति ततो देवो होति, अहो पुणो वीयं वारं पडति तो पुण सोचेव य होइ, तत्थ वाणरो सपत्तिओ ओयरति पविदिणं पाणितं पातु, अणया पाणिपियणद्वाए आगतो संतो बंजुलरक्खाओ मणुस्सत्थिमिहु- ॥ ११ ॥
गाथा ॥१...॥		
दीप अनुक्रम [१२-१४]		

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४] / गाथा [१...]
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [१४] गाथा [१...]	<p>श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥१२॥</p> <p>एवं कामसरे पष्ठिं, ततो सं देवभिहुणम् जायं पेच्छति, तओ वाणरो सपत्निओ संपहारेवि जहा स्फेष अबलगितुं सरे पटासो जा देव- भिहुणां भवामो, तओ पष्ठिताणि, उरालं माणुसजुअलं जायं, सो भणइ-पडामो जाहे देवजुयलां भवामो, इत्थी वारेती, को जाणति मा ण होमो देवा, पुरिसो भणति-जइ प होज्जामो किं माणुसत्तणपि यास्तिहिति ?, तीए भणियं-को जाणहिति, ततो सो तीए वारिज्जमाणोऽवि पष्ठिओ, पुणोवि वाणरो चेव जाओ, पच्छा सा रायपुरिसेहिं गहिया, रणो भज्जा जाया, इतरोऽवि मोयारर्णहि गहिओ खड्डुओ सिक्खा- वितो, अण्या य ते मोयारगा रणो मुरओ पेच्छं देवि, रायावि सह तीए देवीए पेच्छति, ताहे सो वाणरो देविं निज्ज्ञाएंतो अहिलसति, तथो तीए अणुकंपाए वाणरो भणिओ-‘जो जहा बहुए कालो, तं तहा सेव वाणरा ! । मा बंजुलपरिभमट्टो, वाणरा ! पढणं सर ॥ १ ॥</p> <p>उपनयः पूर्वत्, भावहीणाधितभावेवि उदाहरणं, जहा काइ अगारी पुत्तस्स गिलाणस्स येहेण तिसकडुभेसयाइं मा णं पीलेज ऊणए देह, पउणति ज तेहि, आहिएहिं मरति बालो, तहाहारे । साम्प्रतमिदमेव द्रव्यावश्यकं नवैनिरस्त्वयेत, ते च मूलनया नैगमाद्यस्तथा चोक्तम्-येगम संगह ववहार उरजुसुतो चेक्ह होइ बोध्यव्यो । सहे य समभिरुदे पर्वंभूते य मूलनया ॥ १ ॥’ तओ ‘येगमस्से’ त्यादि (१४-१७) नैगमस्यैकोऽनुपयुक्तो देवदत्तः आगमतः एक द्रव्यावश्यकं द्वावनुपयुक्तो देवदत्यज्ञदत्तौ आगमतो द्रव्यावश्यके प्रयः अनुपयुक्ता देवदत्यज्ञ- दत्तसोमदत्ताः आगमतो द्रव्यावश्यकानि, किं वहुना ?, यावत्तोऽनुपयुक्ता देवदत्यस्तावत्येव तानि नैगमस्याऽगमतो द्रव्यावश्यकानि, एवमतीतान्यनागतानि च प्रतिपद्यत इति, नैगमस्य सामान्यविशेषाभ्युपगमप्रवानत्वात्, विशेषाणां च विवक्षितत्वात्, आह-एवं सामान्य- विशेषाभ्युपगमस्त्वात् अस्य सम्यगद्विष्टत्वप्रसङ्गः, न, परस्परतोऽस्यन्तनिरपेक्षत्वाभ्युपगमात्, उक्तं च-‘देहिवि यणहिं नीतं सत्यमुल्पण तहवि भिच्छत्तं । जं सविसयम्भाणात्तप्तेण अणोणणनिरवेक्षो ॥१॥’ एवमेव ववहारस्सवि’ एवमेव यथा नैगमस्य तथा व्यवहारस्यापि</p>
दीप अनुक्रम [१५]	द्रव्यावश्य- काधिकारः ॥१२॥

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">..... मूलं [१५-१६] / गाथा [१...]</p>
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [१५-१६]	<p style="text-align: center;">श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ १३ ॥</p> <p>एकः अनुपयुक्तो देवदत्तः आगमत एकं द्रव्यावश्यकमित्यादि, अस्य व्यवहारनिष्ठत्वात् व्यवहारस्य च विशेषावस्तत्वात् विशेषव्यतिरेकेण च सामान्यासिद्धेः, विशेषाभ्युपागमसाम्यादतिदेशेनैवाधिष्ठितनयमताभिवानलक्षणेष्टर्थसिद्धेलीघवार्थं नैगमनयमतोपन्यासानन्तरं व्यवहारनय-मतोपन्यास इति । ‘संगहस्से’ त्वादि, संप्रदैस्येको बाडनेके बाडनुपयुक्तो वा अनुपयुक्तो वा आगमतो द्रव्यावश्यकं वा द्रव्यावश्यकनि वा ‘से एग’ त्वि तदेकं द्रव्यावश्यकं, सामान्यापेक्षया, द्रव्यावश्यकसामान्यसात्रप्रतिपादनपरत्वादस्य, सामान्यव्यतिरेकेण विशेषासिद्धेः, ‘उज्जुसुत्तस्से’-त्वादि, उज्जुसुत्तस्स्यैको बाडनुपयुक्तो देवदत्तः आगमतश्च एकं द्रव्यावश्यकं, पुथक्त्वं नेच्छति, अयमेत्र भावार्थः- वर्तमानकालभाविआत्मीयं चन्छति, तर्यैवार्थक्रियासमर्थत्वात् स्वधनवत्, अतीतानागतपरकीयानि तु नेच्छति, अतीतानागतयैविनष्टानुपत्तत्वात् परकीयस्य च स्वकार्यप्रसाधकत्वादिति । ‘तिष्ठं सद्विद्याण’ भित्यादि, त्रयाणां शब्ददसमभिरूढैवं भूतानां ज्ञः अनुपयुक्तः अवस्तु, अभाव इत्यर्थः, ‘कस्मादिति कस्मात्कारणात्, यदि ज्ञः अनुपयुक्तो न भवति, कुत एतद् ? , उपयोगरूपत्वात् ज्ञानस्य, ततश्च ज्ञोऽनुपयुक्तश्चेत्यसंभवएव, ‘सेत्तमित्यादि, तदागमतो द्रव्यावश्यकं, आह-कोडयमागमो नाम इति, उच्यते, ज्ञानं, कथमस्य द्रव्यत्वं, भावरूपत्वात् ज्ञानस्येति, सत्य-मेतत्, किल्यागमस्य कारणमात्मा देहः शब्दश्च, द्रव्यं च कारणमुक्तमतस्तत्कारणत्वादागम इति, कारणे कार्योपचारात् ।’ से किं तं नोआगमतो इत्यादि (१५-१९) अथ कि तत्रोआगमतो द्रव्यावश्यकं ?, नोआगमतो इत्यत्र आगमसञ्चितेष्व नोसद्वा अहव देसपदिष्वेहे । सब्ये जह गणरीयं भवत्वस्य य आगमाभावा ॥ १ ॥ किरियागमुच्चरंतो आवासं कुणति भावसुणोति । किरियाऽगमो ण होई तस्य निसेहो भवे देसे ॥ २ ॥ नोआगमतो द्रव्यावश्यकं त्रिविधं प्रज्ञम्, तत्त्वाथ—ज्ञात्रीरद्रव्यावश्यकं भव्यशरीरद्रव्यावश्यकं ज्ञात्रीरभव्यशरीरद्रव्यतिरिक्तं च द्रव्यावश्यकं । ‘से किं त’ भित्यादि (१६-१९) प्रश्नसूत्रं, ज्ञातव्यनिति ज्ञः तस्य शरीरं उत्पादकालादारभ्य प्रतिक्षणं शीर्थत इति शरीरं</p>

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१५-१६] / गाथा [१...]
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [१७] गाथा [१...]	<p>श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ १४ ॥</p> <p>तदेवालुभूतभावत्वात् द्रव्यावश्यकं शशीरद्रव्यावश्यकं । आवस्सत्तिपददत्थाविकारजाणगस्तेत्यादि, आवश्यकमिति यत्पदं भव्यशरीर-द्रव्यावश्यकं, अस्यार्थं एवार्थाविकारः तद्वा अर्थाविकारा वा गृहन्ते तस्य तेषां वा ज्ञातुः यच्छीरकं, संज्ञायां कन्, किंभूतं ?- व्यपगत-च्युतच्यावितत्यक्तदेहं, व्यपगतम्-ओघतश्चेतनापर्यायाद्वेतत्तत्वं प्राप्तं च्युतं-देवादिभ्यो भष्टं च्यावितं-तेष्य एवायुःक्षयेण अंशितं त्वच्कदेहं-जीव-संसर्गसमुत्थशक्तिजनिताहारादिपरिणामप्रभवपारित्यक्षोपच्यं, तत्र व्यपगतं सर्वगताऽऽस्मनः प्राकृतमपि भवति तद्विच्छित्ये च्युतं, इदमपि स्वभावत एव कैविदिष्यते तद्वच्यपोहाय च्यावितं, इत्थं त्वकोपचयमिति चैतज्जीवशरीरयोर्विशिष्टसम्बन्धज्ञापनार्थमिति, उक्तं च वृद्धैः— “ पञ्जायंतरपतं खीरंच कमेण जह दधित्तेण । तह चेतणपञ्जायादचेयणतं ववगतंति ॥ १ ॥ चुतमिह ठाणवभद्वं देवोऽव जहा विमाणवा-साओ । इय जीवितचेयणादिकिरियाभद्वं चुतं भणिमो ॥ २ ॥ चइयंमि चावितं जं जह कष्टा संगमो सुरिदेण । तह चावियमिति जीवा पलिएणाऽउक्तव्यएण्टि ॥ ३ ॥ आहारसत्तिजगिताऽऽहारसुपरिणामजोवचयसुणं । भणिइ हु चत्तदेहं देहीवरज्ञोति एगाढा ॥ ४ ॥ ” एवमुकेन विधिना जीविन-आत्मना विविधमनेकथा प्रकृष्णं मुक्तं जीविप्रमुक्तं, तथा चान्त्यैरप्युक्तं-‘ वंथणेष्टदत्तणओ आउक्तव्यउत्त्वं जीवविप-जं । विजदंति पगारेणं जीवणभावद्वितो जीवो ॥ ५ ॥ ’ ततश्चेदं व्यपगतादिविशेषणकलापयुक्तं यावजीवविप्रमुक्तं शशीरद्रव्यावश्यक-मिति गम्येत, कथं ?, यस्मादिवं शश्यागतं वा संस्तारगतं वा सिद्धशिलातलगतं वा दृष्टा कश्चिदाह-अहो ! अनेन शशीरसमुच्छ्येण जिनदृष्टेन भावेन आवश्यकमित्येतत्पदमाल्यात्मित्यादि, तस्मादतीतकालन्यात्मुष्टस्याऽतीतां वृत्तिमपेक्ष्य द्रव्यावश्यकमित्युच्यत इति किया, यथा को दृष्टान्त इति ?, प्रदत्तनिर्वचनमाह-अयं मधुकुम्भ आसीदयं धृतकुम्भ आसीदित्यादि अक्षरगमनिका, भावार्थं उच्यते-तत्र शश्यासंस्तारकौ प्रतीतौ, सिद्धशिलातलं तु यत्र शिलातले साधवस्तपःपरिकर्मितशरीराः स्वयमेव गत्वा भक्तपरिज्ञातनशनं प्रतिपक्षपूर्वाः प्रतिपक्षन्ते प्रतिपत्यन्ते</p> <p>नोआगम द्रव्यं भेदाः</p> <p>॥ १४ ॥</p>
दीप अनुक्रम [१८]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१७-१८] / गाथा [१...]
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [१७-१८]	वेति, क्षेत्रगुणतां तत्र यथाभ्रिकदेवतागुणादाराधना सिद्धिमासादयतीति, अन्ये तु व्याचक्षते-यस्मिन् शिलातले सिद्धः कथिदिति, गतं स्थित- मित्यनर्थान्तरं, अहो दैन्यविस्मयामंत्रणेऽपु विष्वपि युज्यते, तत्रान्नित्यं शरीरमिति इन्ये, आवश्यकं ज्ञातमिति विस्मये, अन्यं पात्रवस्थमामंत्रयत आमंत्रणमिति, अनेन प्रत्यक्षेण उत्पत्तिकालादारभ्य प्रतिसमयं शीर्यत इति शरीरं तदेव पुद्गलसंवातनरूपत्वात् समुच्छ्रूयस्तेन जिनहृष्टेन भावेन भूतपूर्वगत्या जीवितशरीरस्योः कथिद्विद्वेदात् आवश्यकमित्येतत्पदमास्यातं सामान्यविशेषस्तपेण, अन्ये तु व्याचक्षते-‘ आवश्यिं ’ ति प्राकृत- शैलया छान्दसत्वाच्च गुरुः सकाशादागृहीतं, प्रश्नापितं सामान्यतो विनेयेभ्यः, प्रस्तुपितं प्रतिसूत्रमर्थकथनेन, दर्शितं प्रत्युपेक्षणादिदर्शनेन, इयं क्रिया एभिरक्षरैरुपात्ता इत्थं च क्रियत इति भावना, निदर्शितं कथिद्विद्वग्न्हतः परव्याऽनुकम्पया निश्चयेन पुनः पुनर्दर्शितं, उपदर्शितं सकलनययुक्तिभिः, अन्ये त्वन्यथापि व्याचक्षते, तदलं तदुपन्यासलक्षणेन प्रयासेनेति, अतः द्रव्यावश्यकमभिधीयते, आह-आगमक्रियातितमच्येतनभिर्द कथं द्रव्या- वश्यकमभिधीयते !, अत्रोच्यते, अतीतकालनयानुवृत्या, यथा को दृष्टान्तः!, तत्र दृष्टमर्थमन्तं नयतीति दृष्टान्तः, लौकिकपरीक्षकाणां यस्मि- न्ये बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्त इत्यन्ये, अयं मधुकुम्भ आसीदित्यादि, अतीतमधुघृतघटबदिति भावना ‘ से त ’ मित्यादि निगमनं। ‘ से किं त ’ मित्यादि (१७-२१) भव्यो योग्यो दले पात्रमिति पर्यायाः, तस्य शरीरं तदेव भाविमावाऽवश्यककारणत्वात् द्रव्यावश्यकं भव्यशरीर- द्रव्यावश्यकं, ‘ जो जीवो ’ त्वादि, यो जीवो योन्या-अवाच्यदेशालक्षणया जन्मत्वेन सकलनिर्वित्तिलक्षणेन, असेनाभगव्यवच्छेदमाह, निष्का- न्तो-निर्गतोऽनेनैव शरीरसमुच्छ्रूयेणति पूर्ववत्, आदत्तेन-गृहीतेन, अन्ये त्वभिदधति- ‘ अत्तपेण ’ ति आत्मीयेन, जिनहृषेन भावेनत्वादि पूर्व- वत्, अथवा तदावरणक्षयोपशमलक्षणेन ‘ सेयकाले ’ ति छान्दसत्वादादागामिनि काले शिक्षिष्यते, न तावच्छिक्षते, तदेवद्विविन्म वृत्तिमगाहित्य भव्यशरीरद्रव्यावश्यकमित्युच्यते, यथा को दृष्टान्त इत्यादि भावितार्थं यावत् ‘ से त ’ मित्यादि। ‘ से किं त ’ मित्यादि (१८-२२) ज्ञातीर-
गाथा ॥१..॥	रोभव्य शरीरात्
दीप अनुक्रम [१८-१९]	॥ १५ ॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१९] / गाथा [१...]
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [१९] गाथा [१...]	<p>श्रीअनु० हारि॒ व॒त्तौ॑ ॥ १६ ॥</p> <p>भव्यशरीराभ्यां व्यतीरिकं द्रव्यावश्यकमिति निरूपितशब्दार्थमेव त्रिविधं प्रकाशं, तद्यथा-जौकिं कुप्रावचनिकं लोकोत्तरं, 'से किं त' भित्यादि (१९-२२)एते राजेश्वराद्यः मुखधावनादि कृत्वा ततः पश्चाद्राजकुलादौ गच्छन्ति तदेतत्त्वाक्षिकिकं द्रव्यावश्यकमिति किया, तत्र राजा-चक्रव-त्त्वादिर्दिम्हामाण्डलिकान्तः ईश्वरो-युवराजा माण्डलिकोऽमात्यश्च, अन्ये तु व्याचक्षते-अग्निमाद्यष्टवैश्वर्ययुक्त ईश्वर इति, तलवरः-परितुष्ट-नरपतिप्रदत्तपृष्ठंवभूषितः माडम्बिकः-छिन्नमंडलादिपः कोटुस्त्रिकः-कतिपयकुटुम्बप्रमुः इभ्यः-अर्थवान्, स च किल यस्य पुरुषीकृतरत्नराश्य-न्तरितो हस्त्यपि नोपलभ्यत इत्येवावताऽर्थेनेति, श्रीदेवताद्यासितसौवर्णपृष्ठभूषितोत्तमाङ्गः पुरुज्येष्ठो वणिक्, सेनापतिः- नरपतिनिरूपितोष्ट-हस्त्यश्वरथपदातिसमुदायलक्षणायाः सेनायाः प्रभुरित्यर्थः, सार्थनायकः- 'गणिमं धरिमं मेजं पारिच्छेजं व दद्वजायं तु। घेषूणं लाभद्वी वच्छइ जो अण्णदेसं तु ॥ १ ॥ निवबहुमओ पसिद्धो दीपाणाह्याण वच्छलो पंथे । सो सत्थवाहनामं धणोच्च लोए समुव्वहति ॥ २ ॥ प्रभुतिप्रहणेन प्राकृतजनपरिव्रहः, 'कर्लं पादुप्यभाताए' इत्यादि, कलमिति थः प्रज्ञापकापेक्षमेतत्, यतः प्रज्ञापको द्वितीयायामेव प्रज्ञा-पयति, प्रादुः प्रकाशन इत्यर्थं धातुः, ततश्च ग्रकाशप्रभातायां रजन्यां सुविमल्यायामित्यादिनोत्तरोत्तरकालमाविना विशेषणकलापेनाऽत्यंतोथम-वतां मानवानां तमावश्यककालमाह, 'फुल्लोत्पलकमलकोमलोन्मीलिते' इहोत्पलं पद्ममुच्यते कमलस्वारण्यः पशुविशेषः ततश्च फुल्लोत्पल-कमलयोः-विकितिपद्मकमलयोः कोमलं—अकठोरं उन्मीलितं वसिमन्निति समाप्तः, अनेनारुणोदयावस्थामाह, 'अहापंडुरे पहाए' अथ आनन्तर्ये, तथा 'रक्तासोगे' त्यादि, रक्ताशोकप्रकाशकिशुकशुकमुखगुंजार्ज्जरागसहशो, आरुक इत्यर्थः, तथा 'कमलाकरनलिनीखण्ड-बोधके' कमलाकरो-हृदादिजलाश्रयस्तस्मिन्निवर्णं तद्वाधक इत्यनेन स्थलनालिनविवच्छेदमाह, यद्वा कमलाकरनलिनीखण्डयोर्भेदनेवै प्रहणं, 'जस्तिते' उद्गते सूर्ये सहस्ररशमौ-सहस्रकिरणे दिनकरे-आदित्ये तेजसा ज्वलति सति, विशेषणपृष्ठत्वं महत्वाशयशुद्धयर्थं कर्तव्यमितिरूप्यापनार्थं,</p> <p>लौकिकं द्रव्याव.</p> <p>॥ १६ ॥</p>
दीप अनुक्रम [२०]	*** लौकिक-द्रव्य-आवश्यकस्य अधिकारः वर्णयते

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">..... मूलं [२०-२१] / गाथा [१...]</p>
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रति सूत्रांक [२०-२१]	<p style="text-align: center;">श्रीअनु० हारि.बृत्तौ ॥ १७ ॥</p> <p>यत्रैते सर्वे एव विशेषाः सन्ति तस्मिन्नुदिते, अज्ञातहापनार्थं वा विशेषकलाप इति, ‘मुहूर्धोषणे’ लादि, निगमनान्तं प्रायो निगदसिद्धमेव, नवरं पुष्प-मालयोरव्यं विशेषः-अग्रथितानि पुष्पाणि प्रथितं माल्यं, विकाशितानि वा पुष्पाण्यविकाशितानि माल्यं. आरामोद्यानयोरप्यव्यं विशेषः-विविधपुष्प-जात्युपशोभितः आरामः चम्पकवनाद्युपशोभितमुद्यानं। ‘से किं त’ मित्यादि (२०-२४) यदेते चरकादयः इडाज्यादेवपलेपनादि कुवैनित तदेतत्कु-प्रावचनिकं द्रव्यावश्यकमिति क्रिया, तत्र चरकाः-धाटिभिक्षाचराः चीरिका-रथ्यापवित्तीरपरिधानाश्रीरोपकरणा इत्यन्ये, चर्मस्खणिडकाः-चर्मपरिधानश्रीरोपकरणा इति चान्ये, भिक्षोण्डाः- भिक्षामोजिनः सुगतशासनस्था इत्यन्ये, पाङ्गुरझाः- भौताः गौतमाः-लघुतराश्रमालाचार्चित-विवित्रपादपतनमीदिशकालापवद्वृषभकोपायतः कणभिक्षामाहिणः, गोवृत्तिकाः-गोश्रीनुकारिणः, उक्तं च-‘गावीहं समं निगमपवेस-ठाणामणाह य करेति । मुंजंति य जह गावी तिरिक्खवासं विभावेन्ता ॥ १ ॥ गृहधर्माः- गृहस्थ एव श्रेयानित्यभिसंधाय तथाधोक्तकारिणः धर्मसंहितापरिज्ञानवंतः सभासदः, अविरुद्धाः- वैनायिका, उक्तं च-‘अविरुद्धविण्यकारी देवादीणं पराए भत्तीए । जह वैसियायणसुओ एवं अणेवि नायव्वा ॥ १ ॥ विरुद्धा—अकियावादिनः, परलोकानभ्युपगमात्मवेवादिभ्य एव विरुद्धा इति, वृद्धाः-तापसाः प्रथमसमुत्पन्नत्वात् प्रायो वृद्धकाल एव दीक्षाप्रतिपत्तेः श्रादका विग्रहणीः, अन्ये तु वृद्धश्रावका इति व्याचक्षते विग्रहणी एव, प्रभृतिप्रहणात् पवित्राजकादिपरिग्रहः, पाखण्डस्थाः ‘कल्ल’ मित्यादि पूर्ववत् ‘इंद्रं सिद्धे’त्यादि, इन्द्रः प्रतीतः स्कन्दः- कातिकेयः रुद्रः-प्रतीतः शिवो-महादेवः वैश्रवणो-यक्षनायकः देवः-सामान्यः नागो-भववत्वसिभेदः यक्षो-त्यन्तरः भूतः-स एव मुकुन्दो-बलदेवः आर्या-प्रशान्तरूपा दुर्गा कोटिकिया-सैव महिषाद्यारुढा, उपलेपसम्मार्जनावर्षणधूपपुष्पगन्धमालयादीनि द्रव्यावश्यकानि कुर्वन्ति, तत्रापलेपन-द्वगणादिना प्रतीतमेव सम्मार्जनं दण्डपुच्छादिना आवर्षणं गन्धोदकादिनेति ‘से-त’ मित्यादि । ‘जे इमे’ त्ति (२१-२६) ये एते ‘ समणगुणमुक्तजोगिति ’ श्रमणाः-साधवस्तेषां गुणाः-</p>
गाथा ॥१..॥	
दीप अनुक्रम [२१-२२]	<p style="text-align: right;">द्रव्या- वश्यकं</p> <p style="text-align: right;">॥ १७ ॥</p>

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">..... मूलं [२०-२१] / गाथा [१...]</p>						
	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <table style="width: 100%; border-collapse: collapse;"> <tr> <td style="width: 15%; vertical-align: top; padding: 10px;"> प्रति सूत्रांक [२०-२१] </td> <td style="width: 60%; vertical-align: top; padding: 10px;"> <p>श्रीअलु० हारि.वृत्तौ ॥ १८ ॥</p> <p>मूलोत्तराख्याः प्राणातिपातादिविनिष्टुत्याद्यः पिण्डविशुद्ध्यादयश्च, योजनं योगः आसेवनमित्यर्थः श्रमणगुणेषु सुक्तो योगो यैस्ते तथा-विधाः, शेषाः अवयवाः यावत् घट्टस्ति अवयवावयविनोरभेदोपचारात् जङ्घे केनकादिना घृष्णे येषां ते घृष्णाः, तथा ‘मट्टा’ तैलोदकादिना मृष्णाः: मतुप्लोपाष्टा मृष्णंतो मृष्णाः ‘तुप्पोड्ह’त्ति तुंप्र—स्तिग्रं तुप्रा ओष्टाः समदना वा येषां ते तुप्रौष्टाः, शेषं कण्ठं, यावदुभयकालमावश्यकस्येत्यवावश्यकाय, छट्टीविभत्तीइ भण्णइ चउत्थीति लक्षणात्, प्रतिक्रमणायोपतिष्ठन्ते तदेतत् द्रव्यावश्यकं, भावशून्यत्वादसिप्रेतक्षलाभावात्, एथ उदाहरणं—‘वसंतउरं नगरं, तत्थ गच्छो अगीयत्थसंविगगो भविय विहरति, तत्थ य एगो संविगगो समणगुणमुक्तोगी, सो दिवसदेवसिं उद्वत्तलादियाऽतो अणेसणाऽतो पडिगाहेता महाता संबोगेण पडिक्रमणकाले आलोएति, तस्स पुण सो गच्छागी अगीयत्थत्तणओं पायच्छित्तं देतो भण्णति-अहो इमो धम्मसङ्कुओ साहू, सुहं पांडेसेवितुं दुक्खं आलोएं, एवं नाम एसो आलोएति अगूहंतो असदत्ताओ सुद्देति, एवं च दृष्ट्वा अण्णे अगीयत्थसमणा पसंसंति, चिरेति य-यवरं आलोएयन्वंति, यात्थ किंचि पडिसेवितेण्णति, तत्थ अण्णया क्यादी गीयत्थौ संविगगो विहरमणो आगओ, सो दिवसदेवसिं अविहि दृष्ट्वा उदाहरणं दाएति—गिरिणारे वाणियाऽतो रत्तरयणाणं घरं भरेऊण वरिसे २ संपलीवेइ, एवं च दृष्ट्वा सञ्चलोगो अविवेगत्तक्षो पसंसंसि-अहो! इमो भण्णो जो भगवंतं अरिंग तपेति, तत्थऽण्णया पठीवियं गिहं वाओ य पब्लो जाओ सवं नगरं दृष्टुं, ततो सो पच्छा रण्णा पडिहओ, पिण्णारो य कओ, अण्णहि णगरे एवं चेव करेइ, सो राइणा सुको जहा कोवि वाणिओ एवं करेइति, सो तेण सञ्चवस्सहरणो काऊण विसज्जिओ, अडवीए किं न पठीवेखि?, तो जहा तेण वाणिएण अवसेसावि दृष्टु एवं तुमंपि एवं पसंसंतो एते साहुणो</p> </td> <td style="width: 25%; vertical-align: top; padding: 10px; text-align: right;"> कुप्रावच- निक लौकिक- द्रव्या- वस्थके १८ ॥ </td> </tr> <tr> <td data-bbox="137 298 271 1397"></td><td data-bbox="271 298 2084 1397"></td><td data-bbox="271 298 2084 1397"></td></tr> </table>	प्रति सूत्रांक [२०-२१]	<p>श्रीअलु० हारि.वृत्तौ ॥ १८ ॥</p> <p>मूलोत्तराख्याः प्राणातिपातादिविनिष्टुत्याद्यः पिण्डविशुद्ध्यादयश्च, योजनं योगः आसेवनमित्यर्थः श्रमणगुणेषु सुक्तो योगो यैस्ते तथा-विधाः, शेषाः अवयवाः यावत् घट्टस्ति अवयवावयविनोरभेदोपचारात् जङ्घे केनकादिना घृष्णे येषां ते घृष्णाः, तथा ‘मट्टा’ तैलोदकादिना मृष्णाः: मतुप्लोपाष्टा मृष्णंतो मृष्णाः ‘तुप्पोड्ह’त्ति तुंप्र—स्तिग्रं तुप्रा ओष्टाः समदना वा येषां ते तुप्रौष्टाः, शेषं कण्ठं, यावदुभयकालमावश्यकस्येत्यवावश्यकाय, छट्टीविभत्तीइ भण्णइ चउत्थीति लक्षणात्, प्रतिक्रमणायोपतिष्ठन्ते तदेतत् द्रव्यावश्यकं, भावशून्यत्वादसिप्रेतक्षलाभावात्, एथ उदाहरणं—‘वसंतउरं नगरं, तत्थ गच्छो अगीयत्थसंविगगो भविय विहरति, तत्थ य एगो संविगगो समणगुणमुक्तोगी, सो दिवसदेवसिं उद्वत्तलादियाऽतो अणेसणाऽतो पडिगाहेता महाता संबोगेण पडिक्रमणकाले आलोएति, तस्स पुण सो गच्छागी अगीयत्थत्तणओं पायच्छित्तं देतो भण्णति-अहो इमो धम्मसङ्कुओ साहू, सुहं पांडेसेवितुं दुक्खं आलोएं, एवं नाम एसो आलोएति अगूहंतो असदत्ताओ सुद्देति, एवं च दृष्ट्वा अण्णे अगीयत्थसमणा पसंसंति, चिरेति य-यवरं आलोएयन्वंति, यात्थ किंचि पडिसेवितेण्णति, तत्थ अण्णया क्यादी गीयत्थौ संविगगो विहरमणो आगओ, सो दिवसदेवसिं अविहि दृष्ट्वा उदाहरणं दाएति—गिरिणारे वाणियाऽतो रत्तरयणाणं घरं भरेऊण वरिसे २ संपलीवेइ, एवं च दृष्ट्वा सञ्चलोगो अविवेगत्तक्षो पसंसंसि-अहो! इमो भण्णो जो भगवंतं अरिंग तपेति, तत्थऽण्णया पठीवियं गिहं वाओ य पब्लो जाओ सवं नगरं दृष्टुं, ततो सो पच्छा रण्णा पडिहओ, पिण्णारो य कओ, अण्णहि णगरे एवं चेव करेइ, सो राइणा सुको जहा कोवि वाणिओ एवं करेइति, सो तेण सञ्चवस्सहरणो काऊण विसज्जिओ, अडवीए किं न पठीवेखि?, तो जहा तेण वाणिएण अवसेसावि दृष्टु एवं तुमंपि एवं पसंसंतो एते साहुणो</p>	कुप्रावच- निक लौकिक- द्रव्या- वस्थके १८ ॥			
प्रति सूत्रांक [२०-२१]	<p>श्रीअलु० हारि.वृत्तौ ॥ १८ ॥</p> <p>मूलोत्तराख्याः प्राणातिपातादिविनिष्टुत्याद्यः पिण्डविशुद्ध्यादयश्च, योजनं योगः आसेवनमित्यर्थः श्रमणगुणेषु सुक्तो योगो यैस्ते तथा-विधाः, शेषाः अवयवाः यावत् घट्टस्ति अवयवावयविनोरभेदोपचारात् जङ्घे केनकादिना घृष्णे येषां ते घृष्णाः, तथा ‘मट्टा’ तैलोदकादिना मृष्णाः: मतुप्लोपाष्टा मृष्णंतो मृष्णाः ‘तुप्पोड्ह’त्ति तुंप्र—स्तिग्रं तुप्रा ओष्टाः समदना वा येषां ते तुप्रौष्टाः, शेषं कण्ठं, यावदुभयकालमावश्यकस्येत्यवावश्यकाय, छट्टीविभत्तीइ भण्णइ चउत्थीति लक्षणात्, प्रतिक्रमणायोपतिष्ठन्ते तदेतत् द्रव्यावश्यकं, भावशून्यत्वादसिप्रेतक्षलाभावात्, एथ उदाहरणं—‘वसंतउरं नगरं, तत्थ गच्छो अगीयत्थसंविगगो भविय विहरति, तत्थ य एगो संविगगो समणगुणमुक्तोगी, सो दिवसदेवसिं उद्वत्तलादियाऽतो अणेसणाऽतो पडिगाहेता महाता संबोगेण पडिक्रमणकाले आलोएति, तस्स पुण सो गच्छागी अगीयत्थत्तणओं पायच्छित्तं देतो भण्णति-अहो इमो धम्मसङ्कुओ साहू, सुहं पांडेसेवितुं दुक्खं आलोएं, एवं नाम एसो आलोएति अगूहंतो असदत्ताओ सुद्देति, एवं च दृष्ट्वा अण्णे अगीयत्थसमणा पसंसंति, चिरेति य-यवरं आलोएयन्वंति, यात्थ किंचि पडिसेवितेण्णति, तत्थ अण्णया क्यादी गीयत्थौ संविगगो विहरमणो आगओ, सो दिवसदेवसिं अविहि दृष्ट्वा उदाहरणं दाएति—गिरिणारे वाणियाऽतो रत्तरयणाणं घरं भरेऊण वरिसे २ संपलीवेइ, एवं च दृष्ट्वा सञ्चलोगो अविवेगत्तक्षो पसंसंसि-अहो! इमो भण्णो जो भगवंतं अरिंग तपेति, तत्थऽण्णया पठीवियं गिहं वाओ य पब्लो जाओ सवं नगरं दृष्टुं, ततो सो पच्छा रण्णा पडिहओ, पिण्णारो य कओ, अण्णहि णगरे एवं चेव करेइ, सो राइणा सुको जहा कोवि वाणिओ एवं करेइति, सो तेण सञ्चवस्सहरणो काऊण विसज्जिओ, अडवीए किं न पठीवेखि?, तो जहा तेण वाणिएण अवसेसावि दृष्टु एवं तुमंपि एवं पसंसंतो एते साहुणो</p>	कुप्रावच- निक लौकिक- द्रव्या- वस्थके १८ ॥					

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२२-२७] / गाथा [१...]	
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
प्रत सूत्रांक [२२-२७]	श्रीअनु० हारि.बृत्तौ ॥ १९ ॥	सब्बेवि परिक्षयासि, ताहे जाहे सो न ठाइ ताहे तेण साहुणो भणिता-एस महानिद्वस्मो अर्गीयत्थो, ता अलं एयस्स आणाए, जह एयस्स गिग्महो ण कीरह तओ अणेवि विणसंतिति । ‘सेत’ मित्यादि निगमनत्रयं निगदसिद्धं । ‘से किं त’ मित्यादि (२२-२८) आवश्यकियानुष्टु-नादावश्यकं गुणानां च आवश्यमात्मानं करोत्यावश्यकं, उपयोगाद्यात्मकत्वाद्वावश्यासावश्यकं चेति समासः, भावप्रधानं वाऽवश्यकं भावावश्यकं, भावावश्यकं द्विविधं प्रक्षमं, तथ्यथा— आगमतो नोआगमतथ्य, ‘से किं त’ मित्यादि, (२३-२८) ज्ञ उपयुक्तः, अयमत्र भावार्थः-आवश्यकपदार्थज्ञनितसंवेगेन विशुद्धयमानपरिणामस्तत्रैवोपशुक्तस्तदुपयोगानन्यत्वादागमतो भावावश्यकमिति, तथा चाह— ‘सेत’—मित्यादि निगमनं । ‘से किं त’ मित्यादि, (२४-२८) नोआगमतो भावावश्यकं ज्ञानकियोभयपरिणामो, मिश्रवचनत्वाद्वोशब्दस्य, त्रिविधं प्रक्षमं, तथ्या-लौकिकमित्यादि, ‘से किं त’ मित्यादि (२५-२८) पूर्वाङ्मारतमपराह्न रामायणं, तद्वचनशेतुणां पत्रकपरावर्तन-संयतगात्रादिक्रियायोगे सति तदुपयोगभावतो ज्ञानकियोभयपरिणामसङ्कावादित्यमित्रायः, ‘से त’ मित्यादि निगमनं, ‘से किं त’ मित्यादि (२६-२९) गतार्थं यावदिज्जन्मात्यादि, इजंजलिहोमजपाणुरूवनमस्कारादीनि श्रद्धानुभावयुक्तत्वात्, भावावश्यकानि कुर्वति, तत्र इज्जया-खलिर्यागांजलिरुच्यते, स च यागदेवताविषयः मातुर्वाञ्छिलिरिज्जाऽजलिमतूनमस्काराविधावितिभावः होगामिः—हवनक्रिया जपो-मंत्रादिन्यासः उद्गुरुक्षयं(कं) ति देशीवचनं वृषभगर्जितकरणार्थं इति, अन्ये तु व्याचक्षते-उंडु-मुखं तेण रुक्षयं(कं)ति-सहकरणं तंपि वसभ-दोक्षियादि चेव घेपले, नमस्कारः प्रतीतो, यथा- नमो भगवते विवसनाथाय, अदिशब्दात् स्तवादिपरिग्रहः, ‘से त’ मित्यादि, निगमनं, ‘से किं त’ मित्यादि, (२७-३०) यदित्यावश्यकमभिसंबद्धयते, श्रमणो वेत्यादि सुगमं, यावत्तचित्तत्यादि, सामान्यतस्तास्मिन् आवश्यके चित्तं-भावमनोऽस्येति तच्चित्तः, तथा तन्मनो द्रव्यमनः प्रतीत्य विशेषोपयोगं वा, तथा तल्लेश्यः- तत्स्थशुभपरिणामविशेष इति भावना,
	भावा- वश्यकम् ॥ १९ ॥	
गाथा ॥१..॥		
दीप अनुक्रम [२३-२८]		
	*** अथ भाव-आवश्यक-अधिकारः वर्णयते	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [८] / गाथा [२]
प्रति सूत्रांक [२८] गाथा ॥२॥	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
दीप अनुक्रम [३१]	<p>श्रीअनु० हारि.बृत्तौ ॥ २० ॥</p> <p>उक्तं च— ‘कृष्णादिद्रव्यसचिवद्यात्मीरणामो य आत्मनः । रक्षिकस्थेव तत्रायं, लेश्याशदः प्रगुच्यते ॥ १ ॥ तथा ‘तदध्यवसितः’ इहाध्यव- सायोऽध्यवसितं-तच्चित्तादिभावयुक्तस्य सतः लस्मिन्नावश्यक एवाध्यवसितं क्रियामंपादनविषयमस्येति तदध्यवसितः, तथा लतीवाध्यव- सायः इह प्रारम्भकालादारभ्य संतानक्रियाप्रवृत्तस्य तस्मिन्नेव तीव्रमध्यवसाये प्रथत्वविशेषलक्षणमस्येति समाप्तः, तथा तदर्थोपयुक्तः-- तस्यार्थस्तदर्थस्तस्मिन्नुपयुक्तः, प्रशस्ततरसेवेगविशुद्ध्यमानस्याऽप्यरथक एव प्रतिसूत्रं प्रत्यर्थं प्रसिद्धिं चोपयुक्त इति भावार्थः, तथा तदर्थितकरणः इह उपकरणानि-रजोहरणमुख्यवस्थितिकार्यानि तस्मिन्नावश्यके यथोचितव्यापारानियेगेनार्पितानि--न्यस्तानि करणानि येन स त- थाविधः, त्रयतः सम्यक् स्वस्थानन्यस्तोपकरण इत्यर्थः, तथा तद्वावनाभावितः, असकृदतुप्रानात्पूर्वमावनाऽपरिच्छेदत एव, पुनः २ प्रति- पत्तेरिति द्वयं, असकृदतुप्रानेऽपि प्रतिपाच्चित्तसमयभावनाभवित्तेदादिति, उपर्महरन्नाह- अन्यत्र-प्रस्तुतव्यतिरेकेण कुवचित्कार्यान्तरे मनः अकुर्वन्, मनोग्रहणं कायवागुपलक्षणं, अन्यत्र कुवचित्तसमयभावनाभवित्तेभित्यर्थः, उभयकाले--उभयसमयमावश्यकं-प्रागुनिस्पितशब्दार्थं करोति-निर्वैर्त्यति स अवलवावश्यकपरिणामानन्यव्यादावश्यकमिति क्रिया, ‘सेत’ भिव्यादि निगमनं, उक्ते भावावश्यकं । अस्यैवेदानी- मसंमोहार्थं पर्यायनामानि प्रतिपादयन्नाह ‘तस्म णं इमे’ इत्यादि (२८-३०) तस्यावश्यकस्य ‘ण’ निति वाक्यालङ्घारे अमूलि बद्ध्यमाणानि एकार्थिकात्ति- तत्त्वत एकार्थविषयाणि नानाचोपायाणि—नानाव्यञ्जनानि नामविधयानि भवन्ति, इह योगा उदात्तादयः कारीनि व्यञ्जनानि । तद्यथा-- ‘आवस्थां’ गाथा (५२-३०) ऋगव्या-अवश्यकियाऽतुप्रानावश्यकं, गुणानां वा वज्रमात्मानं करोतीत्यावश्यकं, अवश्य- करणीयमिति मोश्रार्थं नियमातुष्टेयमिति, भ्रुवनिष्ठह इत्यानादित्वात्प्राणोऽनेतत्वाच्च भ्रुवं- कर्म्म तत्कलभूतो वा भावस्तस्य निश्रहो भ्रुव- निष्ठहः, निषद्देतुत्वात्प्राणः, तथा कर्म्ममलिनस्याऽत्मनो विशुद्धिरेतुत्वादिष्ठिः, अध्ययनपटकर्मः-- सामाधिकादिपद्ध्ययनसमुदायः</p> <p>नोआगम भावा- वश्यकं श्रुतनिष्ठे- पाद्ध</p> <p>॥ २० ॥</p>
	*** अथ ‘श्रुत’ शब्दस्य निक्षेपाः वर्णयते

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [२९-३७] / गाथा [३]	
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
प्रत सूत्रांक [२९-३७]	श्रीअनु० हारि.शूतौ ॥ २१ ॥	सम्यग् जीवकर्मसंबद्धव्यवहारापनयनान्यायः गोक्षाराधनानिबन्धनत्वादाराधना मार्गः-पन्थाः शिवस्येति गाथार्थः-। ‘समणेण’ गाहा (३-३१) निगदसिद्धैव, नवरं अन्त इति मध्ये, ‘सेत’ मित्यादि निगमनं ॥ ‘से किंत’ मित्यादि (२९-३१) श्रुतं प्राग्निरूपितशब्दार्थमेव, चतु-विधिं प्रज्ञमसित्याद्यावश्यकविवरणातुसारतो भावनीयं, यावत् ‘पत्तयोत्थयलिहंतं (३७-३४) इह पत्रकाणि तत्त्वात्त्वादिसंबन्धीनं तत्संघातनिष्पत्तास्तु पुस्तकाः, वस्त्रानिप्पणे इत्यन्ये, इयमत्र भावना- पत्रपुस्तकलिखितमपि भावश्रुतनिबन्धनत्वात् द्रव्यश्रुतमिति । साम्रतं प्राकृतशैल्या तुल्यशब्दाभिधेयत्वात् ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यश्रुताधिकारं एव निर्देषत्वादिव्यापनप्रसंगोपयोगितया सूत्रनिरूपणायाह-‘अह वे त्यादि’ अथवेति प्रकारान्तरप्रदर्शनार्थः सूत्रं पञ्चविधं प्रज्ञम्, तदथा- ‘अंडज’ मित्यादि ‘से किंत’ मित्यादि अंडाज्ञातमण्डजं हंसगर्भादि, कारणे कार्योपचारात्, हंसः किल पतञ्जः तस्य गर्भः २ कौशिकारकः, आदिशब्दः स्वभेदप्रकाशकः कौशिकार-प्रभवं चटकसूत्रमित्यर्थः, पञ्चेन्द्रियहंसगर्भजमित्यादि केचित्, ‘से त’ मित्यादि निगमनं, एवं शेषेष्वपि प्रश्ननिगमने वाच्ये, पोण्डान् जातं पोण्डजं कलिहमादित्ति-कर्प्पासफलादि कारणे कार्योपचारादेवेति भावना, कीटाज्ञातं कीटजं पञ्चविधं प्रज्ञम्, तदथा- ‘पट्टे’-त्यादि, पट्टिसि-पट्टसूत्रं मलयं-अंगुकं चीणांगुकं-कुमिरागादि, अत्र वृद्धा व्याचक्षते- किल जंभि विसए पट्टे उपज्ञाति तत्थ अरणे वण-णिगुजद्वाणे मंसं चीणं वा आमिसं पुञ्जपुञ्जेहि ठविजजइ, ततो तेसि पुंजाण पासओ णिपुण्णया अंतरा वहवे दीलिया भूमिए उद्धा निहोडिज्ञाति, तत्थ वणंतराओ पयंगकीडा आगच्छंति, ते भंसचीणादियमामिसं चरंत इतो ततो य कीलंतरेसु संचरंता लाग्ना मुर्यंति, एस पट्टेति, एस य मलयवज्जेसु भणितो, एवं चेव मलयविसउपणे मलणति भण्णइ, एवं चेव चीणविसयवहिमुपणे अंसुए, चीणविस-युपणे चीणसुणति, एवमेतोसि खेतविसेसतो कीडविसेसतो य पट्टसुत्तविसेसतो भवति, एवं मणुयादिरहिं घेन्तुं केणवि जोएण जुत्तं
गाथा ३		व्यतिरिक्तं श्रुतं
दीप अनुक्रम [४१]		॥ २१ ॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [३८-४३] / गाथा [४]
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [२८-४३]	भायणत्यं ठविज्जति, तो तथ किमी उप्पञ्जन्ति, ते वायाभिलासिणो छिद्रेण गिरगता इतो ततो आसन्नं भर्मति, तेऽसि पीहारलाला किमिराग- सुत्तं भण्णइ, तं सपरिणामरंगरंगियं चेव भवइ, अन्ने भण्णति-जाहे रहिरुपन्ना किमिते तस्येव मालित्ता कसवट्टं उत्तारित्ता तत्थ रसेहिं जोगं पवित्रवित्ता पट्टसुत्तं रख्यं ते किमिरागं भण्णइ, अणुग्नाली, वालं पंचविधं ‘उष्णिय’ मित्यादि उष्णादिया पसिद्धा, मिएहितो लहुतरा मृगाकृत्यः बृहर्विष्टाः तेसि लोमा भियलोमा, कुतवो उंदररोमेसु, एतेऽसि चेव उषिण्यादीर्ण उचहारो किहिसं, अहवा एतेऽसि दुगादि- संजोगेण किंडिसं, अहवा जे अणे सणमादिया रोमा ते सब्बे किंडिसं भण्णति, ‘से तं वालज’ मिति निगमनं। ‘से किं तं वालज’ मित्यादि, सनिगमनं निगदसिद्धमेवेति, ‘से किं त’ मित्यादि, (३८-३९) इदमप्यावश्यकविवरणानुसारते भावनीयं, प्रायस्तुल्यवक्तव्यत्वात्, नवर- भागमतो भावशुतं तज्जस्तदुपगुक्तस्तदुपयोगानन्यत्वात्, नोआगमतस्य लौकिकादि, अत्राह-नोआगमतो भावशुतमेव न युज्यते, तथाहि-यादि नोशब्दः प्रतिपेधवचनः कथमागमः?, अथ न प्रतिपेधवचनः कथं तर्हि नोआगमत इति, अत्राच्यते, नोशब्दस्य देशप्रतिपेधवचनत्वात् चरण- गुणसमन्वितश्रुतस्य विवक्षितत्वात् चरणस्य च नोआगमत्वादिति। ‘जं इमं अरहंतेही’ (४२-३७) त्यादि, नन्दीविशेषविवरणा- नुसारतोऽन्यथा वोपन्यस्तविशेषणकलापशुक्तमपि स्वबुद्ध्या नेयमिति, शेषं प्रकटार्थं यावत्तिगमनमिति। ‘तस्य णं इमे’ इत्यादि पूर्ववत् ‘सुतसुत्त’ गाहा (*४-२८) व्याल्या-श्रूयते इति श्रुतं, सूचनात्सूत्रं, विशकीर्णार्थप्रन्थनाद् ग्रथः, सिद्धमर्थमन्तं नयतीति सिद्धान्तः, मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगप्रवृत्तजीवयशासनात् शासनं, पाठांतरं वा प्रवचनं, तत्रापि ग्रगतं प्रशस्तं प्रधानमादौ वा वचनं प्रवचनं, मोक्षायाज्ञाप्यन्ते प्राणिनोऽनयेत्याज्ञा, उक्तिवचनं वाग्योग इत्यर्थः, हितोपदेशरूपत्वादुपदेशनमुपदेशः, यथावस्थितजीवादिपदार्थ- प्रज्ञापनात् प्रज्ञापनेति, आचार्यपारम्पर्येणागच्छतीत्यागमः, आप्रवचनं आगम इति, एकार्थपर्यायाः सूत्र इति गार्थार्थः। ‘से त’ मित्यादि
गाथा ४	नोआगम भावशुतं स्कन्धनिष्ठ- पाश
दीप अनुक्रम [४२-४९]	॥ २२ ॥
*** अथ ‘स्कन्ध’ शब्दस्य निक्षेपाः वर्णयते	

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">..... मूलं [४४-५१] / गाथा [४...]</p>
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [४४-५१] गाथा ॥४॥	<p style="text-align: right;">स्कन्ध निष्ठेपाः</p> <p>श्रीअनु० हारि-इती ॥ २३ ॥</p> <p>निगमनं। ‘से किं त’ मित्यादि (४४-३८) वस्तुतो भावितार्थमेव, यावज्ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तस्त्रिविधः प्रज्ञस्तद्यथा, ‘सच्चिते-’ त्यादि प्रस्तुतं (४७-३९) चित्तं मनोऽविज्ञानमिति पर्यायाः सह चित्तेन वर्तते इति सचित्तः सचित्तश्चासौ द्रव्यस्कन्धश्चेति समासः; इह विशिष्टैकपरिणामपरिणतः आत्मप्रदेशपरमाण्वादिसमूहः स्कन्धः अनेकविधः—अनेकप्रकारः व्यक्तिभेदेन प्रज्ञापः—प्रसूपितः; तद्यथा-‘हयस्कन्ध’ इत्यादि, हयः-अश्वः स एव विशिष्टैकपरिणामपरिणतत्वात्सक्षणो हयस्कन्धः; एवं शेषेवपि भावनीयं, इह च सचित्त-द्रव्यस्कन्धाधिकारादात्मन एव परमार्थतत्त्वेनतत्वादसङ्ख्येयप्रदेशात्मकत्वाच्च कथञ्चिच्छल्यरेखेदे सत्यपि हयादीनां हयादिजीवा एव गृह्णन्ते इति सम्प्रदायाः, प्रभूतोदाहरणाभिधानं तु विजातीयोनकस्कन्धाभिधानेनैकपरमपुरुषस्कन्धप्रतिपादनपररुद्धनयनिरासार्थं, तथा चाहुरेके- “एक एव हि भूतात्मा, भूते भूते व्यवस्थितः। एकथा बहुथा चैव, दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥ १ ॥” एवं हि मुक्तेतरायाभाव-प्रसङ्गात् व्यवहारानुपपत्तिरिति। ‘सेत’ मित्यादि निगमनं। ‘से किं त’ मित्यादि, (४८-४०) अविद्याभानचित्तः अचित्तः अचित्तश्चासौ द्रव्यस्कन्धश्चेति समासः; अनेकविधः प्रज्ञम इति पूर्ववत्, तद्यथा—द्विप्रदेशिक इत्यादि आनिगमनं सूत्रासिद्धमिति, ‘से किं त’ मित्यादि (४९-४०) मित्रः-सचित्ताचित्तसंकीर्णः ततो मित्रश्चासौ द्रव्यस्कन्धश्चेति समासः; सेनाया—हस्त्यश्वरथपदादिसत्राहखड्गकुन्तादि-समुदायलक्षणाया अग्नस्कन्धं अग्नानीकमित्यर्थः; तथा मध्यमः पश्चिमश्चेति, ‘सेत’ मित्यादि निगमनं, ‘अहवे’ त्यादि (५०-४०) सुगमं यावत् से किं तं कासिणकर्त्तव्ये (५१-४०) कृत्स्नः-संपूर्णः कृत्स्नश्चासौ स्कन्धश्चेति विप्रहः ‘सच्चेव’ इत्यादि, स एव हयस्कन्ध इत्यादि, आह-यद्येवं ततः किमर्थं भेदेनोपन्यास इति, उच्यते, प्राक् सचित्तद्रव्यस्कन्धाधिकारात् तथाऽसम्प्रविनोदपि बुद्ध्या निकृष्य जीवा एवोक्तः इह तु जीवप्रयोगपरिणामित्यशरीरसमुदायलक्षणः समप्र एव कृत्स्नः स्कन्ध इति, अन्ये तु जीवस्यैव कृत्स्नस्कन्धत्वाद् व्यत्ययेन व्याचक्षते,</p> <p style="text-align: right;">॥ २३ ॥</p>

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४२-५६] / गाथा [४...]
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [५२-५६]	<p>श्रीअनु० हारि-वृत्तौ ॥ २४ ॥</p> <p>तथा॒ इ॒ विरोधः; ‘सेत’ मित्यादि निगमनं । ‘से किं त’ मित्यादि (५२-४१) न कृत्स्नः अकृत्स्नः अकृत्स्नश्चासौ स्कन्धश्च अकृत्स्नस्कन्धः ‘से चेवे’ त्वादि, स एव द्विप्रदेशादिः, अयमत्र भावार्थः- द्विप्रदेशिकः त्रिप्रदेशिकमेष्ट्याकृत्स्नो वर्तते इत्येवमन्येष्ट्वपि वक्तव्यं, न यावत् कात्म्यमापश्च इति, यदेवं हयादिकृत्स्नस्कन्धस्यापि तदन्यमहत्तरस्कन्धापेक्षया अकृत्स्नस्कन्धव्यप्रसङ्गो, न, असंख्येयजीवप्रदेशान्योन्यानुगत-स्यैव विवक्षितत्वात् जीवप्रदेशानां च स्कन्धान्तरेऽपि तुल्यत्वाद् ब्रह्मतरस्कन्धानुपर्णितः, जीवप्रदेशपुद्गलसाकल्यवृद्धौ हि महत्तरत्वमिति, अत्र वहु वक्तव्यं तत्तु नोच्यते ग्रन्थविस्तरभयाद् गमनिकामात्रमेतत्, ‘सेत’ मित्यादि (५३-४१) अनेक-इत्यश्चासौ स्कन्धश्चेति समासः, विशिष्टैकपरिणामपरिणितो नखजड्घोरुरदनकेशाद्यनेकद्रव्यसमुदाय इत्यर्थः, तथा चह- ‘तसेवे’- त्वादि, तस्यैव विवक्षितस्कन्धस्य देशः-एकदेशः अपचितो जीवप्रदेशविरहादिति भावना, तथा तस्यैव देश उपचितो जीवप्रदेशभावादिति हृदयं, एतद्युक्तं भवति-जीवप्रयोगपरिणामितानि जीवप्रदेशावचितानि च नखरोमरदनकेशादीन्यनेकानि द्रव्याणि तथा॒ इन्यानि जीवप्रयोग-परिणामितानि जीवप्रदेशोपचितानि च चरणजड्घोरुप्रभृतानि प्रभूतान्येव, एतेषामपचितोपचितानामनेकद्रव्याणां पुनर्यो विशिष्टैकपरिणामो देहात्म्यः सोऽनेकद्रव्य इति, अत्राह- ननु द्रव्यस्कन्धादस्य को विशेषः? इति, उच्यते, स किल यावानेव जीवप्रदेशानुगतस्तावानेव विशिष्टैक-परिणामपरिणितः परिगृह्यते, न नखाद्यपेक्षयापि, अयं तु नखाद्यपेक्षयाऽपतित्यं विशेष इत्यलं प्रसङ्गेन! ‘सेत’ मित्यादि निगमनं ‘से किं त’- मित्यादि सुगमं (५५-४२) यावत् ‘एतेसि’ मित्यादि नवरमागमतो भावस्कन्धः ज्ञ उपस्थुक तदथोपयोगपरिणामपरिणित इत्यर्थः, नो-आगमतस्तु ज्ञानकियासमूहमय इति, अत एवाह ‘एतेसि चेव’ इत्यादि (५६-४१) एतेषामेव प्रस्तुतावश्यकमेदानां सामायिकादीनां वण्णामध्ययनानां समुदायसमितिसमागमेन, इहाध्ययनमेव पदवाक्यसमुदायत्वात् समुदायः, समुदायानां समितिः-मेलकः, समुदाय-</p>
गाथा ४	द्रव्यभाव स्कन्धाः
दीप अनुक्रम [५६-६२]	॥ २४ ॥
	*** अथ ‘आवश्यक’स्य निरूपणं क्रियते

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४७-५८] / गाथा [५-६]	
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
प्रत सूत्रांक [४७-५८]	श्रीअनु० हारि. वृत्तौ ॥ २५ ॥	मेलकः समुदायसमितिः, इयं च स्वस्वभावव्यवस्थितानामपि भवति अत एकीभावप्रतिपत्त्यर्थमाह- समागमेन समुदयसमितेः समागमो- विशिष्टैकपरिणाम इति समासस्तेन आवश्यकश्रुतभावस्कन्ध इति लभ्यते, अयमत्र भावार्थः-सामायिकादीनां पण्णामध्ययनानां समावेशात् क्षानहशीनक्रियोपयोगवतो नोआगमतो भावस्कन्धः, नोशब्दस्य भिश्वचतन्त्वात् क्रियाया अनागमत्वादिति, निगमनं । ‘तस्स ण’- मित्यादि (५७-४३) पूर्ववत्, यावत् ‘गणकाय’ गाहा (५५-४३) व्याख्या-मल्लगणवद्रूपः पृथिवीसमस्तजीवकायवत्कायः ऋयादि- परमाणुस्कन्धवत्स्कन्धः गोवर्णवदर्गीः शालिपान्वराशीवद्राशिः विपकीर्णवान्यपुञ्जीकृतपुञ्जजवत्पुञ्जः गुडादिपिण्डीकृतपिण्डवत् पिण्डः द्विरण्या- द्विरव्यनिकरवन्निकरः तीर्थादिषु संभिलितजनसंवातवत् संवातः राजगृहाङ्गगणजनाकुलवत् आकुलं पुरादिजनसमूहवत् समूहः ‘सेत’- मित्यादि निगमनं । आह-के पुनरिदमावश्यकं पठध्ययनात्मकमिति १, उच्यते, पठर्थाधिकारविनियोगात्, क एतेऽर्थाधिकारा २ इति तानुपद- शेयमाह--‘आवस्यगस्स ण’ मित्यादि (५८-४३) सावज्जगाहा (५६-४३) व्याख्या- सावद्योगविरतिः-सपापञ्चागारविरमणं सा- मायिकावीथिकारः, दृक्कीर्तनेति सकलदुःखविरेकभूतसावद्योगविरत्युपदेशकल्पादुपकीर्त्वात्सद्भूतगुणोत्कीर्तनकरणादन्तःकरणशुद्धेः प्रधान- कर्मस्कृष्यकारणत्वादर्शनविशुद्धिः पुनर्बोधिलाभद्वेतुवाङ्गवतां जिनानां यथाभूतान्यासाधारणगुणोत्कीर्तना चतुर्विशितस्तवस्येति, गुणवत्त्र प्राप्तिपत्त्यर्थं वन्दना वन्दनाध्ययनस्य, तत्र गुणा मूलगुणोत्तरगुणत्वपिण्डविशुद्धवादयो गुणा अत्य विश्वत इति गुणवान् तस्य गुणवतः प्रति- पत्त्यर्थं वन्दनादिलक्षणा (प्रतिपत्तिः) कार्येति, उक्तं च ‘पास्तथादी’ गाहा, चशङ्गत्पुञ्जमालवनमासाद्यागुणवतोऽपत्याह, उक्तं च ‘परियाय’ गाहा, स्वलितस्य निदा प्रतिक्रमणार्थाधिकारः कर्थंवित्प्रमादतः स्वलितस्य मूलगुणोत्तरगुणेषु प्रत्यागतसंवेगविशुद्धव्यानात्यवसाथस्य प्रमाद- कारणमत्तुसरतोऽकार्यमिदमतीवेति भावयतो निदाऽप्तसाक्षिकीति भावना, व्रणचिकित्सा काशेत्सर्वगस्य, इयमत्र भावना-निदया शुद्धिमना-
गाथा ५-६		आवश्यक- निरूपणं
दीप अनुक्रम [६३-६८]		॥ २५ ॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [७९] / गाथा [७]	
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
प्रत सूत्रांक [५९]	श्रीअनु० हारि.बृत्तौ ॥ २६ ॥	सादृयतः ब्रणसाधस्योपनयेनालोचनादिदशविवप्रायश्चित्तमैषजेन चरणातिचारत्रणचिकित्सेति, गुणधारणा प्रत्याख्यानार्थाधिकार इति, अथमत्र भावार्थः— यथोह मूलगुणोत्तरगुणप्रतिपत्तिः निरतिचारसंघारणं च तथा प्रस्तुवणमर्थाधिकार इति, चशब्दादन्ये चापान्वराला अर्थाधिकारा विज्ञेया इति, एवकारोऽवधारण इति गाथार्थः । एषां च प्रत्यध्ययनमर्थाधिकारद्वार एवावकाशः प्रत्येतव्यः । साम्प्रतं यदुक्षमादौ ‘ श्रुत-स्कन्धाध्ययनानि चावश्यक ’ भिति तत्रावश्यकादिन्यासोऽभिहित इदानीमध्ययनन्यासावसरः, स चानुयोगद्वारप्रक्रमायातः प्रत्यध्ययनमेघ-निष्पत्ते एव बह्यते, लाघवार्थमिति । साम्प्रतमावश्यकस्य यद्युचारुयातं यच्च ड्यालयेयं तदुपदर्शयन्नाह—‘ आवस्तु ’ गाहा (*४-४४) व्याख्या-पिण्डार्थः—समुदायार्थः वर्णितः—कथितः समावेन—संक्षेपेण आवश्यकश्रुतस्कन्ध इति शास्त्रस्यान्वर्थाभिधानात्, इत ऊर्ध्वमैक्यमध्ययनं कीर्त्तयिष्यामः— वक्ष्याम इति गाथार्थः । कीर्त्तनं कुर्वन्निदमाह—‘ तंजहा—सामाइय ’ भित्यादि (५९-४४) सूत्रसिद्धं यावत् ‘ तत्थ पटम-मञ्जश्यणं सामाइयं ’ तत्रशब्दो वाक्योपन्यासार्थो निर्द्विरणार्थो वा, प्रथम-आद्यं शेषचरणादिगुणाधारत्वात्प्रधानं सुकिंहेतुत्वाद्, उक्तं च—‘ सामायिकं गुणानामाधारः खमित्र सर्वभावानाम् । नहि सामायिकहीनाअरणादिगुणान्विता येन ॥ १ ॥ तस्मावजगाद् भगवान् सामायिकमेव निरपमोपायम् । शारीरमानसानेकदुःखनाशस्य मोक्षस्य ॥ २ ॥ वोधादेविकमयनमध्ययनं प्रपञ्चतो वक्ष्यमाणशब्दार्थं सामायिकम्, इह च समो—रागद्वेषवियुतो यः सर्वभूतान्यात्मवत् पश्यति, आयो लाभः प्राप्तिरिति पर्यायः, समस्य आयः समायः, समो हि प्रतिक्षणमपूर्वज्ञानदर्शनचरणपर्यायैभवाटवीभ्रमणसंक्षेपविच्छेदकैनिरपमसुखेतुभिरधःकृतचिन्तामणिकल्पदुमोपमैर्युज्यते, स एव समायः प्रयोजनमस्याध्ययनसंवेदनानुष्ठानवृन्दस्येति सामायिकं, समाय एव सामायिकं तस्य सामायिकस्य ‘ ण ’ भिति वाक्यालङ्कारे ‘ इमे ’ त्वा अमूनि वक्ष्यमाणलक्षणानि महापुरस्येव चत्वारीति संख्या न त्रीणि नापि पञ्च अनुयोगद्वाराणि, इष्टाध्ययनार्थकथनविधिरनुयोगः, द्वाराणीव
गाथा ॥७॥		अर्था- धिकाराः
दीप अनुक्रम [६९-७०]		॥ २६ ॥

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">..... मूलं [६०-६४] / गाथा [७...]</p>
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [६०-६४]	<p style="text-align: right;">श्रीअनु० हारि.बृत्ती०</p> <p style="text-align: right;">॥ २७ ॥</p> <p>द्वाराणि—नगरप्रवेशमुखानि, सामायिकपुरस्यार्थाधिगमोपायद्वाराणीत्यर्थः भवति, ‘तद्यथे’ त्युपन्यासार्थः ‘उवक्षमे’ त्यादि, इह च नगरहष्टान्तभावाचार्यः प्रतिपादयन्ति, यथा छक्तद्वारमनगरमेव भवति, कृतैकद्वारमपि दुरधिगमनं कार्यातिपत्तये च, चतुर्मुलद्वारं तु प्रतिद्वारा- नुगतं सुखाधिगमं कार्यानतिपत्तये च, एवं सामायिकपुरस्यार्थाधिगमोपायद्वारशून्यमशक्याधिगमं भवति, एकद्वारानुगतमपि च दुरधिगमं, सप्रमेदचतुर्मुलद्वारानुगतं तु सुखाधिगममित्यतः कलवाच द्वारोपन्यास इति, तत्रोपक्रमणमुपक्रम इति भावसाधनः, शास्त्रं न्यासदेशसमीपीकर- णलक्षणः, उपक्रम्यते वाऽनेन गुहवाल्योगेनेत्युपक्रम इति करणसाधनः, उपक्रम्यतेऽस्मादिति वा विनीतविनेयविनायादित्युपक्रम इत्यपादान- साधनः, तथा च शिष्यो गुरुं विनयेनाराध्यानुयोगं कारयआत्मनाऽपादानार्थं वर्तते इति । एवं निक्षेपणं निक्षेपः निक्षिप्यते वा अनेनास्मिन्न- स्मादिति वा निक्षेपः न्यासः स्थापनेति पर्यायः, एवमनुगमनमनुगमः अनुगम्यतेऽनेनास्मिन्नस्मादिति वाऽनुगमः, सूत्रस्यानुशूलः परिच्छेद इत्यर्थः, एवं नयनं नयः नीयतेऽनेनास्मिन्नस्मादिति वा नयः, अनन्तर्घर्मात्मकस्य वस्तुतः एकांशपरिच्छेद इत्यर्थः। आह-एषामुपक्रमादिद्वाराणां किमित्येवं क्रम इति, अत्रोच्यते, न शुनुपक्रान्तं सदसमीपीभूतं निक्षिप्यते, न चानिक्षिप्तं नामादिभिरथर्थतोऽनुगम्यते, न चार्थतोऽनुगमते नयैविचार्यत इत्यतोऽयमेव क्रम इति, उक्तं च--‘ संबधसुपक्रमतः समीपमानीय रचितनिक्षेपम् । अनुगम्यतेऽय शास्त्रं नयैरतेकप्रभेदैतु ॥१॥ तत्रोपक्रमो द्विप्रकारः-शास्त्रीय इतरश्च, तत्रतराभिवितस्याऽह--‘ से किं त’ मित्यादि (६०-४५) वस्तुतो भावितार्थमेव, यावत् ‘ से किं ते जाणगसरीरभवियसरीरवद्विरेते दद्व्योवक्रमे’ इत्यादि, त्रिविधः प्रक्षमस्तव्यथा--‘ सचित्ते’ त्यादि, (६१-४६) दद्व्योपक्रम इति वर्तते, शेषाक्षरार्थः सचित्तदद्व्योपक्रमनिगमनावसानः सूत्रसिद्ध एव, भावार्थस्तव्यमिह--‘सचित्ते’ त्यादि, दद्व्योपक्रमः द्विपदवत्तुष्पदापदमेदभिन्नः; एकैको द्विविधः--परिकर्मणि वस्तुविनाशे च, तत्र परिकर्म--द्रव्यस्य गुणविशेषपरिणामकरणं तस्मिन् सति, तद्यथा—घृताद्युपयोगेन नटादीनां वर्णा-</p> <p style="text-align: right;">उपक्रमसिं- क्षेपानु- योगनया- नां क्रमः</p> <p style="text-align: right;">॥ २७ ॥</p>
	*** अत्र ‘उपक्रम’स्य निक्षेपाः वर्णयते

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [६५-६७] / गाथा [७...]	
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
प्रत सूत्रांक [६५-६७]	श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ २८ ॥	दिकरणमथवा कर्णस्कन्धवर्द्धनादिक्रियेति, अन्ये शास्त्रगान्धर्वनृत्यादिकलासम्पादनमपि द्रव्योपक्रमं व्याचक्षते, इं पुनरसाधु, विज्ञानविशेष- षात्मकत्वाच्छास्त्रादिपरिज्ञानस्य, तस्य च भावत्वादिति, किंत्वात्मदृढ्यसंस्कारविवक्षाऽपेक्षया शरीरवर्णादिकरणवत्स्यादपीति, एवं चतुष्पदाना- मपि हस्यश्वादीनां शिक्षागुणविशेषकरणं, एवमपदानां अप्यान्नादीनां वृक्षावेशेषाणां वृक्षायुर्वेदोपदेशाद्वार्द्धक्यादिगुणापादनमिति, एतत्क- लानां च गर्त्ताप्रक्षेपकोद्रवपलालादिस्थगनादिनेति, आह-यः स्वयं कालान्तरभाव्युपक्रम्यते यथा तरोर्वर्द्धेक्यादि तत्र परिकर्मणि द्रव्योपक्र- मता युक्ता, वर्णकरणकलादिसंपादनस्य तु कालान्तरेऽपि विवक्षितहेतुजालमन्तरेणानुपपत्तेः कथं परिकर्मणि द्रव्योपक्रम इति, अत्रोच्यते, विवक्षितहेतुजालमन्तरेणानुपपत्तेरित्यसिद्धं, कथं ?, वर्णस्य तावन्नामकर्मविविपाकित्वात्स्वयमीप भावात्, छलादीनां श्वायोपशमिकत्वात्स्य च कालान्तरे स्वयमपि संभवात्, विभ्रमविलासादीनां च युवावस्थायां दर्शनात्, तथा वस्तुविनाशे च पुरुषादीनां खड्गादिभिर्विनाश एवोपक्र- म्यत इति । आह-परिकर्मवस्तुनाशोपक्रमयोरभेद एव उभयत्र पूर्वरूपपरित्यगेनोत्तरवस्थापत्तेरिति, अत्रोच्यते, परिकर्मेषुपक्रमजनितोत्तर- रूपापत्तावपि विशेषणं प्राणिनां प्रत्यभिज्ञानदर्शनात्, वस्तुनाशोपक्रमसंपादितोत्तरघर्मरूपे तु वस्तुन्यदर्शनाद्विशेषसिद्धिरिति, अर्थवैकत्र- नाशस्तैव विवक्षितत्वाददोषः, ‘से किं तं अचित्तदव्योवक्रमे’ त्वादि (६५-४६) निगमनं, निगदसिद्धमेव, नवरं खण्डादीनां गुडादी- नामित्यत्रानलंसंयोगादिना मायुरेणुगुणविशेषकरणं विनाशश्च, भिश्रद्रव्योपक्रमस्तु स्थासकादिविभूषिताइवादिविषय एवेति, विवक्षातश्च कारक- योजना द्रष्टव्या, द्रव्यस्य द्रव्येन द्रव्याद् द्रव्ये वौपक्रमो द्रव्योपक्रम इति । ‘से किं त’ मित्यादि, (६७-४८) क्षेत्रस्योपक्रमः क्षेत्रोपक्रम इति, आह-क्षेत्रममूर्ते नित्यं च, अतस्तस्य कथं करणविनाशाचिति ?, अत्रोच्यते, तद्वयवस्थितद्रव्यकरणविनाशभावादुपचारतः खल्वदोषः, तथा चाह-तास्थयात्तद्वयपदेशो युक्त एव, मञ्चाः क्रोशान्तीति यथा, तथा चाह सूत्रकारः—‘जमिण’ मित्यादि, यद्वलकुलिकादिभिः क्षेत्राण्यु-
गाथा ७..		द्रव्योप- क्रमः
दीप अनुक्रम [७४-७७]		॥ २८ ॥

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">..... मूलं [६८-६९] / गाथा [७...]</p>
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रति सूत्रांक [६८-६९]	<p>श्रीअनु० हारि-वृत्तौ ॥ २९ ॥</p> <p>पक्षमन्यन्ते--योग्यतामापाद्यन्ते आदिशब्दाद्विनाशकारणग्लेन्द्रवंधादिपरिग्रहः ‘से त’ भित्यादि निगमनं । ‘से किं त’ भित्यादि, (६८-४८) कालस्य वर्त्तनादिस्पत्वात् द्रव्योपक्रम एवोपकारात् कालोपक्रम इति, चंद्रोपरागादिपरिक्षानलक्षणो वा, यदा ‘जं प’ भित्यादि, यत्रालिकादिभिः कालं उपकर्मन्ते--ज्ञानयोग्यतामापाद्यते, नालिका-घटिका, आदिशब्दात् प्रहरादिपरिग्रहः, ‘से त’ भित्यादि निगमनवाक्यं, भावोपक्रमो द्विधा--आगमतो नोआगमतश्च, आगमतो ज्ञाता उपयुक्तः, नोऽआगमतस्तु प्रशस्तोऽप्रशस्तयेति, तत्राप्रशस्तो डोहिणिगणिकामा- लादीनां, एत्योदाहरणानि-एगा भरुगीणी, सा विंतेति-किंह धूताओ सुहिताओ होउजासि ?, तो जेहिता धूया सिक्खाविया, जहा-वरंती मत्थए पण्हीए आहणिजासि, ताए आहतो, सो तुझे पादं भद्रितुमारद्दो, ण दुक्खावियति, तीए मायाए कहियं, ताए भणियं-जं करेहि, तं करेहि, ण एस किंचि तुज्ज अवरज्जतिति, वितिया सिक्खाविया, तीपवि आहजो, सो झंखिता उवसंतो, सा भणति-तुमंथि वीसत्था विहर, णवरं झंखणजो एसोचि, तड्या सिक्खाविया, तीपवि आहजो, सो रुझो, तेण दृढं पिण्डियो धाढिया य, तं अकुलपुत्ती जा एवं करेसि, तीए मायाए कहियं, पच्छा कहिवि अणुगामियो-अम्ह एस कुलधर्मसोनि, धूया य भणिया--जहा देवयस्स वडिजासिति, मा छाहिहिति । एगामिम पयरे- चउसट्टिकलाकुसला गणिया, तीए परभावोवक्रमणनिमित्तं रतिघरम्भिं सञ्चाओ परगतीओ नियनियवावारं करेमाणीओ आलिहावियाओ, तत्थ य जो जो वडुइसाई एइ सो सो निर्यं २ सिप्पं पसंसति, याथभावो त सुअणुयत्तो भवति, अणुयत्तिओ य उवयारं गाहिओ खद्दं खद्दं दृच्छ- दृच्छजातं वितरेति, एसवि अपसम्यो भावोवक्रमो । एगामिम णग्गेर कोई गत्या अस्यवाहणियाए सह अमच्चेण गिम्माओ, तत्थ य से अस्से- णड्वाशेण खलिये काइया वोसिरिया, खलरं खद्दं, तं च पुढिविरत्तणओ तहडियं चेव रणा पडिनियत्तमायेण सुइरं निज्जाइयं, चितियं चाणेण--इह तलां सोहणं हवडाचि, ण उण बुच्चं, अमच्चेण इंगितागारकुसलेग रायाणमणातुच्छय महासरं खणावियं चेव, पाळीए आरामो</p>
गाथा [[७...]]	
दीप अनुक्रम [७८-७९]	<p>अप्रशस्त- भावोप- क्रमः</p> <p>॥ २९ ॥</p>

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [७०-७१] / गाथा [७...]	
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
प्रत सूत्रांक [७०-७१]	श्रीअनु० हारि.बृत्तौ ॥ ३० ॥	से पवरो कओ, तेण कालेण अससबाहणियाए गच्छेतेण दिङ्गं, भणियं चउणेण—केणेण खणावितं ?, अमच्छेण भणियं—सामिराय ! तुम्हेहिं चेव, कहांपि य ?, अवलोयणाए कहिए परितुडेण संबङ्गुणा कता, एसवि अपसत्थो भावोवकमोत्ति, उक्तोऽप्रशस्तः । इदानी प्रशस्तः उच्यते, तत्र श्रुतादिनिमित्तमाचार्यभावोपक्रमः प्रशस्त इति, आह—च्याख्याङ्गप्रतिपादनाविकारे गुरुभावोपक्रमाभिधानमनर्थकमिति, न, तस्यापि च्याख्या-ङ्गात्मात्, उक्तं च—“गुरुव्याच्चता यस्माच्छारस्मा भवंति सर्वेऽपि । तस्माद् गुरुव्याराधनपरेण हितकांक्षिणा भाव्यम् ॥ १ ॥ तथा भाष्यकारेणाव्यभ्यथाय—‘गुरुचित्तायत्ताईं वक्तव्याणगाईं जेण सत्त्वाईं । जेण पुण सुष्पसण्ण होति तयं तं तदा कुञ्जा ॥ १ ॥ आगारिंगित-कुसलं जइ सेयं बायसं वेद पुञ्जा । तहविय सि णवि कूडे विरहिंमि य कारणं पुञ्चे ॥ २ ॥ निवपुच्छेण भणिओ गुरुणा गंगा कओ सुही वहति ? । संपाडितवं सीसो जह तह सव्यवस्थ कायव्य ॥ ३ ॥’ मित्यादि, आह—यद्येवं गुरुभावोपक्रम एवाभिधातव्यो न ज्ञेषाः, निष्प-योजनत्वात्, न, गुरुचित्तप्रसादनार्थमेव तेषामुपयोगित्वात्, तथा च देशकालावपेक्ष्य परिकर्मनाशौ द्रव्याणामुदकैदनादीनामाहारादिकार्येषु कुर्वन् विनेयो गुरुरेहर्वति चत:, अथवोपक्रमसाम्यातप्रकृते निरुपयोगिनोऽव्यव्योमयोद्यन्त इत्यलं प्रसङ्गेन, उक्त इतरः । अधुना शास्त्रायप्रातिपादनायाह—‘अहवे’ त्यादि (७०—५१), यद्या प्रशस्तो द्विविधः—गुरुभावोपक्रमः शास्त्रभावोपक्रमश्च, तत्र गुरुभावोपक्रमः प्रतिपादयनाह—‘अहवे’ त्यादि, अथवेति विकल्पार्थः, उपक्रमो-भावोपक्रमः पञ्चविधः प्रज्ञप्रस्तवथा—‘अपुणुपूर्वी’ त्यादि, उपन्याससूत्रं निगदसिद्धेष्व, ‘से किं त’ मित्यादि (७१—५१), इह पूर्वं प्रथममादिरिति पर्यायाः, पूर्वस्य पश्चादनुपूर्वं तस्य भाव इति ‘गुणवचनश्राक्षणादिभ्यः कर्मणि व्यव् चेति (पा. ५—१—१२४) स चायं भावप्रत्ययो नपुंसकलिङ्गे यज्ञकरणसामर्थ्याच्च स्त्रीलिङ्गेऽपि, तथा हि तस्मादनुपूर्वभावः आतुपूर्वी अनुक्रमोऽनुपरिपाठीति पर्यायाः, च्यादि-
	प्रशस्तो- भावोप- क्रमः ॥ ३० ॥	
गाथा ॥७..॥		
दीप अनुक्रम [८०-८१]		
*** अत्र ‘आनुपूर्वी’ वर्णनं आरभ्यते		

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">..... मूलं [७२-७३] / गाथा [७...]</p>
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [७२-७३]	<p>श्रीअनु० हारि.इचौ</p> <p>॥ ३१ ॥</p> <p>वसुसंहतिरिति भावः, इयमानुपूर्वीं दराविधा—इशप्रकाराः प्रज्ञासास्त्वयथा ‘नामानुपूर्वीं’ लादि; वस्तुतो भावितार्थत्वात्सूत्रसिद्धमेव तावद्यावत् ‘उवणिहिया य’ (७२-५१) ‘अणोबणिहिया य’ तत्र निधानं निधिन्योसो विरचना निष्क्रेपः प्रस्तावः स्थापनेति पर्यायाः, तथा च लोके—निधेहीदं निहितभिदभित्यर्थे निश्चेष्टार्थो गम्यते, उप-सामीप्येन निधानमुपनिधिः—विवक्षितस्यार्थस्य विरचनायाः प्रत्यासन्नता, उप-निधिः प्रयोजनमस्या इति प्रयोजनार्थे ठक् औपनिधिकी, एतदुक्तं भवति—अधिकृताध्ययनपूर्वानुपूर्व्यदिरचनाश्रयप्रस्तारोपयोगिनी औपनिधिकीत्युच्यते, न तथा अनैपतिधिकी, ‘तत्थ ण’ भित्यादि, तत्र याऽसावौपनिधिकी सा स्थाप्या—सांन्यासिकीं तिष्ठतु तावद् अल्पतरबक्तव्यत्वात्स्याः, किंतु यत्रैव बहु वरक्षयमस्ति तत्र यः सामान्योऽर्थः सोऽन्यत्रापि प्रस्तुपित एव लभ्यत इति गुणाधिक्यसंभवात् सैव प्रथममुच्यत इति, आह च सूत्रकारः—‘तत्थ ण’ भित्यादि, तत्र याऽसावौपनिधिकी सा नयवक्तव्यताश्रयणात् द्रव्यास्तिकनयमतेन द्विविधां प्रज्ञामा, नैगमव्यवहारयोः संप्रहस्य च, अयमत्र भावार्थः—इहैघतः सप्त नया भवन्ति, नैगमादयः, उक्तं च—नैगमसंग्रहव्यवहारक्तजुसूत्रशब्दसम-भिरूद्धैवभूता नयाः। एते च नयद्वयेऽवस्थाप्यन्ते—द्रव्यास्तिकः पर्यायास्तिकश्च, तत्राद्याख्ययो द्रव्यास्तिकः, शेषाः पर्यायास्तिक इति, कथं?, येन नैगमव्यवहारौ कृष्णाद्यनेकगुणाधिष्ठितं विकालविषयं अनेकभेदास्थितं नियानित्यं द्रव्यमित्रेवंवादिनौ, संग्रहस्तु परमाण्वादिसामान्यवादीत्यलं विस्तरेण। ‘से किं त’ भित्यादि अत्राध्यस्पत्वक्तव्यत्वात् संग्रहाभिधानं पञ्चाविति, पञ्चविधाः प्रज्ञासास्त्वयथा ‘अर्थपदपूर्पणते’ लादि, (७३-५३) तत्र अर्थत इतर्थः तद्बुक्तं—तद्विषयं तदर्थं वा पदं अर्थपदं तस्य प्रस्तुपणा—कथनं तद्वावोऽर्थपदप्रस्तुपणता, संज्ञासंज्ञिसम्बन्धप्रस्तुपणतेत्यर्थः, तथा भंगसमुत्कीर्तनता, इहार्थपदानामेव समुद्दितविकल्पकरणं भंगः भंगस्य भंगयोः भज्ञानां वा समुत्कीर्तनं—उच्चारणं भंगसमुत्कीर्तनं तद्वाव इति समाप्तः;</p>
गाथा ॥७..॥	
दीप अनुक्रम [८२-८३]	<p>आनुपूर्वीं भेदः</p> <p>॥ ३१ ॥</p>

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [७४] / गाथा [७...]	
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
प्रत सूत्रांक [७४]	श्रीअनु० हारि.वृत्ती० ॥ ३२ ॥	तथा भङ्गोपदर्शनता, इह यो भङ्गस्तेनार्थपदेन वैर्वार्थपदैहपजायते तस्य तथोपदर्शनं २ तद्वाव इति विष्रहः, सूत्रोऽर्थतश्च प्रस्तुपणेत्यर्थः, तथा समवतारः—इहानुपूर्वीद्रव्याणां स्वस्थानपरस्थानसमवतारान्वेषणप्रकारः समवतार इति, तथानुगमः आनुपूर्वादीनामेव सत्पदप्रस्तुपणा-दिविभिरसुयोगद्वारेनकधाऽनुगमनं अनुगम इति । ‘से किं त’ मित्यादि, (७४-५३) ‘तिपदेसिए आणुपूर्वी’ त्रिप्रदेशिकाः स्कन्धाः आनुपूर्व्यः, अयमत्र भावार्थः- इहादिमध्यान्तांशपरिग्रहेण सावयवं वस्तु निरूप्यते, तत्र कः आदि किं मध्यं कोऽन्त इतिै, लोकप्रसिद्धमेव, यस्मात्परमस्ति न पूर्वं स आदिः, यस्मात्पूर्वमस्ति न परमंतः सः, तयोरत्तरं मध्यमुपचरति, तदेतत् त्रयमपि यत्र वस्तुरूपेण मुख्यमस्ति तत्र गणनाकमः सम्पूर्णं इतिकृत्वा पूर्वस्य पश्चादनुपूर्वं तस्य भाव आनुपूर्वी०, एतदुक्तं भवति-संबन्धिशब्दाह्यते परस्परसापेक्षाः प्रवर्तनं इति यत्रैषां मुख्यो व्यपदेश्यव्यपदेशकभावोऽस्ति अयमस्यादिरयमस्यान्व इति तत्रानुपूर्वव्यपदेश इति, त्रिप्रदेशादिषु संमवति नान्यत्रेति, यः पुनरसंसक्तं रूपं केनचिद्ब्रह्मन्वतरेण शुद्ध एव परमाणुस्तस्य द्रव्यतः अनव्यवत्वात् आदिमध्यावसानत्वाभावात् अनानुपूर्वत्वं, वस्तु द्विप्रदेशिकः स्कन्धस्त-स्याद्यान्तव्यपदेशः परस्परापेक्षयाऽस्तीतिकृत्वा अनानुपूर्वत्वमशक्यं प्रतिपञ्चु, अथानुपूर्वत्वं प्रसक्तं तदपि चावधिभूतवस्तुरूपस्यासंभवात् अपीरपूर्णत्वात् न शक्यते वक्तुमिति उभाभ्यामवक्तव्यत्वात् अवक्तव्यक्षमुच्यते, यस्मान्मध्ये सति मुख्य आदिर्लभ्यते मुख्यश्चान्तः परस्पर-शंकरेण, तदत्र मध्यमेव नास्तीतिकृत्वा कस्यादिः कस्य वान्त इतिकृत्वा व्यपदेशाभावात् स्फुटमवक्तव्यकं, ‘तिपदेसिया आणुपूर्वीउ’ इत्यादि, बहुवचननिरेशाः, किमर्थोऽयमिति चेत् आनुपूर्वादीनां प्रतिपदमनन्तव्यक्षिल्यापनार्थः, नैगमव्यवहारयोश्चत्वंभूताभ्युपगम-प्रदर्शनार्थ इति, अत्राह-एषां पदानां द्रव्यवृद्धयनुक्रमादेवमुपन्यासो युज्यते-अनानुपूर्वी अवक्तव्यकं आनुपूर्वी च, पश्चानुपूर्वी च व्यत्ययेन, तत् किमर्थमुभयमुल्लंघ्यान्यथा क्रतमिति, अत्रोच्यते, अनानुपूर्वपि व्याख्यानांगमिति ख्यापनार्थं, किंचान्यत्- आनुपूर्वाद्रव्यवहृत्वशापनार्थं
गाथा [७...]		अनौपनि- विक्षयानु- पूर्वी अर्थपदं
दीप अनुक्रम [८४]		॥ ३२ ॥

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">..... मूलं [७७-८०] / गाथा [८]</p>
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [७७-८०]	<p style="text-align: center;">श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ३३ ॥</p> <p>स्थानबहुक्षापनार्थं चादावानुपूर्व्ये उपन्यासः, ततोऽल्पतरद्रव्यत्वादवक्तव्यकस्येत्यलं विस्तरेण । ‘सेत’ मित्यादि निगमनं, ‘एताए ण’ मित्यादि, (७५-८५) एतयाऽर्थप्रस्तुपणया किं प्रयोजनमित्यत्राह- एतया भङ्गसमुत्कीर्तनता कियते, सा चैवमवगन्तव्या-त्रयाणामानुपूर्व्यादिपदानामेक-वचनेन त्रयो भङ्गाः, बहुवचनेनापि त्रयः, एते चासंयोगतः, संयोगेन तु आनुपूर्व्येनानुपूर्व्योश्चतुर्भङ्गी, तथा आनुपूर्व्यवक्तव्यक्योरविसैव, तथाऽनानुपूर्व्यवक्तव्यक्योश्चति, त्रिकसंयोगतस्तु आनुपूर्व्येनानुपूर्व्यवक्तव्यकेष्वष्टभङ्गीति, एवमेते षड्विशतिर्भङ्गाः, अत्राह-भङ्गसमुत्कीर्तनं किमर्थं ?, उच्यते, वक्तुरभिप्रेतार्थप्रतिपत्तये नयानुमतप्रदर्शनार्थं, तथाहि-असंयुक्तं संयुक्तं समानमसमानं अन्यद्रव्यसंयोगे (इसंयोगे) च यथा वक्ता प्रतिपादयति तथैवेमां प्रतिपाद्येते इति नयानुमतप्रदर्शनं, षष्ठोऽत्र भावार्थः, भङ्गकास्तु प्रनक्षत एवानुसर्तव्याः, ‘से त’ मित्यादि निगमनं, शेषमनिगूढार्थं यावत् ‘तिपदेसिए आणुपूर्व्यी’ त्यादि, त्रिपदेशिकार्थः; आनुपूर्व्यत्युक्तये, एवमर्थकथनपुरस्तराः शेषभङ्गा अपि भावनीया इति, एतदुक्तं भवति-तैरेव भंगकाभिदानैक्षिप्रदेशपरमाणुपुद्लद्विप्रदेशार्थकथनविशिष्टस्तदभिधेयान्वाख्यात्यानं भंगोपदर्शनतेति, आह-अर्थ-पदप्रस्तुपणाभगसमुत्कीर्तनाभ्यां भंगोपदर्शनार्थताऽवगमाद्द्वितस्तदभिधानमयुक्तिः, अत्रोच्यते, न उभयसंयोगस्य वस्त्वन्तरत्वात् नयमत-वैचित्र्यप्रदर्शनार्थत्वाच्चादोष इति, शेषं निगमनं सूत्रसिद्धभिति । ‘से किं तं समोत्तरे’ त्यादि (७९-८८) अवतरणमवतारः-सम्यग-विरोधतः स्वस्थान एवावतारः समवतारः, इदानुपूर्वीद्रव्याणामानुपूर्वीद्रव्येष्वतारः न देष्पु, स्वजातावेव वर्तन्ते न तु स्वजातिव्यतिरेकेणेति भावना, एवमनानुपूर्व्यादित्वये भावनीयमकृच्छावसंया चाक्षरगमनिकेति न प्रतिपदं विवरणं प्रति प्रयास इति । ‘से किं त’ मित्यादि (८०-८९) अनुगमः-प्राग्निरूपितशब्दार्थं एव नवविधो-नवप्रकारः प्रज्ञप्रस्तव्यथा-‘संतपदप्रस्तवणा’ गाहा (४८-४९) व्याख्या-सब्दतत्पदं च सत्पदं तस्य प्रस्तुपणं सत्पदप्रस्तुपणं तस्य भावः सत्पदप्रस्तुपणता-सदर्थगोचरा आनुपूर्व्यादिपदप्रस्तुपणता कार्या, तथा आनुपूर्व्यादिप्र</p>
गाथा ॥८॥	
दीप अनुक्रम [८५-९१]	<p style="text-align: right;">भोगोप- दर्शनता</p> <p style="text-align: right;">॥ ३३ ॥</p>

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [८०-८३] / गाथा [८]
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [८०-८३]	व्यप्रमाणं वक्तव्यं, तथाऽऽनुपूर्व्यादिद्रव्याधारः क्षेत्रं वक्तव्यं, तथा स्पर्शना वक्तव्या, क्षेत्रस्पर्शनयोरर्यं विशेषः—‘एगपदेसोगां तत्त्वपदेसा य से कुसणा’ कालशानुपूर्व्यादिस्थितिकालो तत्त्वव्यः, तथा अन्तरं- स्वभावपरित्यागे सति पुनस्तद्वावप्राप्तिविरह इत्यर्थः, तथा भाग इत्यानुपूर्व्याधारिणी शेषद्रव्याणां कविभाग इत्यादि, तथा भावो वक्तव्यः, आनुपूर्व्यादिद्रव्याधारिणी कस्मिन् भावे वर्तन्त इति, तथाऽल्पबहुत्वं वक्तव्यम्, आनुपूर्व्यादीनामेव मिथो द्रव्यार्थप्रदेशार्थेभियार्थैः, व्यासार्थं तु प्रत्यवयवं प्रन्थकार एव प्रपञ्चतो वक्ष्यते इति, तत्राद्यमवयवमधिकृत्याह—‘योगमववहाराणं आणुपुष्विदव्याइ इं किं अतिथ णस्थी’ त्यादि, (८१-८०) कुतस्ते संशयः ?, घटाद्यौ विद्यमाने स्वकुसुमादौ वाऽपिच्यमाने वाऽविशेषणाभिधानप्रवृत्तेः, तत्र निर्बचनमाह—‘नियमा अतिथ’ तथा वृद्धैरप्युक्तं—जन्म्हा दुविद्वाभिहाणं सत्यमितरं व घडखपुण्ड्रादौ। विद्वमओ से संका णस्थि व अतिथति सिस्सस्स ॥ १ ॥ आत्थिंसि य गुरुवयणं अभिहाणं सत्थयं जतो सव्वं। इच्छाभिहाणपच्चयतुलभिधेया सदत्थमिणं ॥ २ ॥ ‘यश्चास्य सदर्थः स उक्त एव, द्वारं। द्रव्यप्रमाणमधुना—‘नेगमववहाराणं आणुपुष्विदव्याइ इं किं संखेजज्ञाइ’ (८२-८०) इत्यादि निगमनान्तं सूत्रसिद्धमेव, असंख्ययप्रदेशात्मके च लोकेऽनन्तानामानुपूर्व्यादिद्रव्याणां सूक्ष्मपरिणामयुक्तत्वादवस्थानं भावनीयमिति, इत्यते चैकगृहान्तर्वस्त्यकाशप्रदेशेष्वेकप्रभापरभाणुपूर्व्यामेष्वपि प्रतिप्रदीपं भवतामवानेकप्रवीपप्रभापरभाणुमवस्थानमिति, न च द्वेऽनुपपर्यं नामेत्यलं प्रसङ्गेन, द्वारं। क्षेत्रमधुना, तत्रेदं सूत्रं ‘योगमववहाराणं आणुपुष्विदव्याइ लोयस्स किं संखेजज्ञभागे होज्जा’ (८३-८०) इत्यादि प्रभसूत्रं, एकानुपूर्व्यादिव्योपक्षया तत्प्रमाणसंभवे सति प्रभसूत्रं सुगमं, निर्बचनसूत्रं च प्रन्थादेव भावनीयं, नवरं ‘सव्वलोक्य वा होज्जा’ चि यदुक्तं तत्राचित्तमहास्कन्धः सर्वलोकद्यापकः समयावस्थायी सकललोकप्रमाणोऽवसेय इति, ‘णाणादव्याइ पद्मच्च’ इत्यादि, नानाद्रव्याण्यानुपूर्वीपरिणामवन्त्येव प्रतीत्य प्रकृत्य वाऽधिकृत्येत्यर्थः नियमात्-नियमेन सर्वलोके, न शेषभागेऽविति, ‘होज्जा-
गाथा ॥८॥	
दीप अनुक्रम [९१-९४]	सत्यदप्र- रूपणता द्रव्यप्रमाणं क्षेत्र- स्पर्शनाने ॥ ३४ ॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [४-८७] / गाथा [८...]
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [४८-८७]	ति आर्थित्वाद्बन्धित वर्तन्त इत्यर्थः, यस्मादेकैकसिमिआकाशप्रदेशे सूक्ष्मपरिणामपरिणतान्यनन्तान्यानुपूर्वाद्विव्याणि विद्यन्ते इति भावना, अनानुपूर्वाद्विव्यक्तव्यकद्रव्ये तु एकं द्रव्यं प्रतीत्य संख्येयभाग एव वर्तन्ते, न स्वेषमागेषु, यस्मात्परमाणुरेकप्रदेशावगाढ एव भवति, अवकल्यकं त्वेकप्रदेशावगाढं च, नानाद्रव्यभावना पूर्ववदिति, द्वारं । साम्प्रतं स्पर्शनाद्वारावसरः, तत्रेदं सूत्रं-‘णेगमवहाराण’- मित्यादि (८४-८५) निगमनान्तं निगदसिद्धमेव, नवरं क्षेत्रस्पर्शनयोरर्थं विशेषः-क्षेत्रमवगाहमात्रं स्पर्शना तु स्वचतस्तुष्वपि दिक्षु तदवहिरपि वेदितव्येति, यथेह परमाणोरेकप्रदेशं क्षेत्रं समप्रदेशा स्पर्शनेति, स्यादेतद्-एवं सत्यणोरेकवं हीयते इति, उक्तं च-‘दिग् भागभेदो यस्याति, तस्यैकत्वं न युञ्यते’ इत्येतदयुक्तं, अभिप्रायापरिज्ञानात्, नहाशतः स्पर्शना नाम काचिद्, अपि तु नैरन्तर्यमेव स्पर्शनां ब्रूय इति, अत्र वहु वक्तव्यं ततु नोच्यते विस्तरभयादिति, द्वारं । साम्प्रतं कालद्वारं, तत्रेदं सूत्रं-‘णेगमवहाराण’ मित्यादि, (८५-८६) निगमनं पाठसिद्धमेव, पवरामियमित्यं भावणा-दोषं ह परमाणूं एको परमाणूं संजुतो समयं चिट्ठिऽण विजुत्तो, एवं आणुपुष्टिवद्वचं जह-णेणं एगसमयं होति, उक्तोसेणं असंखेजजं कालं चिट्ठिऽण विजुत्तो, एवमसंखेजजं कालं, णाणादव्वाइं पुण पङ्कुश सबद्वा-सर्वकालमेव विद्यन्ते, अणाणुपुष्टीसु तु एगो परमाणूं एगसमयं एकलगो होउण एकेग वा दोहि वा बहुपरमाणूदि वा समं जुञ्जइ, एवं जहणेणं एकं समयं होति, उक्तोसेणं असंखेजजकालं एकलगो होउण समं जुञ्जइ, एवमसंखेजजं कालं, णाणादव्वाइं पुण पङ्कुश सबद्वकानं विज्जंति, एवं अवच्छवगेसुवि एतं दत्तं पङ्कुश दो परमाणूं एगसमयं ठाऊण विजुञ्जंति, अणेण वा संजुञ्जंति, एवं अवत्तद्वगद्वचं जहणेणं एकं समयं होउज्जा, उक्तोसेणं असंखेजजं कालं चिट्ठिऽण विजुञ्जति संजुञ्जति वा, एवं असंखेजजं कालं, णाणादव्वाइं पङ्कुश सबद्वं चिट्ठति, द्वारं । अधुनाऽन्तरद्वारं, तत्रेदं सूत्रं-‘णेगमवहाराणं आणुपुष्टिवद्वचार्णं अंतरं कालओ केचिरं होती’ कालोऽन्तरं च ३५
गाथा ॥८..॥	
दीप अनुक्रम [९५-९६]	

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">..... मूलं [८६] / गाथा [८...]</p>
	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p>
<p>प्रत सूत्रांक [८६] गाथा [८...] दीप अनुक्रम [९७]</p>	<p style="text-align: right;">श्रीअनु० हारिजूत्तौ ॥ ३६ ॥</p> <p>त्यादि, (८६—६३) इह च्यादिस्कन्धास्त्यादिस्कन्धतां विहाय पुनर्योवता कालेन त एव तथा भवतीत्यसावन्तरं, एव दब्बं आणुपुष्टिवद्वं पङ्कुच जहणोणं—सठवत्थोवतया एं समयं—काललक्खणं, कहं ?, तिपदेसियादियाओ परमाणुमादी विज्ञो समयं चिंडिक्षणं पुणो तेण दब्बेण विस्ससापओगाओ तदेव संजुञ्जइ, एवमेगं समयं अंतरंति, उक्षोसेण—उक्षोसगतया अणंतं कालं, कहं ?, ताओ चेव तिपदेसियादियाओ सो चेव परमाणुमाई विज्ञो अणेसु परमाणुमाणुकोगेकोत्तरवृद्धया अनन्ताणुकावसानेषु स्वस्थाने प्रतिमेदमनन्तव्यतिवत्सु ठाणेषु उक्षोसमंतराधिकारातो असइं (उक्षोस) ठितीए अचिंडिक्षण कालस्स अनन्ततणओ धंसणयोङ्ग-गाए पुणोवि नियंत्रण चेव तेण दब्बेण पओगविस्ससाभावाओ तदेव संजुञ्जइति, एवमुक्षोसतो अणंतं कालं अंतरं भवति, पाणादब्बाइं पङ्कुच णाथिं अंतरं, इह लोके सैद्धव तद्वावादिति भावना, अणाणुपुष्टिविचिताए एं दब्बं पङ्कुच जहणोणं एं समयंति, कहं ?, एगो परमाणु अणोणं अणुमादिणा घटिक्षण समयं चिंडित्ता विज्ञजति एवं एगसमयमन्तरं, उक्षोसेण असंखेजं कालं, कहं ?, अणाणुपुष्टिवद्वं अणोण अणाणुपुष्टिवद्वेण अवत्तव्वगदद्वेण आणुपुष्टिवद्वेण वा संजुञ्तं उक्षोसद्वित्यमसंखेजकालनियमितलक्खणं होक्षण ठिति-अन्ते तथो भिणो नियमा परमाणु चेव भवति, अणदब्बाणवेक्षतत्तणओ, एवं उक्षोसेण असंखेजकालंति, एत्थ चोदगो भणति-णु अणंतपदेसगाणुपुष्टीदब्बसंजुञ्तं खंडखंडेहि विचिंडिक्षण आणुकादिभावमपरित्यजेवान्यान्यस्कन्धसम्बन्धस्थित्यपेश्याऽस्यानन्तकालमेवान्तरं कस्मान्न भवति इति, अत्रोच्यते, परमसंयोगस्थितेरप्यसंखेयकालादूर्ध्वमभावादणुत्वेन तस्य संयुक्तवादणुत्वत एव वियोगभावादिति, कथ-मिदं ज्ञायत इति चेदुच्यते, आचार्यप्रवृत्तेः, तथाहि-इदमेव सूतं ज्ञापकमित्यलं चसूर्येति । ‘पाणादब्बाइं’ तु पूर्वत, अवत्तव्वगविचिताए एं दब्बं पङ्कुच जहणोणं एं समयं एवं-दुपरमाणुसंख्यो विज्ञिक्षण एं समयं ठाऊण पुणो संजुञ्जइ, अणेण वा आणुपुष्टादिणा</p> <p style="text-align: right;">आनुपूर्व्या- दीनामन्तरं</p> <p style="text-align: right;">॥ ३६ ॥</p>

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [८७-८८] / गाथा [८...]
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [८७-८८]	<p>श्रीअनु० हारि.बृह्मा०</p> <p>॥ ३७ ॥</p> <p>संजुडिजय समयमें तहा चिद्धिकृण पुणो विजुडजइति, अवंतव्वगं चेव भवतीत्यर्थः, उक्षेषणं अणंतकालं, कहं ?, एगमवत्तव्वगद्व्वं अवंतव्वगत्तेण विजुडिजकृण अणेसु परमाणु य गुफाये कोत्तरवृद्धयाऽनन्ताणुकावसानेषु स्वस्थानप्रतिभेदमनन्तव्याकिवत्सु ठाणेसुकोसंतराधिकारात् असति उक्षेषणगठितीए अचिद्धिकृण कालस्स अणंतत्तणओ वंसणथोलणाओ पुणोवि ते चेव परमाणु विस्ससापओगतो तदेव जुडजंति, एवमुक्षेषणो अणंतं कालं अंतरं इवति, णाणादव्वाइं पहुङ्च णत्थि अंतर, इह लोके सदैव तद्वावादिति भावना, द्वारं । इदानीं भागद्वारं, तत्रेदं सूत्रं ‘ णगमववहाराणं आणुपुविवद्वाणं सेसदव्वाणं कतिभागे होज्जा ’ (८७-६५) इत्यादि, ‘ सेसदव्व ’ ति अणाणुपुविवद्वा अवंतव्वगद्व्वा य, यद्वा एको रासी कओ ततो पच्छा चतुर्ं, एत्य गिदारिसिणं इमं-सतस्स संखेज्जतिभागे पंच, पंचभागे सतस्स बीसा भवंति, सतस्स असंखेज्जतिभागो दस, दसभागे दस चेत्र भवंति, सतस्स संखेज्जसु भागेसु दोमाइएसु पंचभागेसु चत्तालीसादी भवंति, सतस्स असंखेज्जसु भागेसु अट्टुसु दसभागेसु असीति भवति, चोदग आह-णु एतेण गिदंसणेण सेसदव्ववाण अणुपुविवद्वा थोवतरा भवंति, जतो सतस्स असीति थोवतरति, आचार्य आह-ण मया भण्णइ तद्वागसमा ते ददुञ्चा, तद्भागत्थेसु वा दव्वेसु ते सगा, किंतु सेसदव्वाणं आणुपुविवद्वा असंखेज्जसु भागेसु अधिया भवंतीति वक्षेसो, सेसदव्वा असंखेज्जभागे भवन्तीत्यर्थः, अणाणुपुविवद्वा अचिद्धत्तव्वगद्व्वा य आणुपुविवद्वाणं असंखेज्जभागे भवंति, सेसं सुत्तसिद्धमिति (भाग) द्वारं । चाम्प्रतं भावद्वारं, तत्रेदं सूत्रं-‘ नेगमववहाराणं आणुपुविवद्वाइं कयरंभि भावे होज्ज ’ चीत्यादि (८८-६६) इह कर्मविपाक उद्यः उद्य एव औद्यिकः स चाष्टानां कर्म-प्रकृतीनामुदयः तत्र भवस्तेन वा निर्वृत्त औद्यिकः, उपशमो-मोहनीयकर्मणोऽनुदयः स एवौपशमिकस्तत्र भवस्तेन वा निर्वृत्त इति, क्षयः-कर्मणोऽत्यन्तविनाशः स एव क्षयिकस्तत्र भवस्तेन वा निर्वृत्त इति, कर्मण एव कस्यविद्वस्य क्षयः कस्यचिदुपशमः ततश्च क्षयश्चापशमश्च</p> <p>नेगमव्यवहाराभ्यां द्रव्यानुपूर्वी ॥ ३७ ॥</p>
गाथा ॥८..॥	
दीप अनुक्रम [९८-९९]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [८] / गाथा [८...]	
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
प्रत सूत्रांक [८१]	श्रीअनु० हारि.वृत्ति० ॥ ३८ ॥	क्षयोपशमौ ताभ्यां निर्वृत्तः क्षायोपशमिकः, परिणमनं परिणामः, द्रव्यस्य तथा भाव इत्यर्थः, स एव पारिणामिकः तत्र भवस्तेन वा निर्वृत्त इति, साक्षिप्तातिको य एषामेव द्रिकादिसंयोगादुपजायते, एव शब्दार्थः, भावार्थं पुनरभीषां स्वस्थाने एवोपरिष्ठाद्वक्ष्यामः, नवरं निर्वैचनं, निर्वैचन-सूत्रोपयोगीतिक्त्वा परिणामिकभावार्थे लेशतः प्रतिपाद्यत इति, इह परिणामः द्विविधः- सादिरनादिश्च, तत्र धर्मास्तिकायादिद्रव्यादित्व-नादिपरिणामः रूपिद्रव्येष्वादिर्मास्तवथा अन्नेन्द्रवन्तुरादिपरिणाम इत्येवमवशिष्यते सर्वादं निर्वैचनसूत्रं ‘णियमा’ इत्यादि, नियमेन-अवश्यं तया सादिपरिणामिके भावे भवन्ति, तथा परिणतेनादित्वाभावाद्, उत्कृष्टतो द्रव्याणां विशिष्टैकपरिणामत्वेनासंख्येयकालस्थितेः, शेषं सूत्रसिद्धं द्वारं । साम्प्रतमल्पवद्वद्वारं, तत्रेवं सूत्रं-‘एतेसिग’ मित्यादि (८५-८७) द्रव्यं च तदर्थं द्रव्यार्थः तस्य भावो द्रव्यार्थता, एकानेकपुद्लद्वयेषु यथासंभवतः प्रदेशगुणपर्यायाधारतेत्यर्थः, तथा द्रव्यत्वेनेतियावत्, प्रकृत्यो देशः प्रदेशः प्रदेशशासादवर्थश्च प्रदे-शार्थस्तस्य भावः प्रदेशार्थता, तेष्वेव द्रव्येषु प्रतिप्रदेशं गुणपर्यायाधारतेति भावना, तया, अगुणेनेत्यर्थः, द्रव्यार्थप्रदेशार्थता यथोक्तोभय-स्पतया, शेषं सूत्रसिद्धं यावत् ‘सद्वत्योवाइ णगमववहाराणं अववतव्यगदव्याइ दव्यदृत्याए’ ति, का तत्र भावना? उत्त्वते, संघातभेदानिमि-ताल्पत्वात्, तेष्य एव अणाणुपुठिवदव्याइ दव्यदृयाए विसेवाविताइ ?, कथं ?, उत्त्वते अदृतरद्वयेत्पत्तिनिमित्वात्, तेभ्योऽपि आणुपुठिवदव्याइ दव्यदृयाए असंखेऽमगुणाइ, कथं ?, उत्त्वते, ड्यायेकप्रदेशोत्तद्वद्वय द्रव्यस्थानानं निसर्गत एव बद्धत्वात्, संधातेभद्रीनिमित्वहुत्वाच्च, इह विनेयानुश्रद्धार्थं भावनाविधिरुच्यते—एग दुग विग चउपदेसा य ठाविता १, २, ३, ४, एत्थ संघातभेदतो पञ्च अवच्चवगदव्याइ हृत्वंति, इस अणाणुपुठिवदव्याभेदतो संघाततो वा, एककाळे तिषिण य आणुपुठिवदव्या, कमेण पुण एगदुगादिसंजोगभेदतो अणेगे भवति, अणेगे भणाति-चोहस हृत्वंति, तदभिपायं तु न वर्यं सम्यगवगच्छामोऽतिगंभीरत्वादिति, एवं पञ्चदसा-
गाथा ॥८..॥		नैगमव्यव- हाराभ्याम- त्पदहृत्वं
दीप अनुक्रम [१००]		॥ ३८ ॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१०-१३] / गाथा [८...]	
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
प्रत सूत्रांक [१०-१३]	श्रीअब्लु० हारि॒ इत्य॑ ॥ ३९ ॥	विसु भावेयङ्गं, सञ्चण्णुवृष्टसतो य सद्देवं, नान्यथावादिनो जिनाः, ‘ पदेसद्ग्रयाए सञ्चत्थोचाइं णेगमववहारण ’ मित्यादि, स्तोकन्वे कारणं ‘अपदेसद्ग्रयाए’ ति अप्रदेशार्थत्वेन नास्य प्रदेशा विद्यन्त इत्यप्रदेशः-परमाणुः, उक्तंच-‘परमाणुरप्रदेश’इति तद्वावस्तेन, अणोर्निरवयवत्वादित्यर्थः, आह-प्रदेशार्थतया सर्वस्तोकानीत्यभिप्राये अपदेशार्थत्वेनेति कारणाभिधानमयुक्तं, विरोधात्, स्वभावो हि हेतुर्वेदि प्रदेशार्थता कथमप्रदेशार्थता इति, अत्रोच ते, आत्मीयैकप्रदेशव्यतिरिक्तप्रदेशान्तरप्रतिषेधापेक्षा य प्रदेशार्थता, न पुनर्निजैकप्रदेशप्रतिषेधापेक्षापि, धर्मिण एवाप्रसङ्गाद्विचारवैयर्थ्यप्रसंगाद् अलं । विस्तरेण ‘ अवत्तवगदव्वाइ पदेसद्ग्रयाए विसेसाधियाइ ’ अनानुपूर्वीद्वित्येभ्य इति, अत्र विनेयासंमोहार्थमुदाहरणं-बुद्धीए सयमेत्ते अवत्तवगदव्वाक्या, अणाणुपुत्रिवदव्वाए पुण द्विकृसयमेत्तगा, एवं द्रव्यत्वेन विशिष्टविशेषाधिका भवन्ति, पदेसत्तणे पुणा अणाणुपुत्रिवदव्वाअप्पणो द्रव्यदृष्टाए तुला चेव, अपदेसत्तणां, विसिद्धविसेसाधिता(अवत्तवया)दुस्यमेत्ता भवन्ति, आणुपुत्रिवदव्वाइ अपदेसद्ग्रताए अणंतरगुणाइ, तेहिंतोवि पदेसद्ग्रताए आणुपुत्रिवदव्वाइ अणंतरगुणाइ, कथं ?, उच्यते, आणुपुत्रिवदव्वागं डाणवहृत्तणां, तेति च संखा अणंतपदेसत्तणां, उभयार्थेता सूत्रसिद्धेव ‘ से त ’ मित्यादि निगमनद्वये, ‘ से किं त ’ मित्यादि (१०-६९) इह सामान्यमात्रसंप्रदृश्यतीऽः संग्रहः, शेषं सूत्रसिद्धं यावत् ‘ तिप्रदेशिया आणुपूर्वी ’ त्यादि, इह संग्रहस्य सामान्यमात्रप्रतिपादनपरत्वायावन्तः केचन त्रिप्रदेशिकास्ते त्रिप्रदेशिकत्वासामान्याव्यतिरेकात् व्यतिरेके च त्रिप्रदेशिकत्वात्पत्तेः सामान्यस्य चैकत्वादैकैव त्रिप्रदेशिकानुपूर्वीति, एवं चतुर्थदेशिकादिष्वपि भावनीयं, पुनश्च विशुद्धतरसंग्रहापेक्ष्या सर्वासामेवानुपूर्वीत्वासामान्यभेदोदैकैवानुपूर्वीति, एवमनानुपूर्व्यवक्तव्येकव्यपि स्वजात्यभेदसो वाच्य-मेकत्वमिति ‘ से त ’ मित्यादि निगमनं, वहृत्वाभावाद्वहृत्वचनाभावः ‘ एताए ण ’ मित्यादि (९२-७०) पाठसिद्धं, यावत् ‘ अतिथ आणुपूर्वी ’ त्यादि सप्त भंगाः, व्यक्तिवहृत्वाभावाद्वहृत्वचनानुषपत्तिः शेषभंगाभाव इति, एवं भंगोपदर्शनाथामपि भावनीयं ‘ से किं तं
गाथा ॥८..॥		संग्रहेणद्व- व्यानुपूर्वी
दीप अनुक्रम [१०१- १०४]		॥ ३९ ॥

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">..... मूलं [४४-९७] / गाथा [१]</p>
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [४४-९७]	<p style="text-align: right;">श्रीअनु० हारि.हृत्ती०</p> <p style="text-align: right;">॥ ४० ॥</p> <p>समोत्तरे’ त्यादि (४४-७१) सूत्रसिद्धं, यावत् ‘संगहस्स आणुपुष्टिवदव्वेहि समोतरंति’ तज्जातौ वर्त्तन्ते, आणुपूर्वी- त्वेन भवन्तीत्यर्थः, एवमनानुपूर्ववृत्त्यकद्रव्यचिन्तायामपि भावना कार्या, पाठान्तरं वा ‘सद्गाणे समोतरंति’ स्वस्थानं वस्तिम्, समवत्तर- तीति, अत्राह-जं सद्गाणे समोतरंतीति भगद, किं तं आतभावो सद्गाणं परदव्वं वा समभावपरिणामत्तगओ सद्गाणं ?, जदि आतभावो सद्गाणं तो आतभावे ठित्तत्तगतो समोत्तरारो भवति, अहं परदव्वं वो आणुपुष्टिवदव्वस्स अणाणुपुष्टिवदव्ववाचि मुत्तित्तव्यणादिष्ठेहि समभाव- त्तगतो सद्गाणं भविस्त्वंति, एवं चोदिते गुरु भगति-सव्वदव्वा शातभावेषु बणिष्ठजमाणा आतभावसमोत्तरे भवंति, जदो जीवदव्वं जीवभा- वेषु समोतरिज्जइ पोडजीवभावेषु, अज्ञोवदव्वंपि अज्ञीवभावेषु न जीवभावेषित्यर्थः, परदव्वंपि समभावविसेसादिसमन्तत्तगओ सद्गाणं घेष्पित्तिण दोसो, इह पुग अधिकारे आणुपुष्टिवभावविलेसत्तगओ आणुपुष्टिवदव्वपक्षे समोतरंति सद्गाणं भणितं, एवं अणाणुपुष्टि- वदव्ववेषुवि सद्गाणे समोत्तरो भागियवाऽहि, ‘से त’ मित्यादि, निगमनं । ‘से किं तं अणुगमे ?, अणुगमे अहुविहे पण्णते, तंजहा-‘ सन्तपद’ गाहा (५९-७१) णवरं अप्यवहुं पतिथ’ ति (९५-७१) विशेषत इयं च नयन्तराभिप्रायतो व्याख्यातैव, य एवेह विशेषोऽसावेव प्रतिद्वारं प्रतिपाद्यत इति, तत्र ‘संगहस्स’ त्यादि, प्रनथसिद्धमेव, यावत्तियमा एको रासी, एत्थं सुनुज्ञारणसमण- तरमेव आहं चोदकः--एणु दव्वप्पमाणे पुडे असिलिंडुमुत्तरं, जओ एको रासिति पमाणं कहियं, जओ बदूणं सालिबीयाणं एको रासी भणिति, एवं बहूणं आणुपुष्टिवदव्वाणं एको रासी भविस्त्वति, बहूं पुग दव्वा पठिविज्ञतद्वा, आचार्य आह-एकरासिम्बहेण्य बहुसुवि आणुपुष्टिवदव्वेषु एकं चेव आणुपुष्टिभावं दंसेति, जहा भ्रोमु कठोणमुत्तरं, अद्वा जहा बहूं परमाणवो खंवत्तभावपरिणता एगखधो भणिति, एत्रं बहुआणुपुष्टिवदव्वा आणुपुष्टिभावपरिणयत्तगतो एगाणुपुष्टिवत्तं एगत्तगओ एगो रासीति भणितं न दोसो, ‘ संगहस्स आणु-</p>
गाथा ॥१॥	संग्रहेणा- नुगमः
दीप अनुक्रम [१०५- १०८]	॥ ४० ॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१६-१७] / गाथा [९....]	
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
प्रत सूत्रांक [१६-१७]	श्रीअनु० हारि.इच्छौ ॥ ४१ ॥	पुष्टिवदन्वाइं लोयस्स किं संखेजजिभागे होजजा । इत्यादै निर्वचनसूत्रं ‘नियमा सव्वलोए होजजा’ सामणगवेक्षाए आणुपुञ्चीए पंगत्तणओ सञ्चयत्तणओ य, एवमणाणुपुञ्चिवअवत्तव्वगवि भागितव्वा, कालतो पुण सञ्चदं, आणुपुञ्ची-सामान्यस्य सर्वकालभेव भावात्, एवमणाणुपुञ्चिवअवत्तव्वगवि भागियव्वा, अंतरचिन्ताप्य पात्य अन्तरं, प्रयोजनमनन्तरोक्तमेव, भाग-द्वारेऽपि नियमात् त्रिभागो, जेण तिणिं चेवेत्थ रासी, एथ चोदगो भगति—गणु आदीए अवत्तव्वगेहिंतो अगाणुपुञ्ची विसेसाधिता तेहिंतो आणुपुञ्ची असंखेज्जगुणा, आचार्य आह—तं नेगमववहाराभिःपाययो, इं पुग संगग्हाभिःपाययो भगितः; किंचान्यत्—जहा एगस्स रण्णो तओ पुत्ता, तेसि अस्से मग्नान्तार्ण एगस्स एगो आसो दिणो, सो छ सहस्से लङ्घति, वित्यस्स दो आसा दिणा, ते तिणिं तिणिं सहस्से लङ्घति, तइयस्स वारस आसा दिणा, ते पंच पंच सए लङ्घति, विसमावि ते मुळभावं पहुळच तिभागपडिता भवंति, एवं आणुपुञ्चिमादीवि दव्वा आणुपुञ्चिवअणाणुपुञ्चिवअवत्तव्वगतिभागसमत्तणतो नियमा तिभागेति भगितं ण दोसो, सादिपरिणाभिए भावे पूर्ववत्, गता अणोचणिहिया दव्वाणुपुञ्ची । ‘से किं त’ मित्यादि, अथ कथमौपनिधिकी द्रव्यानुशूर्वी ?, औपनिधिकी द्रव्यानुशूर्वी त्रिविवा प्रद्वाना, तद्यथा—‘पूर्वानुशूर्वी’ त्वादि (१६-७३) तस्मात्प्रथमात्प्रभृति आनुशूर्वी अतुकमः परिपाठी पूर्वानुशूर्वी, पाश्चात्यान्-चरमादारभ्य व्यत्ययेनैवानुशूर्वीं पश्चानुशूर्वीं, न आनुशूर्वीं अनानुशूर्वीं यथोक्तप्रकारद्वयातिरिक्तहोत्यर्थः, ‘से किं त’ मित्यादि. (७७-७३) तत्र द्रव्यानु-पूर्वीधिकारात् धर्मस्तिकायादीनामेव च द्रव्यत्वादिदमाह—‘धर्मस्तिथक्षाए’ इत्यादि, तत्र जीवपुद्गलानां स्वाभाविके क्रियावस्त्रे गतिपरिणातानां तत्स्वभावधारणाद्धर्मः, अस्तयः—प्रदेशास्तेषां कायः—संधातः अस्तिकायः धर्मशासावस्तिकायश्चेति समासः, तथा जीवपुद्गलानां स्वाभाविके क्रियावस्त्रे तत्परिणातानां तत्स्वभावधारणाद्धर्मः, शेषं धर्मस्तिकायत्रत्, तत्र सर्वद्रव्यस्वभावाऽदीपतादाकाशं, स्वभावेतावस्थानादि—॥ ४१ ॥
गाथा ॥९...॥		
दीप अनुक्रम [१०९- ११०]		

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१६-१७] / गाथा [१]
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [१६-१७]	श्रीअनु० हारि.वृत्ती ॥ ४२ ॥
गाथा ॥१..॥	त्यर्थः, आङ्गशब्दे मर्यादाभिविधिवाची, मर्यादायामाकोश भवन्ति भावाः स्वात्मनि च, तस्योगेऽपि स्वभाव एवावीतिष्ठन्वे नाकाशभावेऽव्याप्तिः, अभिविधौ तु सर्वभावव्याप्तानादाकाश, सर्वात्मसंयोगादिति भावः, शेषं धर्मास्तिकायवत्, तथा जीवति जीविष्यति जीवितवान् जीवः, शेषं पूर्ववत्, तथा पूरणगालनधर्मर्मणः पुद्गलाः त एवास्तिकायः पुद्गलास्तिकाय इत्यनेन सावयवानेकपदेशिकस्तन्धधर्महोडप्यव-गन्तव्यः, तथा उद्देत्ययं कालवचनः स एव निरंशत्वादतीतानागतयैर्विनिष्टातुत्पञ्चत्वेनासत्त्वात्समयः, समृहाभाव इत्यर्थः, आवलिकादयः सन्तीति चेत्, न, तेषां व्यवहारमात्रत्वैव शब्दात्, तथाहि—नानेकपरमाणुनिवृत्तत्वक्षन्धवसमूहवत् आवलिकादितु समयसमूह इति । आह—एषां कथमस्तित्वमवगम्यते ? इति, अत्रोन्त्यर्थे, प्रमाणात्, तच्चेदं प्रमाणं—ह गतिः स्थितिश्च सकललोकप्रसिद्धां कार्यं वर्तते, कार्यं च परिणामापेक्षाकारणायत्तात्मलाभं वर्तते, घटादिकार्यं तु तथा दर्शनात्, तथाच सृतिपृष्ठभावेऽपि दिग्देशकालाकाशप्रकाशयपेक्षाकारणमन्तरेण न घटो भवति, यदि स्यान्मृतपिण्डमात्रादेव स्यात्, न च भवति, गतिस्थिती अपि जीवपुद्गलाख्यवारिणामिककारणमावेऽपि न धर्मास्तिकायाख्यापेक्षाकारणमन्तरेण भवत एव, यतश्च भावो दृश्यते अतस्तत्सत्त्वा गम्यत इति भावार्थः, गतिपरिणामपरिणतानां जीवपुद्गलानां गत्युपष्टम्भको धर्मास्तिकायः मस्यानामिव जलं, तथा स्थितिपरिणामपरिणतानां स्थित्युपष्टम्भकः अवर्मास्तिकायः मस्यानामिव भेदिनी, विवक्षया जलं वा, प्रयोगगतिस्थिती अपेक्षाकारणवत्यौ कार्यत्वाद् घटवत्, विपक्षज्ञैलोक्यगुप्तिमभवो वेत्यलं प्रसंगेत, गमतिकामात्रमेतत् । आह—आकाशास्तिकायसत्त्वा कथमवगम्यते ?, उच्यते, अवगाहवशीनात्तथा चोक्तं—‘अवगाहलक्षणमाकाश’ मिति, आह—जीवास्तिकायसत्त्वा कथमवगम्यते ?, उच्यते, अवग्रहादीनां स्वसवेदनसिद्धत्वात्, पुद्गलास्तिकायसत्त्वाऽनुमानः, घटादिकार्येऽपलब्धेः सांख्यवद्विकप्रत्यक्षतेष्वीति, आह—कालसत्त्वा कथमवगम्यते ?, उच्यते, वकुलचम्पकाशोकादिपुष्पफलप्रदानस्य नियमेन दर्शनात्, नियमकश्च काळ इति, आह—पूर्वानुपूर्वा
दीप अनुक्रम [१०९- ११०]	पृ०- इच्याणि तत्क्रमश्च ॥ ४२ ॥

आगम (४५)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१६-१७] / गाथा [९]
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४५]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [१६-१७]	त्वमसीपामित्थमेव किं कृतमिति ?, अत्रोच्यते, इत्थेष्वोपन्यासवृत्तेः, आह-इत्थमेव क्रमेण धर्मस्तिकायाशुपन्यास एव किमर्थमिति ?, उच्यते, धर्मस्तिकायादिपदश्य मांगलिकत्वाद्धर्मस्तिकायस्य प्रथमसुपन्यासः गतिक्रियाहेतुत्वाच्च, पुनर्धर्मस्तिकायप्रतिपक्षत्वादधर्मस्ति-स्तिकायस्य, पुनस्तदाधारत्वादाकाशास्तिकायस्य, पुनः प्रकृत्याऽमूर्तिसाम्याजीवार्तिकायस्य, पुनस्तदुपवागित्वात्पुद्रल्लास्तिकायस्य, पुनर्जीवा-जीवपर्यायत्वाद्द्वासमयस्येति, ‘से किं तं पञ्चाणुपुब्वी’ त्वादि, पश्चात् प्रभृति प्रतिलोमपरिपाटी पश्चानुपूर्वी, उदाहरणमुत्तकमेणदमेव अद्वासमय इत्यादि, निगदसिद्धं, ‘से किं तं अणाणुपुब्वी’ त्वादि, न आनुपूर्वी अनानुपूर्वो यत्रायं द्विप्रकारोऽपि क्रमो नास्ति, एवमेवार्देवित-दत्तया विवहयत इत्यर्थः, तथा चाह-‘एयाए चेव’ त्ति ‘ऐते छन्न समाणं’ इति वचनादस्यामेवानन्तराधिकृतायां ‘एगादियाए’ त्ति एकादिकायां ‘एगुचिरियाए’ त्ति एकोत्तरायां ‘छमच्छगते’ त्ति वण्णां गच्छः समुदायः षड्गच्छः तं गता-प्राप्ता षड्गच्छगता तस्यां ‘सेढीए’ त्ति श्रेण्यां, किं ?-‘अणामञ्चमासो’ त्ति अन्योऽन्यमञ्च्यसोऽन्योऽन्याभ्यासः; अभ्यासो गुणनेत्यन्यान्तरं, ‘दुरुवृणो’ त्ति द्विरुपन्यूतः, आयन्तरूपरहितोऽनानुपूर्विति संटङ्कः, एव तावदक्षरार्थः, भावार्थेस्तु करणगाथानुसारतोऽवगम्नतव्यः, सा चेयं गाथा-‘पुञ्चा-णुपुञ्चि वैद्वा समयामेदेण कुण जहाजेडं। उवरिमतुङ्गं पुरओ णसेउज्ज पुञ्चकमो सेसे ॥ १ ॥ त्ति, पुञ्चाणपुञ्चिवसहस्रो पुञ्चं वर्णिण्ठो, हेडत्ति पठमाए पुञ्चाणुपुञ्चिलताए अधोभागे रथणं वितियादिलतादिसु ‘सप्रड’ त्ति इह अणाणुपुञ्चिवभंगरयगव्यवस्था समयः तं ‘अभिद-माणो’ त्ति तां भंगरचननाव्यवस्थां अविणासेमाणो, तस्य य विणासो जति सरिसमंकं लताए ठवेति, जति वाऽभिहितलक्षणतो उक्मेण ठवेइति तो भिण्ठो समओ, उक्तं-“जहियंभि उ निकिखते पुणरवि सो चेव होइ दायव्यो। सो होति समयमेओ वज्जेयव्यो पयत्तेण ॥ १ ॥” तं भेदं अवचमाणो कुणसु ‘जहाजेड’ नित जो जस्त आदी एस तस्स जेडो हवति, जहा दुगस्स एको जेडो, अणुजेडो जहा तिगस्स एको,
गाथा ९...	अनानुपू- र्वी भेदाः तदानय- नोपायश्च
दीप अनुक्रम [१०९- ११०]	॥ ४३ ॥

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">..... मूलं [८८-१००] / गाथा [१०]</p>								
	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <table style="width: 100%; border-collapse: collapse;"> <tr> <td style="width: 15%; vertical-align: top; padding: 10px;"> प्रति सूत्रांक [९८- १००] </td> <td style="width: 70%; vertical-align: top; padding: 10px;"> <p>श्रीअनु० हारि.इत्ता</p> <p>॥ ४४ ॥</p> </td> <td style="width: 15%; vertical-align: top; padding: 10px; text-align: right;"> क्षेत्रानु०- व्यादिः </td> </tr> <tr> <td style="vertical-align: top; padding: 10px;"> गाथा ॥१०॥ </td> <td style="vertical-align: top; padding: 10px;"> <p>जेष्ठाणुजेष्ठो जथा चउक्तस्स एको, अतो परं सव्वे जेष्ठाणुजेष्ठा भाणितव्वा, एतोसि अण्णते ठविते ‘ पुरओ ’ ति अग्गओ उवरिलतासरिसे अंके ठवेज्जा, जेष्ठादिअकठवणतो जे एगादिया सेसद्वाणा तेसु जे अटविया सेसगा अंका ते पुठवक्तेषेण ठवेज्जा, जस्स अण्णतेरो परंपरो वा पुव्वो अंको स पुब्वं ठविज्जंते पुव्वकमो भण्णतीत्यर्थः, तथ्य तिण्डं पदाणं इमा ठवगा, १२३-२१३-१३२-२१२-२३१-३२१ अहवा अणाणुपुव्वीणं परिमाणजाणणत्थो सुहविणेयो इमो उवाओ धम्मादिए चेव छापदे पञ्चन्त्र दंसिङ्गइ-एगादिएसु परोपरबासेण सत्त सत्ता वीसुत्तरा भवंति, एकेण दुगो गुणिओ दो दो तिग छ छ चउक्त चउव्वीसं चउव्वीसं पंच वीसुत्तरं सत्त वीसुत्तरं सत्त छक्काण सत्त सत्ता वीसुत्तरा, एते पठमंतिमहीणा अणाणुपुव्वीण सत्त सत्ता अट्टारसुत्तरा हवंति, अगेण उवातो भगिओ चेव ‘ पुष्टवाणुपुव्वी हेष्ठा ’ इत्यादिना, एतमन्येऽपि भूयांस एतोपाया विद्यन्ते न च तैरप्रस्तुतैरिहाधिकार इति न दर्शन्ते, से तं अणाणुपुव्वीति निगमनं, ‘ अहवे ’ त्यादि (९८-७७) अहवेति प्रकारान्तरदर्शनार्थः, औपनिधिकी द्रव्याणुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञपा, तथ्यथा—‘ पूर्वानुपूर्वी ’ त्यादि सूत्रसिद्धं यावत्त्रिगमन-सिति, नवरमाह चोदकः—अथ कस्मात्पुद्गलास्तिकाये एव त्रिविधा दर्शिता, न शेषास्तिकायेषु धम्मादिविति, अत्रोच्यते, असंभवाद्, असंभवश्च धम्माधम्माकाशानां प्रत्येकमेकद्रव्यत्वादेकद्रव्येषु च पूर्वाद्योगान् जीवास्तिकायेऽपि सर्वजीवानामेव तुल्यप्रदेशत्वादेकाद्योकोचरघृदृश-भाववदयो न इति, अद्वासमयस्त्वेकत्वादयोग इत्यलं प्रसङ्गन, प्रस्तुमः प्रकृतं, गता द्रव्याणुपूर्वी । साम्प्रतं क्षेत्रानुपूर्वी प्रति-पादयते, तत्रेदं सूत्रं—‘ से किं तं खेत्ताणुपुव्वी ’ (९९-७८) द्रव्यावगाहोपलक्षितं क्षेत्रमेव क्षेत्रानुपूर्वी, सा द्विविधा प्रज्ञ-सेत्याद्यत्र यथा द्रव्याणुपूर्वी तथैवाक्षरगमनिका कार्या, विशेषं तु बहयामः, ‘ तिपदेसोगाढे आणुपुव्वी ’ ति त्रिपदेशावगाढः उपयुक्तादिस्कन्धः अवगाहावगाहकयोरन्योऽन्यसिद्धेभावेऽप्याकाशस्यावगाहलक्षणत्वान् खेत्रानुपूर्व्यभिकारान् क्षेत्रप्राधान्यान् क्षेत्रानुपूर्वी-</p> </td> </tr> <tr> <td style="vertical-align: bottom; padding: 10px;"> दीप अनुक्रम [१११- ११५] </td> <td style="vertical-align: bottom; padding: 10px; text-align: right;"> <p>॥ ४४ ॥</p> </td> <td style="vertical-align: bottom; padding: 10px;"></td> </tr> </table>	प्रति सूत्रांक [९८- १००]	<p>श्रीअनु० हारि.इत्ता</p> <p>॥ ४४ ॥</p>	क्षेत्रानु०- व्यादिः	गाथा ॥१०॥	<p>जेष्ठाणुजेष्ठो जथा चउक्तस्स एको, अतो परं सव्वे जेष्ठाणुजेष्ठा भाणितव्वा, एतोसि अण्णते ठविते ‘ पुरओ ’ ति अग्गओ उवरिलतासरिसे अंके ठवेज्जा, जेष्ठादिअकठवणतो जे एगादिया सेसद्वाणा तेसु जे अटविया सेसगा अंका ते पुठवक्तेषेण ठवेज्जा, जस्स अण्णतेरो परंपरो वा पुव्वो अंको स पुब्वं ठविज्जंते पुव्वकमो भण्णतीत्यर्थः, तथ्य तिण्डं पदाणं इमा ठवगा, १२३-२१३-१३२-२१२-२३१-३२१ अहवा अणाणुपुव्वीणं परिमाणजाणणत्थो सुहविणेयो इमो उवाओ धम्मादिए चेव छापदे पञ्चन्त्र दंसिङ्गइ-एगादिएसु परोपरबासेण सत्त सत्ता वीसुत्तरा भवंति, एकेण दुगो गुणिओ दो दो तिग छ छ चउक्त चउव्वीसं चउव्वीसं पंच वीसुत्तरं सत्त वीसुत्तरं सत्त छक्काण सत्त सत्ता वीसुत्तरा, एते पठमंतिमहीणा अणाणुपुव्वीण सत्त सत्ता अट्टारसुत्तरा हवंति, अगेण उवातो भगिओ चेव ‘ पुष्टवाणुपुव्वी हेष्ठा ’ इत्यादिना, एतमन्येऽपि भूयांस एतोपाया विद्यन्ते न च तैरप्रस्तुतैरिहाधिकार इति न दर्शन्ते, से तं अणाणुपुव्वीति निगमनं, ‘ अहवे ’ त्यादि (९८-७७) अहवेति प्रकारान्तरदर्शनार्थः, औपनिधिकी द्रव्याणुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञपा, तथ्यथा—‘ पूर्वानुपूर्वी ’ त्यादि सूत्रसिद्धं यावत्त्रिगमन-सिति, नवरमाह चोदकः—अथ कस्मात्पुद्गलास्तिकाये एव त्रिविधा दर्शिता, न शेषास्तिकायेषु धम्मादिविति, अत्रोच्यते, असंभवाद्, असंभवश्च धम्माधम्माकाशानां प्रत्येकमेकद्रव्यत्वादेकद्रव्येषु च पूर्वाद्योगान् जीवास्तिकायेऽपि सर्वजीवानामेव तुल्यप्रदेशत्वादेकाद्योकोचरघृदृश-भाववदयो न इति, अद्वासमयस्त्वेकत्वादयोग इत्यलं प्रसङ्गन, प्रस्तुमः प्रकृतं, गता द्रव्याणुपूर्वी । साम्प्रतं क्षेत्रानुपूर्वी प्रति-पादयते, तत्रेदं सूत्रं—‘ से किं तं खेत्ताणुपुव्वी ’ (९९-७८) द्रव्यावगाहोपलक्षितं क्षेत्रमेव क्षेत्रानुपूर्वी, सा द्विविधा प्रज्ञ-सेत्याद्यत्र यथा द्रव्याणुपूर्वी तथैवाक्षरगमनिका कार्या, विशेषं तु बहयामः, ‘ तिपदेसोगाढे आणुपुव्वी ’ ति त्रिपदेशावगाढः उपयुक्तादिस्कन्धः अवगाहावगाहकयोरन्योऽन्यसिद्धेभावेऽप्याकाशस्यावगाहलक्षणत्वान् खेत्रानुपूर्व्यभिकारान् क्षेत्रप्राधान्यान् क्षेत्रानुपूर्वी-</p>	दीप अनुक्रम [१११- ११५]	<p>॥ ४४ ॥</p>	
प्रति सूत्रांक [९८- १००]	<p>श्रीअनु० हारि.इत्ता</p> <p>॥ ४४ ॥</p>	क्षेत्रानु०- व्यादिः							
गाथा ॥१०॥	<p>जेष्ठाणुजेष्ठो जथा चउक्तस्स एको, अतो परं सव्वे जेष्ठाणुजेष्ठा भाणितव्वा, एतोसि अण्णते ठविते ‘ पुरओ ’ ति अग्गओ उवरिलतासरिसे अंके ठवेज्जा, जेष्ठादिअकठवणतो जे एगादिया सेसद्वाणा तेसु जे अटविया सेसगा अंका ते पुठवक्तेषेण ठवेज्जा, जस्स अण्णतेरो परंपरो वा पुव्वो अंको स पुब्वं ठविज्जंते पुव्वकमो भण्णतीत्यर्थः, तथ्य तिण्डं पदाणं इमा ठवगा, १२३-२१३-१३२-२१२-२३१-३२१ अहवा अणाणुपुव्वीणं परिमाणजाणणत्थो सुहविणेयो इमो उवाओ धम्मादिए चेव छापदे पञ्चन्त्र दंसिङ्गइ-एगादिएसु परोपरबासेण सत्त सत्ता वीसुत्तरा भवंति, एकेण दुगो गुणिओ दो दो तिग छ छ चउक्त चउव्वीसं चउव्वीसं पंच वीसुत्तरं सत्त वीसुत्तरं सत्त छक्काण सत्त सत्ता वीसुत्तरा, एते पठमंतिमहीणा अणाणुपुव्वीण सत्त सत्ता अट्टारसुत्तरा हवंति, अगेण उवातो भगिओ चेव ‘ पुष्टवाणुपुव्वी हेष्ठा ’ इत्यादिना, एतमन्येऽपि भूयांस एतोपाया विद्यन्ते न च तैरप्रस्तुतैरिहाधिकार इति न दर्शन्ते, से तं अणाणुपुव्वीति निगमनं, ‘ अहवे ’ त्यादि (९८-७७) अहवेति प्रकारान्तरदर्शनार्थः, औपनिधिकी द्रव्याणुपूर्वी त्रिविधा प्रज्ञपा, तथ्यथा—‘ पूर्वानुपूर्वी ’ त्यादि सूत्रसिद्धं यावत्त्रिगमन-सिति, नवरमाह चोदकः—अथ कस्मात्पुद्गलास्तिकाये एव त्रिविधा दर्शिता, न शेषास्तिकायेषु धम्मादिविति, अत्रोच्यते, असंभवाद्, असंभवश्च धम्माधम्माकाशानां प्रत्येकमेकद्रव्यत्वादेकद्रव्येषु च पूर्वाद्योगान् जीवास्तिकायेऽपि सर्वजीवानामेव तुल्यप्रदेशत्वादेकाद्योकोचरघृदृश-भाववदयो न इति, अद्वासमयस्त्वेकत्वादयोग इत्यलं प्रसङ्गन, प्रस्तुमः प्रकृतं, गता द्रव्याणुपूर्वी । साम्प्रतं क्षेत्रानुपूर्वी प्रति-पादयते, तत्रेदं सूत्रं—‘ से किं तं खेत्ताणुपुव्वी ’ (९९-७८) द्रव्यावगाहोपलक्षितं क्षेत्रमेव क्षेत्रानुपूर्वी, सा द्विविधा प्रज्ञ-सेत्याद्यत्र यथा द्रव्याणुपूर्वी तथैवाक्षरगमनिका कार्या, विशेषं तु बहयामः, ‘ तिपदेसोगाढे आणुपुव्वी ’ ति त्रिपदेशावगाढः उपयुक्तादिस्कन्धः अवगाहावगाहकयोरन्योऽन्यसिद्धेभावेऽप्याकाशस्यावगाहलक्षणत्वान् खेत्रानुपूर्व्यभिकारान् क्षेत्रप्राधान्यान् क्षेत्रानुपूर्वी-</p>								
दीप अनुक्रम [१११- ११५]	<p>॥ ४४ ॥</p>								

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [८-१००] / गाथा [१०]
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [९८- १००]	श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ४५ ॥
गाथा ॥१०॥	ति, एवं यावदसंख्येयप्रदेशावगाढोऽनन्तप्रदेशिकादिराजुपूर्वीति, ‘एगप्रदेशावगाढः परमाणुः यावद- नन्ताणुकस्कन्धो बाऽनानुपूर्वी, ‘दुपदेसोगाढे अवत्तव्यए’ द्विप्रदेशावगाढो द्वयणुकादिरक्तव्यकं, एत्थावगाढो द्वयाणं इमेण विहिणा—अणाणुपूर्विवद्वाणं परमाणुं नियमा एगम्नियं चेव पदेसेऽवगाढो भवति, अवत्तव्यवद्वाणं पुण देष्पदेशियाणं एगम्नियं चा दोमु वा, आणुपूर्विवद्वाणं पुण तिपदेशिगादीर्णं जहणेणं एगम्नियं पदेसे उक्तोसेणं पुण जो खंधो जत्तिष्ठैं परमाणुर्हि गिर्कण्णो सो तत्तिष्ठैं चेव पदेसेहि ओगाहति, एवं जाव संखेजासंखेजपदेशिओ, अणंतपदेशिओ पुण खंधो एगप्रदेशारद्धो एगप्रदेशुत्तरवृक्षीए उक्तोसओ जाव असंखेजेसु पदेसेसु ओगाहति, नानन्तेषु, लोकाकाशस्यासंख्येयप्रदेशात्मकत्वात्परतश्चावगाहनाऽयोगादित्यलं प्रसंगेन, शेषं सूत्रसिद्धं यावत योगमवबहाराणं आणुपूर्विवद्वाइं किं संखेजाइं असंखेजाइं अणंताइ॒, नेगमवव० आणु० नो संखेजाइं असंखेजाइं नो अणंताइं, एवं अणाणुपूर्विवद्वाणिवि, तत्र असंखेयति क्षेत्रप्राधान्यात् द्रव्यावगाहक्षेत्रस्यासंख्येयप्रदेशात्मकत्वात्तुल्यप्रदेशावगाढानां च द्रव्यतया बहुनामप्ये- कत्वादिति । क्षेत्रद्वारे निर्वचनसूत्रं—‘एग दव्यं पहुच्च लोगस्स संखेजातिभागे वा होऽमे’ त्वादि, तथाविधस्कन्धसद्गावाद्, एवं शेषव्यपि भावनीयं, यावद् ‘देसूणे वा लोए होज्ज’ ति आह-अचित्तभास्कन्धस्य सकललोकव्यापित्वात्क्षेत्रप्राधान्यविवक्षायामपि कस्मात्संपूर्णं एव लोको नोच्यते? इति, उच्यते, सदैवानानुपूर्ववक्तव्यकद्रव्यसद्गावान् जघन्यतोऽपि तत्पदेशत्रयेणोनत्वाद् व्याप्ती सत्यामपि तत्प्रदेशेष्वानुपूर्व्याः प्राधा- न्यावाद्, उक्तं च पूर्वमुनिभिः—‘महव्यंधापुण्णेवी अवत्तव्यगाढाइं तदेसेणं स लोगोणो ॥ १ ॥ य य तत्थ तस्स जुज्जइ पाधण्णं वावि तिवि (तंमि) देसंभि । तप्याधन्नत्तणओ इहराऽभावो भवे तासें ॥ २ ॥ ” अविकृतानुपूर्वास्कन्धप्रदेशकल्प- नातो वा देशोन एव लोक इति, यथोक्तमजीवग्रहापनाथां—“धर्मतिथिकाए धर्मतिथिकायस्स देसो धर्मतिथिकायस्स पदेसे, एवमधमागासे,
दीप अनुक्रम [१११- ११७]	॥ ४६ ॥

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">..... मूलं [४८-१००] / गाथा [१०]</p>
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [१८- १००] गाथा [१०..]	<p style="text-align: center;"> श्रीअनु० हरि.वृष्टी ॥ ४६ ॥ </p> <p style="text-align: right;"> वे गानुपूर्णी ॥ ५६ ॥ </p> <p> पुमालेसुवि ” इह चावयवावयविरूपत्वाद्वस्तुनः अवयवावयविनोश्च कथंचिद्देवादेशप्रवेशकल्पना साध्यीति, न च देश एव देसी सर्वथा, तदे- कत्वे देशमात्र एवासौ स्यादेषो वा देशिमात्र इति, अतः स्वदेशस्यैव कथंचिदन्यत्वोहशोनो लोक इति । किंच—खेताणुपुष्ट्वीए आणुपुष्ट्वीअव- त्तवगद्वविभागत्तणओ य तेसि परोपरमवगाहो, परिणमांति वा, य वा तेसि खंधभावो अस्थि, कथं?, उच्यते, एदेसाण अचलभावत्तणओ, सतो य अपरिणामत्तणओ, तेसि च भावप्पमाणनिलक्षत्तणओ, अतो खेताणुपुष्ट्वीए एगं दव्वं पदुच्च देसूणे लोगोत्ति भणियं, दव्वाणुपु- ष्ट्वीए पुण दव्वाण एगापेसावगाहत्तणओ एग॥वगाहेऽवि दव्वाण आयभावेण भिन्नत्तणओ परिणामत्तणओ खंधभावपरिणामत्तणओ य, अतो एगं दव्वं पदुच्च दव्वलोगोत्ति, भणितं च—“ कह णवि दव्विए चेऽवेवं खंधे सविवक्षया पिधत्तेण । दव्वाणुपुष्ट्विताइं परिणामइ खंधभावेण॥ १॥ ” अत्रोच्यते, बादरपरिणामेसु आनुपुष्ट्विदव्वपरिणामो चेव भवति, नो अणाणुपुष्ट्विअवत्तवगद्ववेण, जओ बादरपरिणामो खंधभावे एव भवति, ते पुण सुहुमा ते तिविहावि अस्थि, किंच—जया अचित्तमहाखंधपरिणामो भवति तदा ते सध्ये सुहुमा आयभावपरिणामं अमुंचमाणा तत्परिणता भवति, तस्स सुहुमत्तणओ सव्वगतत्तणओ य, कथमेवं ?, उच्यते, छायातपोयोतबादरुद्गलपरिणामवत्, स्फटिककृष्णादिवर्णपरंजितवत्, सरिसो पुच्छेइ-दव्वाणुपुष्ट्विए एगादव्वं सव्वलोगावगाहांति, कहं पुण महं एवगं वा भवति ?, उच्यते, केवलिसमुद्धातवत्, उकं च—“केवलिड- ग्धाओ इव समयद्वम पूर रेयति य लोये । अचित्तमहाखंधो बेला इव अतर णियतो य ॥ १ ॥ ” अचित्तमहाखंधो सलोगमेत्तो वीससापरि- णतो भवति, तिरियमसंखेजजायोयणप्पमाणो अणियतकालठीरी वटो उड्हुमहो चोइसरज्जुप्पमाणो सुहुमपोगलपरिणामपरिणतो पढमसमए दंडो भवति वितिए कबाढं तद्दृष्टं मंथं करेइ चउत्थे लोगपूरणं पंचमादिसमप्तसु पञ्चलोमं सहारेण अद्वसमयंते सव्वहा तस्स खंधओ विणासो, एव जलनिहिवेचा इव लोगपूरणरेयकरणेण ठितो लोगपुरगलाणुभावो, सव्वणुबयणतो सद्देवो इत्यलं प्रसंगेन । ‘ यापादव्वाइं पहुच णियमा </p>

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१०१] / गाथा [१०....]
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [१०१] गाथा ॥१०..॥	<p>श्रीअनु० हारि.इति ॥ ४७ ॥</p> <p>सबलोएवी' त्यादि (१०१--७०), अस्य भावना-इत्यादिप्रदेशावगाहैर्व्यभेदैः सकललोकस्यैव व्याप्तत्वादिति । अनानुपूर्व्यालोचनायां त्वेकं द्रव्यं प्रतीत्य असंख्येयभाग एव, तस्य नियमत एवैकप्रदेशावगाहैर्व्यभेदैः सकललोकस्यैव व्याप्तत्वादिति । विशिष्टैकपरिणाम-विद्विः प्रत्येकप्रदेशावगाहैर्व्यभेदैः समप्रलोकव्याप्तेः, आधेयभेदेन वाधारभेदोपपत्तेः, वस्तुनश्चानन्तर्मात्मकत्वात्तसहकारणसञ्चिताने सति तस्य २ धर्मस्थाभिव्यक्तेः, धर्मिभेदेन च क्षेत्रप्रदेशाविशेषेऽनुपूर्वीतराभिधानप्रवृत्तेतरपि सूक्ष्मधिया भावनीयं । एवं अवत्तव्यगद्वाराणि विभावार्थं उत्त एव, नवरमवक्तव्यकैकद्रव्यं द्विप्रदेशावगाहैं भवति, स्पर्शनायां तु यथाऽऽकाशप्रदेशानामेव स्पर्शना, ततः स्वत्वानुपूर्व्यादिद्रव्याधारत्वादिष्टानामेव वड्डिकार्थितानन्तरप्रदेशैरेव सह वाऽवगन्तव्या, इह पुनः किल सूत्राभिप्रायो यथाऽऽकाशप्रदेशावगाहैर्व्यस्यैवं चिन्तनीयेति वृद्धा व्याचक्षते, भावार्थस्वनन्तरद्वारानुसारतो भावनीय इति । कालचितायामपि यथाकाशप्रदेशानामेव कालश्चित्यते ततः किल नभ्रप्रदेशानामनावर्यवीसितत्वात् स एव वक्तव्यः, सूत्राभिप्रायस्वानुपूर्व्यादिद्रव्याणामेवावगाहस्थितिकालश्चिन्त्यते इत्येके, न चेह क्षेत्रसंडानामपि विशिष्टपरिणामपरिणताधेयद्रव्याधारभावेऽपि चिन्त्यमाने विरुद्ध्यत इति, युक्तिपतितश्चायमेव, क्षेत्रानुपूर्व्यधिकारादिति, तत्र 'एगं दृढं पञ्च जहन्नेण एकं समयं' भित्यादि, अस्य भावना-द्विप्रदेशावगाहैं तदन्यसञ्चिपाते त्रिप्रदेशावगाहैं भूत्वा समयानन्तरमेव पुनर्द्विप्रदेशावगाहैर्व्यभेदै भवति, उत्कृष्टतस्वसंख्येयं कालं भूत्वेति, आधेयभेदाच्चेहाधारभेदो भावनीय इति, शेषं भावितार्थं ॥ अन्तर-विता प्रकटार्थी, नवरमुक्तुष्टतः असंख्येयं कालं, नानन्तं यथाऽनानुपूर्व्याभिति, कस्मात् ?, सर्वपुद्गलानामवगाहक्षेत्रस्य स्थितिकालस्य चासंख्येयत्वात्, क्षेत्रानुपूर्व्यधिकारस्य व्याख्येयत्वात्, क्षेत्रानुपूर्व्यधिकारे च क्षेत्रप्राधान्याद्, असंख्येयकालादारतश्च पुनरस्तप्रदेशानां तथाविधाधेयभावेन तथाभूताधारपरिणामभावादित्यतिगहनमेतद्विहैतैर्भावनीयमिति ॥ भागचिन्तायामानुपूर्व्यादित्याणि शेषद्रव्येभ्योऽसंख्येयेषु भागेष्वि- क्षेत्रानुपूर्वी ॥ ४७ ॥</p>

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१०१] / गाथा [१०....]	
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
प्रत सूत्रांक [१०१]	श्रीअग्नु० हारि.वृत्तौ ॥ ४८ ॥	स्युकं, अत्रैके व्याचक्षते-यदा। यदा खप्रदेशानुपूर्विभाविति चिंतिज्ञाति तदा तदा पण्डवणाभिएषपरिक्षणाए समूणातिरितभागो भाणितच्चो, जया पुण अवगाहिद्वा तदा संखेज्जेसु भागेसुति, जहा दव्याणुपूर्वी ए तदा भागितच्च, तत्र विनेयजनानुग्रहार्थं क्षेत्रानुपूर्वी एव प्रकान्तत्वात् इव्यानुपूर्वास्त्वापित्वेन गुणीभूतत्वात् क्षेत्रानुपूर्वीमेवाधिकृत्य प्रज्ञापनाभिप्रायः प्रतिपाद्यते-तत्रानुपूर्वादिव्याणि शेषद्वयेऽप्योऽसंबन्धेयभागैर-विकानीति वाक्यशेषः, इत्थं चैतवंगिकर्तव्यं, यस्मादनानुपूर्ववक्तव्यकद्रव्याणि तेभ्योऽसंख्येयभागैरधिकानीति, क्षेत्रानुपूर्वाधिकारात् क्षेत्र-स्वण्णान्यधिकृत्येयमालोचना, ततः स्वल्पानुपूर्वादिद्रव्याधारलोकक्षेत्रस्य चतुर्दशरज्ज्वात्मकत्वेन तुल्यत्वात्तदंतर्गतप्रदेशानां च सर्वेषामेवानुपूर्वाधिभिर्द (व्यैवर्यास्त्वात् समत्वं द्र) व्याधारलोकक्षेत्रस्य प्रत्युत इयादिप्रदेशसमुदायेवाकाशस्त्वाप्णेषु प्रतिस्थितेकानुपूर्वीगणनादानुपूर्वीणामेवाल्पता युक्तिमती, अवक्तव्यानानुपूर्वीणां तु द्विप्रदैक्षिकप्रदेशिकबंडालां गणनात् बहुता, तस्मिंस्थं विपर्यय इति?, अत्रोच्यते, इह इयादिप्रदेशाधेयपरिणामद्रव्याधारत्वेन क्षेत्रानुपूर्वोऽभिधीयते, तत्र त्रिप्रदेशाभिधेयपरिणामवंत्यनंतान्यपि इव्याणि विशिष्टैकिन्निप्रदेशसमुदायलक्षणक्षेत्र-व्यवस्थितान्यैकेका क्षेत्रानुपूर्वी, एवं चतुःप्रदेशोष्वाधेयपरिणामवंत्यपि असंख्येयप्रदेशाधेयपरिणामवत्पर्यतानि विशिष्टैकचतुःप्रदेशादसंख्य-यप्रदेशान्तसमुदायलक्षणक्षेत्रव्यवस्थितानि प्रतिमद्भैरवैति, किन्तु यदेकं त्रिप्रदेशसमुदायलक्षणमानुपूर्वीव्यपदेशाहै क्षेत्रं तदेव तदन्या-नंतर्भतुःप्रदेशाद्याधेयपरिणामवद्व्याध्यासितमेकैकक्षेत्रप्रदेशवृद्धया परिणामभेदतो भेदेनानुपूर्वीव्यपदेशमर्हति, असंख्येयाश्र प्रभेद-कारिणः क्षेत्रप्रदेशा इति, न चायमवक्तव्यकानानुपूर्वीणां न्यायः संभवति, नियतप्रदेशात्मकत्वादतोऽसंख्येयभागैरधिकानीति स्थितं, न च तज्जनेव स्वभावेन त्रिप्रदेशाधेयपरिणामवतां द्रव्याणामाधारता प्रतिष्ठाते, नैव चतुःप्रदेशाद्याधेयपरिणामवतामयि, तेषामति त्रिप्र-देशाधेयपरिणामोपयते: विपर्ययो वा, तदेवमनन्तधर्मात्मके वस्तुनि सति विचक्षेतरधर्मात्मके वस्तुनि तोपसर्जनद्वारेणापिलभिह भावनीयमित्यजं
गाथा ॥१०..॥		कालानु- पूर्वी
दीप अनुक्रम [११६]		॥ ४८ ॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१०२-१०३] / गाथा [१०...]	
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
प्रत सूत्रांक [१०२- १०३]	श्रीअनु० हारि.वृत्ती ॥ ४९ ॥	प्रसंगेन । भावविन्तायामानुपूर्वाद्रव्याणि नियमात् सादिपारणामिके भावे, विशिष्टाधेयाधारभावस्य सादिपारिणामिकात्मकत्वाद्, एवमनानुपूर्वीअ- वक्तव्यकान्यपि, अल्पबहुत्वविन्तायां द्रव्यार्थतां प्रत्यानुपूर्वाणामैकैकगणनं, प्रदेशार्थतां तु भेदेन तद्रत्नप्रदेशगणनं, द्रव्यार्थप्रदेशार्थतां तूभय- गणनं, तत्र सव्यवस्थावाइं णेगमववहाराणं अवत्तव्यगदव्यादव्यादव्याप्त्यकद्रव्याणामिति, अणाणुपुत्रिवद्वाइं दव्यादव्याए विसेसाधित्याइं, कथं ?, एकप्रदेशात्मकत्वादनानुपूर्वाणां इति, आह- यद्येवं कस्माद् द्विगुणान्येव न भवत्येकप्रदेशात्मकत्वात् तद्विगु- णत्वभावादिति, अत्रोच्यते, तदन्यसंयोगतोऽवधीकृतवक्तव्यकवाहुत्याच्च नाधिकृतद्रव्याणि द्विगुणानि, किंतु विशेषाधिकान्येव, ‘ आणुपुर्वी- दव्याइं दव्यादव्याए अभंसेजगुणाइं ’ अत्र भावना प्रतिपादितैव, ‘ पदेसद्व्याए सव्यवस्थावाइं णेगमववहाराणं अणाणुपुत्रिवद्वाइं ’ ति प्रकटार्थ, ‘ अवत्तव्यगदव्याइं पदेसद्व्याए विसेसाधित्याइं ’ अस्य भावार्थः—इह खलु रुचकाद्वाराभ्य लेत्रप्रदेशात्मकत्वादवक्तव्यक्षेपित्यतिरिक्तद- न्यप्रदेशसंसर्गमित्यज्ञवक्तव्यकगणनया तथा लोकनिष्ठुठगतप्रदेशावक्तव्यकायोग्यानानुपूर्वीयोग्यभावतथेति सूक्ष्मबुद्ध्या भावनीय इति । इह विनेयजनानुप्रहार्थ स्थापना लिख्यते, शेषं भावितार्थं यावत् ‘ सेत्तं णेगमववहाराणं अणोवगिहिया खेत्ताणुपूर्वी ’ सेयं लैगमउत्यवहारयो- रनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी । ‘ से किं तं संगहसे ’ त्यादि (१०२-८७) इयमानिगमनं द्रव्यानुपूर्व्यनुसारलो भावनीया, नवरमत्र क्षेत्रस्य प्राधान्यमिति । औपनिधिक्यपि प्रायो निमदित्तद्वेष, णवरं पंचतिथिकायमइओ लोगो, सो आयामओ उडुमहे पतिद्विओ, तस्स तिहा परिकल्पणा इमेण विहिणा-बहुसम्भूमिभागा रथणप्यभाभागे मेहमज्ज्वे अट्टपदेसो रुयगो, तस्स अहोपयराओ अहेण जाव णव योजणशतानि तिरियलोगो, ततो परेण अहे ठिवत्तणओ अहोलोगो सहियसत्तरजुप्पमाणो, रुयगाओ उपरिहुत्तो णव जोयणसत्ताणि जाव जोइसचक्कस्स उवरित्तलो ताव तिरियलोगो, तओ उडुलोगठित्तचाणओ उवरिं उडुलोगो देसूणसत्तरजुप्पमाणो, अहोलोगुडुलोगाण मञ्ज्जे अट्टारसजोयण-
गाथा ॥१०..॥		भावानुपूर्वी अल्पबहुत्वं
दीप अनुक्रम [११७- ११८]		॥ ४९ ॥

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">मूलं [१०२-१०३] / गाथा [१०...]</p>
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रति सूत्रांक [१०२- १०३] गाथा [१०..]	<p>श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥५०॥</p> <p>सतप्पमाणो तिरियभागठियतणथो तिरियलोगो, ‘ अहव अहो परिणामो खेत्तणुभावेण लेण उस्सण्णं । असुभो अहोस्ति भणिओ दद्वाणं लेण-उहोलेगो ॥ १ ॥ उद्बुंति उवरिमंति य सुहखेत्तं खेत्तओ य दद्वगुणा । उपज्जंति य भावा लेण य सो उद्बुलेगो ति ॥ २ ॥ मज्जणुभावं खेत्तं जं तं तिरियं बयणपञ्जयओ । भण्णइ तिरिय विसालं अतो य तं तिरियलोगोत्ति ॥ ३ ॥’ अहोलेक लेत्रानुपूर्व्या रत्नप्रभादीनाम-नादिकालसिद्धानि नामानि यथास्वमूर्णि विज्ञातव्यानि, तथाथ-‘ घम्मा वंसा सेला अंजण रिट्टा मघा च माघवती । पुढीणं नामाइ रथणादी होति गोत्ताइ ॥ १ ॥ ’ रत्नप्रभादीनि तु गोत्राणि, तत्रेन्द्रनीलादिबहुविधरत्नसंभवान्नरकवर्ज प्रायो रत्नानां प्रभा-ज्योत्सना यस्यां सो रत्नप्रभा, एवं शेषा । अपि यथानुरूपा वाच्या इति, नवरं शर्करा-उपठाः वालुकापंकधूमकृष्णातिकृष्णद्रव्योपलक्षणद्वारेणि, तिर्यग्लोकक्षेत्रानुपूर्व्या जंबुदीवे दीवे लवणसमुदे धायइसंडे दीवे कालोदे समुदे उदगरसे पुक्खरवरदीवे पुक्खरोदे समुदे उदगरसे वहणवेर दीवे वरुणोदे समुदे वह-णरसे खोदवेर दीवे खोदोदे समुदे वयवेर दीवे घओदे समुदे खीरवेर दीवे खीरवरे समुदे, अतो परं सध्वे दीवसरिसणाभिया समुदा, ते य सञ्चे खोदरसा भाणियवा । इमे दीवणामा, तंजह-जंदीसरो दीवो अरुणवरो दीवो अरुणावासो दीवो कुँडलो दीवो, एते जंबूदीवाओ गिर-तरा, अतो परं असंखेजे गंतुं मुजगवरे दीवे, पुणो असंखेजे दीवे गंतुं कुसवेर दीवे, एवं असंखेजे २ गंतुं इमेसि एकेकं णामं भाणियवं, कोंचवेर दीवे, एवं आभरणादाओ जाव अन्ते संयंभूरसणो, से अन्ते समुदे उदगरसे इति । जे अन्तरंतरा दीवे वेसि इहं सुभणामा जे केह तण्णामाणो ते भाणितव्वा, सञ्चेसि इमं पमाणं, ‘ उद्दारसागराणं अङ्गुइज्जाणं जातिया समया । दुगुणादुगुणायावित्यर दीवोहाहि रज्जु पवईया ॥ १ ॥ ऊर्ध्वलोकलेत्रानुपूर्व्या तु सौधर्मावंतसकाभिधानसकलविमानप्रधानविशेषोपलक्षितः सौधर्मः, एवं शेषेऽपि भावनीयमिति, लोकपुरुषधीवाविभागे भवानि वैवेयकानि, न तेषामुत्तराणि विश्वंत इत्यनुत्तराणि, मनाग्भाराकान्तपुरुषवत् नता अंतेषु ईष्टप्रागभारेत्यलं प्रसंगेन</p> <p style="text-align: right;">ओपनिधि- कीथेत्रानु- पूर्वी तिर्य- ग्लोकादि</p> <p style="text-align: right;">॥५०॥</p>
दीप अनुक्रम [११७- ११८]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१०४-११३] / गाथा [११-१७]
प्रत सूत्रांक [१०४- ११३]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा [११- १७]	<p>श्रीअनु० हारि.हृचौ ॥ ५१ ॥</p> <p>प्रकृतं प्रस्तुमः, उक्ता क्षेत्रानुपूर्वी ॥ साम्प्रतं कालानुपूर्व्युक्त्यते—तत्रेवं सूत्रं—‘ से किं तं कालानुपूर्वी ’ (१०४-१२) तत्र द्रव्यपर्यायत्वात्कालस्य इयादिसमयस्थित्याशुपलक्षितद्रव्याण्येव । ‘ कालानुपूर्वी द्विविधा प्रज्ञसे ’ त्यादि, (१०५-१२) अस्या यथा द्रव्यानुपूर्व्यस्तथैवाक्षरागमनिका कार्या, विशेषं तु वक्त्यामः, तिसमयद्वितीये आणुपुष्टिविस्त्रित्युक्तादि द्रव्यपर्याययोः; कथंचिदभेदेऽपि आनुपूर्व्यथिकारात्तत्प्राधान्यात्कालानुपूर्वीति, एवं यावदसंख्येऽसमयस्थितिः, एवमेकसमयस्थित्यनामुपूर्वी, द्विसमयस्थित्यवक्तव्यकं, शेषं प्रगटार्थं, यावत् ‘ णो भंखे उजाइ असंख्यजाइ णो अणन्ताइ ’ अस्य भावना-इह कालप्राधान्यान् त्रिसमयस्थितीनां भावानामन्तानामप्येकत्वात्तदनु समयवृद्ध्याऽसंख्येऽसमयस्थितीनां परतः खल्वसंभवात्, समयवृद्ध्याऽध्यासितानां चानन्तानामपि द्रव्याणां कालानुपूर्व्यमध्यकृत्यैकत्वादसंख्येयानि, अथवा त्यादि-प्रदेशावगाहसंबंधित्यादिसमयस्थित्यपेह्येति उग्राधिभूतखस्याप्यसंख्येयप्रदेशात्मकत्वादिति, एवं तिणिगति, आह-ए ५समयस्थितीनामनन्तानामप्येकत्वात्तेषां चानन्तानामपि कालापेक्षया प्रत्येकमेकत्वाद् द्रव्यभेदग्रहणे चानन्तप्रसङ्गः कथमनानुपूर्वी (अ) वक्तव्यकथोरसंख्येयत्वमिति, अत्रोच्यते, आधारभेदसंबंधस्थित्येत्यात्, सामान्यतश्चाधारलोकस्थानसंख्येयप्रदेशात्मकत्वादित्यनया दिशाऽतिगहनमिदं सूक्ष्मवृद्ध्याऽऽलोकनीयमिति । ‘एगं दब्बं पद्मुच्च लोगस्त असंख्येज्जतिभगे होज्जा ध जाव देसूणे वा लोगे होज्जा’, केवं भणांति-पदेसूणाति, कथं ?, उच्यते, दब्बओ एगो संख्यो सुहुमपरिणामो पदेसूणे लोए अवगाढो, सो चेव कयाइ तिसमयठितीओ लब्धभृत्यं संख्येया आणुपूर्वी, जं पुण समत्तलोगागासपदे-सावगाढं दब्बं तं नियमा चउत्थसमए एगसमयठितीओ लब्धइ, तम्हा तिसमयठितीयं कालाणुपूर्वी नियमा एगपदेसूणे चेव लोए लब्धति, अहवा तिसमयादिकालाणुपुष्टिवद्व्यं जहणगो एगपदेसे अवगाहति, तथ्य च पदेसे एगसमयठितीयं कालओ अणाणुपुष्टिवद्व्यं दुसमयठितीयं च अवत्तव्यं अवगाहति, जम्हा एवं तम्हा अचित्तो महाखंडो चउत्थसमए कालओ आणुपुष्टिवद्व्यं, तस्य संख्यलोगावगाड़सवि</p>
दीप अनुक्रम [११९- १३६]	अनौपनि- धिकी कालानु- पूर्वी ॥ ५१ ॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१०४-११३] / गाथा [११-१७]
प्रति सूत्रांक [१०४- ११३] गाथा [११- १७] दीप अनुक्रम [११९- १३६]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>प्रति सूत्रांक [१०४- ११३] गाथा [११- १७] दीप अनुक्रम [११९- १३६]</p> <p>श्रीअनु० हारि.वृत्ती ॥ ५२ ॥</p> <p>एगपदेसूणता कज्जइ, कम्हति १, उच्यते, जे कालओ अणाणुपुञ्चिवअवत्तवा ते तस्स एगपदेसावगाढा, तस्स य तंभि पदेसे अप्याहणत्तविष- कवाओ, अतो तप्पदेसूणे लोके कठो, एथ दिङ्गतो जहा खेत्ताणुपुञ्ची पदेसोना इत्यर्थः, “एगाञ्चिम तप्पदेसे कालणुपुञ्चवादि तिणिण वा दब्बा । ओगाहंते जम्हा पदेसूणोति तो लोगो ॥१॥ अणे पुण आयरिया भण्णति-‘ कालपदेसो समओ समयचउत्थमि हवति जंखेलं । लेणूणवत्तणता जं लोको कालमयसंधो ॥ २ ॥ ” अयमत्र भावार्थः-इह कालानुपूर्व्यविकारात्कालस्य च वर्त्तनादिरूपत्वात्पर्यायस्य च पर्यायिभ्योऽभेदात्स खल्वचित्तमहाख्यवश्चतुःसमयात्मकालरूपः अतः कालप्रदेशः, कालविभागः समय इति, ततश्च समये चतुर्थं भवति-वर्त्तते यद्देलमिति- यस्यां वेलायामसीं स्कन्धः, स हि तदा विवक्ष्यैकत्वाद् न गृष्णते, अतस्तेणूणति विवक्षितः, चतुःसमयात्मकस्कन्धस्तेनोनः परिगृष्णते, कथमेतदेवं ‘ वत्तण ’ ति वर्त्तनारूपत्वात्कालस्य, जं लोको कालमयसंधोति विवक्ष्यैव यस्मालोकः कालसमयस्कन्धो वर्त्तते, अतस्तस्य प्रदेशस्य समया- गणने प्रदेशेनोनो लोक इत्येवमन्यथापि सूक्ष्मबुद्धया भावनीयमिति । ‘ णाणादव्वाइं पङ्क्ष नियमा सङ्कलोए ’ ति उवादिप्रदेशावगाहञ्चयादि- समयस्थितीनां सकललोके भावात्, अनानुपूर्वाद्रव्यचिन्तायां एगं दब्बं पङ्क्षच लोयस्य असंखेज्जतिभागे होज्जा, सेसपुञ्छा पङ्क्षेहितव्वा, भावार्थस्त्वेकप्रदेशावगाहैकसमयस्थितेविवक्षितव्वादिना प्रकारेणागमानुसारतो वाच्यः, आदेशांतरेण वा अस्य भावना-अचित्तमहास्कन्धो दंडावत्थास्लविद्वत्तणं मोरुं कवाडावत्थाभवणं तं अन्नं चेव दब्बं भवति, अणागारभावत्तणओ बहुतरसंशातपरमाणुसंधातत्तणओदयठि- तितो दुपदेसियभवणं वा, एवं भंथापूरणलोगापूरणसमएसु महास्कन्धस्याप्यन्यान्यद्रव्यभवनं, अतो कालणुपुञ्चिवद्वं सङ्ख्युच्छासु संभवतीत्यर्थः, ‘ णाणादव्वाइं पङ्क्षच नियमा सङ्कलोए होज्ज’ति भावितार्थं द्रव्यप्रमाणद्वार पवेति, अवक्तव्यकद्रव्यचिन्तायां ‘ एगं दब्बं पङ्क्ष लोगस्स असंखेज्जतिभागे होज्जा ’ द्विप्रदेशावगाहद्विसमयस्थितिविवक्षितभावात्, आदेशांतरेण वा महासंधवज्जमणदव्वेसु आदिलचउपुञ्छासु</p> <p>कालानु- पूर्वादि- स्थितिः</p> <p>॥ ५२ ॥</p>
	*** अथ कालानुपूर्वी-अधिकारः अन्तर्गत् ‘काल-समय’वर्णनं आरक्ष्यते

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१०४-११३] / गाथा [११-१७]
प्रति सूत्रांक [१०४- ११३]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा [११- १७]	<p>श्रीअनु० हारि.हृचौ ॥५३॥</p> <p>होज्जा, अस्य हृदयं-देशोनलोकावगाल्यपि द्विसमयस्थितिर्भवति, शेषं सुगमं, यावदन्तरचिन्तायां ‘एं दब्बं पङ्कुच्च जहणेण एकं समयं उक्तोसेणं दो समया’ अन्तरं त्वेण दब्बं पङ्कुच्च जहणेण एकसमयं, एगढाणे तिथि वा चत्तारि वा असंखेज्जे वा समया ठातिइण ततो अन्नहि गदूणं तत्थ एं समयं ठाइडण अन्नहि गंतुं तिथिण वा चत्तारि वा असंखेज्जा वा समया ठाति, एवं आणुपुञ्चिवद्वस्सेगस्स जहणेण एं समयं अंतरं होति, उक्तोसेणं दो समया, एकहि ठाणेहि तिथि वा चत्तारि वा असंखेज्जे वा समये ठाइडण ततो अन्नहि ठाणे दो समया ठातिइण अण्णहि तिथिण वा चत्तारि वा असंखेज्जा वा समया ठाति एवं उक्तोसेणं दो समया अंतरं होइ, जइ पुण मज्जिमठाणे तिथि समया ठायइ तो मज्जिमे वा ठाणे तं आणुपुञ्चिवद्वं चेवति अंतरं चेव ण होइ, तेणवं चेव दो समया अंतरं। आह-जहा अन्नहि ठाणे दो समया ठिं एवमन्नहि पि किमेकं न चिडति?, पुणोवि अन्नहि दो अण्णहि एकंति, एवं अणेण आयारेण कम्हा असंखेज्जा समया अंतरं न भवति ?, उच्यते, एस्य कालाणुपुञ्ची पगता, तीए य कालस्स पाधणं, जहा य अणेण पदेसद्गाणेण अंतरं कज्जइ तदा खेत्तदरेण करणाओ खेत्तस्स पाहणं कतं भवति ण पुण कालस्स, अतो जेण केणइ पगारेण तिसमयादि इच्छुति तेणेव कालपाहणत्तणओ आणुपुञ्ची लघभइत्त काचं दो चेव समया अंतरंति रिथितं, णाणादव्वाइं पङ्कुच्च णिथि अंतरं, जेण असुणो लोगो, अणाणुपुञ्चिवअंतरपुच्छा, एक-दब्बं प्रकृत्योच्यते-जहणेण दो समया, पढमे ठाणे एगसमयं ठाइडण मज्जिमे ठाणे दो समयं ठाइडण अन्तिमे एं समयं ठाति, एवं जहणेण अंतरं दो समया, जति पुण मज्जिमेवि एकं समयं ठायइ ततो अंतरं चेव न होति, मज्जिमिल्लठाणे अणाणुपुञ्ची चेवति, तम्हा दो चेव जहणेण समया, उक्तोसेण असंखेज्जकाळं, पढमे ठाणे एकं समयं चिडिइण मज्जिमे ठाणे असंखेज्जे समए चिडिइण अन्तिमे ठाणे एक-समयं ठाति, एवमसंखेज्जं काळं उक्तोसेण अंतरं होति, णाणादव्वाइं पङ्कुच्च णिथि अंतरं, भागद्वारं तथा भावद्वारं अल्पवहुत्वद्वारं च खेत्रा-</p>
दीप अनुक्रम [११९- १३६]	कालानु- पञ्ची अन्तरं ॥५३॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [११४] / गाथा [१५...]
पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
प्रति सूत्रांक [११४] गाथा [१५..]]	<p>श्रीअनु० हारि.वृत्ती ॥ ५४ ॥</p> <p>तुपूर्व्यनुसारतो व्याख्येपान्तरमपात्य स्तिमितोपयुक्तेनान्तरात्मना कालप्राधान्यमविकृत्य निखिलमेव भावनीयमिह पुनर्भावितार्थत्वाद्वाद्य- विस्तरभयाच्च नोक्तमिति, शेषं सूत्रसिद्धं, यावत् ‘अहंवोद्यन्तिहिया कालाणुपुष्ट्वी तिविहा पञ्चते’ त्वादि (११४-१८) अत्र सूत्रक्रि- यानिवैतः कालस्तस्य सर्वप्रमाणानामाद्यः परमः सूहमः अभेद्यः निरवयवः उत्पलपत्रशतवेधाणुदाहरणोपलक्षितः समयः, तेऽसि असंखेज्जाण समुद्यसमितीए आवलिथा, संखेज्जाओ आवलिथाओ आगुच्छि-उसासो, संखेज्जाओ आवलिथाओ गिस्सासो, दोषद्विकाळो एगो पाणू, सत्त- पाणूकाळो एगो योवो, सत्तथोवकाळो एग लवो, सत्तहत्तरिलवो एगमुहुत्तो, अहोरत्तादिया कंठा जाज वाससशसहस्रा, ‘इच्छायठाणेण गुणं पणमुण्णं चबरासीतिगुणितं च । काञ्जण तद्यवारा पुञ्चगादीण सुण संखं ॥ १ ॥ पुञ्चवंगे परिमाणं पञ्च सुणं चउरासीय १, तं एगं पुञ्चवंगं चुलसीए सत्तसहस्रेहि गुणितं एगं पुञ्च भवति, तस्स इमं परिमाणं [दस सुणा] छप्पणं च सहस्रा कोडीणं सत्तरि लक्खा य २, तं एगं पुञ्च चुलसीए पुञ्चसत्तसहस्रेहि गुणितं से एगे तुडियंगे भवति, तस्स इमं परिमाणं—पणरस सुणा य, तओ चउरो सुणं सत्त दो णव पञ्च ठवेडजा ३, एवं चुलसीदीए सत्तसहस्रा गुणिता सव्वठाणे कायव्वा, ततो तुडियादयो भवति, तेऽसि चहासंखं परिमाणं- लुडिए वसिं सुणा, ततो छ ति एगो सत्त अट्ट सत्त णव चउरो ठवेडजा ४ अड्डंगे पणवीसं सुणा ततो चउ दो चउ नव एको एको दो अट्ट एको चउरो य ठवे- जा ५ अड्डे तीसं सुणा तओ छ एको छ एको ति सुणं अट्ट णव दो एको पण तिर्ग ठवेडजा ६, अववंगे पणतीसं सुणा, तओ चउ चउ सत्त पण पण छ चउ ति सुणं णव सुणं पण णव दो य ठवेडजा ७, चत्तालीसं सुणा तओ छ णव चउ दो अट्ट सुणं एको एको णव अट्ट पण सत्त अट्ट सत्त चउ दो य ठवेडजाहि अववे य ८ हूहूयंगे य पणचत्तालीसं सुणा, तओ चउ छ छ णव दो णव सुणं ति पण अट्ट चउ सत्त पञ्च एको दो अट्ट सुणं दो य ठवेडजा ९, हूहूए पणासं सुणा, तओ छ सत्त एगो णव सुणं अट्ट पण</p> <p>समयादयः शीर्षप्रहेलि- कान्ताः</p> <p>॥ ५४ ॥</p>
*** अत्र ‘समय’ शब्दात् आरभ्य शीर्षप्रहेलिका पर्यन्त ‘काल’स्य वर्णनं	

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">..... मूलं [११४] / गाथा [१५....]</p>			
	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <table style="width: 100%; border-collapse: collapse;"> <tr> <td style="width: 15%; vertical-align: top; padding: 10px;"> प्रति सूत्रांक [११४] श्रीअनु० हारि॒वृत्ती॑ ॥ ५५ ॥ </td> <td style="width: 60%; vertical-align: top; padding: 10px;"> <p>पण छ सत्त अट्ठ दो दो एको सुण्णं यव चउ सत्त एकं च ठवेज्जा १०, उपलंगे पणपण सुण्णा, तओ चउ अट्ठ एको यव सुण्णं सत्त यव ति दो चउ ति छ एको दो तिणि सुण्णं सत्त एको यव छ चउ यां च ठवेज्जा ११, उपले सट्ठि सुण्णा, तओ छ पण चउ एको सत्त पण पण ति एको छ सत्त दो सत्त एगो सुण्णं सत्तं सुण्णं ति सुण्णं एको चउ ति दो एकं ठवेज्जा १२, पउमंगे पणसट्ठि सुण्णा, चउ सुण्णं ति दो सुञ्च सुञ्च अट्ठ अट्ठ ति पण यव एको पण चउ यव य अट्ठ सत्त पण छ चउ छ छ ति सुण्णं एगं च ठवेज्जा १३, पउमे सत्तरि सुण्णा, तओ छ ति पण ति यव एको दो यव पण दो एको चउ, सुण्णं सुण्णं यव ति एको ति छ दो एको ति अट्ठ सत्त सुण्णं सत्त अट्ठ य ठवेज्जा १४, गणिणे पंचसत्तरि सुण्णा, ततो चउ दो सुण्णं सत्त पण दो चउ चउ सत्त सत्त पण छ चउ ति छ सत्त छ ति सुण्णं एको छ दो अट्ठ सत्त पण चउ एको ति सत्त ठवेज्जा १५, गणिणे असीति सुण्णा, ततो छ एको सुण्णं सुण्णं यव पण सत्त एक पण सुण्णं पण दो एको एको ति एको अट्ठ अट्ठ सुण्णं सत्त दो यव ति सत्त पण चउ दो चउ एको छ ठवेज्जा १६, अत्थणितरंगे पंचासी सुण्णा, तओ चउ चउ ति एको छ पण सत्त सत्त चउ ति चउ सुण्णं पण चउ एको सुण्णं ति सुण्णं चउ पण सत्त अट्ठ यव सुण्णं दो चउ छ एको एको छ एको पंच य ठवेज्जा १७, अत्थणितरे यत्ति सुण्णा, तओ छ यव अट्ठ दो पण एको पण एको दो पण छ ति अट्ठ एको दो ति पण अट्ठ ति ति पण यव दो छ ति यव सत्त यव सत्त ति पण ति ति चउरो य ठवेज्जा १८, अउवंगे पंचणवति सुण्णा, तओ चउ छ दो ति चउ अट्ठ दो सत्त छ सत्त सत्त सत्त छ दो चउ ति सुण्णं सत्त छ ति चउ अट्ठ सुण्णं अट्ठ अट्ठ चउ छ छ दो सुण्णं यव एको सत्त एको चउ छ ति तिणि य ठवेज्जा १९, अउते सुण्णसतं, ततो छ सत्त एको चउ ति अट्ठ अट्ठ एगो पण चउ दो ति यव चउ अट्ठ सत्त अट्ठ सुण्णं ति अट्ठ छ अट्ठ सुण्णं यव यव यव चउ अट्ठ ति दो अट्ठ यव ति चउ सुण्णं यव पण सुण्ण तिणि य ठवेज्जा २०, गउतंगे सुण्णसतं पंचाधितं, तओ </p> </td> <td style="width: 25%; vertical-align: top; padding: 10px;"> समयादयः शीर्षग्रहेलि- कान्ताः ॥ ५५ ॥ </td> </tr> </table>	प्रति सूत्रांक [११४] श्रीअनु० हारि॒वृत्ती॑ ॥ ५५ ॥	<p>पण छ सत्त अट्ठ दो दो एको सुण्णं यव चउ सत्त एकं च ठवेज्जा १०, उपलंगे पणपण सुण्णा, तओ चउ अट्ठ एको यव सुण्णं सत्त यव ति दो चउ ति छ एको दो तिणि सुण्णं सत्त एको यव छ चउ यां च ठवेज्जा ११, उपले सट्ठि सुण्णा, तओ छ पण चउ एको सत्त पण पण ति एको छ सत्त दो सत्त एगो सुण्णं सत्तं सुण्णं ति सुण्णं एको चउ ति दो एकं ठवेज्जा १२, पउमंगे पणसट्ठि सुण्णा, चउ सुण्णं ति दो सुञ्च सुञ्च अट्ठ अट्ठ ति पण यव एको पण चउ यव य अट्ठ सत्त पण छ चउ छ छ ति सुण्णं एगं च ठवेज्जा १३, पउमे सत्तरि सुण्णा, तओ छ ति पण ति यव एको दो यव पण दो एको चउ, सुण्णं सुण्णं यव ति एको ति छ दो एको ति अट्ठ सत्त सुण्णं सत्त अट्ठ य ठवेज्जा १४, गणिणे पंचसत्तरि सुण्णा, ततो चउ दो सुण्णं सत्त पण दो चउ चउ सत्त सत्त पण छ चउ ति छ सत्त छ ति सुण्णं एको छ दो अट्ठ सत्त पण चउ एको ति सत्त ठवेज्जा १५, गणिणे असीति सुण्णा, ततो छ एको सुण्णं सुण्णं यव पण सत्त एक पण सुण्णं पण दो एको एको ति एको अट्ठ अट्ठ सुण्णं सत्त दो यव ति सत्त पण चउ दो चउ एको छ ठवेज्जा १६, अत्थणितरंगे पंचासी सुण्णा, तओ चउ चउ ति एको छ पण सत्त सत्त चउ ति चउ सुण्णं पण चउ एको सुण्णं ति सुण्णं चउ पण सत्त अट्ठ यव सुण्णं दो चउ छ एको एको छ एको पंच य ठवेज्जा १७, अत्थणितरे यत्ति सुण्णा, तओ छ यव अट्ठ दो पण एको पण एको दो पण छ ति अट्ठ एको दो ति पण अट्ठ ति ति पण यव दो छ ति यव सत्त यव सत्त ति पण ति ति चउरो य ठवेज्जा १८, अउवंगे पंचणवति सुण्णा, तओ चउ छ दो ति चउ अट्ठ दो सत्त छ सत्त सत्त सत्त छ दो चउ ति सुण्णं सत्त छ ति चउ अट्ठ सुण्णं अट्ठ अट्ठ चउ छ छ दो सुण्णं यव एको सत्त एको चउ छ ति तिणि य ठवेज्जा १९, अउते सुण्णसतं, ततो छ सत्त एको चउ ति अट्ठ अट्ठ एगो पण चउ दो ति यव चउ अट्ठ सत्त अट्ठ सुण्णं ति अट्ठ छ अट्ठ सुण्णं यव यव यव चउ अट्ठ ति दो अट्ठ यव ति चउ सुण्णं यव पण सुण्ण तिणि य ठवेज्जा २०, गउतंगे सुण्णसतं पंचाधितं, तओ </p>	समयादयः शीर्षग्रहेलि- कान्ताः ॥ ५५ ॥
प्रति सूत्रांक [११४] श्रीअनु० हारि॒वृत्ती॑ ॥ ५५ ॥	<p>पण छ सत्त अट्ठ दो दो एको सुण्णं यव चउ सत्त एकं च ठवेज्जा १०, उपलंगे पणपण सुण्णा, तओ चउ अट्ठ एको यव सुण्णं सत्त यव ति दो चउ ति छ एको दो तिणि सुण्णं सत्त एको यव छ चउ यां च ठवेज्जा ११, उपले सट्ठि सुण्णा, तओ छ पण चउ एको सत्त पण पण ति एको छ सत्त दो सत्त एगो सुण्णं सत्तं सुण्णं ति सुण्णं एको चउ ति दो एकं ठवेज्जा १२, पउमंगे पणसट्ठि सुण्णा, चउ सुण्णं ति दो सुञ्च सुञ्च अट्ठ अट्ठ ति पण यव एको पण चउ यव य अट्ठ सत्त पण छ चउ छ छ ति सुण्णं एगं च ठवेज्जा १३, पउमे सत्तरि सुण्णा, तओ छ ति पण ति यव एको दो यव पण दो एको चउ, सुण्णं सुण्णं यव ति एको ति छ दो एको ति अट्ठ सत्त सुण्णं सत्त अट्ठ य ठवेज्जा १४, गणिणे पंचसत्तरि सुण्णा, ततो चउ दो सुण्णं सत्त पण दो चउ चउ सत्त सत्त पण छ चउ ति छ सत्त छ ति सुण्णं एको छ दो अट्ठ सत्त पण चउ एको ति सत्त ठवेज्जा १५, गणिणे असीति सुण्णा, ततो छ एको सुण्णं सुण्णं यव पण सत्त एक पण सुण्णं पण दो एको एको ति एको अट्ठ अट्ठ सुण्णं सत्त दो यव ति सत्त पण चउ दो चउ एको छ ठवेज्जा १६, अत्थणितरंगे पंचासी सुण्णा, तओ चउ चउ ति एको छ पण सत्त सत्त चउ ति चउ सुण्णं पण चउ एको सुण्णं ति सुण्णं चउ पण सत्त अट्ठ यव सुण्णं दो चउ छ एको एको छ एको पंच य ठवेज्जा १७, अत्थणितरे यत्ति सुण्णा, तओ छ यव अट्ठ दो पण एको पण एको दो पण छ ति अट्ठ एको दो ति पण अट्ठ ति ति पण यव दो छ ति यव सत्त यव सत्त ति पण ति ति चउरो य ठवेज्जा १८, अउवंगे पंचणवति सुण्णा, तओ चउ छ दो ति चउ अट्ठ दो सत्त छ सत्त सत्त सत्त छ दो चउ ति सुण्णं सत्त छ ति चउ अट्ठ सुण्णं अट्ठ अट्ठ चउ छ छ दो सुण्णं यव एको सत्त एको चउ छ ति तिणि य ठवेज्जा १९, अउते सुण्णसतं, ततो छ सत्त एको चउ ति अट्ठ अट्ठ एगो पण चउ दो ति यव चउ अट्ठ सत्त अट्ठ सुण्णं ति अट्ठ छ अट्ठ सुण्णं यव यव यव चउ अट्ठ ति दो अट्ठ यव ति चउ सुण्णं यव पण सुण्ण तिणि य ठवेज्जा २०, गउतंगे सुण्णसतं पंचाधितं, तओ </p>	समयादयः शीर्षग्रहेलि- कान्ताः ॥ ५५ ॥		

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">..... मूलं [११४] / गाथा [१५....]</p>					
	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <table style="width: 100%; border-collapse: collapse;"> <tr> <td style="width: 15%; vertical-align: top; padding: 10px;"> प्रति सूत्रांक [११४] गाथा [१५..॥] </td><td style="width: 70%; vertical-align: top; padding: 10px;"> <p>चउ अटु सत्त सुण्णं सत्त सुण्णं दो अटु पण णव पण दो ति चउ ति णव सत्त ति णव सत्त ति णव दो ति दो णव णव ति णव दो ति सुण्ण दो पण चउ णव छ पण णव छ पण दोन्नि य ठवेज्जा २१, पतुते सुण्णसत्यं दसाधितं, तओ छ पण अटु पण चउ णव ति णव अटु चउ सुण्ण अटु ति ति अटु चउ छ अटु सत्त छ अटु सत्त छ पण पण ति पण पण अटु सुण्णं सत्त पण ति ति चउ एको छ चउ अटु पण एको दोषिण य ठवेज्जा २२, पयुत्तंगे पणरसुत्तरं सुण्णसत्तं, तओ चउ सुण्णं पण एको पण चउ एको छ णव ति सुण्ण छ चउ छ सुण्ण सुण्ण पण सुण्ण सुण्ण एको छ सत्त अटु णव चतु अटु एको पण पण ति पण चउ सुण्ण छ सत्त सुण्ण एको ति एको अटु एगं ठवेज्जा २३, पडते वीसुत्तरं सुण्णसत्तं, तओ छ ति पण णव पण णव एको अटु छ एको ति ति सत्त दो ति सत्त छ दो चउ पण छ पण सत्त चउ दो पण णव पण णव अटु ति पण पण ति अटु पण सुण्णं अटु सत्त अटु ति सुण्णं एको सुण्णं ति दो पण एगं च ठवेज्जा २४, चूलियंगे पणतीसुत्तरं सुण्णसत्तं, तओ चउ दो छ चउ ति छ चउ अटु दो एको छ अटु पण पण णव चउ पण पण चउ अटु पण पण चउ पण पण सत्त छ सत्त पण दो सत्त दो पण अटु एको छ दो सुण्ण छ सत्त पण दो सत्त अटु दो विषिण नव सत्त दो एगं च ठवेज्जा २५, चूलियाए तीसुत्तरं सुण्णसत्तं, तओ छ एको चउ अटु सुण्ण ति पण भुण्ण पण सत्त चउ ति वे पण छ एको छ दु सुण्णं एको पण छ एको दो अटु सुण्णं पण चउ छ पण अटु दो छ पण पण एको छ अटु ति छ पण एको छ ति छ चउ सत्त सुण्णं एकं च ठवेज्जा २६, खीसपहेलियंगे पणतीसुत्तरं सुण्णसत्तं, तओ चउ चउ नव छ सुण्णं पण एको अटु ति चउ दो दो सत्त पण सत्त अटु सत्त पण एको छ अटु छ अटु एको सुण्ण पण छ अटु एको सुण्ण ति ति अटु दो ति छ सत्त सुण्णं चउ चउ छ पण अटु अटु चउ ति चउ पण छ दो सुण्ण पण २७, सीसपहेलियाए चत्तां सुण्णसत्यं, ततो छ पण दो ति अटु एको सुण्णं अटु सुण्ण अटु चउ अटु छ पण अटु एको</p> </td><td style="width: 15%; vertical-align: top; padding: 10px;"> समयादयः शीषप्रहेलि- कान्ताः </td></tr> <tr> <td style="vertical-align: bottom; padding: 10px;"> दीप अनुक्रम [१३७] </td><td style="vertical-align: bottom; padding: 10px;"> <p style="text-align: right;">॥ ५६ ॥</p> </td></tr> </table>	प्रति सूत्रांक [११४] गाथा [१५..॥]	<p>चउ अटु सत्त सुण्णं सत्त सुण्णं दो अटु पण णव पण दो ति चउ ति णव सत्त ति णव सत्त ति णव दो ति दो णव णव ति णव दो ति सुण्ण दो पण चउ णव छ पण णव छ पण दोन्नि य ठवेज्जा २१, पतुते सुण्णसत्यं दसाधितं, तओ छ पण अटु पण चउ णव ति णव अटु चउ सुण्ण अटु ति ति अटु चउ छ अटु सत्त छ अटु सत्त छ पण पण ति पण पण अटु सुण्णं सत्त पण ति ति चउ एको छ चउ अटु पण एको दोषिण य ठवेज्जा २२, पयुत्तंगे पणरसुत्तरं सुण्णसत्तं, तओ चउ सुण्णं पण एको पण चउ एको छ णव ति सुण्ण छ चउ छ सुण्ण सुण्ण पण सुण्ण सुण्ण एको छ सत्त अटु णव चतु अटु एको पण पण ति पण चउ सुण्ण छ सत्त सुण्ण एको ति एको अटु एगं ठवेज्जा २३, पडते वीसुत्तरं सुण्णसत्तं, तओ छ ति पण णव पण णव एको अटु छ एको ति ति सत्त दो ति सत्त छ दो चउ पण छ पण सत्त चउ दो पण णव पण णव अटु ति पण पण ति अटु पण सुण्णं अटु सत्त अटु ति सुण्णं एको सुण्णं ति दो पण एगं च ठवेज्जा २४, चूलियंगे पणतीसुत्तरं सुण्णसत्तं, तओ चउ दो छ चउ ति छ चउ अटु दो एको छ अटु पण पण णव चउ पण पण चउ अटु पण पण चउ पण पण सत्त छ सत्त पण दो सत्त दो पण अटु एको छ दो सुण्ण छ सत्त पण दो सत्त अटु दो विषिण नव सत्त दो एगं च ठवेज्जा २५, चूलियाए तीसुत्तरं सुण्णसत्तं, तओ छ एको चउ अटु सुण्ण ति पण भुण्ण पण सत्त चउ ति वे पण छ एको छ दु सुण्णं एको पण छ एको दो अटु सुण्णं पण चउ छ पण अटु दो छ पण पण एको छ अटु ति छ पण एको छ ति छ चउ सत्त सुण्णं एकं च ठवेज्जा २६, खीसपहेलियंगे पणतीसुत्तरं सुण्णसत्तं, तओ चउ चउ नव छ सुण्णं पण एको अटु ति चउ दो दो सत्त पण सत्त अटु सत्त पण एको छ अटु छ अटु एको सुण्ण पण छ अटु एको सुण्ण ति ति अटु दो ति छ सत्त सुण्णं चउ चउ छ पण अटु अटु चउ ति चउ पण छ दो सुण्ण पण २७, सीसपहेलियाए चत्तां सुण्णसत्यं, ततो छ पण दो ति अटु एको सुण्णं अटु सुण्ण अटु चउ अटु छ पण अटु एको</p>	समयादयः शीषप्रहेलि- कान्ताः	दीप अनुक्रम [१३७]	<p style="text-align: right;">॥ ५६ ॥</p>
प्रति सूत्रांक [११४] गाथा [१५..॥]	<p>चउ अटु सत्त सुण्णं सत्त सुण्णं दो अटु पण णव पण दो ति चउ ति णव सत्त ति णव सत्त ति णव दो ति दो णव णव ति णव दो ति सुण्ण दो पण चउ णव छ पण णव छ पण दोन्नि य ठवेज्जा २१, पतुते सुण्णसत्यं दसाधितं, तओ छ पण अटु पण चउ णव ति णव अटु चउ सुण्ण अटु ति ति अटु चउ छ अटु सत्त छ अटु सत्त छ पण पण ति पण पण अटु सुण्णं सत्त पण ति ति चउ एको छ चउ अटु पण एको दोषिण य ठवेज्जा २२, पयुत्तंगे पणरसुत्तरं सुण्णसत्तं, तओ चउ सुण्णं पण एको पण चउ एको छ णव ति सुण्ण छ चउ छ सुण्ण सुण्ण पण सुण्ण सुण्ण एको छ सत्त अटु णव चतु अटु एको पण पण ति पण चउ सुण्ण छ सत्त सुण्ण एको ति एको अटु एगं ठवेज्जा २३, पडते वीसुत्तरं सुण्णसत्तं, तओ छ ति पण णव पण णव एको अटु छ एको ति ति सत्त दो ति सत्त छ दो चउ पण छ पण सत्त चउ दो पण णव पण णव अटु ति पण पण ति अटु पण सुण्णं अटु सत्त अटु ति सुण्णं एको सुण्णं ति दो पण एगं च ठवेज्जा २४, चूलियंगे पणतीसुत्तरं सुण्णसत्तं, तओ चउ दो छ चउ ति छ चउ अटु दो एको छ अटु पण पण णव चउ पण पण चउ अटु पण पण चउ पण पण सत्त छ सत्त पण दो सत्त दो पण अटु एको छ दो सुण्ण छ सत्त पण दो सत्त अटु दो विषिण नव सत्त दो एगं च ठवेज्जा २५, चूलियाए तीसुत्तरं सुण्णसत्तं, तओ छ एको चउ अटु सुण्ण ति पण भुण्ण पण सत्त चउ ति वे पण छ एको छ दु सुण्णं एको पण छ एको दो अटु सुण्णं पण चउ छ पण अटु दो छ पण पण एको छ अटु ति छ पण एको छ ति छ चउ सत्त सुण्णं एकं च ठवेज्जा २६, खीसपहेलियंगे पणतीसुत्तरं सुण्णसत्तं, तओ चउ चउ नव छ सुण्णं पण एको अटु ति चउ दो दो सत्त पण सत्त अटु सत्त पण एको छ अटु छ अटु एको सुण्ण पण छ अटु एको सुण्ण ति ति अटु दो ति छ सत्त सुण्णं चउ चउ छ पण अटु अटु चउ ति चउ पण छ दो सुण्ण पण २७, सीसपहेलियाए चत्तां सुण्णसत्यं, ततो छ पण दो ति अटु एको सुण्णं अटु सुण्ण अटु चउ अटु छ पण अटु एको</p>	समयादयः शीषप्रहेलि- कान्ताः				
दीप अनुक्रम [१३७]	<p style="text-align: right;">॥ ५६ ॥</p>					

| | |

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [११५-११८] / गाथा [१६]
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रति सूत्रांक [११५- ११८] गाथा ॥१६॥	<p>श्रीअञ्जु० हारि.इत्यौ ॥ ५७ ॥</p> <p>दो छ सुण्णं च छ छ णव छ पण ति सत्त णव सत्त पण एको एको च दो सुण्णं एको सुण्ण ति सत्त सुण्ण ति पण दो ति छ दो अडु पण सत्त य ठवेज्जा २८, एवं सीसपहेलिया चउणविठाणसतं जाव य संववहारकाले ताव संववहारविसय, क्षेण य पठमपुढविणेरइयाणं भवणवंतराण य भरहरवएसु सुसमदुस्समाए पच्छिमे भागे णरतिरियाणं आडप उवभिजन्ति, किं च-सीसपहेलि- याए य परतो अतिथं संखेज्जो कालो, सो य अणतिसईं अववहारिडत्तिकाऽ ओवस्मे पक्षिवत्तो, तेण सीसपहेलियाए परतो पलिओवमादि उवण्णतथा, शेषमानिगमनं कालानुपूर्वी पाठसिद्धं । ‘से किं त’ मित्यादि, (११५-१००) उत्कीर्तनं-संशब्दनं यथार्थाभिधानं तस्यानुपूर्वी—अनुपरिपाठी त्रिविधा प्रज्ञसा, तथाथा—पूर्वानुपूर्वीत्यादि पूर्ववत्, तत्र पूर्वानुपूर्वी ‘उसभ’ इत्यादि, आह- वस्तुत आवश्यकस्य प्रकृतसत्त्वात् सामाधिकं चतुर्विंशतिसत्त्व इत्यादि वक्तव्यं किमर्थमेतत्सूत्रान्तरभिति, अत्रोच्यते, शेषश्रुतस्यापि सामान्यमेतदिति ज्ञापनार्थं, तथाहि-आचाराद्यनुयोगेऽपि प्रत्यध्ययनमेतत्सर्वमेवाभिधातव्यमित्युदाहरणमात्रत्वाद्ग्रावतामेव च तीर्थप्रणेतृत्वात्, शेषं सूत्रसिद्धं यावत् ‘से तं उकित्तणाणुपुष्टिं’ ति ‘से किं त’ मित्यादि (११७-१०१), इहाङ्कुतिविशेषः संस्थानं, तत् द्विविधं जीवाजीवमेदात्, इह जीवसंस्थानेनाधिकारः, तत्रापि पचेऽद्रियसंबंधिना, तत्पुनः स्वनामकर्मप्रत्ययं पद्धविधं भवति, आह च-‘समचतुरसे’ यादि, तत्र समं-तुल्यारोहपरिणामं संपूर्णांगोपाङ्गावयवं स्वांगुलाङ्गशतोच्छायं समचतुरशं, नाभीत उपर्यादि लक्षणयुक्तं अधस्तादनुरूपं न भवति तस्मा- तप्रमाणाद्वीनतरं न्यग्रोधपरिमंडलं, नाभीतः अथः आदि-लक्षणयुक्तं संक्षिप्तविकृतमध्यं कुडं, स्कंधपृष्ठेदशवृद्धमित्यर्थः, लक्षणयुक्तमध्यग्रीवा- शुपरिहस्तपादयोरप्यादिरलक्षणं न्यूनं च लिंगेऽपि वामनं, सर्वावयवाः प्रायः आदिलक्षणविसंवादिनो यस्य तत् हुंडं, उक्तं च—‘तुल्यं वित्थरबहुलं चसेहवहुं च मडहकोहुं च । होट्टिलकायमडहं सञ्चत्थासंठियं हुंडं ॥ १ ॥’ पूर्वानुपूर्वाक्षमश्च यथाप्रथममेव प्रधानत्वादिति, शेषमानिगमनं</p> <p>कालानु- पूर्वी</p> <p>॥ ५७ ॥</p>
दीप अनुक्रम [१३८- १४२]	

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">मूलं [११५-११८] / गाथा [१६]</p>
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रति सूत्रांक [११५- ११८]	<p style="text-align: right;">श्रीअनु० हारि.वृत्ती० ॥ ५८ ॥</p> <p>पाठसिद्धभेदेति । ‘से किं तं सामायारियाणुपूर्वी’ त्थादि, इह समाचरणं समाचारः-शिष्टाचरितः क्रियाकलापः तस्य भावः ‘गुणवचन-त्रासाणादिभ्यः कर्मणि इव्यज्ञ चे’ ति (पा-५-१-१२४) इव्यज्ञ्, सामाचार्यं, सोऽयं भावप्रत्ययो ननुसके भावे भवति, वित्करणसामर्थ्योच्च श्लीलिंगोऽपि, अतः क्षियां ढीप् सामाचारी, सा पुनश्चिविधा-‘पदविभागे’ ति वचनात् इह दशविधसामाचारीमधिकृत्य भण्यते, ‘इच्छामिच्छे’-त्थादि (१६-१०२) तत्र इच्छाकारः मिथ्याकारः तथाकारः, अत्र कारशब्दः प्रत्येकमभिसंबद्धते, तत्रैषणमिच्छा-क्रियाप्रवृद्धयभ्युपगमः करणं कारः इच्छाकारः आज्ञाबलाभियोगव्यापारप्रतिपक्षो व्यापारणं चेत्यर्थः, एवमध्यरगमनिका कार्या, नवरं मिथ्या-वित्तमयथा यथा भगवदिद्विरुद्धकं न तथा दुष्करभेदविति प्रतिपत्तिः मिथ्यादुष्कृतं, मिथ्या-अक्रियानिवृत्युपगम इत्यर्थः, अविचार्य गुरुवचनकरणं तथाकारः, अवश्यं गंतव्यकारणमित्यतो गच्छामीति अस्यार्थस्य संसूचिका आवश्यकी, अन्यापि कारणापेक्षा या या किया सा क्रिया अवश्या क्रियेति सूचितं, निविद्वात्मा अहमास्मिन् प्रविशामीति शेषसाधूनामन्वाख्यानाय त्रासादिवोषपरिहरणार्थं, अस्यार्थस्य संसूचिका नौवेदिकी, इदं करोमीति प्रच्छनं आप्रच्छना, सकृदचार्योणोक्तं इदं त्वया कर्तृव्यभिति पुनः प्रच्छनं प्रतिप्रच्छन्नं, छंदना-प्रोसात्मना, इदं भक्तं भुवेत्व इति, निसंत्रणं अहं ते भक्तं लब्ध्वा दास्यामीति, उक्तं च-“पुव्वगद्विएण छंदण निसंतणा होइत्ताहिएणं ।” तत्राहमित्यभ्युपगमः श्रुताधर्थेषुपर्संपत्, उक्तं च-“सुय सुहुदुक्षेष्वते मग्गे विणयेवसंपदा एवं ।” एवभेता॒ः प्रतिपत्तयः सामाचारीपूर्वीनुपूर्वीमिति, आह-क्रियोऽयं क्रमनियम इति, येनेत्यभेत्व पूर्वानुपूर्वी॑ प्रतिपादात इति, उक्तयते, इह सुमुक्षुणा सम्प्रसामाचार्यनुष्ठानपरेण आज्ञाबलाभियोग एव स्वपरोपतापहेतुत्वात्प्रथमं वर्जनीयः, सामायिका-ख्यप्रधानगुणलाभात्, ततः किञ्चित्स्वल्लनसंभव एव मिथ्यादुष्कृतं दातव्यं, ततोऽप्येवंविधेनैव सता यथावद् गुरुवचनमनुष्ठेयं, सफलप्रयास-त्वात्, परमगुरुवचनाव्यवस्थितस्य त्वसामायिकवतः स्वल्लनामलितस्य वा गुरुवचनानुष्ठानभावेऽपि पारमार्थिककलापेक्षयाऽनिष्पत्तपदानी(१)त्वतः</p>
गाथा ॥१६॥	
दीप अनुक्रम [१३८- १४२]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [११९-१२३] / गाथा [१७]
पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
प्रति सूत्रांक [११९- १२३] गाथा ॥१७॥	<p>क्रमनियमः, शेषं सुगमं यावत्तिगमनमिति । ‘से किं त’ भित्यादि (११९-१०४) तत्र कर्मविपाक उदयः उदय एवौदथिकः, यद्वा तत्र भव- स्तेन वा निर्वृत्त इत्येवं शेषेष्वपि व्युत्पत्तिर्योजनीया इति, नवरत्नपशमः मोहनीयस्य कर्मणः । (सर्वासां प्रकृतीनां) उदयभ्रुतुर्णामिष्टानां वा प्रकृतीनां क्षयः, कस्यचिदंशस्य क्षयः कस्यचिदुपशम हर्ति क्षयोपशमौ, प्रयोगविश्रसोऽद्वः परिणामः, अमीयोभैवेकादिसंयोगरचनं सक्षिपातः; क्रमः पुनरभीषां सुखनारकादिगत्युदाहरणभावतः प्राप्यत्तदन्याधारश्च प्रथमप्रौदयिकस्ततः सर्वस्तोकत्वादौपशमिकः ततस्तद्वृहतरत्वादेव क्षायो- पशमिकः ततोऽपि बहुत्वात् क्षायिकः ततोऽपि सर्वबहुत्वात्पारिणामिकः ततः औदयिकादिमेलनसमुत्पन्नकः सञ्जापातिक इति, शेषं प्रकटार्थं यावत् ‘से तं आणुपुच्छि’ ति निगमनं वाच्यं ।</p> <p>‘से किं तं दुनामे ? २ दुविहे पञ्चते, तं०-एगक्खरिए य अणेगक्खरिए य’ (१२२-१०५) एकशब्दः संख्यावाचकः, व्यञ्यतेऽनेन- नाथः प्रदीपेनेव घट इति व्यंजनं-अक्षरसुच्यते, तच्चेह सर्वमेव भाष्यमाणं अकारादि-हकारान्तमेवार्थाभिध्यंजकत्वाच्छब्दस्य, एकं च तद- क्षरं चरं एकाक्षरेण निभवत्ते एकाक्षरिकं, एवमनेकाक्षरिकं नाम, हीः-छड्जा श्रीः-देवताविशेषः-धीः-बुद्धिः श्री प्रतीता, ‘से किं तं आणेगक्खरिये’ त्यादि प्रकटार्थं, यावत् ‘अवसेसियं जीवदव्यं विसेसियं नेरइय’ इत्यादि, तत्र नरकेषु भवो नारकः तिर्यग्योनौ भवः तिर्यक् मननान्मनुज्यः दीर्घतिं देवः, शेषं निगदसिद्धं यावद् द्विनामाधिकारः, नवरं पर्याप्तके विशेषः पर्याप्तनामक्षमर्देयात् पर्याप्तकः, अपर्याप्तनामक्षमोदयाच्चापर्या- प्तक इति । एकेन्द्रियादिविभागेषु स्पर्शनरसनन्द्राणवक्षुश्रोताणांद्रियाणि क्रमिपिरीलिकाभ्रमरमतुष्यादीनभैक्षश्चानि, सूक्ष्मबादविवेषोऽपि सूक्ष्मबादनामक्षमोदयनिवर्धनं इति, संमूर्च्छिमगर्भव्युत्कांतिकभेदेषु संमूर्च्छिमः तथाविधकमोदयादगर्भेज एकेन्द्रियादि: पंचेन्द्रियावसानः, गर्भ- व्युत्कान्तिकस्तु गर्भजः पंचेन्द्रिय एव, ‘से तं दुनामे’ ति । ‘से किं तं तिनामे ?’ (१२३-१०९) अविकृतं नाम त्रिविधं प्रज्ञाप्तं, तथाथा-</p> <p style="text-align: right;">दिनाम ॥५९॥</p>
दीप अनुक्रम [१४३- १५०]	
*** अथ ‘नाम्नः ‘दुनाम’, तीनाम’ आदि श्वेदाः वर्णयते	

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">..... मूलं [११९-१२३] / गाथा [१७]</p>
प्रति सूत्रांक [११९- १२३] गाथा [१७] ६०	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p style="text-align: right;">विनाम चतुर्नामं च</p> <p>श्रीअनु० हारि.वृत्ता ६० </p> <p>द्रव्यनाम गुणनाम पर्यायनाम, एतानि प्रायो प्रथम एव भावनीयानि, नवरं द्रव्यगुणपर्यायस्वरूपं, द्रव्यं धर्मास्तिकायादि, गुणा गत्यादयः, तद्यथा-गतिगुणो धर्मास्तिकायः स्थितिगुणोऽधर्मास्तिकायः अबगाहगुणमाकाशं उपयोगगुणा जीवा वर्त्तनादिगुणः कालः पुद्गलगुणा खणादयः, पर्यायास्त्वमीषामगुरुलघवः; अनेताः, आह-तुर्वे द्रव्यर्वे किं पुद्गलस्तिकायगुणादीनां प्रतिपादनं न धर्मास्तिकायादिगुणादीनां, (यथा) पुद्गलानगमिन्द्रियप्रत्यक्षविषयतया तस्य तद्गुणानां च सुप्रतिपादकत्वं न तथाऽन्येयामिति, इति च वर्णं पञ्चवा कृष्णनील-लोहितकापोतशुक्लारुपः प्रतीत एव. कपिशादयस्तु संसर्गेजा इति न तेषामुपन्यासः, गंधो द्विधा-सुरभिर्दुरभिश्च, तत्र सौमुख्यकृन् सुरभिः दौर्मुख्यकृत् दुरभिः, साधारणपरिणामोऽस्पष्टमह इति संसर्गजस्त्वादेव नोक्तः, एवं रसेष्वपि संसर्गजानभिश्वानं वेदितव्यं, रसः पञ्चवि-धस्तित्तकदुकपायाम्लमधुरारुपः, इलेष्मादिदोषप्रवृत्तिः वैश्याच्छेदनशुक्लदुःखः अश्रुचिसंस्तंभनकर्मा कषायः आश्रवणस्तेहनकृदम्लः हादन-वृहणकृन्मधुरः, लवणः संसर्गेजः, स्पर्शोऽष्टविधिः स्त्रियधर्मशीतोष्णालघुगुरुमुक्तिनारुपः, संयोगे सति संयोगिनां बन्धकारणं स्त्रियधः तथैवाबन्धकारणं रूपः वैश्याच्छुत्सुमनःस्वभावः शीतो मार्दवपाककृदुषणः प्रायास्तियंगृद्धिगमनहेतुरुगुहः अथोगमनहेतुरुगुहः संनतिलक्षणो मृदुः अनमनात्मकः कठिनः, संस्थानात्मि संस्थानानुपूर्वयो पूर्वोक्तानि, पर्यायानां त्वेकगुणकालकादि, तत्रैकगुणकालकस्तारतस्येन कृष्णकृष्णतरकृष्णत-मादीनां यत आरभ्य प्रकर्षवृत्तिः, द्विगुणकालकस्तु ततो मात्रया कृष्णतरः, एवं शेषेष्वपि भावनीयं यावदनंतरगुणकृष्ण इति, तत्पुनर्नाम सामान्येनैव त्रिविधं प्राकृतशैलीमयिकृत्य, छीलिंगादिनान्मां उदाहरणानि प्रकटार्थान्येव, ‘से तं तिणामे’ त्ति। ‘से किं तं चउनामे’ त्यादि, (१२४--११२) तत्राऽऽगमेन पद्मानि पर्याप्ति, अत्र ‘आगमः उदनुवंधः स्वरादन्त्यात्परः’ आगच्छतीत्यागमः, आगम उकारानुवंधः स्वरा-दंत्यात्परो भवति, सिद्धं पद्मानीत्यादि, से तं आगमेण, लोपेनापि ते अत्र इत्यादि, अनयोः पद्मयोः संहितायां ‘पदात्परः पदान्ते लोपमकारः’</p> <p style="text-align: right;"> ६० </p>

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२४-१२६] / गाथा [१८-२३]
प्रत सूत्रांक [१२४- १२६] गाथा ॥१८- २३॥	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>श्रीअनु० हारि.इत्यादि ॥६१॥</p> <p>(कातन्त्र रूप. ११५) पदान्ते यौ एकारैकरौ ताभ्यां परः अकारो लोपमापद्यते, ततः सिद्धं ते अत्र, से तं लोवेण्यं, से किं तं पयतीए यथाऽग्नी एतौ इत्यादि, एतेषु पदेषु ‘द्विवचनमनौ’ (कातन्त्रं ६२) द्विवचनमौकारान्तं यत् भवति तलश्शण न्तरेण स्वरेण परतः प्रकृत्या भवति, सिद्धं अग्नी एतौ इत्यादि, विकारेणापि दंडस्य अग्ने इत्यादि, अत्र ‘समानः सर्वे दीर्घे भवति परश्च लोपमापद्यते’ (का० २४) सिद्धं दंडाप्रं इत्यादि, से तं विगारेण्यं, एवं चतुर्णाम । पंचनान्तिं ‘से किं’ मित्यादि सूत्रं (१२५-१२६) तत्राश्च इति नामिकं द्रव्याभिधायकत्वात्, खल्विति नैपातिकं, खलुशब्दस्य निपातत्वात्, धावतीत्याख्यातिकं क्रियाप्रधानत्वात्, परीत्यौपसर्गिकं परि सर्वतो भाव इत्युपसर्गपाठे पठितत्वात्, संयत इति मिश्रं, समेकीभाव इत्यस्योपसर्गत्वात् ‘यती प्रथत्न’ इति च प्रकृतेहभयात्मकत्वात् मिश्रमिति, तदेतत्पञ्चमाम ॥</p> <p>‘से किं तं छणामै॒, छविवहे॑ पण्णते॒’ इत्यादि (१२६-१२६) अत्र षड् भावा औदयिकादयः प्ररूप्यन्ते, तथा च सूत्रं-‘से किं तं उदयिए॑, र दुविहे॑ पण्णते॒, तं०-उदए य उदयनिष्कण्णे य, अत्रोदयः-अष्टानां कर्मप्रकृतीनां ज्ञानावरणीयादिलक्षणानामुदयः सत्ताऽवस्थापरित्यागेनोदीरणावलिकाभातिकम्योदयावलिकायामात्मीयात्मीयरूपेण विपाक इत्यर्थः; ‘ण’ मिति वाक्यालङ्घरे, अत्र चैवं प्रयोगः-उदय एव औदयिकः, उदयनिष्पत्तु द्वया-जीवोदयनिष्कण्णे य अजीवोदयनिष्कण्णे य, तत्र जीवे उदयनिष्कण्णो जीवोदयनिष्पत्तः, जीवे कर्मविपाकानि-वृत्त इत्यर्थ, अथवा कर्मोदयसहकारिकारणकार्या एव नारकत्वादय इति प्रतीतं, अन्ये तु जीवोदयाभ्यां निष्कण्णो जीवोदयनिष्पत्त इति व्याचक्षते, इदमप्यदुष्टमेव, परमार्थतः समुदायकार्यत्वात्, एवमजीवोदयनिष्कण्णापि वाच्यः, तथा चौदारिकशरीरप्रायोग्यपुद्रूपमहणशरीर-परिणतिश्च न तथाकर्मोदयमन्तरेणेति अत उक्तमौदारिकं वा शरीरमित्यादि, औदारिकशरीरप्रायोग्यपरिणामिकतया द्रव्यं, तत्त्वं वर्णगंधादिपरिणामितादि च, न चेदमौदारिकशरीरन्यापारमन्तरेण तथा परिणमतीति, एवं वैकियादिष्वपि योजनीयं, इह च वस्तुतः द्वयोरपि द्रव्यात्मकत्वे</p> <p>पंचनाम षडनाम च</p> <p>॥६१॥</p>
दीप अनुक्रम [१५१- १६३]	
	*** अत्र औदयिक आदि षड् भावानां वर्णनं क्रियते

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२४-१२६] / गाथा [१८-२३]
प्रत सूत्रांक [१२४- १२६] गाथा [१८- २३]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ६२ ॥</p> <p>एकत्र जीवप्राधान्यमन्यत्राजीवप्राधान्यमाश्रीयत इति, ततशोपशमेव जीवोदयनिष्पत्तं चेत्यलं विस्तरेण, से तं उदयिए । ‘से किं तं उमसमिए?’, उवसमिए दुष्कृते पञ्चते, तं०-उवसमे य उवसमनिष्पत्तेय, तत्रोपशमो-मोहनीयस्य कर्मणः अनन्तानुवन्धादिभेद-भिजस्य उपशमः, उपशमश्रेणीप्रतिपश्यत्वा मोहनीयभेदाननंतानुवन्धादृष्टिं उपशमयतः, यत उदयाभाव इत्यर्थः, गमिति पूर्ववत्, उपशम एवैष-शमिकः, उपशमनिष्पत्त्वान्तकोथ इत्यादि, उदयाभावफलस्फुट आत्मपरिणाम इति भावना, से तं उवसमिए । ‘से किं तं खइए?’, खइए दुष्कृते पण्णते, तंजहा-खए य खयनिष्पत्तेय, तत्र क्षयः अष्टानां कर्मप्रकृतीनां ज्ञानावरणीयादिभेदानां, क्षयः कर्माभाव एवेत्यर्थः, ‘ण’ चिति पूर्ववत्, क्षय एव क्षायिकः, क्षयनिष्पत्त्वान्तु फलस्फुटे विवित्र आत्मपरिणामः, तथा चाह-‘उपषणणाणदंसणे’ त्यादि, उत्पन्ने श्यामतापगमेनादर्शमंडलप्रभावत् सकलतदावरणापगमादभिष्यते ज्ञानदशने यस्य स तथाविधः, अरहा अविद्यमानरहस्य इत्यर्थः, रागादिजेष्ट-त्वाज्जनः, केवलमस्यास्तीति केवली, संपूर्णज्ञानवानित्यर्थः, अत एवाह-क्षीणाभिनिवोधिकज्ञानावरणीय इत्यादि, विशेषविषयमेव, यावत् अनावरणः-अविद्यमानावरणः सामान्येनावरणादितत्वात्, विशुद्धांवरे चन्द्रविष्मवत्, तथा क्षीणमेकान्तेनापुनर्भवतया ५५वरणं यस्यासौ क्षीणावरणः, अपाकृतमलावरणजात्यम-पिष्वत्, तथा ज्ञानावरणीयेन कर्मणा विविधम्-अनेकैः प्रकारैः प्रकर्षेण मुक्तो ज्ञानावरणीयकर्मविप्रसुक्त इति, निगमनम्, एकार्थिकानि वैतानि, नयमतभेदेनान्यथा वा भेदे वाच्य इति, केवलदर्शी-संपूर्णदर्शी, क्षीणनिष्पत्तेन च, निद्राविस्वरूपमिदं-‘मुहूरपिद्विहो य निदनिदा य । पयला होति ठियस्स उ पयलपयला य चंकमओ ॥ १ ॥ अतिसंकिलिष्टकम्माणुवेदणे होइ थीणगिरीओ । महनिदा विणचित्यवावार-पसाहणी पायं ॥ २ ॥ सातावेदनीयं प्रीतिकारी, ‘कुष कोपे’ क्षोधनं क्षोधः, कोपो रोषो दोषोऽनुवशम इत्यर्थः, मानः स्तंभो गर्व उसुको</p> <p>औदयिका- दयो भावाः</p> <p>॥ ६२ ॥</p>
दीप अनुक्रम [१५१- १६३]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२४-१२६] / गाथा [१८-२३]
प्रत सूत्रांक [१२४- १२६]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा [१८- २३]	<p>श्रीअनु० हारि.बृ०</p> <p>॥ ६२ ॥</p> <p>अहंकारो दर्पः स्मयो भस्सर ईर्ष्येत्वर्थः; माया प्रणिधिरपथिनिर्जुति वंचना दम्भः कूटमभिसंधानं साक्षमनार्जवभिन्नर्थः; लोभो रागो गार्भ्य- भिन्नाभुज्ज्ञानभिलाषो संगः कांक्षा स्नेह इत्यर्थः; माया लोभश्च प्रेम क्रोधो मानश्च द्वेषः; तत्र यदर्हेदवर्णवादहेतुङ्गां अर्हददिश्चानविघातकं दर्शनपरीषहकारणं तन्मध्यादर्शनं, यन्मध्यास्वभावप्राचितपरिणामं विशेषाद् विशुद्ध्यमानकं सप्रतिवातं सम्यक्त्वकारणं सम्यग्दर्शनं, यन्मध्या- त्वस्वभावाचितं विशुद्धाविशुद्धश्रद्धाकारि तत्सम्यग्मित्यादर्शनं, विविधे दर्शनमोहनीयमुक्तं कर्म, चारित्रमोहनीयं द्विविधं कथायवेदनीयं नो- कथायवेदनीयं च, द्वादश कथायाः अप्रत्याख्यान्याश्चाः क्रोधाद्याः, नव नोकथायाः हास्याभ्यः, नारकतिर्योनीसुरमनुप्यवेक्षनां भवनशरीरस्थिति- कारणमायुषकं, तस्तानात्मभावात् नामयतीति नाम कर्मपुद्ग्रद्वयं, प्रति स्वं गत्यभिधानकारणं, जासिनाम पञ्चविधमेकनिद्रियजातिनामादिकारणं, शरीरनाम शरीरोत्पत्तिकारणं, तदगोपांगनाम यथा शरीरनाम पञ्चविधौदारिकशरीरनामादिकार्येण साधितं यदेषामेवांगोपांगनिवृत्ति- कारणं तदंगोपांगनाम, तथाऽन्यत् शरीरनामः कथं?, अंगोपांगाभावेऽपि शरीरोपलब्धेः, तत्त्वं प्राक् शरीरत्रये नान्यत्र, वौदिः ततुः शरीर- भिति पर्यायः, अनेकता च जघन्यतेऽप्यौदारिकतैजसकार्मणबोद्धभावात्, वृंदं तु तदतांगोपांगसंघातभेदात्, संघातः पुनरेकैकांगादेरनन्त- परमाणुनिर्वृत्तत्वादिति । तथा सामाधिकादिचरणकियाभिद्वात्सिद्धः, तथा जीवादितत्वभोधाद् वुद्धः, तदा बाह्याभ्यन्तरग्रन्थभेददेन सुकृत्वा- न्मुक्तः, तथा प्राप्त्यप्रकर्षप्राप्तौ परिः-सर्वप्रकारैर्निर्वृत्तः परिनिर्वृत्तः, संसारान्तकारित्वादन्तकृत्, एकान्तेनैव शारीरमानसदुःखप्रहीणाः सर्वदुः- खप्रहीणा इति, उक्तः चार्थिकः। ‘से किं तं खओवसमिएै, खओवसमिए दुविहे पण्णते, त०-खओवसमे य खओ वसमनिष्कण्णे य,’ तत्र क्षयोपशमश्चतुर्णा धातिकर्मणां, केवलज्ञानाप्रतिपक्षकानां ज्ञानावरणदर्शनावरणमोहनीयांतरायाणां क्षयोपशमः, ण मिति पूर्ववत्, इह चार्थीर्ण- स्य क्षयः अनुदीर्णस्य च विपाकमधिकृत्योपशम इति गृह्णते, आह-औपशमसिकोऽप्येवंभूत एव, तत्रोपशमितस्य प्रदेशानुभवतोऽप्यवेदनादस्मिन्न</p> <p>अौदयिका- दयो भावाः</p> <p>॥ ६३ ॥</p>
दीप अनुक्रम [१५१- १६३]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२४-१२६] / गाथा [१८-२३]
प्रत सूत्रांक [१२४- १२६]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा [१८- २३]	<p>श्रीअनु० हारि.वृत्तौ</p> <p>॥ ६४ ॥</p> <p>वेदनादिति, अर्यं च क्षयोपशमः क्षियाहृप एव, क्षयोपशमनिर्वृत्तस्त्वाभिनिविक्षानादिलिङ्गः परिणाम आत्मन एवेति, तथा चाह-‘खओवस-भिया आभिणिवोहयिणाणलद्वी’ त्यादि, सूत्रसिद्धमेव, नवरं बालवीर्यं मिथ्यादृष्टेरसंयतस्य, पडितवीर्यं सम्यग्दृष्टे; संयतस्य, बालपंडितवीर्यं तु संज्ञासंज्ञासंयतस्य श्रावकस्य, से तं खओवसमिए। ‘से किं तं पारिणामिए?’ परिणमनं परिणामः अपरित्यक्तपूर्वावस्थस्यैव तद्वावगमनमिति भावार्थः; उक्तं च-‘परिणामो ह्यथोन्तरगमनं न च सर्वथा ह्यवस्थानं। न च सर्वथा विनाशः परिणामस्तद्विदामिष्टः॥१॥’ च एव पारिणामिकः, तत्र सर्वभेदेष्वन्वयानुवृत्या सुखप्रतिपत्त्यर्थं जीर्णप्रहृणमन्यथा नवेष्वप्यविरोधः, तत्रापि कारणस्यैव तथा परिणतेरन्यथेत्य(था तदे)तदभावादिति कृतमत्र ग्रसङ्गेन। अन्नकेण सामान्येन वृक्षास्तान्येव वृक्षाकाराणि संध्यापुहृलपरिणाम एव, गन्धर्वनगरादीनि प्रतीतान्येव, स्तूपकाः संध्याच्छेदावरणरूपाः, उक्तं च-‘संज्ञाच्छेदावरणे उ जूवओ सुके दिण तिणिं’ यक्षादीपिकानि-अभिपिशाचाः धूमिका-रूपप्रविरला धूमाभा महिका-स्निग्धा घना च रजउद्धातो रजस्वलादिः, चन्द्रपरिवेशादयः प्रकटार्थाः, कपिहसितादि सहस्रादेव नभसि ज्वलन्ति सशब्दरूपाणि, अमोघादयः सूत्रसिद्धाः, नवरं वर्षधरादिषु सदा तद्वावेऽपि पुद्रलानामसंख्येयकालादूर्ध्वतः स्थित्यभावात्सादिपरिणामतेति, अनादिपरिणामिकस्तु धर्मास्तिकायादीनि, सद्वावस्य स्वतस्तेषामनादिवादिति, शेषं सुगमं यावत् ‘से तं पारिणामिए’। से किं तं सञ्चिवाइए’ इत्यादि, सञ्चिपातो-मेलकस्तेन निर्वृत्तः सान्निपातिकः, तथा चाह-‘एतेसिं चे’ त्यादि, अर्यं च भंगकरचनाप्रमाणतः संभवासंभवमनपेक्ष्य पञ्चविंशतिभंगकरूपः, इह च आदिसंयोगभंगकपरिमाणं प्रदर्शितं, सूत्रं ‘तत्थं णं दस दुगसंयोगा’ इत्यादि, प्रकटार्थं, तथाऽपरिज्ञातद्वयादिसंयोगभंगभावोत्कीर्तनज्ञापनार्थमिदं, ‘तत्थं णं जे ते दस दुगसंयोगा ते णं इमं’ इत्याद्युत्तानार्थमेव, अतः परं सान्निपातिकभंगोपदर्शनां सविस्तरामजानानः पृच्छति विनेयः-‘कतरे से पाणम उद्दृष्टे’ इत्यादि, आचार्याह-‘उद्दृष्टे इत्यादि सूत्रसिद्धमेव, इह च यद्यप्यौदयिकौपशमिकमात्रनिर्वृत्तिः औदयिका-दयो भावाः</p> <p>॥ ६४ ॥</p>
दीप अनुक्रम [१५१- १६३]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२४-१२६] / गाथा [१८-२३]
प्रति सूत्रांक [१२४- १२६] गाथा [१८- २३] दीप अनुक्रम [१५१- १६३]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ६५ ॥</p> <p>असंभवी, संसारिणां जबन्यतोऽन्यौदधिकक्षायोपशमिकपरिणामिकभावत्रयोपितत्वान्, तथापि भंगकरचनामावृद्धिनार्थित्वादतुष्टः, एवमन्योऽन्य- संभवी वेदितव्य इति, अविरुद्धास्तु पञ्चदश एव सान्निपातिकभेदास्ते अत्रान्विकृता अपि प्रदेशान्तरे उपयोगिन इति सान्निपातिकसाम्यान्विद- इयते-‘उद्दृश्यव्योवसामिय परिणामियत्ति यतिचउक्तवि । खययोगेणाऽवि चउरो तयभावे उवसमेणपि ॥ १ ॥’ उवसमसेद्वा एको केवलिणो विद्य तदेव सिद्धस्म । अविरुद्धसन्निवादित एमंते हुन्ति पन्नरस ॥ २ ॥’ औदधिकक्षायोपशमिकपाशणामिकसान्निपातिक एको गतिचतु- ष्टेषुपि, तद्यथा-उद्दण्डि ऐरइए खयोवसमियाईं हंदियाईं परिणामियं जीवन्त, जय खइयं समत्तं तदा ओद्दृश्यव्योवसाम्यान्विदित्वा पश्चः सान्निपातिकः, एको गतिचतुष्टेषु, तद्यथा-उद्दण्डि ऐरइए खयोवसमियाईं हंदियाईं खइयं समत्तं परिणामिए जीवे, एवं तिर्यगादिष्वपि वाच्यं, तिर्यक्ष्वपि शायिकसम्यग्दृष्टयः कृतभंगभंस्याऽन्यथाऽनुपपत्तेरिति भाववर्तीयं, तदभावे शायिकाभावे चशन्ददात् शेषवयभावे चौपशमि- केनापि चत्वार एव, उपशममात्रस्य गतिचतुष्टेषुपि भावात् ‘उत्तरदेसं दक्षुलयं च विज्ञाति वणद्वो पप्य । इय मिन्छुस्म अणुद्दृष्ट उवसमसम्म- लड्ड जीवे ॥ १ ॥’ अविशिष्योक्तव्यात्, तथा ‘उवतामियं तु सम्मतं । जो वा अकलतिपुरुजो अस्वविगमिच्छो लड्डह सम्म ॥ १ ॥’ मित्यव- शेणित्यतिरेकेण विशिष्येवोक्तव्यात्, अस्मिलापः पूर्ववत्, नवरं शायिकसम्यक्ष्वस्थाने औवशमिकसम्मत्तेति वक्तव्यं, एते चाष्ट्री भंगाः प्राकना- श्वत्वार इति द्वादश, उपशमश्रेष्ठां एतो भङ्गस्तस्य मनुष्येष्वेव भावात्, अभिलापः पूर्ववत्, नवरं मनुष्यविषय एव, केवलिनश्रेष्ठक एव-उद- द्दृष्ट मणुस्मे खइयं समत्तं परिणामिए जीवे, तर्थव सिद्धस्म एक एव-खइयं समत्तं पारिणामिए जीवे, एवमेते त्रयो भंगाः सहिताः अविरुद्ध- सान्निपातिकभेदाः पञ्चदश भवति, कृतं प्रसंगेन । से ते सन्निवातिये नाम, योजना सर्वत्र कायां, से तं छ पामे, गतं षडनाम । ‘से किं तं सत्त नामे’ त्वादि (१२७-१२७) सप्तनामित्त सप्त स्वराः प्रज्ञापाः, तंजहा-‘सज्जे’ त्वादि (१२५-१२७), ‘पद्जो रिषभो</p> <p>पणनामानि ॥ ६५ ॥</p>

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२७-१२८] / गाथा [२४-५६]
प्रति सूत्रांक [१२७- १२८] गाथा [२४- ५६] ॥६६॥	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
श्रीअनु० हारि.वृचौ ॥६६॥	गंधारो मध्यमः पंचमस्वरः रेष्टतश्चैव निषादः स्वराः सप्त व्याख्याताः, संख्यामसहन् कश्चिदाह-‘कञ्जं करणायसं जीहा य सरस्स ता असंखेज्ञा । सरसंख असंखेज्ञा करणस्स असंख्यतातो ॥१॥ सत्त्व य सुत्तणिबद्धा कह ण विरोहो गुरु तओ आह । भन्तगुवाती सब्वे बादरगहणं विगंतव्यं ॥२॥ आश्रित्य सरा प्रोक्ताः ‘एतेसि ण’ मित्यादि, तत्र-णाभिसमुत्थो उ सरो अविकारी पष्प जं पदेसं तु । आभोगियरेण वा उवकारकरं सरद्धाणं । ‘सज्जं व’ सिलोगो ‘णीसाथा’ सिलोगो, (४२६-१२८)‘जियडजीयणिसीयता गिस्सासिथ अहव निसरिया तेहिं । नवेसु सज्ज-विसी पओगकरणं अजीवेसु ॥३॥ तत्थ जीवणिसिसआ ‘सज्जं रवति’ दो सिलोगो (४२८-१२८) गोमुही-काहला तीए गोसिंगं अणं वा मुहे कञ्जति तेण एसा गोमुही गोधा चम्मावणद्वा गोहिता सा य दहरिया अडंबरेति पद्धो, ‘सरफलमव्याहिचारी पाओ विढं गिमित्तमंगेसु । सराणिविविसिकलाओ लक्ष्ये सरलक्ष्यणं तेण ॥ १ ॥ ‘सज्जेण लभति वित्ति’ सत्त्व सिलोगो (४२८-१२८-३४३५-३६३७-१२९) ‘सज्जादि तिधा गामो ससमूहो मुच्छणाणं विण्णेओ । तां सत्त्व एकएके तो सत्त्व सराण इगवीसा ॥ १ ॥ अणोणासरविसेसा उप्यायंतस्स मुच्छणा भणिया । कत्ता व मुच्छिओ इच, कुण्ठे मुच्छं व सोयाति ॥ २ ॥ मंदिमादियाणं एगवीसाए मुच्छणाणं सरविसेसो पुव्वगते सरपा-हुडे भणिओ, तक्षिगतेसु य भरहविसाहलादिसु विण्णेओ इति, ‘सत्त्व सरा कओ’ (४४-१३०) एस पुच्छासिलोगो । ‘सत्त्व सरा नाभीओ’ उत्तर सिलोगो (४४-१३१) गेयस्स इमे तिणिं आगारा ‘आदिमिउ’ गाहा (४४-१३१) कि चान्यत् ‘छहोसे’ गाहा (४४-१३१) इमे छहोसा वज्जणिज्ञा-‘भीतदु’ गाहा (४४-१३१) भीतं-उञ्जस्तमानसं द्रुतं-त्वरितं उत्पत्थं-श्वासयुतं चरितं च पाडान्तरेण छस्त्वरं वा भागितव्यं, उत्ताबल्येन अतितालं अस्थानतालं वा उत्तालं, इलक्षणस्वरेण काकस्वरं, सातुनासिकमनुनासं नासास्वरकरीत्यर्थः, ‘अट्टगुणसंपउत्तं गेयं भवति’ ते य इमे-‘पुण्णं रत्तं च’ गाहा (४४-१३१) स्वरकलाभिः पूर्णं गेयरागेणानुरक्तं अणाण्णसरविसेसफुडसुभकरणत्तणयो अलंकृतं,
दीप अनुक्रम [१६४- २०४]	सप्त नामानि ॥६६॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२७-१२८] / गाथा [२४-५६]
प्रत सूत्रांक [१२७- १२८] गाथा ॥२४- ५६॥	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>श्रीअनु० हारि. वृत्ती ॥ ६७ ॥</p> <p>अक्षरसरफुडकरणत्तणओ व्यक्तं विश्वरं विक्षेत्रीव विष्टुमविष्टुं मधुरं कोकिलारववन्, तालवंशसरादिसमणुगतं समं ललितं ललतीव स्वर- घोलनाप्रकारेण सोइंश्वरसहफुसणामुहुप्पादत्तणओ वा मुकुमालं, परिमरुषभिर्मुण्डुकं गीतं भवति, अन्यथा विंवना, किंचान्यत-‘उरकंठ’ गाहा (॥४९-१३१) जइ उरे सरो विसाले तो उरविशुद्धं, कठे जइ सरो वट्ठिते अकुडितो य कंठविशुद्धं, सिरं पत्तो जइ णाणुणासितो तो सिरविशुद्धं, अथवा उरकंठसिरेषु श्लेषणा अव्याकुलेषु विशुद्धेषु गीतेः, किंविशिष्ट ? , उच्यते-‘मरयं’ मृदुना स्वरेण मार्दवयुक्तेन न निष्ठुरेणत्यर्थः, स च स्वरो अश्वरेषु घोलनास्वरविशेषेषु च संचरन् रंगतीव गिभितः, गेयनिवद्धं पदमेवं गीतेत-तालंसरेण समं च शंरं समतालं मुरवकेनिकादिआते- ज्ञाणाहताणं जो धाणि पदुकखेवो वा तेण य समं नृत्यतो वा पदुकखेवसमं, एरिसं पसल्यं गिजजति, सत्ततरसीभरं व गिजजइ, के य ते सत्तस- रसीभरसमा ?, उच्यते, इमे-‘अक्षरसमं’ गाहा (॥५०-१३१) दैहक्खरे दीहं सरं करोति, हस्ते हस्तं, प्लुते प्लुतं, सामुनासिके निरनु- नासिके जं गेयपदं णामिकादि अणांतरपदवदेण बद्धं तं जत्थ सरो अणुवादी तत्थेव तं गिजजमाणं पदसमं भवति, हृत्यतलपरोपराहतसुरण तंतीतालसमं लयः द्वांगदारुदत्तमयो वा अंगुलिकोशिकः तेनाहतः तंत्रिश्वरप्रचालो लयः तं लयमणुसरतो गेयं लयसमं, पदमतो वंसतंतिमादि- एहि जो सरो गहिर्तो तस्समं गिजजमाणं गहसमं, तोहि चेव वंसतंतिमादिएहि अंगुलिसंचारसमं गिजजइ तं सं-चारसमं, सेसं कंठयं । जो गेयसुत्तनिंबधो, सो इमेरिसो ‘णिदोसं’ सिलोगो (॥५१-१३१) द्विसालियादिवत्तीसयुत्तदोसवजिजतं णिदोसं अथेण जुत्तं सारवं च अथ- गमकारणजुत्तं कव्यलंकारेहि जुत्तं अलंकियं उवसंहारोवणणहि जुत्तं उवनीतं जं अनिट्टुरामिहाणेण अविरुवालज्जिज्जेण बद्धं तं सोवयारं सोत्प्रासं वा, पदपादाक्षरैर्मिते नापरिमितमित्यर्थः, मधुरंति-त्रिधा शब्दअर्थाभिधानमधुरं च । ‘तिणिं य वित्ताइ’ ति जं बुत्तं तस्म व्याख्या 'समं अद्वसमं' सिलोगो (॥५२-१३१) कंठयः। 'दुण्णी य भणीतीयो' त्ति अस्य व्याख्या 'सक्या' सिलोगो (॥५३-१३१) भणीतित्ति-</p> <p style="text-align: right;">सप्त नामानि ॥ ६७ ॥</p>
दीप अनुक्रम [१६४- २०४]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२७-१२८] / गाथा [२४-५६]
प्रति सूत्रांक [१२७- १२८]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा [२४- ५६]	<p>श्रीअनु० हारि.वृत्ती ॥ ६८ ॥</p> <p>भासा, सेसं कक्षणं । इथी पुरिसा वा केरिसं गाथझाति पुरुषा ‘केसी’ गाहा (४५४-१३१) उत्तरं ‘गोरी’ गाहा (४५५-१३१) इमो सर- मंडलसंक्षेपार्थः; ‘सत्त्वं सरा ततो गामा’ गाहा (४५६-१३२) तती ताना ताणो भन्नइ सज्जादिसरेसु एकोके सत्त्वाणां अउणपणासं, एते वीणाए सत्त्वतंतीए सरा भवति, सज्जो सरो सत्त्वा तंतीताणसेरेण गिज्जइ, ते सब्बे सत्त्वाणा । एवं सेसासुवि ते चेव, इगतंतीए कठेण वा गिज्जमाणो अउणपणासं ताणा भवन्ति, ते सं सत्त्वं नाम ।</p> <p>‘से किं तं अद्गुणामे’ (१२८-१३३) अद्गुणिधा-अष्टप्रकारेण, उच्यन्ते इति वचनानि तेषां विभक्तिवचनविभक्तिः, विभजनं विभक्तिः सि- औजाभित्यादिविभिवचनसमुदायाल्मिका प्रस्तुपिता अर्थतस्तीर्थकरैः सूत्रतो गणधर्मैरिति, तंजहा-‘निर्देश पठमे’ त्वादि (४५७।५।१३३) सिलोग- दुणं गिगदसिद्धं, उदाहरणप्रदर्शनार्थमाह-‘तथ पठमे’ त्वादि, (४५९-१३३) तत्र प्रथमा विभक्तिर्निर्देशं, स चायं अहं चेति निर्देशमात्रत्वात्, द्वितीया पुनरुपदेशे, उपदिश्यत इत्युपदेशः, भणइ कुरु वा एतं वा तं चेति कर्मर्थत्वात्, द्वितीया करणे कृता, कथं ?, भणितं वा कृतं वा तेन वा मया वेति करणार्थः, हृदीत्युपदर्शने णमो साहाएति उपलक्षणं, नमःस्वतिस्वाहास्वधाइलंबवद्योगान्त्वच (पा. २-३-१६) नमो देवेभ्यः स्वस्ति प्रजाभ्यः स्वाहा अप्रये, भवति चतुर्थीं संप्रशाने, तत्रैके द्याचक्षते-इदमेव नमस्कारादि सप्रदानं, अन्ये पुनरुपाभ्यायाय गां प्रयच्छतीत्यादीनि । ‘अवणय’ इत्यादि(४६१-१३३)अपनय ग्रहणे (गुहाण) अपनय अस्मात् इत इति वा पंचमी अपादाने ‘ध्रुवमपायेऽपादान’- मिति (पा. १-४-२४) कृत्वा, पष्ठी तस्यास्य वा गतस्य च शृत्य इति गम्यते स्वाभिसंबधे भवति, पुनः सप्तमी तद्वस्तु अस्मित्रिति आधारे काळे भावे, यथा कुण्डे बदराणि वसते रमते चारित्रे अवतिष्ठत इति, आगंत्रणी तु भवेत् अष्टमी विभक्तिः, यथा हे जुवानति, वृद्धवैयाकरण- दर्शनमिदमिर्युगीनानां त्वयं प्रथमैव, तदेतदष्टनामेति ।</p> <p>अष्ट नामानि</p> <p>॥ ६८ ॥</p>
दीप अनुक्रम [१६४- २०४]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२९-१३०] / गाथा [५७-८२]
पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
प्रत सूत्रांक [१२९- १३०] गाथा [५७- ८२] दीप अनुक्रम [२०५- २०४]	<p>श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ६९ ॥</p> <p>‘से किं वं नवनामे’ इत्यादि, (१२९-१३५) नवनामिन नव काव्यरसाः प्रज्ञसाः, रसा इव रसा इति, उक्तं च-‘मिदुमधुरिभितसु-भतरणीतिपिदोसभीसणाणुगता । सुहुदुहकम्मरसा इव कठवस्स रसा हवेत्ते ॥ १ ॥ ‘बीरो सिंगारो’ इत्यादि (*६३-१३५) वीरः शृंगारः अद्भुतश्च रौद्रश्च भवति बौद्धव्यः ब्राह्मनको वीभत्सो हास्यः करणः प्रशान्तश्च, एते च लक्षणत उदाहरणतश्चोऽन्यते-तत्र वीररसलक्षण-मभिधित्सुराह-‘तत्त्व’ गाहा (*६४-१३६) व्याख्या-तत्र परित्यागे च तपश्चरणे-तपोऽनुष्ठाने शशुजनविनाशो च-रिपुजनव्यापत्तो च यथा-संख्यमननुशयधृतिपराक्रमलिङ्गो वीरो रसो भवति, परित्यागेऽनुग्रहयः नेदं मया कृतमिति गर्वं करोति, किं वा कृतमिति विषादं, तपश्चरणे धृतिं न त्वार्त्त्वानं, शशुजनविनाशो च पराक्रमो न वैकल्यम्, एतलिंगो वीरो रसो भवति, उदाहरणमाह-‘बीरो रसो यथा-‘सो नाम’ गाहा (*६५-१३६) निगदसिद्धा, ‘सिंगारो नाम रसो’ (*६६-१३६) शृंगारो नाम रसः, किंविशिष्ट इत्याह-‘रतिसंयोगाभिलाषसंजननः तत्कारणानि, मंडनविलासविन्वोक्ताहास्यलीलारमणलिंगो, तत्र मंडनं कटकादिभिः विलासः-कामगर्भो रम्यो नयनादिविध्रमः विच्चोकः देशीपदं अंगजविकारार्थं हास्यलीले प्रतीते रमणं क्रीडनं एतदिवन्ह इति गाथार्थः; उदाहरणमाह-शृंगारो रसो यथा ‘मधुर’ गाहा, (*६७-१३६) निगदसिद्धा, अद्भुतलक्षणमाह-‘विश्वहयकरो’ गाहा (*६८-१३६) विस्मयकरः अपूर्वो वा तत्प्रथमतयोत्पद्यमानो भूतपूर्वे वा पुनरुत्पन्ने यो रसो भवति स हर्षविषादोत्पात्तिलक्षणः तद्वीजत्वात् अद्भूतनामेति गाथार्थः; उदाहरणमाहअद्भुतो रसो यथा ‘अद्भुततरं’ गाहा (*६९-१३६) निगदसिद्धा । रौद्ररसलक्षणमाह-‘भयजणण’ गाहा (*७०-१३७) भयजननरूपशब्दान्वकारविनियोगासमुत्पन्न इत्यत्र भयज-ननशब्दः रूपादीनां प्रत्येकमभिसंबद्धयते, भयजननरूपदर्शनात् समुत्पन्न एव भयजननशब्दशब्दणाद्यजननांधकारयोगात् भयजननचिन्तासमूद्भूतः भयजननकथाश्रवणात् समुत्पन्नः-संजातः, किंविशिष्ट ? इत्यत्राह-‘सम्मोहसंभ्रमविषादमरणलिंगो रौद्रः, तत्र सम्मोहः-अत्यन्तमृद्घता संभ्रमः-</p> <p>नवरसाः ॥ ६९ ॥</p>
*** अत्र नव-रसानां वर्णनं आरक्ष्यते	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२९-१३०] / गाथा [५७-८२]
प्रति सूत्रांक [१२९- १३०]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा [५७- ८२]	<p>श्रीअनु० हारि.वृत्ती ॥ ७० ॥</p> <p>किंकर्त्तव्यतावदान्येन आत्मपरिणामः; विषादमरणे प्रतीते इति गाथार्थः। उदाहरणमाह-रौद्रो रसो यथा ‘भिडिः’ गाहा (५७१-१३७) शृङ्खिः-छलाटे बलिभंगः; तथा विंडितं-न्यत्कृतं सुखं यस्य तथादिधः; तस्यामंत्राणं हे शृङ्खिविंडितमुख ! संदष्टोऽग्रस्तथोषु इत्यर्थः; इतः इतीतश्चेतश्च रुधिरोत्कीर्णः-विश्विमस्तुधिर इति भावः; हंसि-पसुं व्यापादयस्यतः असुरनिभः-असुराकारः भीमरसितः-भयानकशब्दः। अतिरैद्रः रौद्रो रसो इति गाथार्थः। ब्रीहनकलक्षणमाह-‘विणओ’ गाहा (५७२-१३७) विनयोपचारगुरुशुगुरुशारव्यतिक्रमोत्पन्न इति, विनयो-पचारादिषु ऋतिक्रमशब्दः प्रत्येकमभिसंबद्धत्वे, भवति रसो ब्रीहनकः, लज्जांश्काकरण इति गाथार्थः; उदाहरणमाह-ब्रीहनको रसो यथा ‘किं लोहय’ गाहा (५७३-१३७) विदेशाचारोऽतिनववध्याः प्रथमयोन्युद्देशरकर्तजितं तश्चिवसनमक्षतयोनिसंज्ञापनार्थं पटलकवि-न्यस्तसंपादितपूजोपचारः सकललोकप्रत्यक्षमेव तदगुरुजनो परिवंदते इत्येवं चात्मावस्थां सर्वापुरुतो वधूर्भूणति ‘किं लौकिकक्रियायाः ल-ज्जनकतरम् ? इह दि लज्जिता भवामि, निवारेज्जानविवाहो तत्र गुरुजनो परिवंदति यद्यूपोत्तिं-वधूनिवसनमिति गाथार्थः। वीभत्सरसलक्षण-माह-‘असुइ’ गाहा (५७४-१३८) अशुचिकुणपद्दर्शनसंयोगाभ्यासगंधनिष्पन्नः, कारणाशुचित्वादशुचि शरीरं तदेव प्रतिक्षणमासनकुणपभावात् कुणपं तदेव च विकृतप्रदेशत्वाद् दुर्दर्शनं तेन संयोगाभ्यासातद्रूपोपलद्वेष्वर्वा समुत्पन्न इति निर्वेदाद् विहिंसालक्षणो रसो भवति वीभत्स इति गाथार्थः; उदाहरणमाह-ब्रीमत्सो रसो यथा ‘असुइ’ गाहा (५७५-१३८) सूत्रसिद्धं। हास्यलक्षणाभिधिस्याऽद्व-‘रूपवय’ गाहा (५७६-१३८) रूपवयोवेषभाषाविपरीतविंडम्बनासमुत्पन्नो हास्यो मनःप्रहर्षकारी प्रकाशाञ्जिगः-प्रत्यक्षलिंगो रसो भवतीति गाथार्थः; उदाहरणमाह-‘हास्यो रसो यथा ‘पासुत्तमसी’ गाहा (५७७-१३९) प्रकटार्थी। करुणरसलक्षणमाह-‘पियविपिओग’ गाहा (५७८-१३९) प्रियविप्रयोगबांधव-व्याधिनिपातसंभ्रमोत्पन्नः शोचितविलपितप्रम्लानस्त्रियोत्पन्नो रसः करुणः, तत्र शोचितं-मानसो विकारः, शेषं प्रकटार्थमिति गाथार्थः; उदाहर-</p>
दीप अनुक्रम [२०५- २०४]	नवरसाः ॥ ७० ॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२९-१३०] / गाथा [५७-८२]
प्रत सूत्रांक [१२९- १३०] गाथा [५७- ८२] दीप अनुक्रम [२०५- २०४]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>श्रीअनु० हारि.शैक्षी ॥ ७१ ॥</p> <p>प्रमाह-‘कहणे’ रसो यथा ‘पञ्जास्य’ गाहा (१२९-१३१) प्रध्यतेन-अतिचितया क्लांतं-बाष्पागतप्रप्लुताक्षं स्थन्दमानाश्च-च्योतलोचनमिति भावः, शोर्ण सूत्रसिद्धिमिति गाथार्थः। प्रशान्तरसलक्षणमाह-‘निइसौ’ गाहा (१२०-१३१) निदोषमनःसमाधानसंभवः, हिंसाविदोष-रहितस्य इंद्रियविषयविनिवृत्त्या स्वस्थमनसो यः प्रशान्तभावेन-क्रोधादित्यागेन अविकारलक्षणःहास्यादिविकारवर्जितः असौ रसः प्रशान्तो श्वातव्य इति गाथार्थः, उदाहरणमाह-प्रशान्ते रसो यथा ‘सद्भाव’ गाहा (१२१-१३१) ‘सद्भावनिर्विकार’ न मातृस्थानतः उपशांतप्रशांत-सौम्यदृष्टिःउपशांत-इंद्रियविषयविनिवृत्त्या अनेनेभवेन सौम्या इष्टिर्घस्मिन् तत्त्वा, हीत्यर्थं सुनेः प्रशांतभावाविशय-प्रदर्शने, यथा सुनेः शोभते मुखकमलं पीवरशीकं-प्रधानलक्ष्मीकमिति गाथार्थः। ‘एते णव’ गाहा (१२२-१३१) एते नव काव्यरसाः, अनन्तरोदिताः द्वात्रिंशद्वाषविधिसमुत्पन्नाः-अनुत्तरादिद्वात्रिंशत्सूत्रदोषास्तेषां विधिः समुद्रभवा इत्यर्थः, तथाहि-वीरो रसो संग्रामादिषु हिंसया भवति तपःसंयमकरणादावपि भवति, एवं शेषेष्वपि यथाद्युभवं भावना कार्या, तथा चाह-गाथार्थः उक्तलक्षणाभ्यः सुणीतव्या भवति शुद्धा वा मिशा वा, शुद्धा इति काश्चिद्वात्राःसूत्रबंधः अन्यतमरसेनैव शुद्धेन प्रतिबद्धाः, काशन मिश्राः द्विकादिसंयोगेनेति गाथार्थः॥ उक्तं च नवनाम, अनुना दशनामोन्येत, तथा चाह—</p> <p>‘से किं तं दसनाम ?’ (१३०-१४०) दसनाम दशाविधं प्रक्षमं, तदथा-‘गोणं नोगोणं’ मित्यादि, एतेषां प्रतिवचनद्वारेण स्वरूपमाह-‘से किं तं गोणं’ गुणनिष्पणं गौणं, ज्ञमतीति थमण इत्यादि, ‘से किं तं नोगोणे?’ नोगोणो-अयथार्थं, अकुंतः सकुंत इत्यादि, अविज्जमानकुंतात्मायप्रहरणविशेष एव सकुंत इत्युक्त्यते, एवं शेषेष्वपि भावनीयं। ‘से किं तं आदाणपदेण ? २’ आदानपदेन धर्मो मंगलमित्यादि, इहादि-पदमादानपदमुच्यते। ‘से किं तं पडिवक्खपदेण ? २’ प्रतिपक्षेषु नवेषु-प्रत्यप्रेषु ग्रामाकरनगरखेटकर्यटमडम्बद्रेणमुखपत्तनाश्रमसंबाधस-</p> <p>नवरसाः ॥ ७१ ॥</p>

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२९-१३०] / गाथा [५७-८२]	
पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः		
प्रति सूत्रांक [१२९- १३०] गाथा [५७- ८२] दीप अनुक्रम [२०५- २०४]	<p>श्रीअनु० हारि.वृत्ती ॥ ७२ ॥</p> <p>निवेशेषु निवेशमानेषु सत्सु अमांगलिकशब्दपरिहारार्थं असिवा सिवेत्युच्यते, अन्यदा त्वनियमः, असिः शीतला विषं मधुरकं, कलालग्नहेषु अस्त्वं स्वादु मृष्टं न त्वम्भमेव सुरासंगक्षणायनिष्ठशब्दपरिहारः, इदं सर्वदा-जो लत्तए इत्यादि, जो रक्ते लाक्षारसेन स एवारक्तः प्राकृतशैल्या अलक्षः, यदपि-च लाकु ‘ला आदान’ इति कृत्वा आदानार्थवत् सेति तदल्याकु, यः शुभ्रकः शुभवर्णकारी ‘से’ त्ति असौ कुसुंभकः, आलपन्तं लपन्तं अस्त्वयं लपन्तं असमंजसमिति गम्यते विपरीतमापक इत्युच्यते-विपरीतश्चासौ भाषकश्चेति समासः अभाषक इत्यर्थः, आहेदे नोगौणान्न भित्ताते?, न, तस्य प्रवृत्तिनिर्मितकतज्जभावमापेक्षितत्वात्, इदं तु प्रतिपक्षधर्माद्यासमपेक्षत इति भित्तात एव। से किं पाहणत्ताए, पाहणता एवं, चंपकप्रधानं वनं-चंपकवनं अशोकप्रधानं अशोकवनमित्यादि, शेषाणि वृक्षाभिधानानि प्रकटार्थानि, आहेदमपि गौणान्न भित्ताते, न, तत्तत्रामनिवंशनभूतायाः क्षपणादिकियायाः सकलस्याधारभूतवस्तुव्यापकत्वादशोकादेश वनाच्यापकत्वादुपाधिभेदसिद्ध्युज्जत इति, ‘से किं तं’ अणादिसिद्ध्यासावन्तश्चेति समासः, अमनमन्तस्तथा वाचकतया परिच्छेद इत्यर्थः, उत्कमनादिसिद्धान्तेनानादिपरिच्छेद-नेत्यर्थः, धर्मास्तिकाय इत्यर्थः, आदि पूर्ववत् अनादिः सिद्धान्तो बाऽस्य सदैवाभिधेयस्य तदन्यत्वायेगान्, अनेनैव चोपाधिना गौणाद्वेदाभिधानेऽप्यदोष इति। से किं तं नामेण? पितुपितुः-पितामहस्य नामा उत्त्रामित-उत्किसो यथा चंपुदत्त इत्यादि। ‘से किं तं अवयवेण, अवयवः-शरीरैकदेशः परिगृह्यते तेन शृंगीत्यादि(१८३-१४२)प्रकटार्थं, तथा परिकरबन्धेन भट्टं जानीयात्, महिलां निवसनेन, सिक्षुना द्रोणपाकं, काविं चैकथा गाथया, तत्तदप्यधिकृतावयवप्रधानमेवेति भावनीयमतस्तेनेवाधिना गौणाद्विन्नमेवेति। से किं तं संयोगेण?, संयोगेण संयोगः-संबंधः, स चतुर्विधः प्रद्वासः, तद्यथा ‘प्रद्वयसंयोग’ इत्यादि सूत्रसिद्धमेव, नवरं गावः अस्य संतीति गोमान्, छव्रमस्यास्तीति छत्री, हलेन व्यवहरतीति हालिकः, भरते जातः भरतो वाऽस्य निवास इति च: ‘तत्र जातः?’ (पा.४-३-२५) ‘सोऽस्य निवास’ इति (पा.४-३-४९) वा</p>	दश नामानि ॥ ७२ ॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२९-१३०] / गाथा [५७-८२]
प्रति सूत्रांक [१२९- १३०] गाथा [५७- ८२] दीप अनुक्रम [२०५- २०४]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ७३ ॥</p> <p>अण् भारतः, एवं शेषेषपि द्रष्टव्यं, सुषमसुषमायां जातः ‘सप्तम्यां जनेऽः’ (पा. ३-२-९२) सप्तम्यन्ते उपपदे जनेः छ प्रत्ययः, सुषमसुषमजः, एवं शेषमपि, ज्ञानमस्यास्तीति ज्ञानी, एवं शेषमपि, संयोगोपाधिनैव चास्य गौणाऽङ्गेऽ इति । ‘सि किं तं पमाणेणैः पमाणे’ प्रमाणं चतुर्विधं प्रज्ञाम, तद्यथा-नामप्रमाणमित्यादि, नामस्थापने क्षुण्णार्थं, नवरमिह जीविकाहेतुर्यस्या जातमा-त्रमपत्यं क्रियते सा रहस्यवैचित्र्यातं जातमेवाकरादिपूज्ञाति, तदेव च तस्य नाम क्रियत इति, आभिप्रायिकं तु गुणनिरपेक्षं यदेव जनपदे प्रसिद्धं तदेव तत्र संब्यवहाराय क्रियते अन्यकादि, अत एव प्रमाणता, उक्तं द्रव्यप्रमाणनाम । ‘से किं तं भावप्यप्रमाणनाम’ भावप्रमाणं सामासिकादि, तत्र द्वयोर्बहूनां वा पदानां भीलनं समासः, स जात एषां समासितो ‘उभयप्रथानो द्वन्द्वः’ इति द्वन्द्वः दंतोऽं, तस्य चकारः अर्थः, इतरेतरयोगः अस्तिप्रभृतिभिः क्रियाभिः समानकाले युक्तः, स्तम्भो च वदरं च स्तनोदगं, एवं शेषोदाहरणान्यपि द्रष्टव्यानि, ‘अन्यपदार्थप्रधानो बहुत्रीहिः’ पुष्पिताः कुटजकदम्बा यस्मिन् गिरौ सोऽयं गिरिः पुष्पितकुटजकदम्बः, गिरविशेष्यत्वादन्यपदार्थप्रधानतेति, तत्पुरुषः समाना-भिकरणः कर्मधारयः, धबलश्चासौ वृषभव्य विशेषणविशेष्यवहुलभिति तत्पुरुषः, धबलत्वं विशेषणं वृषभेण विशेष्येण सह समस्याति, द्वे पदे एकमर्थं ब्रुवत इति समानाधिकरणत्वं, एवं श्वेतपटादिष्वपि द्रष्टव्यं, अयं कर्मधारयसंज्ञः, त्रीणि कटुकानि समाहृतानि ‘तद्वितार्थोत्तरपदसमा-हारे च’ (पा. २-१-५०) तत्पुरुषः त्रिकटुकमित्युत्तरपदार्थप्रधानः, ‘संख्यापूर्वो दिशु, रिति द्विगुसंज्ञा, एवं त्रिमधुरादि, तीर्थे काक इव आस्ते ‘धवांश्चेषण लेप’ इति (पा. २-१-४२) तत्पुरुषः समासः तीर्थकाकः, वणहस्यादीनामस्मादेव सूत्रात् निर्विधवद्वापकात्वमर्मसिसमासः, पात्रेसमि-तादिप्रक्षेपाद्वा, अनु श्रामादत्तुप्रामं श्रामस्य समीपेनाशर्निर्गता, ‘अनुर्थत्समया (पा. २-१-१५) अनु यः समर्थः, श्रामस्य अनु समीपः, द्रव्यमशनिं त्रीभीमि, यस्य यस्य समीपे तेन सुबुत्तरपदेन, प्रामस्य समीपे प्रामेणोत्तरपदेन अव्ययीभावः समासः, प्रामस्तूपलक्षणमात्रं, समासः अतः पूर्व-</p> <p>तद्वितना- स्त्रि प्रमाण नाम</p> <p>॥ ७३ ॥</p>
	*** अत्र ‘प्रमाण’स्य चत्वारः भेदानां वर्णनं आरम्भ्यते

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१२९-१३०] / गाथा [५७-८२]
प्रत सूत्रांक [१२९- १३०] ॥५७- ८२॥	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ७४ ॥	पदार्थप्रधानः, ‘अब्ययं विभक्तिसमीप’ इति (पा. २-१-६) सिद्धे विभाषाधिकारे पुनर्वचनं येषां तु समयाशब्दो मध्यवचनः वेषामप्राप्ते मात्रस्य मध्येनाशनिर्गता ‘अनुर्यत्समया’ इति (पा.२-१-१५) समाप्तः, अनुग्रामं, पञ्चमणुणिह्यं इत्यादि, यथा एकः पुरुषः तथा बहवः पुरुषा अत्र ‘सरूपाणामेकशेष एकविभक्त्वा’ (पा. १-३-६४) विति समानरूपाणां एकाविभक्तियुक्तानां एकः शेषो भवति-सति समाप्त एकः शिष्यते, अन्ये लुप्यन्ते, शेषश्च आत्मार्थे लुप्तस्य लुप्तयोः लुप्तानां वाऽये वर्तते, बहुवर्येषु बहुवचनं, पुरुषो पुरुषाः, एवं कार्यापणाः, तदेतत्सामासिकं । ‘से किं तं तद्वितप्? २ तद्वितं कर्मशिल्पादीति, तथा चाह-‘कम्मे सिप्पासिलोए’ इत्यादि (*९२-१४९) कर्मतद्वितनाम दीर्घिकादि, तत्र दूषाः पण्यमस्य ‘वदस्य पण्यं’ (पा. ४-४-५१) तद्विति प्रथमासमर्थने, अस्येति पष्ठश्चर्ये, यथाविहितं प्रत्ययः ठक् दीर्घिकः, एवं सूत्रं पण्यमस्य सूत्रिक इत्यादि, तथा शिल्पवद्वितनाम वस्त्रं शिल्पमस्य तत्र ‘शिल्प’ (पा. ४-४-५५) मस्तिष्ठार्थे यथाविहितं प्रत्ययः ठक् वाल्खिकः, एवं तंतुवायनं शिल्पमस्य तांत्रिकः, इह तुणाएत्ति भागितं, न चात्र तद्वितप्रत्ययो हृशयते कथं तद्वितं?, उच्यते, तद्वितप्रत्ययप्राप्तिमात्रमंगीकृत्योर्कं, प्राप्ति- श्च न तद्वितार्थेन विनाभवति, अन्तः स्थगितार्थस्तद्वितार्थः, तद्वितः प्रत्ययस्तर्हि केन वाधितः ?, उच्यते, लोकस्तदेन वचनेन, यतस्तेनार्थः प्रतीयते, येन चार्थः प्रतीयते स शब्दः, अथवाऽस्मादेव वचनादत्र जातास्तद्विता इति तद्वितसंज्ञा, इलाधातद्वितनाम श्रवण इत्यादि, अस्मादेव सूत्रनिवधात् इलाधार्थस्तद्वितार्थं इति । संयोगतद्वितमाह-राङ्गः श्वसुर इत्यादावप्यस्मादेव सूत्रनिवधात् तद्वितार्थतोति, चित्रं च शब्दग्राभृत- मप्रत्यक्षं च न इत्यतो न विद्यः, समीपतद्वितनाम गिरेः समीपे नगरं शिरिनगरं, अत्र ‘अदूरभवत्त्वे’ (पा. ४-२-७०) लाण् न भवति, गिरि- नगरमित्येव प्रसिद्धत्वात्, विदिशायाः अदूरभवं नगरं वैदिशं, अदूरभवेत्याभ्यवति, एवं प्रसिद्धत्वात्, संजूहतद्वितनाम तरंगवतीकार इत्यादि संजूहो-मन्थसंदर्भकरणं, शेषं पूर्ववद्वावनीयमिति । ऐश्वर्यतद्वितनाम ‘राङ्गे’ त्वादि, अत्रापि राजादिशब्दनिवंधनमैश्वर्यमवगंतव्यं, शेषं
दीप अनुक्रम [२०५- २०४]	तद्वितना- श्री प्रगाण नाम ॥ ७४ ॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३१-१३४] / गाथा [८३-१०२]
प्रति सूत्रांक [१३१- १३४] गाथा [८३- १०२] दीप अनुक्रम [२०५- २७०]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p style="text-align: center;">॥ ७५ ॥</p> <p>श्रीअनु० हारि.इचो ॥ ७५ ॥</p> <p>सूत्रोपक्षं ज्ञापकसिद्धमेव । अपत्यतद्वितनाम सुप्रसिद्धेनाप्रसिद्धं विशेष्यते, विशेष्यते मात्रा पुत्रः, यथा आश्वलायनः, इह पुत्रेण माता, तंजहा-तित्यगरभाता चक्षवृद्धिमातेत्यादि तदेतत्तच्छितं । ‘से किं तं धातृ॒’ भू सत्त्वां परस्मैपदे भाषा इत्यादि, तत्र भू इत्ययं धातुः सत्त्वायमर्थे वर्चते अतोः (धातोः) इत्ययं प्रमाणभावः, नामनैरुक्तं निगदसिद्धं, भावप्रमाणनामता चास्य भावत्रानशब्दनयगोचरत्वात्, गुरवस्तु ज्याचक्षते-सामासादिनाम्ना गुणाभिधानादितिभावः, अनेनैव चोपाधिना शेषभेदा भावनीया इत्येवं यथागमं मया अपैनरुक्तयं दर्शितम्, अन्यथापि सूक्ष्मधिया भावनीयमेव, अनन्तगमपर्यायत्वात्सूत्रस्थ, तदेतत्प्रमाणनाम, तदेतत्रामेति, नामेतिमूलद्वारसुक्तं । अथुना प्रमाणद्वारमभिधित्सुग्रह—</p> <p>‘से किं तं पमाणे’ (१३१-१५१) प्रमाणित इति प्रभितिर्वा प्रमाणिते वा अनेनेति प्रमाणं, चतुर्विधं प्रज्ञम् इत्यादि, प्रभेदेदात् द्रव्याद्योऽपि प्रमाणं, प्रस्थकादिवत् ज्ञानकारणत्वात्, तत्र द्रव्यप्रमाणं (१३२-१५१) द्विविधं-प्रदेशनिष्पत्तं विभागनिष्पत्तं च, प्रदेशनिष्पत्तं परमाणवायनंतप्रदेशिकांतं, स्वात्मनिष्पत्त्वादस्य तथा चाण्वादिभानमिति, विभागनिष्पत्तं तु पञ्चविधं प्रज्ञम्, विविधो भागः विभागः-विकल्पस्ततो निर्वृत्तमित्यर्थः, पञ्चविधं मानादिभेदात्, तत्र मानप्रमाणं द्विविधं प्रज्ञम्, तद्यथा-धान्यमानप्रमाणं च रसप्रमाणं च, ‘से किं त’ मित्यादि, धान्यमानमेव प्रमाणं । ‘दो असतीओ पसती दो पसतीओ य सेहरीति, अत्र आह-ओमत्थभियं जं धनप्रमाणं सो असती, उपराहुतमिदं पुण प्रसृतिरिति, इह च मानभिधिकृत्य द्वे प्रसृती, ‘से किं त’ मित्यादि, धान्यमानप्रमाणं तं सुगममेव, नवरं मुद्दोली-मोहा मुखः-कुशुल इति । ‘से किं त’ मित्यादि, रसमानमेव प्रमाणं २, धान्यमानप्रमाणात्सेतिकादेः प्रमाणेन चतुर्भागविवर्द्धितं अभ्यन्तरशस्यायुक्तं शिखा-भागस्य तत्रैव कृत्वत्वात् रसमानं विवीयत इति, तद्यथा-चतुःषष्ठिकेत्यादि, तत्य चेव छपणपलसतपमाणा माणिया, तीसे चडसट्टिभागो, चउसट्टिभागा य चउपलप्रमाणा, एवं बत्तीसियादओवि जाणियत्वा, वारको-घटविशेषः, शेषा अपि भाजनविशेषा एव, तदेतन्मानं । ‘से किं</p> <p style="text-align: right;">द्वितीये प्रमाणद्वारे द्रव्यप्रमाणं ॥ ७६ ॥</p>

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३१-१३४] / गाथा [८३-१०२]
प्रति सूत्रांक [१३१- १३४] गाथा [८३- १०२] दीप अनुक्रम [२०५- २७०]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>तं उम्माणपमाणे ?” उन्मीयतेऽनेनोन्मीयत इति बोन्मानं-तुलाकर्षादि सूत्रसिद्धं, नवरं पत्रम्-एलापत्रादि चोयः-अदुलविशेषः; मच्छंडिया-सक्तारा-विसेसो। ‘से किं तं ओमाणप्पमाणे ?, अवमीयते-तथा अवस्थितमेव परिच्छिद्यतेऽनेनावमीयत इति वाऽवमानं हस्तेन वेत्यादि, चतुहस्ता दण्डादयः सर्वेऽपि विषयमेदेन मानचिन्तायामुपयुज्जंत इति भेदोपन्यासः, खातं खातमेव चित्तभिष्टकादि करकचित्तं-करपत्रविदीर्तं कटपटादि प्रकटार्थमेव। ‘से किं तं गणिमए ?,’ गणिम-संख्याप्रमाणमेकादि तत्परिच्छिद्रं वा बज्ज्ञमेव, भृतकभृतिभक्तवेतनकायद्ययनिर्वृत्तिसंसूतानां द्रव्याणां गणितप्रमाणं निर्वृत्तिलक्षणं भवति, अत्र भृतकः-कर्मकरः भृतिः-वृत्तिः भक्तं-भोजनं वेतनं-कुंविदादेः, भृतत्वे सन्त्यपि विशेषेण लोक-प्रतीतत्वाद्वेदाभिधानं, एतेषु चायत्यर्थं संसूतानां प्रतिबद्धानामित्यर्थः, गणितप्रमाणं निर्वृत्तिलक्षणं इयत्ताऽवगमरूपं भवति, तदेतदवमानं। ‘से किं तं पदिमाणप्पमाणे ?’ प्रतिमीयतेऽनेन गुज्जादिना प्रतिसूतं वा मानं प्रतिमानं, तत्र गुञ्जेत्यादि, गुञ्जा चण्डिया, सपादा गुञ्जा कागणी, पादोना दो गुञ्जा निष्फावो-वज्ज्ञो, तिणिण गिण्फावा कम्ममासओ चेव चउकागणिकोत्ति त्रुतं भवति, बारस कम्ममासगा मंडलओ, लच्चीसं गिण्फावा अड्यालीसं कागणिओ सोलस मासगा सुवण्णो’ अमुमेवार्थं दर्शयति--‘पंच गुज्जाओ’ इत्यादि, एवं चतुःकर्ममासकः काकण्यपेक्ष्या, एवं अष्टचत्वारिंशाद्विः काकणीमिः मंडलको, भवतीति शेषः, रजतं-रूपं चन्द्रकान्तादयो मणयः शिला-राजपट्टकः गंधपट्टक इत्यन्ये, शेषं सूत्रसिद्धं।</p> <p>‘से किं तं खेत्तप्पमाणे’ इत्यादि, प्रदेशाः-क्षेत्रप्रदेशाः; तैनिष्पत्रं, विभागनिष्पत्रं त्वंगुलादि मुगमं, णवरं रयणी-हृत्थो, दोणिण हृत्था कुच्छी, सेढी य लोगाओ निष्फज्जति, सो य लोगो चउहसरज्जूसितो हैद्वा देसूणसत्तरज्जूविच्छिणो, तिरियलोगमज्जे रज्जूविच्छिणो, एवं वंभलोगमज्जे पंच, उवर्तं लोगंते एगरज्जूविच्छिणो, रज्जू पुण सर्वंभुरमणसमुद्धुरतिथमपच्चातिथमवेह्यंता, एस लोगो त्रुद्धिपरिष्ठेदेण संवृद्धं घणो</p> <p>प्रमाणद्वारे द्रव्यस्थेन प्रमाण</p> <p>॥ ७६ ॥</p>
	*** अत्र ‘क्षेत्र-प्रमाण’स्य वर्णनं मध्ये ‘लोक-श्रेणः वर्णनं

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३१-१३४] / गाथा [८३-१०२]
प्रत सूत्रांक [१३१- १३४] गाथा [८३- १०२]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ७७ ॥</p> <p>कीरट, कथं १, उच्यते, णालियाए दाहिणिलमहोलेगालंडं हेडा देसूणतिरज्जूविच्छिणं उवरि॒ रज्जूअसंख्विभागविच्छिन्नं अतिरित्त- सत्तरज्जूसितं, एवं घेतुं ओमत्थियं उत्तरे पासे संघातिज्जइ । इदापि॒ उडुलोए दाहिणिलाइं खंडाइं बंभलोगवहुसममज्जे देसभागे विरज्जुवि- च्छिणाइं सेसेतेसु अंगुलसहस्रदोभागविच्छिणाइं देसूणअध्युद्धुरज्जूसिताइ, एताइ॒ घेतुं उत्तरे पासे विवरीताइ संघातिज्जंसि, एवं कतेसु कि॒ जातं ?, हेडिमं लोगद्वं देसूणचउरज्जूविच्छिणं सातिरित्तसत्तरज्जूसितं देसूणसत्तरज्जूबाहलं, उवरिलमद्वंपि अंगुलसहस्रदो- भागविधियतिरज्जूविच्छिणं देसूणसत्तरज्जूसितं पंचरज्जुबाहलं, एवं घेतुं हेडिलउत्तरे पासे 'संघातिज्जति, जं तं अहे खंडसस सत्तरज्जू अहियं उवरि॒ तं घेतुं उत्तरिलहस्स खंडसस रज्जूओ बाहलं ततो उट्टाय संघातिज्जति, तहावि॒ सत्तर रज्जूष धरंति, ताहे जं दक्षियणिलं तस्स जम- धियं बाहलओ तस्सद्वं छित्ताओ उत्तरओ बाहले संघातिज्जइ, एवं कि॒ जातं ?, वित्थरतो आयामतो य सत्तरज्जू बाहलतो रज्जूए असंखभागेण अविगाओ छ रज्जू, एवं एस लोगो ववहारसो सत्तरज्जुप्पमाणे दिडो, एत्थं जं ऊणातिरितं बुद्धीय जधा जुज्जइ तहा संघातिज्जा, सिद्धते य जथ अविसिड्दं सेफिगहणं तथ्य एताए सत्तरज्जूआयताए अवगंतवं, संप्रदायप्रामाण्यात्, प्रतरोडप्येवंप्रमाण एव, आह-लोकस्य कथं प्रमाणता ?, उच्यते, आत्मभावप्रामाण्यकरणात्, तदभावे तद्युद्धयभावप्रसंगात् । 'से कि॒ तं अंगुले ?' अंगुले (इत्यादि) आत्मांगुलं उच्छ्रूयांगुल प्रमाणांगुलं, तत्रात्मांगुलं प्रमाणानवस्थितेरनियतं, उच्छ्रूयांगुलं त्वंगुलं परमाणवादिकमायातमवास्थितं, उस्सेहंगुलाओ य कागणीरयणमाणमाणीतं, तओवि- वद्धमाणसामिस अद्यंगुलप्रमाणं, ततो य पमाणाओ जस्संगुलस्स पमाणमाणिज्जति तं पमाणांगुलं, अवस्थितमेव, अत्र बहुवक्तव्यं तसु नोच्यते,- ग्रन्थविस्तरभयाद् विशेषणवत्यनुसारतस्तु विज्ञेयभिति । नव मुखान्यात्मीयान्येव पुरुषः प्रमाणयुक्तो भवति, द्रौणिकः पुरुषो मानयुक्तो भवति, मह- त्यां जलद्रोण्यां उदकपूर्णायां प्रवेशे जलद्रोणादुनातावन्मात्रोनायां वा पूरणादित्यर्थः, तथा सारपुद्लोपचितत्वान्तुलारोपितः सन्नद्धभारं तुलयन्</p> <p>लोक श्रेणी: ॥ ७७ ॥</p>
दीप अनुक्रम [२०५- २७०]	*** अत्र 'प्रमाण'-अधिकारः मैथ्ये 'अङ्गुल'स्य भेदाः आदि वर्णनं क्रियते

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३१-१३४] / गाथा [८३-१०२]
प्रत सूत्रांक [१३१- १३४] गाथा [८३- १०२]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>पुरुष उन्मानयुक्तो भवति, तत्त्वोऽपेषता भवति, आहं-‘माणुम्माण’ गाहा (१३१-१३४) भवति पुनरधिकपुरुषाश्रक्तवर्त्या-दय उक्तलक्षणमानोन्मानप्रमाणयुक्ता, लक्षणवर्यंजनगौणैरपेता:, तत्र लक्षणानि—स्वरितकादीनि व्यंजनानि मशादीनि गुणाः-क्षान्त्यादयः उत्तमकुलप्रसूता उत्तमपुरुषा भुग्नितव्या इति गाथार्थः ॥ उत्तमादिविभागप्रदर्शनार्थमेवाह-‘होति पुण’ गाहा-(१३१-१३४) भवति पुनरधिकपुरुषाश्रक्तवर्त्यादयः अष्टशतमंगुलानां उच्चिद्वा-उभिमिता उच्चैस्वेन वा पुनःशब्दोऽनेकमेदसंदर्शकः, षण्णवतिमधमपुरुषाश्रुरुत्तरं, शतमिति गम्यते, भविष्यमिला उ-मध्यामाः, तुशब्दो यथातुरुपं शेषलक्षणादिभावावप्रतिपादनार्थमिति गाथार्थः ॥ स्वरादीनां प्राघान्यमुपदर्शयन्नाह-‘हीणा वा’ गाहा (१३१-१३४) उक्तलक्षणं मानमधिकृत्य हीनाः व्यरःआज्ञापकप्रवृत्तिःगम्भीरो ध्वनिः सर्वं-अदैन्यानष्टमः सारः-शुभपुद्लोपवद्यः तत एवंभूताः उत्तमपुरुषाणां-पुण्यभाजां अवश्यं पश्यत्वा: ब्रेष्यत्वमुपयन्ति, उक्तं च-‘अस्थिवर्थाः सुखं मांसे, त्वचि भोगाः ख्योऽक्षिषु। गतौ यानं स्वरे चाज्ञां, सर्वं सर्वे प्रतिष्ठित ॥ १ ॥’ भिति गाथार्थः, शेषं सुगमं यावत् वावी चउरस्सा वट्टुला पुक्तवरिणी पुष्करसंभवतो वा सरिणी रिजू लैहिया सारिणी चेव वंका गुञ्जलिया सरमेनं तीए पंतिठिता दो सरातो सरसरं कवाङ्गेण उदगं संचरश्चिति सरसपंसी, विविध-रुक्खसहितं कयलादिपच्छान्नवरेसु य वीसंभिताण रमणङ्गाणं आरामो, पत्तपुष्करलङ्घायोवगादिहक्कलोवसोभितं बहुजणविविहवेसु-पणममाणस्स भोयणद्वा जाणं उज्जाणं, इत्थीण पुरेसाण एगपक्षे भोदजं जं तं काणणं, अथवा जस्स पुरओ पव्ययमङ्गी वा सव्ववणाण य अंते वर्णं काणणं, कीर्णं वा एगजाइयरुक्षेहि य वर्णं, अणेगजाइपर्हि उत्तमेहि य वर्णसंडं, एगजातियाण अणेगजातियाण वा रुक्षाण पंती व-णराई, अहो संकुडा उवर्ति विसाला फरिहा, समक्षव्यया खादिया, अंतो पागाराणंतरं अट्टहत्यो रायसग्गो चारिया, दोण्ड दुवाराण अन्तरे गोपुरं, तिगो णामागासभूमि तिपहसमागमो य, संघाङ्गो तिपहसमागमो चेव तियं, चउरसं चउपहसमागमो चेव, चत्वरं छप्पहसमागमं वा, एवं</p> <p style="text-align: right;">आत्मा- गुरुम्- विकारः</p> <p style="text-align: right;">॥ ७८ ॥</p>
दीप अनुक्रम [२०५- २७०]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३१-१३४] / गाथा [८३-१०२]
प्रत सूत्रांक [१३१- १३४]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा [८३- १०२]	<p>श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ ७९ ॥</p> <p>चच्चरं भण्णइ, देवउलं चउमुहं, महतो रायमग्नो, इतरा पहा, सत्-सोभणाविहु जं भयंते पोत्ययवायणं वा जथं अण्णतो वा मणुयाणं अच्छनद्वायणं वा सभा, जल्युदगं दिज्जति सा पवा, बाहिरा लिंदो, सुकिधी अलिंदो वा सरंगं, शिरिगुहा लेणं, पञ्चयस्सेगदेष्टलीणं वा लेणं कप्प-चिंगादि व जथं लयंति तं लेणं, भेंडं भायणं, तं च सृन्मयादि मात्रो-मात्रायुक्तो, सो य कंसभोयणभंडिका, उवकरणं अणगविहं कडगपिडग-सूर्पादिकं, अहवा उवकरणं इमं सगडरहादियं, तथ्य ‘रहे’ ति जाणरहो संगामरहो य, संगामरहस्स काण्डिप्पमाणा फलयवेइया भवति, जाणं पुणं गंडिमाइयं, गोलविसए जंपाणं द्विहस्तप्रमाणं चतुरसं सबेदिकं उपशोभितं जुग्यं लाडाण थिल्लो जुग्यं इस्तिन उपरि कोङ्करं गिलतीव मानुषं गिली लाडाण जं अणपङ्गाणं तं अणविसासु थिल्ली भणइ, उवरि कूडागारछादिया खिविया दीहो जंपाणविसेसो पुरि-सस्स, स्वप्रमाणवगासदाणत्तणओ संदमाणी, लोहित्ति कावेली लोहकडाहंति-लोहकडिलं, एतं आयंगुलेण मविज्जति, तथाऽद्यकालीनानि च जोजनानि मीयंते, शेषं निगदसिद्धं यावत् से तं आयंगुले ॥</p> <p>‘से किं तं उससंहगुले २,’ चच्छ्रयांगुलं कारणापेक्षया कारणे कार्योपचारादनेकाविधं प्रज्ञासं, तथा चाह-‘परमाणु’ इत्यादि (५९९-१६०) परमाणुः त्रसंरेणू रथरेणुरमं च वालस्य लिश्वा युका च यवः, अटुगुणविवर्द्धिताः क्रमशः उत्तरोत्तरवृद्ध्या अंगुलं भवति, तथ्य यं जे से सुहुमो से ठप्पेत्ति स्वरूपख्यापनं प्रति तावत् स्थाप्यो, अनविकृत इत्यर्थः, ‘समुद्यसमितिसभागमेण’ ति अत्र समुदायस्त्वादिमेलकः परमाणुपुद्गलो निष्फल्जते, तत्र चोदकः पृच्छति-‘से यं भेते !’ इत्यादि, सो भद्रन्त ! परमाणुः असिधारं वा क्षुरधारां वा अवगाहेत-अवगाहासीत असिः-खल्गः क्षुरो-नपितोपकरणं, प्रत्युत्तरमाह-हन्तावगाहेत ‘हन्त संप्रेषणप्रत्यवधारणविवादेष्विति वचनात्, स तत्र छिद्येत भिद्येत वा, तत्र छेदो-द्विधाकरणं भेदोऽनेकधा विद्वारणं, प्रश्ननिर्वचनं-नायमर्थः समर्थः, नैतदेवभिति भावना, अत्रैवोपपात्तिमाह-न खलु तत्र शक्षं संकामति, सूक्ष्म-</p> <p>आत्मांगुल मुत्सेवा- गुरुं च</p> <p>॥ ७९ ॥</p>
दीप अनुक्रम [२०५- २७०]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३१-१३४] / गाथा [८३-१०२]
प्रति सूत्रांक [१३१- १३४]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा [८३- १०२]	<p style="text-align: center;">श्रीअनु० हारि॒व॒चौ ॥ ८० ॥</p> <p>त्वादिति भावः, स भद्रन्त ! अभिकायस्य-वह्नेर्मध्यंमध्येन-अंतरेण गच्छेत्-यायात् ? हन्त गच्छेत्, स तत्र द्व्येतेत्यादि पूर्ववत्, नवरं शब्दमग्नि-मयं गृह्णत इति, अवादि च-‘सत्थगिगविस’ मित्यादि, एवं पुक्खलसंवर्तमपि भावनीयं, नवरं अस्यैवं प्रस्तुपणा ‘हह वद्धमाणसाभिणो निव्वा-णकालाओ तिसद्विष वाससहस्रेषु ओसपिणीए (पंचमछट्टारगेषु उस्सपिणीए) य एकवीसाए वीइकेत्सु एत्य पञ्च महामेहा भविसंति, तंजहा-पदमे पुक्खलसंवर्त य उदगरसे बीए खीरोदे तद्दृष्टे घओदे चंडत्थे अभितोदे पंचमे रसोदे, तत्र पुक्खलसंवर्तोऽस्य भरतक्षेत्रस्य अशुभ-भावं पुष्कलं संवर्तयति, नाशयतीत्यर्थः, एवं शेषनियोगोऽपि ग्रथमानुयोगानुसारतो विज्ञेयः, स भद्रन्त ! गंगाया महानद्याः प्रतिश्रोतो हर्यं-शीघ्रमागच्छेत् ?, स तत्र विनिधात-प्रस्त्रलनमापद्येत-प्राप्नुयाच्छेषं पूर्ववत्, स भद्रन्त ! उदकावर्त वा उदकविंदुं वा अवगाहा ति-छेन्, स तत्रोदकसंपर्कात्कुर्येत वा पर्यापद्येत वा?, कुरुनं पूर्तिभवाः, पर्याप्तिस्तु अन्यरूपापचिः, शेषं सुगमं, यावत् अनन्तानां व्यावहा-रिकपरमाणुपुद्लानां समुद्यसमितिसमागमेन सा एका उच्छ्रृङ्खणशक्षिणकादीनामन्योऽन्याष्टगुणत्वे सत्य-प्यनंतत्वादेव परमाणुपुद्लसमुदायस्याद्योपन्यासोऽविरुद्धं एव, तत्र शक्षणशक्षिणकायपेक्षया उत्प्राबलयेन शक्षणमात्रा उच्छ्रृङ्खणशक्षणोच्यते, शक्षणशक्षणा त्वावत् ऊर्ध्वरेण्वपेक्षया ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्त्वलनधर्मोपलभ्यः ऊर्ध्वरेणुः, पौरस्थादिवायुप्रेरितस्यति-गच्छतीति त्रसरेणुः, रथगमनो-त्वातो रथरेणुः, वालायलिक्षायाकादयः श्रवीताः, शेषं ग्रक्टार्थं यावदधिकृतांगुटिविकार एव, नवरं नारकाणां जघन्या भवधारणीयशरीराव-गाहना अंगुलासंख्येयभागमात्रा उत्पद्यमानावस्थायां, न त्वन्यदा, उत्तरवैकिया तु तथाविद्यप्रयत्नाभावादावसमयेऽयंगुलसंख्येयभागमात्रैवेति, एवमसुरकुमारादिदेवानामपि, नवरं नागादीनां नवनिकायदेवानामुल्क्षेत्रवैकिया योजनसहस्रमित्येके, पृथिवीकायिकादीनां त्वंगुलासंख्येय-भागमात्रतया तुल्यायामप्यवगाहनायां विशेषः, ‘वणऽणंतसरीराण एगाणिलसरीरं पमाणेण । अण्लोदगपुढीर्णं असंख्यगुणिया भवे उद्धृ</p> <p style="text-align: right;">उत्सेधांगुलं ॥ ८० ॥</p>
दीप अनुक्रम [२०५- २७०]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३१-१३४] / गाथा [८३-१०२]
प्रति सूत्रांक [१३१- १३४]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा [८३- १०२]	<p>श्रीअनु० हारि.बृत्ती ॥ ८१ ॥</p> <p>॥ १ ॥ “से कि पमाणं” २ एकैकस्य राङ्गश्चतुरन्तचक्रवर्त्तिनः, तत्रान्यान्यकालोत्पन्नानामपि तुल्यकाकणीरङ्गप्रतिपादनार्थमेकैकप्रहणं, निहपचरितराजशब्दविषयज्ञापनार्थं राजप्रहणं, षट्संबंधरतादिभेदक्षत्वप्रतिपादनार्थं चतुरन्तचक्रवर्त्तिन इत्यत्रान्ये, चत्तारि मधुरतणफला एगो सेयसरिसवो, सोल सरिसवा एगं धण्णमासफलं, दो धण्णमासफलाइ गुंजा, पंच गुंजाओ एगो कम्ममासगो, सोलस कम्ममासगा एगो सुवण्णो, एते य मधुरतणफलादिगा भरहकालभाविणो शिष्पंते, जतो सञ्चकक्षर्णीं तुलमेव कागणीरयणंति, षट्टलं द्वादशाश्रि अष्टकर्णिकं अधिकरणिसंस्थानसंस्थितं प्रज्ञमं, तत्र तल्लानि-मध्यभाण्डानि अश्रगः-कोटयः कणिकाः-कोणिविभागाः अधिकरणिः-सुवर्णकारोपकरणं प्रतीतमेव, तस्य काकणिरत्नस्य एकैका कोटिः उच्छ्रयाङ्गुलप्रमाणविषकम्भकोटीविभागा, विक्खभो-वित्त्वारो, तस्य य समचउरस्तभावत्तणओ सञ्चकटीण तुलायामविषकम्भगहणं, तच्छूमणस्य भगवतो महावीरस्याद्वाङ्गुलं, कहं ?, जतो वीरो आदेसंतरतो आयंगुलेण चुलसी-तिमंगुलमुविवद्धो, उस्सेहं पुण सतसहं सयं भवति, अतो दो उस्सेहंगुला वीरसस आयंगुलओ, एवं वीरससायंगुलाओ अद्वं उस्सेहंगुलं दिढ्ठं, जेसि पुण वीरो आयंगुलेण अट्टुत्तरमंगुलसंतं तेसि वीरसस आयंगुलेण एकमुस्सेहंगुलं उस्सेहंगुलस्य य पंच षष्ठभागा भवति, जेसि पुणो वीरो आयंगुलेण वीसुत्तरमंगुलसंयं तेसि वीरससायंगुलेणगमुस्सेहंगुलं उस्सेहंगुलस्य य दो पंचभागा भवति, एवमेतं सञ्च तेरासिथ-करणेण दद्वच्चं, उच्छ्रयांगुलं सहस्रगुणितं प्रमाणाङ्गुलमुच्यते, कथं ?, भण्णति-भरहो आयंगुलेण वीसुत्तरमंगुलसंतं, तं च सपायं धणुयं, उस्सेहंगुलमाणेण पंचधणुसया, जइ सपायेण धणुणा पंच धनुसए लभामि तो एगेण धणुणा किं लभिस्सामि ?, आगतं चड धणुसताणि सेढीए, एवं सञ्चे अगुलजोयणादयो दद्वच्चा, एगंभि सेद्विपमाणांगुले चउरो उस्सेहंगुलसया भवति, तं च पमाणंगुलं उस्सेहंगुलप्रमाणेण अद्वातिथंगुलवित्थडं, ततो सेढीए चउरो सता अङ्गुद्वयंगुलगुणिया सहस्रं उस्सेहंगुलाणं, तं एत्रं सहस्रगुणितं भवति, जे यप्पमाणंगुलाओ</p> <p>काकिणी रत्नं उत्स- धांगुलं च</p> <p>॥ ८१ ॥</p>
दीप अनुक्रम [२०५- २७०]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३५-१३७] / गाथा [१०३-१०६]
प्रत सूत्रांक [१३५- १३७] गाथा [१०३- १०६] दीप अनुक्रम [२७१- २७८]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>प्रत सूत्रांक [१३५-१३७] गाथा [१०३-१०६] दीप अनुक्रम [२७१-२७८]</p> <p>भीष्मनु० हारि.वृत्तौ ॥८२॥</p> <p>पुढवांदिपमाणा आणिजंति ते पमाणंगुलविक्षंभेण आणेदव्वा, ए सूहञ्जुलेण, शेषं सुगमं, यावत् तदेवत्क्षेत्रप्रभाणमिति, नवरं काण्डानि रत्नकाण्डादीनि भवनप्रस्तान्तरे टंका॑-डिङ्गट्कानि रत्नकूटादयः कूटाः शैलाः मुङ्पर्वताः शिखरवन्तः शिखरिणः प्रागभाग-ईर्षवनता इति । ‘से किं ते कालप्पमाणं’ इति (१३४-१७५) कालप्रभाण द्विविधं प्रकाप, तदथा-प्रदेशानिष्पत्ते विभागनिष्पत्ते च, तत्र प्रदेशनिष्पत्ते एकसमयस्थितादि यावदसंख्येयसमयस्थितिः, समयानां कालप्रदेशत्वादसंख्येयसमयस्थितेऽप्योर्ध्वमसंभवात्, विभागनिष्पत्ते तु समयादि, तथा चाह-‘ समयावलिय गाहा (#१०३-१७५) कालविभागाः स्वत्वमाः, समयादित्वान्तैतेवामादौ समयनिरपणा क्रियते, तथा चाह-‘से किं तं समयं’ (१३७-१७५) प्राकृतशैस्याऽभिधेयविल्लगवचनानि भवन्तीति न्यायादय कोडयं समय इति पृष्ठः सज्जाह-समयस्य प्ररूपणां करिष्याम इति, तदथा नाम तुमदारकः स्यात् सूचिक इत्यर्थः तदणः प्रबद्धमानवयः, आह-दारकः प्रबद्धमानवया एव भवति किं विशेषणेन ?, न, आसन्नमृत्योः प्रबद्धमानवयस्त्वाभावस्तस्य चासन्नमृत्युत्वादेव विशिष्टसामर्थ्यानुपपत्तेः, विशिष्टसामर्थ्यप्रतिपादनार्थशायमारंभ इति, अन्ये तु वर्णादिगुणोपचितो भिन्नवयस्तरुण इति व्याचक्षते, बलं-सामर्थ्यं तदस्यासीति बलवान्, युगः-सुषमदुष्मादिकालः सोऽस्य भावेन न कालदोषतयाऽस्यासीति युगवान्, कालोपद्रवोऽपि सामर्थ्यविघ्रहेतुरिति, जुवाणं युवा वयःप्राप्तः, दारकाभिधानेऽपि तस्यानेकवा भेदाद्विशिष्टवयोऽवस्थापरिग्रहार्थमिदमदुष्टं, ‘अस्पातंकः’ आतङ्को-रोगः अत्राल्पशब्दोऽभाववचनः, स्थिरामहस्तः लेखकवत् प्रकृतपटपाटनोपयोगित्वाच्च विशेषणाभिधानमस्योपपदात् एव इदः पणिपादपार्वपृष्ठान्तरोरपरिणतः, सर्वांगावयवैकरतमसंहनन इत्यर्थः, तलय-मलयुगलपरिधनिभवाकुः परिधः-अर्गला तन्निभवाकुस्तस्य य तदाकारवाहुरिति भावार्थः, आगंतुकोपकरणं सामर्थ्यमाह-चर्मेष्टकतुघनसुष्टि-समाहतनिचितकाय इति, ऊरस्यबलसमन्वागतः, आन्तरोत्साहीर्थयुक्त इत्यर्थः, व्यायामवस्थं दर्शयति-लंघनलवनशीघ्रव्यायामसमर्थः;</p> <p style="text-align: right;">समय- निरूपण ॥८२॥</p> <p>*** अथ ‘काल’ विभागे ‘समय-आवलिका-आदि वर्णनं क्रियते</p>

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३५-१३७] / गाथा [१०३-१०६]
प्रत सूत्रांक [१३५- १३७] गाथा [१०३- १०६] दीप अनुक्रम [२७१- २७८]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>जैनशब्दो शीघ्रवचनःलेकः-प्रयोगङ्गः इक्षः-शीघ्रकारी प्रापार्थः-अधिगतकर्मनिष्ठां गतः, प्राङ्ग इत्यन्ये, कुशलः-आळोचितकारी मेधावी-सङ्कृतश्चूत-हृष्टकर्मजः निपुणः-उपायारम्भकः निपुणशिल्पोपगतः-सूक्ष्मशिल्पसमन्वितः, स इत्थभूतः एकां महर्ता पटशाटिकां वा पटशाटकं वा इडक्षणतया पटशाटिकेति भेदेनाभिधानं, गृहीत्वा ‘सयराह’ मिति सङ्कट इटिरि कृत्वेतर्थः, हस्तमात्रमपि उत्सारथेत् पाठ्येदितर्थः । तत्र चोदकः-शिष्यः प्रश्नापायतीति प्रश्नापांको-गुहस्तमेवमुक्तवान्-किं? येन कालेन तेन तु नवायदारकेण तस्याः पटशाटिकाया सङ्कुलस्तमात्रमपसारितं-पाटितमसौ समय इति, प्रश्नापक आह-‘नायमर्थः समर्थः?’ नैतदेवमित्युक्तं भवति, कस्मादिति पृष्ठ उपपत्तिमाह-यस्मात्संख्येयानां तन्तूनां समुदयसमितिसमागमेनेति पूर्ववत्, पटशाटिका निष्पद्यते, तत्र उवरिल्लति-उपरितने तंत्री अच्छिन्न-अविदारिते ‘हेडिल्ले’ ति अधस्तनस्तनुर्न छिद्यते, अन्यस्मिन्नकाले आयोऽन्यर्स्मशापरस्तस्मादसौ समयो न भवति, एतच्च प्रत्यक्षप्रतीतं, संशातस्वनंतानां परमाणूनां विशिष्टैकपरिणामयोगस्तेषामनन्तानां संधानानां संयोगः-समुदयस्तेषां समुदयानां याऽन्योऽन्यानुगतिरसौ समितिस्तेषामेकद्रव्यनिवृत्तिसमागमेन पठः निष्पद्यत इति, समयस्य चातोऽपि सूक्ष्मत्वात्, परमाणुऽन्यतिकान्तिलक्षणकाल एकसमय इति, न, पाटकप्रयस्तनस्याचित्यसीक्युक्तवाद्, अभागे च तन्सुविसंघातोपपत्तेस्तुल्यप्रयत्नप्रवृत्तानवरतप्रवृत्तग्रन्थतुल्यकालेनेष्टदेशप्राप्युपलब्धेः प्रयत्नविशेषसिद्धिरहद्वचनाश, उक्तंच-‘ आगमशोपपत्तिश्च, संपूर्ण इडिलक्षणम् । अतीन्द्रियाणामर्थानां, सङ्कृतप्रतिपत्तये ॥ १ ॥ आगमो हास्तवचनमासं दोषक्षयाद्विदुः । वीतरागोऽसृतं वाक्यं, न शूयादेत्वसंभवात् ॥२॥ उपपत्तिभेदव्युक्तिर्यां सङ्कृतप्रसेविका । सा त्वन्वयन्यतिरेकलक्षणा सूरिभिः स्मृते ॥३॥’ ति, निर्दशं चेहोभयमपि, अर्लं विस्तरेण, गमनिकामात्रमेतत्, शेषं सूत्रसिद्धं यावत् ‘हड्डुस्ते’ त्यादि(१०४-१७८) हृष्टस्य-तुष्टस्य अनवकल्पस्य-जरसा अपीडितस्य विस्तपक्षिलप्टस्य-न्याधिना पूर्वं सांप्रतं वाऽनभिभूतस्य जन्तोः मनुष्यादेः एक उच्छ्वासनिच्छ्वास एकः प्राण इत्युच्यते-‘सत्त पाणूणि’ सिद्धोगो (१०५-१७९) तिगदसिद्ध एव,</p> <p style="text-align: right;">समय- निरूपणं</p> <p style="text-align: right;">॥ ८३ ॥</p>

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३५-१३६] / गाथा [१०३-१०६]			
पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः				
प्रत सूत्रांक [१३५- १३६] गाथा [१०३- १०६]]	श्रीअनु० हारि.वृत्ता० ॥ ८४ ॥	उच्छ्वासमानेन सुहृत्तमाह-‘तिष्णि सहस्रा’ गाहा-(*१०६-१७१) सत्त्वाहिं ऊर्सासेहिं थोवो सत्त्व थोवा य लवे, सत्त्वथोवेण गुणितस्स- वि जया लवे अउणपण्ण उस्सासा लवे, सुहुत्ते य सत्त्वहत्तर्ति लवा भवंति, ते अउणपण्णासाए गुणिता एयत्पमाणा। इवंति, शेषं निगदसिद्धं यावत् एतावता चेव गणितस्स उवओगो इमो-अंतोसुहुत्तादिया जाव पुब्वकोडिति, एतानि धम्मचरणकालं पञ्च नरतिरियाण आउपरिणाम- करणे उवउज्जंति, यारगभवणवंतराणं दस्चाससहस्रादिया, उवउज्जंति आउयचिताए तुडियादिया सीसपहेलियंता, एते प्रायसो पुब्वगतेसु जावितेसु आउसेढीए उवउज्जंतिति ॥	उच्छ्वा- सादि निरूपणं पल्योपमं च	उच्छ्वा- सादि निरूपणं पल्योपमं च
दीप अनुक्रम [२७१- २७८]		‘से किं तं उवमय’ ति (१३८-१८०) उपमया निर्वृत्तमौपमिकं, उपमामन्तरेण यत्कालप्रमाणमनतिशयिना प्रहीतुं न शक्यते तदौप- मिकमिति भावः, तच्च द्विधा-पल्योपमं सागरोपमं च, तत्र धान्यपल्यवत्पल्यः तेनोपमा यस्मिस्तत्पल्योपमं, तथाऽर्थतः सागरोपमा यस्मिन् तत्सागरोपमं, सागरवन्महत्परिणामेनेत्यर्थः। तच्च पल्योपमं त्रिधा-‘उद्धारपलिओवर्म’ इस्यादि, तत्र उद्धारो बालाणां तत्खण्डानां वा अपोदरण- मुच्यते, तद्विषयं तत्प्रधानं वा पल्योपमं उद्धारपल्योपमं, तथाऽद्धूत्ति कालाख्या, ततश्च वालाग्राणां तत्खण्डानां च वर्षशतोद्धरणादद्धापल्यस्तेनोपमा यस्मिन्, अथवाऽद्धा-आयुःकालः सोऽनेन नारकादीनामानीयत इत्यद्वापल्योपमं, तथा क्षेत्रमित्याकाशं, ततश्च प्रतिसमयमुभयथापि क्षेत्रप्रदेशापहारे क्षेत्रपल्योपमिति। ‘से किं तं उद्धारपलिओवर्मे’ अपोद्धारपल्योपमं द्विविधं प्रज्ञम्, तद्यथा-संद्वकरणात् सूक्ष्मं, बादराणां व्यावहारिकत्वात् व्यावहा- रिकं, प्ररूपणामात्रव्यवहारोपयोगित्वाद्यावहारिकमिति, ‘से उपेष’ ति सूक्ष्मं तिष्ठतु तावद् व्यवहारिकप्ररूपणापूर्वकत्वादेतत्प्ररूपणाया इत्यतः पश्चात्प्ररूपयित्यामः, तत्र यत्तद्वयावहारिकमपोद्धारपल्योपमं तदिदं वद्यमाणलक्षणं, तद्यथा नाम पल्यः स्थात् योजनं आयामविष्कम्भाश्यां, इत्तत्वात्, योजनमूर्ध्वमुच्चत्वेन अवगाहनतयेति भावता, तद्योजनं त्रिगुणं सत्रिभागं परियेण, परिधिमधिकृत्येत्यर्थः; स एकाहिकव्याहिकव्याहिकादीनां	॥ ८४ ॥	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]
प्रत सूत्रांक [१३८- १४२]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा [१०७- ११२]	<p>श्रीअनु० हारि.हृषी० ८५ </p> <p>उद्घटं सप्तरात्रिकाणां भूतो वालाप्रकोटीमभिति प्रायोग्यः, तत्रैकाहिक्यो मुण्डिते शिरस्यकेनाहा या भवतीति, एवं शेषेष्वपि भावना कार्येति । कथंभूत ?, इत्याह-‘सम्मटे सणिणिए’ ति सम्मटः-आकर्णभूतः प्रवयविशेषाभिविडः, किं बहुना ?, इत्थं भूतोऽसौ येन तानि वालाप्राणि नाप्रिदेहे, नापि वायुहरेत्, न कुञ्चयुः, प्रचयविशेषात्सुषिराभावाद्वायोरसंभवाज्ञासारतां गच्छेयुरित्यर्थः, न विध्वसेदन्, अत एव न कतिपयपरिश-टमप्यागच्छेयुः, अत एव पूर्तिव्याप्तिभक्तिपरिणामः ततश्च पूर्तिभावं न कदाचिदागच्छेयुः, अथवा न पूर्तिव्येन कदाचित्परिणमेयुः, ‘ते णं वाल-ग्गा समए’ ततस्तेभ्यो वालाप्रेभ्यः समय २ एकैकं वालाप्रमपहृत्य कालो भीयत इति शेषः, ततश्च यावता कालेन स पल्यः क्षणो नीरजा निलेणो निष्ठितो भवति एतावान् कालो व्यवहारिकापोद्वारपस्योपममुच्यते इति शेषः, तत्र व्यवहारनयापेक्षया पल्यधान्य इव कोषागारः स्वल्पवालाप्रभावेऽपि ‘क्षीण’ इत्युच्यते तदभावज्ञापनार्थं आह-नीरजाः, एवमपि कदाचित्कथंवित्सूक्ष्मवालाप्रावयवसंभव इति तदपोहायाह-निलेप इति, एवं त्रिभिः प्रकारैः विरितो निष्ठितः इत्युच्यते, रसवतीदृष्टा-तेन चैतद्वावनीयं, पक्षार्थिकानि वा एतानि, ‘सत्त’ मित्यादि निग-मनं, शेषं सूत्रसिद्धं, यावत् नास्ति किंचित्प्रयोजनभिति, अत्रोपन्यासानर्थकताप्रतिवेदायाह-केवलं तु प्रज्ञापनार्थं प्रज्ञाप्यते, प्ररूपणा क्रियत इत्यर्थः, आह-एवमप्युपन्यासानर्थकस्त्वमेव, प्रयोजनमन्तरेण प्ररूपणाकरणस्याप्यनर्थकत्वान्, उच्यते, सूक्ष्मपल्योपमोपयोगित्वात्सप्रयोजनैव प्ररूपणे-त्वदोषः, वक्ष्यति च ‘तत्थं एगमेगे वालग्गे’ इत्यादि, आह-एवमपि नास्ति किंचित्प्रयोजनभित्युक्तमस्यक्तमस्यैव प्रयोजनत्वाद्, एतदेवं, एता-वतः प्ररूपणाकरणमात्ररूपत्वेनाविवक्षितत्वादिव्येवं सर्वत्र योजनीयमिति, शेषमुच्चानार्थं यावत्तानि वालाप्राण्यसंख्येयसंबंधितानि दृष्टवगा-हनातोऽसंख्येयभागमात्राणि, एतदुक्तं भवति-यत् पुद्रलद्रव्यं विशुद्धवस्तुर्दर्शनः छद्रस्थः पश्यति तदसंख्येयभागमात्राणीति, अथवा क्षेत्रमधि-क्षय मानमाह-सूक्ष्मपनकजीवस्य शरीरावगाहनातोऽसंख्येयगुणानि, अयमत्र भावार्थः-सूक्ष्मपनकजीवावगाहनाक्षेत्रादसंख्येयगुणाक्षेत्रावगाहनाना-</p>
दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	पल्योपमं ८५

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]
प्रति सूत्रांक [१३८- १४२] गाथा [१०७- ११२]	<p>पूज्य आगमोद्वारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p style="text-align: center;">॥ ८६ ॥</p> <p>श्रीअनु० हारि.वृत्ती ॥ ८६ ॥</p> <p>मित्यादि, बादरपूथिवीकायिकपर्याप्तकशरीरतुस्यानीति वृद्धवादः, शेषं निगदसिद्धं यावत् ‘जावहया अद्वाइज्जाण’ मित्यादि, यावन्तोऽद्वेष्टतीये- तु सागरेष्वपोद्वारसमया वालाम्रापोद्वारोपलक्षिताः समया आपोद्वारसमयाः पतावन्तो द्विगुणद्विगुणविष्कंभा द्वीपसमुद्रा आपोद्वारेण प्रज्ञाताः, असंख्येया इत्यर्थः; उक्तमपोद्वारपल्यापमं, अद्वापल्योपमं तु प्रायो निगदसिद्धमेव, नवरं स्थीयत अनयेत्यायुष्कर्मपरिणत्या नारकादिभवे- विक्ति स्थितिः, जीवितमायुष्कमित्यनर्थान्तरं, यद्यपि कायादियोगगृहीतानां कर्मपुद्गलानां ज्ञानावरणादिरूपेण परिणामितानां यदवस्थानं सा रिथतिः तथाप्युक्तपुद्गलानुभवनमेव जीवितमिति तत्त्वं रूढितः इयमेव स्थितिरिति, पञ्जत्तापञ्जत्तगविभागो य एसो-णारगा करणपञ्जत्तीए चेव अपञ्जत्तगा हर्वन्ति, ते य अंदोमुहूर्तं, लङ्घि पुण पञ्जुच्च गियमा पञ्जत्तगा चेव, तओ अपञ्जत्तगाकालो सठवाउगातो अवणिज्जति, सेसो य पञ्जत्तगसमयोत्ति, एवं सञ्चवत्थ दट्ठव्यं, एवं देवावि करणपञ्जत्तीए चेव अपञ्जत्तगा दट्ठव्या, लङ्घि पुण पञ्जुच्च गियमा पञ्जत्तगा चेव, गब्भवकंतियपंचिदिया पुण तिरिया मणुया य जे असंख्येज्ञावासात्या ते करणपञ्जत्तीए चेव अपञ्जत्तगा दट्ठव्या इति, उक्तं-‘नारगदेवा तिरिमणुग गद्भजा जे असंख्यावासांउ । एते उ अपञ्जत्ता उववाते चेव वोद्धवा ॥ १ ॥ सेसा तिरियमणुस्ता लङ्घि पञ्चोववायकाले या । दुहओविय भइयव्या पञ्जत्तियरे य जिणवयणं ॥ २ ॥,’ इत्यं क्षेत्रपल्योपममपि प्रायो निगदसिद्धमेव, यवरं अप्फुण्णा वा अणकुण्णा वत्ति अत्र अप्फुण्णा-स्फुटा आकान्ता इतियाबद्विपरीतं अणकुण्णा, आह-यथेते सर्वेऽपि परिगृहांते किं वालाप्रैः प्रयोजनैः, उच्यते, एतद् दृष्टिवादे द्रव्य- मानोपयोगि, स्फुटास्पृष्टैश्च ऐदेन मीयन्त इति प्रयोजनं, कृष्णाण्डानि-युरफलानि मातुलिंगानि-वीजपूरकाणि, अस्पृष्टाख्य, क्षेत्रप्रदेशापेक्षया वालाम्राणां बादरत्वादिति, ‘धर्मस्थिकाए’ इत्यादि, (१४१-१९३) धर्मास्तिकायादयः प्राग्निरूपितशब्दार्थी एव, यवरं धर्मास्तिकायः संग्रहनयाभिप्रायादेक एव, धर्मास्तिकायस्य व्यवहारनयाभिप्रायादेशादिविभागः, धर्मास्तिकायस्य प्रदेशा इति, क्रज्जुसूत्रनयाभिप्रायादन्त्या</p> <p style="text-align: right;">॥ ८६ ॥</p> <p>उद्धाराद्वा- श्वपल्यो- पमानि</p>
दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]
प्रति सूत्रांक [१३८- १४२] गाथा [१०७- ११२] दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>श्रीअनु० शरीरपञ्चकं हारि.बृहौ ॥ ८७ ॥</p> <p>एव गृणन्ते, असंख्येयप्रदेशात्मकत्वाच्च बहुवचनं, अद्वासमय इति वर्तमानकालः, अतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वादिति ॥ ‘कति पां भंते ! सरीरा’ इत्यादि (१४२-१५) कः पुनरस्य प्रस्ताव इति, उच्यते, जीवद्रव्याधिकारस्य प्रकान्तत्वात्सरीराणामपि च तदुभयरूपत्वाद्वसर इति, व्याख्या चास्य पदस्यापि पूर्वाचार्यकृतैव, न किंचिदधिकं क्रियत इति, ‘ओरालिय’ इत्यादि, शरीरं इति शरीरं, तथ ताव उदारं उरालं उरलं उरालियं वा उदारियं, तिथगरगणधरसरीराईं पञ्जुच्च उदारं, उदारं नाम प्रधानं, उरालं नाम विस्तरालं, विशालांति वा जं भणिते होति, कहै ?, सातिरेगाजोयणसहस्रमविद्युप्यमाणमोरालियं अण्मेहमित्तं पात्रिथ, वेऽचियं होज्जा लक्ष्ममाहियं, अवाहेयं पंचधणुसते, इमं पुण अवाहितप्रमाणं अतिरेगाजोयणसहस्रं बनस्पत्यादीनामिति, उरलं नाम स्वल्पप्रदेशोपचित्त्वाद् बृहस्पत्वाच्च भिषण्डवत्, उरालं नाम मांसास्थिस्ताव्याद्यवयवद्वत्त्वात्, वैक्रियं विविधा विशिष्टा वा क्रिया विक्रिया, विक्रियायां भवनं वैक्रियं, विविधं विशिष्टं वा कुर्वते तदिति वैकुर्विकं, आहियत इत्याहारकं, गृह्णते इत्यर्थः, कार्यपरिसमाप्तश्च पुनर्मुच्यते याचितोपकरणवत्, तेजोभावस्तैजसं, रसाचाहारप्रकरणनं लोकिनिबंधनं च, कर्मणो विकारः कर्मणं, अश्रुविधकर्मनिष्पत्तं सकलशरीरनिबंधनं च, उक्तंच- तत्योदारमुरालं उरलं ओरालमह व विषणेयं । ओरालियंति पदमं पञ्जुच्च तिथेसरसरीरं ॥ १ ॥ भण्णइ य तहोरालं वित्थरवंतं बणस्सर्ति पण्प । पयतीय पात्रिथ अण्णं एहमेत्तं विसालंति ॥ २ ॥ उरलं थेवपदेसोविचियंपि महज्जगं जहा भेदं । मंसद्विष्णहारुबद्धं उरालियं सभयपरिभासा ॥ ३ ॥ विविहा विसिंहागा वा किरिया विकिरिय तीर्णं जं तमिह । नियमा विविचियं पुण णारगदेवाण पयतीप ॥ ४ ॥ कर्जंभि समुप्पणे सुयकेवलिणा विसिंहलदीय । जं एत्थ आदरिज्जइ भण्णति आहारयं वं तु ॥ ५ ॥ पाणिदयरिद्विसंदरिसणत्थमत्थावगहणहेतुं वा । संसयवोच्छयत्थं गमणं जिणपायमूळमि ॥ ६ ॥ सञ्चस्स उम्भुसिंहं रसादिआहारपागजणणं च । तेयगलद्विनिमित्तं तेयगं होइ नायवं ॥ ७ ॥ कर्मवि-</p>
	*** अथ ‘शरीर’स्य पंच-भेदानां वर्णनं प्रस्तूयते

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]
प्रत सूत्रांक [१३८- १४२] गाथा [१०७- ११२]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>वागो (गारो) कर्मणमटुविहविचित्तकस्मणिरफण्णं । संखेसि सरीराणं कारणभूतं मुणेयब्बं ॥ ८ ॥ अत्राह-किं पुनरयमौदारिकादिः क्रमः १, अत्रोच्यते, परं परं सूहमत्वात् परं परं प्रदेशबाहुल्यात् प्रत्यक्षोपलिङ्गित्वात् कथित एवौदारिकादिः क्रमः, ‘केवद्या णं भंते! ओरालियसरीरा पण्णत्ता’ इत्यादि, ताणि य सरीराणि जीवाणं बद्धमुक्ताणि द्वच्छेत्कालभावेहिं साहिजज्ञति, द्रव्यैः प्रमाणं वक्ष्यति अभव्यादिभिः, क्षेत्रेण ऐणि-प्रतरादिना, कालेनावलिकादिना, भावो द्रव्यान्तर्गतत्वात् न सुद्रेणोक्तः, सामान्यलक्षणत्वाऽच वर्णोदीनामन्यत्र चोक्तवात्, ‘उरालिया दुविहा बद्धिल्या मुक्तिल्या, बद्धं गृहीतमुपात्तमित्यनर्थीन्तरं, तत्थ णं जे ते बद्धेल्या इत्यादि सूत्रं । इदानीमर्थतः संखेज्ञा असंखेज्ञा ण वरंति संखातुं यत्तिएण जक्षा इत्तिया णाम कोडिप्पभितिहि ततोऽवि कालादीहिं साहिजज्ञति, कालतो वा समए एकेकं सरीरमवहीरमाणमसंखेज्ञाहि उस्सपिणीओसपिणीहि अबहीरंति, खेत्तव्योवि असंखेज्ञा लोगा, जे बद्धिल्या तेहिवि जड्जवि एकेके पदेसे सरीरमेकेकं ठविजज्ञति ततोविय असंखेज्ञा लोगा भवंति, किन्तु अवसिद्धतदेसपरिहारस्य अप्पणपणियाहि ओगाहणाहि ठविजज्ञति, आह-कहमणंताणमोरालसरीरीण असंखेज्ञाहं सरीराहं भवंति!, आयरिय आह-पत्तेयसरीरा असंखेज्ञा, तेसि सरीरावि ताव एवद्या चेव बद्धेल्या, मुक्तेल्या अणंता, कालपरिसंखाणं अणंताणं उस्सपिणीओसपिणीणं समयरासिप्पमाणमेत्ताहं, खेत्तपरिसंखाणं अणंताणं लोगप्पमाणमेत्ताणं खेत्तखंडाणं पदेसरासिप्पमाणमेत्ताहं होज्ञा ?, भण्णति-सिद्धाणं अणंतभागमेत्ताहं, द्वव्यो परिसंखाणं अभव्यासिद्धियजीवरासीओ अणंतगुणाहं, ता किं सिद्धरासिप्पमाणमेत्ताहं होज्ञा ?, भण्णति-सिद्धाणं अणंतभागमेत्ताहं, आह-ता किं परिवद्वियसम्मदिट्टिरासिप्पमाणाहं होज्ञा ?, तेसि दोषहवि रासीणं मज्जे पाहिजज्ञतित्ति काडं भण्णइ-जदि तप्पमाणाहं होताहं ततो तेसि चेव निइसो होति, तम्हा ण तप्पमाणाहं, तो किं तेसि हेढा होज्ञा ?, भण्णइ-कयाहं हेढा कयाहं चवर्हं होति कदाहं तुललाहं, तेण सदाऽनियतत्वात् ण गिर्वकालं तप्पमाणांति ण तीरद्व वोतुं, आह-कहं मुक्ताहं अणंताहं भवंति उरालियाहं ?, जदि ताव</p> <p>श्रीअनु० हारि.वृत्ती ॥ ८८ ॥</p> <p>औदारिक शरीर बद्धमुक्त- विचारः</p> <p>॥ ८८ ॥</p>
दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]
प्रत सूत्रांक [१३८- १४२] गाथा [१०७- ११२]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>श्रीअनु० हारि.वृत्ती ॥ ८९ ॥</p> <p>उरलियाइं मुक्काइं जाव अविकलाइं ताव घेष्वंति, तो तेसि अणंतकालवथाणभावतो अणंतत्त्वं ण पावइ, अह जे जीवेहिं पोगला ओरालियसेण बेत्तु मुक्का तीतद्वाए तेसि गहणं, एवं सब्बे पोगला गहणभावावण्णा, एवं जं तं भण्णाति-अभवसिद्धीएहिंतो अणंतगुणा सिद्धाणम-पंतभागोत्ति तं विरुद्धति, एवं सब्बजीवेहिंतो बहुएहिं अणंतत्त्वं पावति, आयरिय आह-ण य अविकलाणामेव केवलाण गहणं एतं. ण य ओरालियगहणमुक्काण सब्बपोगलाण, किंतु जं सरीरमोरालियं जीवेण मुक्के होति तं अणंतभेदभिणं दो ति जाव ते य पोगला तं जीव-गिवचिंयं ओरालियं ओरालियसरीरकायप्पओरंण मुयंति, ण जाव अणणपरिणामेण परिणमाति, ताव ताइं पत्तेयं २ सरीराइं भण्णाति, एवमेकेकस्स ओरालियसरीरस्स अणंतभेदभिणत्तणओ अणंताइं ओरालियसरीराइं भवाति, तत्थ जाइं दव्वाइं तमोरालियसरी-रपओरं मुयंति ताइं मोत्तु सेसाइं ओरालियं चेव सरीरत्तेणोवचरिज्जति, कह ?, आयरिय आह-लवण्णादिवत्, यथा लवणस्य तुलाढककुडवादिष्वपि लवणोपचारः, एवं यावदेकसर्करायामपि सैव लवणाख्या विद्यते, केवलं संख्याविशेषः, एवमिहापि प्राण्यगैकदेशोऽपि प्राण्यगोपचारः लवणगुडादिवत्, एवमनःतान्यौदारिकादीनि, अत्राह-कथं पुनरतान्यनन्तलोकप्रदेशप्रभाणान्ये-कस्मिन्नेव लोके अवगाहन्त इति, अत्राच्यते, यथैकप्रदीपार्थिवि भवनावभासिन उन्यथामध्यसिद्धूनां प्रदीपानामर्क्षिपस्तत्रैवानुप्रविशत्यन्यो-उन्याविरोधात्, एवमौदारिकान्यपाति, एवं सर्वशरीरेष्वप्यायोज्जनिति, अत्राह-किमुतक्मेण कालादिभिरुपसंख्यानं क्रियते ?, कस्माद् द्रव्यादिभिरेव न क्रियते, कालान्तरावस्थायित्वेन पुद्गलानां सरीरोपचया इतिकृत्वा कालो गरीयान्, तस्मात्तदादिभिरुपसंख्यानमिति । ओरालियाइं ओहियाइं दुविहाइंपि, जहेयाइं ओहियओरालियाइं एवं सब्बेसिंपि एगिंदियाणं भाणियव्वाइं, किं कारण ?, तहि ओरालियाइंपि ते चेव पकुच्च बुक्चंति ।</p> <p>मुक्तौदा- रिकाणि ॥ ८९ ॥</p>
दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]
प्रत सूत्रांक [१३८- १४२] गाथा [१०७- ११२]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥ १० ॥</p> <p>‘केवतिया णं भंते! वेऽविव्यथ’ इत्यादि, वेऽविव्यथा बद्धेस्त्वया असंख्येजप्पदेसरासिष्पमाणमेत्ताइं, मुकाइं जहोरालियाइं। ‘केवइयाणं भंते! आहारग’ इत्यादि, आहारगाइं बद्धाइं सिय अत्यि सिय पात्यि, किं कारणं?, जेण तस्य अंतरं जहण्येण एकं समयं, उक्षेसेण छम्मासा, तेण ण होंविवि कदाइं, जदि होंति जहण्येण एकं वा दो वा तिणिं वा उक्षेसेण सहस्रसुषुप्तं, दोहितो आढत्तं पुदुत्तसण्णा जाव एव, मुकाइं जह ओ- रालियाइं मुकाइं। ‘केवइयाणं भंते! तेयासरीरा पण्णत्ता?’ इत्यादि, तेया बद्धा अणंता अणंताइं उसपिणीहि, कालपरिसंखाणं, खेत्तओ अणंता लोगा, दब्बतो सिद्धेहि अणंतगुणा सब्बजीवाणंतभागूणा, किं कारणं अणंताइं?, तस्यामीणं अणन्तत्तणतो, आह-ओरालियाणपि सामिणे अणंता ?, आयरिओ आह-ओरालियसरीरमणंताण एगं भवति, साहारणत्तणओ, तेयाकम्माइं पुण पत्तेयं सब्बजीवा सरीरिणो, ताइं च सब्बसंसारीणिं काडं संसारी सिद्धेहिते उणंतगुणा होंति, सब्बजीवाण अणन्तभागूणा, के पुण ते ?, ते चेव संसारी सिद्धेहि ऊणा, सिद्धा सब्बजीवाणं अणंतभागो जेण तेण उणाऽणंतभागूणा भवति, मुकाइं अणंताइं, अणंताइं उसपिणीहि कालपरिसंखाणं, खेत्तओ अणंता, वेवि पूर्ववत्, दब्बतो सब्बजीवेहि अणंतगुणा, जीविवगमास्स अणंतभागो, कहं सब्बजीवा अणंतगुणा?, जाइं ताइं तेयाकम्माइं मुकाइं ताइं तहेव अणंतभेदभिणाइं असंख्येजकालवत्थादीणि जीवेहितोऽणंतगुणाइं हवंति, केण पुण अणंतएण गुणि- ताइं?, तं चेव जीवाणंतं तेणेव जीवाणंतएण गुणियं जीववगगो भण्णति, एत्तियाइं होजजा ?, आयरिय आह-एत्तियं ण पावति, किं कारण ?, असंख्येजकालावत्थाइत्तणओ तेसि दब्बाणं, तो कितियाइं पुण हवेजा ?, जीववगगस्स अणंतभागो, कहं पुण एतदेवं घेत्तव्वं ?, आयरिय आह-ठवणारासीहि गिर्दर्शनं कीरह, सब्बजीवा दस सहस्राइं बुद्धीए घेप्पंति, तेसि वगगो दस कोडीओ हवंति, सरीराइं पुण दसस्यसहस्राइं बुद्धीए अवधारिज्जंति, एवं किं जातं?, सरीरयाइं जीवेहितो सथगुणाइं जाताइं, जीववगगस्स सतभागे संबुत्ताइं, गिर्दरिसणमेत्तं, इहरहा खब्बावतो</p> <p>वैक्रियाहा- रक्तैजस- कामणानि</p> <p>॥ १० ॥</p>
दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	
	*** अथ ‘वैक्रिय’शरीर-अधिकारः मध्ये नारकाणां आदिनां वैक्रियशरीराणां वर्णनं

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]
प्रत सूत्रांक [१३८- १४२] गाथा [१०७- ११२]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
श्रीअनु० हारि.इच्छा० ॥९१॥	एते तिणिवि रासी अणंता दृढव्वा, एवं कम्मयाइपि, वस्स सहभावितणओ तत्तुङ्गसंख्याइं भवति, एवं ओहियाइं पञ्च सगीराइं भणिताइं । ‘ओरइयाणं भंते’! इत्यादि विसेसिय णारणाणं बैठविवगा बद्धेल्लया जाव.या एव णारणा, ते पुण असंखेऽजा, असंखेऽजा हिं उस्सपिणीहिं काल-प्यमाणं, खेत्तओ असंखेऽजाओ सेढीओ, तासि पदेसमेत्ता णारणा, आह-पयरंमि असंखेऽजाओ सेढीओ, आयरिय आह-सयलपयरसेढीओ ताव न भवति, जदि होंतीओ तो पयरं चेव भण्णति, आह-न्तो ताओ सेढीओ किं देसूणपयरवत्तिणीओ होंजा, तिभागचउभागवत्तिणीओ होंजा? जा अ णं सेढीओ पतरस्स असंखेऽजतिभागो, एयं विसेसियथरं परिसंखाण कर्यं होति, अहवा इदमणं विसेभितंतरं विक्संभसूईए एयसि संखाणं भण्णति, भण्णइ-तासि णं सेढीण विक्संभसूई अंगुलपद्मवग्गमूलं वितियवग्गमूलोप्याइयं तावइयं जाव असंखेऽजाइसामितस्स, अंगुलविक्खभखेत्त-वत्तिणो सेढीरासिस्स जं पदमं वग्गमूलं तं वितिएण वग्गमूलेण पडुप्पातिज्जति, एवइश्चाओ सेढीओ विक्खभसूई, अहवा इयमणेणप्यगा-रेण पमाणं भण्णइ-अहवा तमंगुलवितियवग्गमूलघणप्यमाणमेत्ताओ, तस्सेवंगुलप्पमाणखेत्तवत्तिणो सेहिरासिस्स जं वितियं वग्गमूलं तस्स जो घणो एवतियाओ सेढीओ विक्खभसूई, तासि णं सेढीण पएसरासिप्यमाणमेत्ता नारणा, तस्स सरीराइं च, तेसि पुण ठवणगुले गिदरेसर्ण-दो छट्पण्णाइं सेहिवग्गाइं अंगुले बुद्धीए घेपंति, तस्स पदमं वग्गमूलं सोलस, वितियं चत्तारि, तइयं दोणिं, तं पदमं सोलसयं वितिएण चउक्कएण वग्गमूलेण गुणियं चडसडी जाया, वितियवग्गमूलस्स चउक्कयस्स घणा चेव चउसडी भवति, एत्थ पुण गणितधर्मो अणुयत्तिओ होति, जदि बहुयं थोवेण गुणिज्जति, तेण दो पगारा गुणिता, इहरथा तिणिवि हवंति, इमो तइओ पगारो-अंगुलवितियवग्गमूलं पठमवग्ग-मूलपडुप्पणं, पोडशगुणाश्रवत्वार इत्यर्थः, एवंपि सा चेव चउसडी भवति, एते सडवे रासी सव्वभावतो असंखेऽजा दृढव्वा, एवं ताइं नारणव-विवियाइं कद्धाइं, मुक्काइं जहोहियओरालियाइं, एवं सव्वोसि सरीरीणं सव्वसरीराइं मुक्काइं भागियव्वाइं, वणस्सइतेयाकम्माइं मोक्षं,
दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	नारकाणं- वैक्रियाणि ॥९१॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]
प्रति सूत्रांक [१३८- १४२] गाथा [१०७- ११२]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>श्रीअनु० हारि.वृत्तो ॥ ९२ ॥</p> <p>देवणारगाणं तेयाकम्माइ दुविहाइपि सट्टाणवेडचिवयसरीराइ, सेसाणं वणस्सतिवज्जाणं सट्टाणोरालियसरिसाइ। इदाणि जस्स पं भणियं तं भणीहामो-‘असुरकुमाराणं भेते?’ इत्यादि, असुराणं वेउचिवया बद्धल्लया असंखेज्जा, असंखेज्जाहि उसापिणीहि काल्लओ, तहेव खेत्तओ असं-खेज्जाओ सेढीओ पतरस्स असंखेज्जतिभागो, तासि पं सेढीणं विक्खं भसई अंगुष्ठपठमवगगमूलस्स संखेज्जतिभागो, तस्स पं अंगुलविक्खंभ-स्त्रै खेत्तवत्तिणो सेढिरासिस्स जं तं पठमं वगगमूलं तत्थ जाओ सेढीओ तासिपि संखेज्जतिभागो, एवं नेरइष्ठितो संखेज्जगुणहीणा विक्खंभस्त्रै भवति, जम्हा महादंडपवि असंखेज्जगुणहीणा सठ्वे चेव मुवणवासी रथणप्पभापुढविनेरइष्ठितोवि, किमु न सञ्चोहितो ?, एवं जाव थणियकुमाराणंति, पुढविआउतेउस्स उवउज्ज कंठा भाणियव्वा। ‘वाउकाइयाणं भेते?’ इत्यादि, वाउकाइयाणं वेउचिवया बद्धल्लया असंखेज्जा, समए समए अवहीरमाणा पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागमेत्तेणं कालेणं अवहीरंति, जो चेव पं अवहिता सिया, सूत्रं, कहं पुण पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागसमयमेत्ता भवति ?, आयरिय आह-वाउकाइया चउचिवहा- सुहुमा पउज्जत्ताउपउज्जत्ता, बादरावि य पउज्जत्ता अपउज्जत्ता, तत्थ तिणिण रासी पत्तेय असंखेज्जलोगप्पमाणप्पदेसरालिष्पमाणमेत्ता, जे पुण बादरा पउज्जत्ता ते पतरासंखेज्जतिभागमेत्ता, तत्थ ताव तिणहं रासीणं वेउचिवयलद्दी चेव जातिथ, वायरपउज्जत्ताणंपि अमंखेज्जतिभागमेत्ताणं लद्दी अतिथ, जेमिपि लद्दी अतिथ तओवि पलिओवमाउसंखेज्जभागसमयमेत्ता संपर्य पुच्छासमए वेउचिवयवात्तिणो, केई भणीति-सठ्वे वेउचिवया वायंति, अवेउचिवयाणं वाणं चेव पं पवक्तव्यात्ति, तं पं जुज्जत्ति, किं कारण ?, जेण सठ्वेमु चेव लोगादिसु चला यायवो विज्जंति, तम्हा अवेउचिवयावि वातंतीयि घेत्तच्चं, समावो तेसि वाईयवं, ‘वणप्पफङ्काइयाण’ मित्यादि कठ्ठं ॥</p> <p>असुरादीनां वैकियाणि</p> <p>॥ ९२ ॥</p>
दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]
प्रत सूत्रांक [१३८- १४२] गाथा [१०७- ११२]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>ब्रह्मदिव्याणं भेत! इत्यादि, ब्रह्मदिव्योरालिगा बद्धेष्वया असंखिवज्ञाहि उसपिणीओसपिणीहि कालपमाणं तं चेव, खेत्तओ असंखे- उज्जाओ सेदीओ, तदेव पयस्स असंख्यज्ञभागो, केवलं विकर्खंभसूईए विसेमो, विकर्खंभसूई असंख्यज्ञाओ जोयणकोडाकोर्धीओन्ति विसेसितं परं परिसंख्याणं, अहवा इदमण्णं विसेसिततरं-असंख्यज्ञाई सेदिवगमूलाई, किं भणितं होति?, एकेकाए सेदीए जो पदेसरासी पदमं वग्ममूलं वितियं तइयं ज.व असंख्यज्ञाई वग्ममूलाई संकलियाई जो पदेसरासी भवति तत्पमाणा विकर्खंभसूई ब्रह्मदिव्याणं, यिदिरिसणं-सेदी पंचसष्टि- सहस्राई पंच सयाई छत्तीसाई पदेसाणं, तीसे पदमं वग्ममूलं वे सत्ता छ्रपण्णा वितियं सोलस तइयं चत्तारिंचत्तर्थं दोणिं, एवमेताई वग्ममू- लाई संकलियाई दो भता अट्टसत्तरा भवति, एवद्या पदेसा, तासिंहं सेदीणं विकर्खंभसूईए, ते सद्भावाओ असंख्यज्ञावग्ममूलरासी पत्तेयं पत्तेयं वेत्तत्वा। इदाणि इमा मग्मणा-किंपमाणाहि ओगाहणाहि इडजमाणा ब्रह्मदिव्या पयरं पूरिजंतु ?, ततो इमं सुतं ब्रह्मदिव्याणं ओरा- लियबद्धेष्वयेहि पयरं अवहीरंति असंख्यज्ञाहि उसपिणीओसपिणीहि कालओ, तं पुणं पतरं अंगुलपतरासंख्यज्ञभागमेत्ताहि ओगाहणाहि रइडजंतीहि सब्वं पूरिज्जति, तं पुणं केवङ्गणं कालेणं रइडजङ्ग वा पूरिज्जङ्ग वा?, भणिति, असंख्यज्ञाहि उसपिणीओसपिणीहि, किं पगाणेण पुणं खेत्तकालावहारेण?, भणिति-अंगुलपतरस्स आवलियाए य असंख्यज्ञतिपलिभाषेणं जो सो अंगुलपतरस्स असंख्यज्ञतिभागो एषहि पलि- भागोहि हीरति, एस खेत्तावहारे, आह असंख्यज्ञतिभागगहणेण चेव सिद्धं किं पलिभागगहणेण?, भणिति-एकेकं ब्रह्मदिव्यं पति जो भागो दो पलिभागो, जं भणितं अवगाहोन्ति, कालपलिभागो अवलियाए असंख्यज्ञतिभागो, एवेण आवलियाए असंख्यज्ञतिभागमेत्तेणं कालपलिभागों एकेको खेत्तपलिभागो सोहिडजमाणेहि सब्वं लोगपतरं सोहिडजङ्ग खेत्तओ, कालओ असंख्यज्ञाहि उसपप्णिओसपिणीहि, एवं ब्रह्मदिव्योरा- लियाणं उभयमभिहितं संखापमाणं ओगाहणापमाणं च, एवं तेइदियचत्तरिंदियपत्तेइदियतिरिक्तजोणियाणवि भागितव्वाणि, पंचेदियतिरिक्तवे-</p> <p style="text-align: right;">दीन्द्रिया- दीनां</p> <p style="text-align: right;">॥ ९३ ॥</p>
दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]
प्रति सूत्रांक [१३८- १४२] गाथा [१०७- ११२] दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p style="text-align: center;">श्रीब्रह्म हारि.वृत्ति ॥ १४ ॥</p> <p style="text-align: right;">मनुष्याणां संख्या</p> <p>उच्चियबद्धेऽज्ञा असंख्येऽज्ञा हि उस्पिणिओसपिणीहि कालतो तदेव खेत्तओ असंख्येऽज्ञाओ सेहीओ पतरस्य असंख्येऽज्ञसिभागे विक्लीभसूई, पवरं अंगुलपदमवगम्भूलस्य असंख्येऽज्ञतिभागे, सेसं जहा असुरकुमाराणं । मण्याणं ओरालिय बहेछ्या सिय संख्येऽज्ञा, जहणपदे संख्येऽज्ञा, जरथ सञ्चयेवा मणुस्या भवति, आह-किं एवं ससमुच्छिमाणं गहणं अह तच्चिरहियाणै, आयरिय आह-ससमुच्छिमाणं गहणं, किं कारणं ?, गद्भवकंतिया णिच्चकालमेव संख्येऽज्ञा, पदिमितक्षेत्रवर्त्तिवान् महाकायत्वान् प्रत्येकदर्शीरवर्त्तिवाच्च, तस्य सेतराणां प्रहणं उक्तोसपदे, जहणपदे गद्भवकंतियाणं चेव केवलाणं, किं कारणं ? जेण संमुच्छिमाणं चड्डीसं मुहुच्चा अंतरं अंतोमुहुत्तं च ठिती, जहणपदे संख्येऽज्ञतिभणिते ण णज्जति कथरंमि संख्येऽज्ञए होउज्जाई, तेण विसेसं कारति, जहा-संख्येऽज्ञाओ कोडीओ, इणमणं विसेसिततरं परिमाणं ठाणणिहेसं पहुच्चति, कहं ?, एकूणतीसद्वाणाणि, तेच्च सामयिगाए सण्णाए गिहेसं कीरइ, जहा-तिजमलपदं एवस्य उवरि चतुर्जमलपदस्य हेट्टा, किं भणितं हेति ?, अदृष्टं २ ठाणाणं जमलपदत्ति सण्णा सामयिकी, तिणिं जमलपदाई समुद्रियाई तिजमलपदं, अहवा तद्यं जमलपदं तिजमलपदं, एवस्य तिजमलपदस्य उवरिमेसु ठाणेषु बद्धति, जं भणित-चउक्तीसण्ह ठाणाणं उवरि बद्धति, चत्तारि जमलपदाई चउजमलपदं, अहक्ष घटत्वं जमलपदं २, किं बुत्तं ? बत्तीसं ठाणाई चउजमलपदं, एयस्य चउजमलपदस्य हेट्टा बद्धति मणुस्या, अणेहि तिहि ठाणेहि न पावति, जदि पुण बत्तीसं ठाणाई पूरंताई तो चउजमलपदस्य उक्तिरि भणिति, तं ण पावति तम्हा हेट्टा भणिति, अहक्ष दोणिं वग्गा जमलपदं भणिति, छ वग्गा समुदिता तिजमलपदं, अहवा पचमछटु वग्गा तद्यं जमलपदं, अठु वग्गा चक्कारि जमलपदाई चउजमलपदं, अहवा सत्तमभद्रम वग्गा चउत्तं जमलपदं, जेण छण्हं वग्गाणं उवरि बद्धति सत्तमद्वामाणं च हेट्टा, तेण तिजमलपदस्य उवरि चउजमलपदस्य हेट्टा भणिति, संख्या १४</p> <p>*** अत्र “मनुष्याणां” संख्यानां वर्णनं क्रियते</p>

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]
प्रति सूत्रांक [१३८- १४२] गाथा ॥१०७- ११२॥	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>भ्रीअनु० हरिवृत्ति ॥९५॥</p> <p>उजाओ कोडीओ ठाणविसेसेणागियमियाऽ। इदाणि विसेषित्यतरं कुडं संखाप्नमेव गिहेसति, जहा ‘अहवा अञ्ज-छट्टवग्नो पंचमवग्ना-पञ्चपण्डो, छ कम्ना ठविज्जंति, तंजहा-पञ्चस्त वग्नो एको, एस पुण बङ्गी गद्योत्तिकाढं वग्नो चेव य भवति, तेण दोण्हं वग्नो चत्तारि एस पठ्डो वग्नो, एतस्स वग्नो सोलस एस वितिओ वग्नो, एतस्स वग्नो वे सता छप्पण्णा एस तईओ वग्नो, एतस्स वग्नो पञ्चाढिओ सह-स्ताईं पंच सताईं छत्तीसाईं एस चउत्थो वग्नो, एतस्स इमो वग्नो, तंजहा-‘चत्तारि कोडि सता अउणतसिं च कोडीओ अउणावण्णं च सत-सहस्राईं सत्त्वाईं सहस्राईं दो य सयाईं छण्णयाईं, इमा ठबणा-४२९४९६७२९६ एस पंचमो वग्नो, एतस्स गाहाओ-‘चत्तारि य कोडि-सत्त्वा अउणत्तीसिं च होंति कोडीओ। अउणावण्णं लक्खा सत्त्वाईं चेव य सहस्रा ॥ १ ॥ दो य सया छण्णउया पंचमवग्नो समासतो होइ। एतस्स कओ वग्नो छट्टो जं होइ तं वोच्छ्टे॥२॥’ एयस्स पंचमवग्नास्त इमो वग्नो होति-एक्क कोडाकोडिसयसहस्रं चउरासीइ कोडाकोडि सहस्रा चत्तारि य कोडाकोडि सत्त्वा सत्त्वाईं च उत्तारा कोडीओ चत्तारीसिं च कोडि सतसहस्रा सत्त्वा कोडिसहस्रा तिणिं य सयरा कोडीसिता पंचाणउइ सतसहस्रा एकावण्णं च सहस्रा छल्ल सत्त्वा सोलसुत्तरा, इमा ठबणा-४८४८६७४४०७३७०९५५१६६६ एस छट्टो वग्नो, एतस्स गाहाओ-‘लक्खं कोडाकोडीओ चउरासीइ भवे सहस्राईं। चत्तारि य सत्त्वाईं होंति मया कोडिकोडीं ॥ १ ॥ चोवालं लक्खाईं कोडीं सत्त्वा चेव य सहस्रा। तिणिं सत्त्वा सत्तारा कोडीं होंति यायव्वा ॥२॥ पंचाणउइ लक्खा एकावण्णं भवे सहस्राईं। छ सोलसुत्तर सत्त्वा य एस छट्टो हवति वग्नो ॥ ३ ॥ एथं य पंचलहेहि पओयणं, एस छट्टो वग्नो पंचमेण वग्नेण पञ्चपाइज्जति, पञ्चपाइय समाप्ते जं होइ एवइया जह-ण्णयदिया मणुस्सा भवंति, ते य इमे एवइया ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६६, एवमेयाईं अउणत्तसिं ठाणाईं एक-इया अहण्णपदिता मणुस्सा। छ तिणिं२ सुण्णं पंचेव य नव य तिणिं चत्तारि। पंचेव तिणिं पन्च पंच सत्त्व तिणेवर॥१॥ चउ छ दो चउ</p> <p>यमल पदानि ॥९५॥</p>
दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]
प्रति सूत्रांक [१३८- १४२] गाथा [१०७- ११२] ॥ ९६ ॥	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
श्रीअनु० हारि.वृत्ती०	एको पण दो छ एककेककगो य अट्टेव। दो दो जब सत्तेव य ठाणाइं उवरि हुन्ताइं ॥२॥ अहवा इमो पढमक्खारसंगहो-छन्ति तिसु प्यण तिच पत्तिण पसति तिच छ दु चएप हु। छएए अबै बेणस पठमक्खरसंगता ठाणा ॥१॥ एते उण गिरभिल्लपा कोडीहि वा कोडाकोडीहि चन्तिकाङ्ग तेसि पुण पुञ्चपुञ्चगेहि परिसंखार्ण कीरति, चउरासीति सतसहस्राइं पुञ्चगं भण्णति, एयं एवइतेण चेव गुणितं पुञ्चं भण्णइ, तं च इमं-सत्तरि कोडि सतसहस्राइं छपणणां च कोडिसहस्राइं, एतेण भागो हीरति, ततो इदमागतफलं भवति-एकारसपुञ्चकोडीकोडीओ बाबीसं च पुञ्च-कोडिसतसहस्राइं चउरासीं च कोडिसहस्राइं अठ य दसुतराइं पुञ्चकोडिसता एकासीं च पुञ्चसत्यसहस्राइं पंचाणउयं च पुञ्चसह-स्राइं तिणिण य छपणणे पुञ्चसता, एयं भागलद्वं भवति, ततो पुञ्चगेहि भागीण पयच्छङ्गिति पुञ्चगेहि भागो हीरति, ततो इदमागतं फलं भवति-एकवीसं पुञ्चंगसत्यसहस्राइं सत्तरी य पुञ्चंगसहस्राइं छच्च एगूणसट्टीइ पुञ्चंगसत्ताइं, तओ इदमण्णं वेगां भवति, तेसीइ मणुय-सतसहस्राइं पण्णासं च मणुयसहस्राइं तिणिण य छत्तीसा मणुस्सता, एसा जहणपदियाणं मणुस्साणं पुञ्चसंखा, एतेसि गाहतो-मणुयाण जहणपदे एकारस पुञ्च कोडिकोडीओ। बाबीस कोडिलक्खा कोडिसहस्रा य चुलसीई॥१॥ अट्टे व य कोडिसया पुञ्चाण दसुतरा तओ हाँति। एककासीतो लक्खा पंचाणउइ सहस्राइं॥२॥ छपणणा तिणिण सता पुञ्चाण पुञ्चवाणिया अण्णे। एतो पुञ्चगाइं इमाइं अहियाइं अण्णाइं॥३॥ लक्खाइ एकवीसं पुञ्चंगाण सत्तरि सहस्राइं। छच्चेवगूणहा पुञ्चंगाणं सथा हाँति॥४॥ तेसीति सत्यसहस्रा पण्णासं खलु भवे सह-स्राइं। तिणिण सथा छत्तीसा एत्तिया वेगाला मणुया॥५॥’ एवं चेव य संखं पुणो अन्नेण पगारेण भण्णति विसेसोवलंभणिमितं, तंजहा-‘अहवा अण्णं छण्णउतिछेदणदो य रासी’ लत्रउइ छेदणाणि जो देइ रासी सो छण्णउतिछेदणवायी, कि भणितं हाँति॒, जो रासी दो वारा छेदण छिज्जमाणो छिज्जमाणो छण्णउति वारे छेदं देइ सकलरूपपञ्जवसितो ततिया वा जहन्नपदिया माणुस्सा, ततिओरालिया बद्धेलया, को पुण
दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	पंचमष्ट- वर्गशुणना ॥ ९६ ॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]
प्रति सूत्रांक [१३८- १४२]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा [१०७- ११२]	<p>श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥९७ ॥</p> <p>रासी छन्नउतिछेदणतदाई होडजा?, भण्णइ-एस चेव छट्ठो वग्यो पंचमवग्गपङ्क्षपण्यो जइओ भणितो एस छन्नउतिं छेदणए देति, को पचओई, भण्णइ-पठमवग्गो छिजमाणो दो छेदगते देति बितिओ चत्तारि तइओ अट्ट चउत्थो सोलस पंचमो बत्तीसं छट्ठो चउसट्टीं, एतेसि पंचम- छट्ठाणं वग्याणं छेयणगा भेलिया छण्णउतिं हवंति, कहं पुण ?, जहा जो वग्गो जेण जेण वग्योण गुणिज्जइ वेसि दोण्हवि तथ्य छेयणा लब्धंति, जहा बिनियवग्गो पढमेण गुणितो छिजमाणो छेदणे छ देह, वितिएण तइओ बारस, तइएण चउत्थो गुणिओ चउवीसं, चउत्थेण पंचमो वग्गो गुणितो अडयालीसं छेदणे देह, एवं पंचमएणवि छट्ठो गुणिओ छण्णउत्त छेदणए देइति एस पच्चओ, अहवा रुबं ठवेडण तं छण्णउतिवारे दुगुणादुगुणं कीरह, कतं समाणं जइ पुछवभागितं पमाणं पावह तो छेजमाणपि ते चेव छेदणए दाहिडति पच्चओ, एत जहणपदेऽभिहितं, उकोसं पदं इयाणि, तथ्य इमं सुत्तं ‘उकोसपदे असंखेज्जा असंखेज्जाहिं उस्सपिणिओसपिणीहिं अवहीरंति कालओ खिचओ स्वपक्षिखत्तेहिं मणूसेहिं सेढी अवहीरति, किं भणितं होइ ?, उकोसपदे जे मणूसा हवंति तेसु एकंमि मणूसरुवे पक्षिखत्ते समाणे तेहिं मणूसेहिं सेढी अवहीरति, तसे य सेढीए कालखेत्तेहिं अवहारो भणिडजति, कालतो ताव असंखेज्जाहिं उस्सपिणिओसपिणीहिं, खेत्तओ अंगुलपदमं वग्गभूलं तइयवग्गभूलपङ्क्षपण्यं, किं भणितं होति?-तीसे सेढीए अवहीरमाणीए जाव गिद्वाइ ताव मणुस्सावि अवहीरमाणा णिट्टुंति, कहमेगा सेढी एहमेत्तेहिं खंडेहिं अवहीरमाणी २ असंखेज्जाहिं उस्सपिणिओसपिणीहिं अवहीरति ?, आयरिओ आह- खेत्तातिसुहुमत्त- णओ, सुत्ते य भणितं-‘सुहमो य होइ कालो तत्तो सुहुमयरयं हवंति खेत्तं । अंगुलसेढीमेत्ते उस्सपिणीओ असंखेज्जा ॥ १ ॥</p> <p>बेशविवरद्वेष्या समए २ अवहीरमाणा असंखेज्जेणं कालेण अवहीरंति, पाठसिद्धं । आहारयणं जहा ओहियाइ । ‘वाणमंतर’ इत्यादि, वाणमंतरवेऽविवाया असंखेज्जाहिं ओसपिणिउस्सपिणीहिं अवहीरंति तहेव से जाओ सेढीओ तहेव विसेसो, तासिणं सेढीणं</p>
दीप अनुक्रम [२७९- २९२]	मनुष्य शरीर सानं ॥९७ ॥

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">..... मूलं [१३८-१४२] / गाथा [१०७-११२]</p>	
प्रति सूत्रांक [१३८- १४२]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
गाथा [१०७- ११२]	<p style="text-align: right;">श्रीअनु० हारि.वृत्ता ॥ ९८ ॥</p> <p>विक्खंभसूर्ड, किं वक्तव्येति वाक्यशेषः, कंक्षं, किं कारणैः, पंचेदिवतिरियओरालियसिद्धत्तणओ, जम्हा महादंडए पंचेदिवतिरियणपुंसणहितो असंखेज्जगुणहीणा वाणमंतरा पढिजंति, एवं विक्खंभसूरीवि तेसि तो तेहितो असंखेज्जगुणहीणा चेव भाणियव्वा । इदार्थं पलिभागो-संखेज्जजोयणसतवग्गपलिभागो पतरस्स, जं भणिवं संखेज्जजोयणवग्गमेसे पलिभागे एकेक वाणमंतरे ठविज्जति, तम्भेत्तपिलभागेण चेव अवहीरंतिति । ‘जोइसियाण’ भित्यादि, जोइसियाणं बेडिव्या बद्धेल्लया असंखिज्जाहिं उस-पिणीओसपिणीहिं अवहीरंति कःलतो, खेत्तओ असंखेज्जजाओ सेढीओ पयरस्स असंखिज्जतिभागेति, तहेव सेसियाणं सेढीणं विक्खंभ-सूर्ड, किं वक्तव्येति वाक्यशेषः, किं चातः? श्रूयते जम्हा वाणमंतरहितो जोइसिया संखिज्जगुणा पढिजंति तम्हा विक्खंभसूर्डवि तेसि तेहितो संखेज्जगुणा चेव भणिव, गवर्व परिभागविसेसो जहा बेछपण्णंगुलसते वग्गपलिभागो पतरस्स, एवतिए २ पलिभागे ठविज्जमाणो एकेको जोइसिओ सव्वेहिं सद्वं पतरं पूरिज्जह तहेय सोहिज्जतिवि, जोइसियाणं वाणमंतरहितो असंखिज्जगुणहीणो पलिभागो संखेज्जगुणवहिया सूर्ड । ‘बेमाणिय’ इत्यादि, बेमाणियाणं बेडिव्या बद्धेल्लया असंखेज्जजाकालओ तहेव खेत्तओ असंखेज्जतिभागो, तासि धं सेढीपं विक्खंभसूर्ड अंगुलवितियवग्गमूलं तइयवग्गमूलपञ्चपण्णं, अहवा अन्नं अंगुलितईयवग्गमूलघणपमाणमेचाओ सेढीओ सहेव, अंगुलविक्खंभसेखत्तव्यत्तिणो सेढिरासिस्स पठमवग्गमूलं वितियतद्वयचउत्थ जावे असंखेज्जाइति, तेसिपि जं वितियं वग्गमूलसेढिपदेसरासिस्स (तं तद्वण) पगुणिज्जति, गुणिते जं हेह तत्तियाओ सेढीओ विक्खंभसूर्ड भवति, तद्वयस्स वा वग्गमूलस्स जो घणो एवतियाओ वा विक्खंभसूर्ड, निदरिसणं तहेव, बछपण्णसतमंगुलेत्स्स पठमवग्गमूलं सोलस, वितियं तद्वण गुणितं अट्ट भवति, तद्वय वितिएण गुणितं, ते च अट्ट, ततियसवि घणो, सोऽ-वि ते अट्ट एव, एया सद्भाव ओ असंखेज्जा रासी दड्डव्वा, एवमेयं बेमाणियपमाणं णेरद्यप्पमाणाओ असंखिज्जगुणहीणं भवति, कि</p>	वैक्रिय शरीर- मानं
दीप अनुक्रम [२७९- २९२]		॥ ९८ ॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४३-१४४] / गाथा [११३-११५]
प्रति सूत्रांक [१४३- १४४]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा [११३- ११५]	<p style="text-align: center;">श्रीअनु० हारि.वृत्ती ॥ ९९ ॥</p> <p>कारणं १, जेण महादंडए बेमाणिया नेरइएहितो असंखेउजगुणहीणा चेव भण्णति, एतेहितो य नेरइया असंखिउजगुणवभाद्यभित्ति, ‘जमिहं समयविरुद्धं वस्तुं द्वाङ् द्विष्टु (द्वि) विकलेण होउजाहि । तं जिणवयणविहन्त् खमित्तं मे पसोहितु ॥ १ ॥ सरीरपदस्स चुणीं जिणभद्र-खमासमणक्या समत्ता, से तं कालप्पमाणेति, उक्तं कालप्रमाणं ।</p> <p>साम्प्रतं भावप्रमाणमभिधित्सुराह-से किं तं भावप्पमाणे’ इत्यादि (१४३-२१०) भवनं भूतिर्वा भावो वर्णादिज्ञानादि, प्रमितिः प्रमीयतेऽनेन प्रमाणोत्तीति वा प्रमाणं, ततश्च भाव एव प्रमाणं भावप्रमाणं, त्रिविधं प्रज्ञम् (१४४-२१०) तद्यथा-ज्ञानमेव प्रमाणं तस्य वा-प्रमाणं ज्ञानप्रमाणं, गुणप्रमाणमित्यादि, गुणनं गुणः स एव प्रमाणहेतुत्वाद् द्रव्यप्रमाणात्मकत्वाच्च प्रमाणं, प्रमीयते गुणैर्द्रव्यमिति, तथा नीतयो नयाः अनन्तधर्मात्मकत्वं वस्तुत एकांशपरिक्षिद्धत्ययः तद्विषया वा ते एव वा प्रमाणं ज्यप्रमाणं, नयसमुदायात्मकत्वाद्विद्धि स्याद्वादस्य समुदायसमुदायिनोः कथंचिद्भेदेन नया एव प्रमाणं नयप्रमाणं, संख्याप्रमाणं नयसंख्येति वाऽन्ये, नयानां प्रमाणं नयप्रमाणमितिकृत्या, संख्यानं संख्या सैव प्रमाणहेतुत्वात्संयेदनोपेक्षया स्वतस्तदात्मकत्वाच्च प्रमाणं संख्याप्रमाणं, आह-संख्या गुण एव, यत उक्तं ‘संख्यापरिमाणे’इत्यादि, तत्किमर्थं भेदाभिधानमिति १, उच्यते, प्राकृतशैस्या समानश्रुतावप्येनकार्यताप्रतिपादनार्थं, वक्ष्यति च भेदतः संख्यामव्यविकृत्यानेकार्थतामिति, शेषं सूत्रसिद्धं यावदजीवगुणप्रमाणं । जीवगुणप्रमाणं त्रिविधं प्रज्ञम्, ज्ञानगुणप्रमाणमित्यादि, ज्ञानादीनां ज्ञानदर्शनयोः सामान्येन सहवर्त्तित्वात् चारित्रस्यापि सिद्ध्यार्थ्यफलापेक्षयोपचारेण तद्वावान्न दोष इति, गुरवस्तु व्याचक्षते-कम-वर्त्तिनो गुणः सहवर्त्तिनः पर्याया इयेतद्व्यापकेव, परिस्थूदेशनाविषयत्वात्, भावैस्तहक्षणमिति न देषः । ‘से किं त’ मित्यादि, अथ किं तज्ज्ञानगुणप्रमाणं १, तज्ज्ञानगुणप्रमाणं चतुर्विधं प्रज्ञम्, तद्यथा-ग्रन्त्यक्षमित्यादि, तत्र प्रतिगतमक्षं ग्रन्त्यक्षं, अनुमीयतेऽनेत्यत्युमानं, उपमीयतेऽने-</p>
दीप अनुक्रम [२९३- २९७]	<p style="text-align: right;">भाव प्रमाणे भेदाः</p> <p style="text-align: right;">॥ ९९ ॥</p>

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४३-१४४] / गाथा [११३-११५]
प्रत सूत्रांक [१४३- १४४] गाथा [११३- ११५]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>श्रीअनु० हारि.वृत्ता० ॥१००॥</p> <p>नेत्युपमानं, गुडपारम्पर्येणागच्छतीत्यागमः । अथैतद् व्याचष्टे-अथ किं तत्प्रत्यक्षं?, प्रत्यक्षं द्विविधं प्रज्ञम्, तद्यथा-इंद्रियप्रत्यक्षं च नोइंद्रियप्रत्यक्षं च, तत्रेन्द्रियं-ओत्रादि, तत्रिमित्तं यदलैङ्गिकं शब्दादिक्षानं तादेन्द्रियप्रत्यक्षं व्यावहारिकं, नोइंद्रियप्रत्यक्षं तु यदात्मन एवालिङ्गिकमवधारीति समाप्तार्थः, व्यासार्थस्तु नेद्यन्वयनविशेषविवरणादेवावसेयः, अक्षराणि तु सुगमान्वयव यावस्प्रत्यक्षाधिकार इति । उक्तं प्रत्यक्षं, अधुनाऽनुमान-मुच्यते-तथा चाह-‘से किं तं अणुमाणे?’ अनुमानं विविधं प्रज्ञम्, तद्यथा-पूर्ववत् शेषवत् दृष्टसाधम्यवच्चेति । से किं तं पुव्यवभित्यादि, विशेषतः पूर्वोपलब्धं लिङ्गं पूर्वमित्युच्यते, तदस्यास्तीति पूर्ववत्, तद्द्वारेण गमकमनुमानं पूर्ववदिति भावः; तथा चाह-‘माता पुत्रं’ इत्यादि (५११४-२१२) माता पुत्रं तथा नष्टं वालभावस्थायां युवानं पुनरागतं कालान्तरेण काचित् स्मृतिमती प्रत्यभिजानीयात् मे पुत्राऽवभित्यलुभिन्नयात् पूर्व-लिङ्गेनोक्तस्वरूपेण केनवित्, तथेया-‘क्षतेन वे’ त्यादि, मत्पुत्रोऽयं तदसाधारणालिंगश्चतोपलब्धन्यथानुपपत्तेः, साधर्म्यवैधर्म्यद्वान्तयोः सर्वे-तरामावादयमहेतुरिति चेत्, न, हेतोः परमार्थेनकलद्वयवान् तदप्रभावत् एवमत्रापलब्धेः, उक्तं च न्यायवादिना पुरुषवैदेयण-“अन्यथानुपपत्त-त्वमात्रं हेतोः स्वलक्षणम् । सत्यासस्त्वे दि लद्वर्मी, द्वान्तद्वयलक्षणः ॥ १ ॥ । तदभावेतराभ्यां तयोरेव स्वलक्षणायोगादिति भावना, तथा “धूमादेवथापि स्मारां, सर्वासस्त्वे च लक्षणं । अन्यथानुपपत्तव्याधावान्यालक्षणकता ॥२॥” किंच-“अन्यथानुपपत्तत्वं, यत्र तत्र व्येण किम्? । इयत्र वदु वक्तव्यं, तत्त्वं प्रत्यविस्तरभयादन्यत्र च यत्नेनोक्तवाचाभिधीयत इति । प्रत्यक्षविपश्वादेवास्यानुमानलवल्पनमयुक्तं, न, पिण्डप-रिच्छित्तावपि पुत्रो न पुत्र इति सेद्वात् पिण्डमात्रस्य च प्रत्यक्षविषयत्वान् मत्पुत्रोऽवभिति चाप्रतीतेः तलिङ्गत्वादिति कुतं प्रसरेन, प्रकृतं प्रस्तुमः, तद्वत् क्षतमागन्तुको ब्रणः लक्ष्णं मसतिलकाः प्रर्तीतास्तदेतत्पूर्ववदिति । ‘से किं तं सेसत्र’ मित्यादि, उपयुक्तागोऽन्यः स सेप इति कार्यादि गुह्यते, तदस्यास्तीति शेषवद्, भावना पूर्ववदिति, पंचविधं प्रज्ञम्, तद्यथा ‘कार्येण’ त्यादि, तत्र कार्येण कारणानुमानं यथा-हयः-अभः हिसितेन</p> <p>जीवज्ञान गुण प्रत्यक्षमनु- मानं च</p> <p>॥१००॥</p>
दीप अनुक्रम [२९३- २९७]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४३-१४४] / गाथा [११३-११५]	
पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः		
प्रत सूत्रांक [१४३- १४४] गाथा [११३- ११५]]	शब्दविशेषणानुभिन्नत इत्यध्याहारः, तत्कार्येत्वाद्वेसितस्य, एवं शेषोदाहरणयोजनाऽपि कार्येति । तथा कारणेन संतवः पटकारणं (न) पटः तंतुकारणमित्यनेनैतत् ज्ञापयति-कारणमेव कार्यानुमापकं, नाकारणं, पटः तन्तूनां, तत्कार्येत्वात्स्य, आह-निपुणविद्योजने तत एवं तंतुभावात्पटोऽपि तन्तुकारणमिति, ननु तत्त्वेनोपयोगित्वाभावात्तद्भाव एव तन्तुभावादिति, न, नैव पटोत्पत्तौ सर्वथैव तत्त्वभावस्तेषामेव तथापरिणितमावेनोपयोगात्, न चोद्यों पटपरिणाम एवं तंतवः, तत्त्वेनोपयोगित्वाभावाद्वावेच च पटभावेऽपि तंतुवत् पुनस्तंतुभावेऽपि पट उपलभ्येत, न चोपलभ्यत इत्यतस्तंतवः पटकारणं, न पटः तंतुकारणमिति स्थितं, इदं च मेवोन्नतिः वृष्टिकारणं चन्द्रोदयः समुद्रघृद्देः कुमुदविकासस्य चेत्याद्युपलक्षणं वेदितव्यं, गुणेन सुवर्णं निकषेण, तद्वरुपातिशयेनान्ये, तद्गुणत्वात्स्य, एवं शेषोदाहरणयोजनाऽपि कार्यो, अवयवेन सिद्धं दंष्ट्र्या तद्वयवत्वात्स्य, आह-तदुपलक्ष्यौ तस्यापि प्रत्यक्षत एवोपलक्ष्यैः कथमनुमानविषयता ?, उच्यते, व्यवधाने सत्यन्यतोऽनुमेयत्वाद्वान दोषः, एवं शेषोदाहरणयोजना कार्येति, नवरं मातुष्यादिकृतावयवोऽभ्यूह इलेके, अन्ये तु द्विपदमित्येवमादिकमेवावयवमभिदधति, मनुष्योऽयं तदविनामूतपदद्वयोपलक्ष्यन्यथानुपत्तेरिति, गोम्ही कर्णसूगाली, तथाऽश्रयेणाग्निं धूमेन, अत्राश्रयतीत्याश्रयो धूमो यत्र गृह्णते, अयं चाप्रिकार्यभूतोऽपि तदाश्रितत्वेन लोकस्त्वेभेदेनोक्त इति, शेषोदाहरणयोजना सुगमा, तदेतच्छेषवदिति । ‘से किं तं द्विष्टाधम्म’ भित्यादि, दृष्टसाध्यर्थवत् द्विविधं प्रकाशं, तद्यथा-सामान्यदृष्टं च विशेषदृष्टं च, तत्र सामान्यदृष्टं यथा एकः पुरुषः तथा बहवः पुरुषा इत्यादि, सामान्यवर्मस्य तद्वावगमकत्वादिति, विशेषदृष्टं तु पूर्वदृष्टपुरुषादि ग्रन्थाभिज्ञातं, सामान्यधर्माद्वै विशेषप्रतिपत्तेरित्यमुनाऽशेनानुमानता, ‘तस्म समासतो’ इत्यादि, तस्येति सामान्येनानुमानस्य समासतः-संक्षेपेण त्रिविधं प्रहणं भवति, तद्यथा-अतीतकालप्रहणमित्यादि, प्रहणं-परिच्छेदः, तत्रातीतकालप्रहणं उद्भवतुणादीनि दृष्टाऽनेन दर्शनेन तदन्यथानुपपत्त्या साध्यते यथा सुवृष्टिरासीदिति, प्रत्युत्पन्नकालप्रहणं तु साधुं गोचराभगतं-भिक्षां	अनुमान प्रमाणं
दीप अनुक्रम [२९३- २९७]	॥१०१॥	॥१०१॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४३-१४४] / गाथा [११३-११५]	
प्रति सूत्रांक [१४३- १४४]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः	
गाथा [११३- ११५]	<p>श्रीअनु० हारि.वृत्ती०</p> <p>॥१०२॥</p> <p>प्रविष्टं ‘विक्षितं’ गृहस्थपारिष्ठापनिकया प्रचुरमापर्योगे: भक्तपानं सत्यं स तथाविधं तं दृष्ट्वा तेन साध्यते सुभिक्षं वर्तते इति, अनागतकालग्रहणं अभनिमैल्लत्वादिभ्यः साध्यते भविष्यति सुषुष्टिरिति, विशिष्टानाममीषां व्यभिचाराभावात्, ठवत्ययः सूत्रं, इत्युक्तमनुमानं। ‘से किं तं उवम्मे’ इत्यादि, औपम्यं द्विविधं प्रज्ञाप्तं, तदथा-साधन्योपनीतं च वैधम्योपनीतं च, तत्र साधन्योपनीतं त्रिविधं-किञ्चित्साधन्यं प्रायः साधन्यं सर्वसाधन्यं, किञ्चित्साधन्यं मन्दरसष्पादीनां, तत्र मंदरसष्पयोर्मूर्त्तस्वं समुद्रगोष्ठपदयोः सोदकत्वं असदित्यस्त्रियोतकयोः आकाशगमनोद्योतनत्वं चन्द्रकुंदयोः शुक्रत्वं, प्रायः साधन्यं तु गोगवययोरिति, ककुदसुरविषाणादेः समानत्वान्ब्रवं सकम्बलो गौर्वृत्तकंठस्तु गवय इति, सर्वसाधन्यं तु नास्ति, तदेभे-दप्रसंगात्, प्रागुपन्यासामर्थ्यक्यमाश्रक्याह-तथापि तरय तेनैवैपम्यं क्रियते, तद्याऽर्हता अहंता सदृशं वीर्यप्रवर्तनादि कृतमित्यादि, स एव तेनोपमीयते, तथा व्यवहारसिद्धेः तदेतत्साधन्योपनीतं, वैधम्योपनीतमपि त्रिविधं-किञ्चिद् वैधम्योपनीतं० किञ्चिद्वैधम्यं शावलेयबाहुलेयोर्भिर्जनिमित्यत्वात् जन्मादित एव, शेषं तु ल्यमेव, प्रायोवैधम्यं वायसेपायसयोः; जीवाजीवादि वैधम्यैधम्यार्थात्स्वाद्याभिधानवर्णद्वयसाधन्यं चास्त्येव, सर्ववैधम्यं एतत्सकलातीतादिविसदृशं तदप्रवृत्त्यभावादतस्तदपेक्षया वैधम्येभिति, तदेतद्वैधम्योपनीतमित्युक्तं उपमानं। ‘से किं तं आगमे’ त्वादि, नंदाध्य-यनविवरणादवसेयं याव से तं लोडत्तरिये आगमे’ अहवा आगमे तिविहे पञ्चते, तंजहा-मुत्तागमे० इत्यादि, तत्र च सूत्रमेवागमः सूत्रागमः तदभियेयशार्थोऽर्थगमः; तदुभयरूपः तदुभयागमः, अथवा आगमस्त्रिविधः प्रज्ञाप्तः, तदथा-आत्मागम इत्यादि, तत्रापरनिमित्त आत्मन एवागम आत्मागम वथाऽर्हतो भवत्यात्मागमः स्वयमेवोपलब्धेः, गणधराणां सूत्रस्यात्मागमः अर्थस्यानन्तरागमः, अनन्तरमेव भगवतः सकाशाद-र्थपदानि श्रुत्वा स्वयमेव सूत्रपन्थनादिति, उक्तं-‘अत्थ भासइ अरहा सुतं गुरुंति गणहरा विषणुं’ मित्यादि, गणधरशिष्याणां जंबूस्वामिप्रभृतीनां सूत्रस्यानन्तरागमः गणधरादेव श्रुतेः, अर्थस्य परंपरागमः गणधरेणैव व्यवधानात्, तत उर्खं ग्रभवाद्यपेक्षया सूत्रस्याप्यवस्थ्यापि नात्माऽऽगमो</p>	अौपम्य प्रमाणं
दीप अनुक्रम [२९३- २९७]		॥१०२॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४३-१४४] / गाथा [११३-११५]
प्रति सूत्रांक [१४३- १४४] गाथा [११३- ११५]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>श्रीअनु० हारि.वृत्ती ॥१०३॥</p> <p>नानन्वरगमः तत्क्षणविरहात्, किंतु परंपरागमः, इत्यनेन चैकान्तापौरुषेयागमव्यवच्छेदः, पौरुषं ताल्वादिव्यापारजन्मं, नभस्येव विशिष्ट-शब्दातुपलब्धेः, अभिव्यक्त्यभ्युपगमे च सर्ववचसामपौरुषेयत्वं, भाषाद्रव्याणां प्रहणादिना विशिष्टपरिणामाभ्युपगमाद्, उक्तं च-‘गिणहृष्ट य काइएण णिसरति तद्वाइपण जोगेण’ भित्यादि, कुतं विस्तरेण, निर्लोकितमेतदन्यत्रेति, सोऽयमागम इति निगमनं, तदेतत् ज्ञानगुणप्रमाणं । ‘से किं तं दंसणगुणप्यमाणं’ इत्यादि, वृश्नावरणकर्मक्षयोपशमादिजं सामान्यमात्रप्रहणं दर्शनमिति, उक्तं च “जं सामणग्रहणं भावाणं कटुदु नेय आगारं । अविसेसित्यन अत्यं दंसणमिति तु च ए समए ॥१॥” एतदेव आत्मगुणप्रमाणं च, इदं च चतुर्विधं प्रज्ञामं-चक्षुर्दर्शनादिभेदात्, तत्र चक्षुर्दर्शनं तावच्छक्षुरिन्द्रियावरणक्षयोपशमे द्रव्येन्द्रियातुपश्याते च तत्परिणामवत आत्मनो भवतीत्यत आह-चक्षुर्दर्शनतः घटादिष्वर्थेषु भवतीति शेषः, अनेन च विषयभेदाभिवानेन चक्षुपोऽप्राप्तकारितामाह, सामान्यविषयत्वेऽपि चास्य घटादिविशेषाभिधानं कथंचित् तदनन्यान्तरभूतसामान्यरूपापनार्थं, उक्तं च ‘निर्विशेषं विशेषाणां, प्रहो दर्शनमुच्यते’ इत्यादि, एवमचक्षुर्दर्शनं शेषेद्रियसामान्योपलब्धिलक्षणं, अचक्षुर्दर्शविनः आत्मभावे-जीवभावे भवतीत्यनेन श्रोत्रादीनां प्राप्तकारितामाह, उक्तं च-‘पुढुं सुणेइ सदं रूपं पुणं पासती अपुडुं तु’ इत्यादि, अवधिदर्शनं-अवधिसामान्यप्रहणलक्षणं अवधिदर्शनिनः सर्वरूपिद्रव्येषु, ‘रूपिष्ववधे’ (तत्त्वा.१ अ.२८८.) रिति वचनादसर्वपर्यायेविविति ज्ञानपेक्षमेतत्तु (त.न) दर्शनोपयोगिनः विशेषत्वात्तथापि तद्वेदका इत्युपन्यासः, केवलदर्शनं केवलिनः, (अन्यत्र) सामान्याऽर्थाप्रहणसंभवात् भ्योपशमोऽद्वत्वात्, पश्यते च विशेषग्रहणादर्शनाभाव इति, तदेतदर्शनप्रमाणं । ‘से किं तं चारित्तगुणप्यमाणं’ भित्यादि, चरन्त्यनिन्दितमनेनेति चरित्रं ज्ञायोपशमरूपं तस्य भावश्चारित्रं, अशेषकर्म-क्षयाय चेष्टा इतर्थः, पंचविधं प्रश्नसं, तच्च सामायिकमित्यादि, सर्वमप्येतदविशेषतः सामायिकमेव सत् छेदादिविशेषविशेषविशेषमाणमर्थतः संज्ञातश्च नानात्मं लभते, तत्राचं विशेषणाभावात् सामान्यसंज्ञाणमेव चावतिष्ठते सामायिकमिति, तत्र सावद्योगविरतिमात्रं सामायिकं, तच्च-</p> <p>आगम प्रमाणं दर्शन प्रमाणं च</p> <p>॥१०३॥</p>
	*** अत्र ‘प्रमाण’-अधिकार मध्ये ‘चारित्र’ प्रमाणं वर्णयते

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४३-१४४] / गाथा [११३-११५]		
पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः			
प्रत सूत्रांक [१४३- १४४]	श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥१०४॥	त्वरं यावत्कथितं च, तत्र स्वत्पकाळमित्वरं, तदायचरमाहृतीर्थयेरेवानारेपितत्रतस्य शैक्षकस्य, यावत्कथा ५५८८८ः तावत्कालं यावत्कथं, जाव- उज्जीवमित्यर्थः, यावत्कथमेव यावत्कथितं तन्मध्यमाहृतीर्थेषु विदेहवासिनां चेति । तथा छेदोपस्थापनम्, इह यत्र पूर्वपर्यायस्य छेदो महाब्रतेषु चोपस्थापनमात्मनः तज्जेदोपस्थापनमुच्यते, तच्च सातिचारं निरतिचारं च, तत्र निरतिचारमित्वरसामायिकस्य शैक्षकस्य यदारोच्यते, यद्या तीर्थीन्तरप्रतिपत्तौ, यथा पार्श्वस्वामितीर्थाद्वृष्टमानतीर्थं संक्रामतः, मूलधातिनो यत्पुनर्न्रतारोपणं तत्सातिचारम्, उभयं चैतदवस्थितकल्पे, नेतर- स्मिन् । तथा परिहारः-तपोविशेषस्तेन विशुद्धं परिहारविशुद्धं, परिहारो वा विरोधेण शुद्धो यत्र तत् परिहारविशुद्धं, परिहारविशुद्धिकं चेति स्वार्थप्रत्ययोपादानात्, तदपि द्विधा-निर्विशमानकं निर्विष्टः कायो वैस्ते निर्विष्टकायाः स्वार्थिकप्रत्ययोपादानानिर्विष्टकायिकाः, तस्य वोदारः परिहारिकाश्वत्वारः चत्वारोऽनुपरिहारिकाः कल्पस्थितश्चेति नवको गणः, तत्र परिहारिकाणां निर्विशमानकं, अनुपरिहारिकाणां भजनया, निर्विष्टकायिकानां कल्पस्थितस्य च, परिहारकाणां परिहारो जघन्यादि चतुर्थादि त्रिविधं तपः ग्रीष्मशिशिरवर्षासु यथासंख्यं, जघन्यं चतुर्थं पष्ठमष्ठमं च मध्यमं पष्ठमष्ठमं दशमं च उत्कृष्टमष्ठमं दशमं द्वादशं च, शेषाः पञ्चापि नियतमत्काः प्रायेण, न तेषामुपवस्तव्यमिति नियमः, भक्तं च सर्वेषामाचाम्लमेव, नान्यत्, एवं परिहारिकाणां षण्मासं तपः तत्प्रतिचरणं चानुपरिहारिकाणां, ततः पुनरितरेषां षण्मासं तपः, प्रति- चरणं चेतरेषां, निर्विष्टकायानामित्यर्थः, कल्पस्थितस्यापि षण्मासं, इत्येवं मासैरष्टादशभिरेष कल्पः परिसमाप्तिरो भवति, कल्पपरिसमाप्तौ च त्रयी गतिरेषां-भूयस्तमेव कल्पं प्रतिपद्येन् जिनकल्पं वा गणं वा प्रति गच्छेयुः, स्थितकल्पे चैते पुरुषयुगद्वयं भवेयुन्तरत्रेति । तथा सूक्ष्मसं- परायं, संपर्येति संसारमेभिरेति संपरायाः-क्रोधादयः, लोभांशावशेषतया सूक्ष्मः संपरायो यत्रेति सूक्ष्मसंपरायः, इदमपि संक्षिङ्गयमानक-	चारित्र प्रगाणं
गाथा ॥११३- ११५॥			
दीप अनुक्रम [२९३- २९७]		॥१०४॥	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४७] / गाथा [११७]
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रति सूत्रांक [१४७] गाथा [११७]	<p>श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥१०५॥</p> <p>विशुद्धमानकभेदाद् द्विधैव, तत्र श्रेणिमारोहतो विशुद्धमानकमुच्यते, ततः प्रच्यवसानस्य संकिळश्यमानकस्त्रिति, तथा अथाख्यातं, अभेष्ट्यव्ययं याथातच्ये, आजमिविधौ, याथातेयेनाभिविधिन् वा ख्यातं, तदेतद् गुणप्रमाणं ।</p> <p>‘से किं ते प्रयप्पमाणे’ इत्यादि (१४५-२२२) वस्तुनोऽनेकधर्मिण एकेन धर्मेण नयनं नयः; स एवं प्रमाणमित्यादि पूर्ववत्, त्रिविधं प्रश्नप्रसिद्यत्र नैगमादिभेदान्तयाः, ओघतो दृष्टान्तापेक्ष्या त्रिविधेतदिति, तथा चाह-तद्यथा प्रस्थकदृष्टान्तेन, तथाथ नाम ऋषिलुलुपः परशु-कुठारं गृहीत्वा प्रस्थककाष्ठायाटवीमुखो गच्छेऽज्ञा-यायात्, तं च कश्चित्तथाविधो दृष्ट्वा बदेत्-अभिदधीत-क भवान् गच्छति ?, तत्रैव नयमुत्त-न्युच्यन्ते, तत्राऽनेकगमो नैगम इतिकृत्वाऽऽह-अविशुद्धो नैगमो भणति-अभिधत्ते-प्रस्थकस्य गच्छामि, कारणे कार्योपचारात्, तथा व्यवहार-दर्शनात्, तं च कश्चिच्छिंदन्तं, वृक्षं इति गम्यते, पश्येत्-उपलभेत, दृष्ट्वा च बदेत्-किं भवान् छिनत्ति?, विशुद्धतरो नैगमो भणति-प्रस्थकं छिनशि, भावना प्राग्वत्, एवं तक्षन्तं-तनूकुर्वतं वेधनेकेन विकिरन्तं लिखन्तं-लेखन्या व्रष्टकं कुर्वाणं एवमेव-अनेन प्रकारेण विशुद्धतरस्य नैगमस्य नामादियडत्ति-नामाङ्कितः प्रस्थक इति, एवमेव व्यवहारस्यापि, लोकव्यवहारपरत्वात्स्य चोक्तव्यद्विचित्रत्वादिति, ‘संग्रहस्ये’ त्यादि, सामान्य-भाग्यप्राप्ती संप्रहः; चितो-धान्येन व्याप्तः, स च देशतोऽपि भवत्यत आह-भितः-पूरितः, अनेनैव प्रकारेण सेयं समारूढं यस्मिन्नाहितामेराकृति-गणत्वात् तत्र वा ग्रहणान्मेयसमारूढः, धान्यसमारूढ इत्यन्ये, प्रस्थक इत्यन्ये, अयमत्र भावार्थः-प्रस्थकस्य मानार्थत्वाच्छेदावस्थासु च तद-भावाद्यथोक्त एव प्रस्थकः इति, असाव्यपि तत्सामान्यव्यविरेकेण तद्विशेषाभावादेक एव, चृजु चर्त्तमानसमयाभ्युपगमादतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पत्त-त्वेनाङुटिलं सूत्रयति श्छजुसूत्रस्तस्य निष्फण्णस्वस्त्रपार्थकियाहेतुः प्रस्थकोऽपि प्रस्थको वर्तमानस्तद्विशेषत्र भागादि प्रस्थकस्तथा प्रतीतेः-प्रस्थकोऽप्य-गिसे व्यवहारदर्शनात्, नहतीतेनानुत्पत्तेय वा मानेन मेयेन वार्थसिद्धिरित्यतो मानसेये वर्तमान एव प्रस्थक इति हृदयं, ऋयाणां शब्दनयाना-</p> <p>नयप्रमाणे प्रस्थक दृष्टान्तः</p> <p>॥१०५॥</p>
	*** अथ ‘नय’प्रमाणं वर्णयते

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४७] / गाथा [११७]
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रति सूत्रांक [१४७] गाथा [११७]	<p>श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥१०६॥</p> <p>मित्यादि, शब्दप्रधानत्वात् शब्दादयः; शब्दनयाः, शब्दमेऽन्यथावस्थितं नेच्छान्ति, शब्देनार्थं गमयन्तीत्यर्थः; आद्यास्तु अर्थप्रधानत्वादर्थनयाः, यथा-कथंचिच्छेदनार्थोऽभिधीयते इति, अर्थेन शब्दं गमयन्तीति, अतोऽन्वर्थप्रधानत्वात् व्रयाणां शब्दसम्भिरूढैवम्भूतानां प्रस्थकार्थाधिकारज्ञः प्रस्थकः, तदव्यतिरिक्तो ज्ञाता तङ्क्षणं एव गृह्णते, भावप्रधानत्वाच्छब्दादिनयानां, यस्य वा बडेन प्रस्थको निष्पद्यते इति, स चापि प्रस्थक-ज्ञानोपयोगमन्तरेण न निष्पद्यते इत्यतोऽपि तज्ज्ञापयोग एव परमार्थतः प्रस्थकमिति, अमीषां च सर्ववस्तु स्वात्मनि वर्त्तते नान्यत्र, यथा जीवे चेतना, भेयस्य मूर्त्त्वादाधाराधेययोरन्तर्धान्तरत्वाद्, अर्थान्तरत्वे देशादिविकल्पैर्वृत्त्ययोगान्, प्रस्थकश्च नियमेन ज्ञानं तत्कथं काष्ठभाजने वर्त्तते ?, समानाधिकरणस्यैवाभावादतः प्रस्थको मानमिति वस्त्रसंकं पादप्रयोग इत्योघयुक्तिर्विशेषयुक्तिस्तु प्रतीततन्मतानुसारतो बाच्येति, तदेतत्प्रस्थकदृष्टान्तेन। से किं तं वस्तिहृष्टान्तेन, तस्यथा नाम कञ्चित्पुत्रादौ वसंतं कञ्चित्पुरुषो पाटलीपुत्रादौ वसंतं कञ्चित्पुरुषो वदेत्-क भवान् वसतीति, अत्रैव नयमतान्युच्यन्ते, तत्र विशुद्धो नैगमो भणति-लोके वंसामि, तत्रिवासक्षेत्रस्यापि चतुर्दशरज्ज्वात्मकत्वालोकादनर्थान्तरत्वात् (लोकवास)-व्यवहारदर्शनात्, एवं तिथिगच्छोकजम्बूदीपभारतवर्षदक्षिणार्द्धभरतपाटलिलपुत्रदेवदत्तगृहगर्भगृहेष्वपि भावनीयं, एवमुत्तरोत्तरभेदापेक्षया विशुद्धतरस्य नैगमस्य वसन् वसति, तत्र तिष्ठतीत्यर्थः, एवमेव व्यवहारस्यापि, लोकव्यवहारपरत्वात्, लोके च नेह वसति प्रोपित इति व्यव-हारदर्शनात्, संप्रहस्य तिष्ठन्नपि संस्तारकोपगतः-संस्तारकारुडः शयनकियावान् वसति, स च नयनिरुक्तिगम्य एकं एव, ऋजुसूत्रस्य येष्वा-काशप्रदेशव्यगाढस्तेषु वसति, संस्तारकदिप्रदेशानां तदणुभिरेव व्याप्तत्वात् तत्रावस्थानादिक्युर्कं, अन्वर्थपरिप्रापितत्वं च पूर्ववत्, व्रयाणां शब्दनयानामात्मनो भावे वसति, स्वस्वभावाऽनपोदैनैव तत्र वृत्तिकल्पनात् तदपोहे त्वेतस्यावस्तुत्वप्रसंगादिति, तदेतत् वसतिहृष्टान्तेन ॥ ‘से किं त’ भित्यादि, अथ किं तत्प्रदेशदृष्टान्तेन?, प्रकृष्टो देशः प्रदेशः, निर्विभागो भाग इत्यर्थः, स एव हृष्टान्तस्तेन, नयमतानि चिन्त्यन्ते, तत्र</p> <p>नये वसति दृष्टान्तः ॥१०६॥</p>

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">..... मूलं [४७] / गाथा [११५]</p>
	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p>
<p>प्रति सूत्रांक [१४७] गाथा [११५]</p>	<p>श्रीअनु० हारि.बृंशी ॥१०७॥</p> <p>नैगमो भणति-षणां प्रदेशः, तद्यथा-धर्मप्रदेशः, अत्र धर्मशब्देन धर्मस्तिकायः परिगृहते तस्य प्रदेशो धर्मप्रदेशः, एवमधर्मादिविषये योज्यं, यावद् वेशप्रदेश इत्यत्र देशो शादिभागस्तस्य प्रदेश इति, सर्वत्र पश्चीतपुरुषसमासः; सच्चापि सामान्यविवक्षयाऽनेक इति, एवं वदन्ते नैगमं संग्रहो भणति-यद् भणादि षणां प्रदेशः तत्र भवति, कस्माद् ?, यस्माद्यो देशप्रदेशः स तस्यैव द्रव्यस्य, तदञ्यतिरिक्तस्वाईशस्य, यथा को छटान्त इत्यत्राह-दासेन भे खरः क्रीतः, दासोऽपि मे खरोऽपि मे, तत्संबन्धित्वात् खरस्य, एतावता साधार्थं, तन्मा भण-षणां प्रदेशः, षष्ठ्यस्य वस्तुतोऽविद्यमानत्वात्, परिकल्पने च प्रभूततरापत्तेः, भण पञ्चानां प्रदेश इत्यादि, अविशुद्धशायं संश्लेषः, अपरसामान्याभ्युपगमात्, एवं वदन्ते संग्रहं व्यवहारो भणति-यद्गूणसि पञ्चानां प्रदेशस्तत्र भवति-न युज्यते, कस्माद् ?, यदि पञ्चानां गोष्ठिकानां किञ्चिद् द्रव्यं सामान्यात्मकं भवति तद्यथा हिरण्यं वेत्यादि एवं प्रदेशोऽपि स्यान् ततो युज्येत वस्तुं पञ्चानां प्रदेशः, न चैततदेवं, तस्मात् भण पञ्चविधः, पञ्चवकारः प्रदेशस्तवाथा धर्मप्रदेश इत्यादि, इत्थं लोके व्यवहारदर्शनात्, एवं वदन्ते व्यवहारमृजुसूत्रो भणति-यद्गूणसि पञ्चविधः प्रदेशस्तत्र भवति, कस्माद् ?, यस्माद् यदि ते पञ्चविधः प्रदेश एवमैकको धर्मास्तिकायादिप्रदेशः शब्दशुलिप्रामाण्यात्थाप्रतीतेः पञ्चविधः प्राप्तः, एवं च पञ्चविश्वितिविधः प्रदेशः इति, तत् मा भण पञ्चविधः प्रदेशः, भण भाज्यः प्रदेशः, स्याद् धर्मस्येत्यादि, अपेक्षावशेत भाज्यः यो यस्यात्माचः स एवास्ति, परकीयस्य परधनवत् निष्प्रयोजनत्वात् खरविषाणवदप्रदेश एवेत्यतः स्याद्गूर्मस्य प्रदेश इति, एवं ऋजुसूत्रं साम्प्रतं शब्दो भणति-भाज्यः प्रदेशस्तत्र भवति, कस्माद् ?, यस्मादेवं ते धर्मप्रदेशोऽपि स्याद्गूर्मप्रदेश इति विकल्पस्यानिवारितत्वात् स्यादधर्मप्रदेश इत्याद्यापत्तेः, अन-वधारणादनवस्था भविष्यति, तन्मा भण भाज्यः प्रदेशो, भण-धर्मप्रदेशः प्रदेशो धर्म इत्यादि, अयमत्र भावार्थः-धर्मप्रदेश इति धर्मत्मकः प्रदेशः, स प्रदेशो नियमात् धर्मास्तिकायस्तदञ्यतिरिक्तत्वात्तस्य, एवमधर्माकाशयोरपि भावनीयं, एवं जीवात्मकः प्रदेशः प्रदेशो नोजीव इति, तड़ी-</p> <p>नये प्रदेश दण्डान्तः</p> <p>॥१०७॥</p>

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४७] / गाथा [११५]
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रत सूत्रांक [१४७] गाथा [११५]	<p>श्रीअनु० हारिवृत्तौ ॥१०८॥</p> <p>बाल्यतिरिक्तोऽपि सकलजीवस्तिकायाऽयतिरिक्तत्वानु॒ गपतेरनेकद्रव्यत्वान्नोजीवो जीवस्तिकायकदेश इत्यर्थः, एवं स्वन्धप्रदेशोऽपि भावनीय इति, एवं भणन्तं साम्प्रतं शब्दे नानार्थशब्दरोहणात् समभिरूढं इति समभिरूढो भणति-यद् भणसि धर्मग्रहेशः स प्रदेशो धर्म इत्यादि तन्मैवं भण, किमित्यत आह-इह खलु द्वौ समासौ संभवतः, तद्यथा-तत्पुरुषश्च कर्मधारयश्च, तत्र ज्ञायते कतरेण समासेन भणासे ?, किं तत्पुरुषेण कर्मधारयेण वा ?, यदि तत्पुरुषेण भणसि तन्मैवं भण, दोषसंभवादित्यभिप्रायाः, दोषसंभव आयं-धर्मस्य ग्रेदेश धर्मप्रदेश इति भेदाऽपत्तिः, यथा राज्ञः पुरुष इति, तैलस्य धारा शिळापुत्रस्य शरीरमित्यभेदाऽपि षष्ठी श्रूयत इति चेत् उभयत्र दर्शनात्संशये एवमेव दोषः, अथ कर्मधारयेण ततो विशेषतो-विशेषेण भण-धर्मश्चासौ ग्रेदेश इति समानाधिकरणः कर्मधारयः, अत एवाह-स च प्रदेशो धर्मस्तदव्यतिरिक्तत्वात्स्य, एवं शेषेषापि भावनीयं, एवं भणन्तं समभिरूढं एवभूतो भणति-यद् भणसि तत्तथा-तेन ग्राकारेण सर्वं-निर्विशेषं कृत्स्नमिति देशग्रदेशकल्पनाव-र्जितं प्रपूर्णं आत्मस्वरूपेणाविकलं निरवशेषं तदेवैकत्वान्निरवशेषं एकग्रहणगृहीतं परिकल्पितभेदत्वादन्यतमाभिधानवाच्यं, देशोऽपि मे अवस्तु ग्रेदेशोऽपि मे अवस्तु, कल्पनायोगाद्, इदमत्र हृदयं-प्रदेशस्य ग्रेदेशिनो भेदो वा स्यादभेदो वा?, यदि भेदस्तथेति संबन्धो वाच्यः, स चातिग्रुष्टंगदोषग्रहमस्तत्वादशक्यो वर्कुं, अथाभेदः पर्यायशब्दतया घटकुदशबदबुभयोरुच्चारणवैयर्थ्यं, तस्मादसमासमेकमेव वस्तिवति, एवं निजनिजवचनीयसत्यात्माशुपलभ्य सर्वनयानां सर्वत्रनिकान्तसमये स्थिरः स्यात् न पुनरसद्ग्राहं गच्छेदिति, भणितं च-‘निययवयविणिज्जसर्वा सव्यवण्या परवियालगे मोहा। ते पुण अदिष्टसमयविभवंति सत्त्वे व अलिए वा ॥१॥। तदेतत् प्रदेशदृष्टान्तेन नयप्रमाणं, तदेतत्त्वयप्रमाणं। ‘से किं तं संख्यप्रमाणं’ मित्यादि (१४६-२३०) संख्यायतेऽनयेति संख्या सेव प्रमाणं, संख्या अनेकविधा प्रज्ञप्राप्ता, तद्यथा-नामसंख्येत्यादि, इह संख्याशङ्कयोः ग्रहणं प्राकृतमधिकृत्य समानशब्दाभिधेयत्वात्, गोशद्वेन वाग्रज्ञ्यादिग्रहणवत्, उक्तज्ञ-‘गोशदः पशुभूम्यं-</p> <p>नये प्रदेश दृष्टान्तः</p> <p>॥१०८॥</p>
	*** अत्र ‘संख्या’प्रमाणंस्य भेदाः वर्णयते

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४६-१४८] / गाथा [११६-११८]
प्रत सूत्रांक [१४६- १४८] गाथा [११६- ११८]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥१०९॥	शुवाग्निर्गर्थप्रयोगवान् । मंदप्रयोगो वृष्टयं बुवज्ञस्वर्गभिधाथकः ॥१॥” एतेषां च विशेषोऽर्थात्करणादिगम्य इति यो यत्र विकल्पे अर्थविशेषो घटते स तत्र नियोक्तव्य इति । ‘से किं तं नाभसंखे’ त्यादि सूत्रसिद्धं, यावत् ‘ज्ञाणगत्सरीरभवियसरीरतव्यइरिचे इवसंखे तिविह पञ्चन्ते’ इत्यादि, तद्यथा-एकभविक उत्कृष्टेन पूर्वकोटी, अयं च पूर्वकोट्यायुरायुःक्षयात्समनन्तरं शङ्खेषु उत्पत्त्यते यः स परिएषते, अधिकतरायुषस्तेषु उत्पत्त्यभावात्, बद्धायुषकः पूर्वकोटीत्रिभागमिति, अस्मात् परत आयुष्कबन्धाभावात्, अभिमुख्यनामगोत्रोऽन्तर्युहूर्चमिति अस्मात्परतो भावसंखत्वभावादिति, को नयः कं सङ्ख्यमिच्छतीत्यादि सूत्रसिद्धं, नवरं नैगमव्यवहारौ लोकव्यवहारपरत्वात् त्रिविधं शङ्ख्यमिच्छतः, ऋजूसूत्रोऽतिग्रस्तङ्गभयात् द्विविधं, शब्दादयः शुद्धतरत्वादतिप्रसङ्गनिवृत्यथेषैकविधिमिति । औपन्येन संख्यानं औपन्यसंख्या, अनेकार्थत्वाद्वात् नामुपमार्थप्रधाना कीर्तना, परिच्छेद इत्यन्ये, इयं च निगदसिद्धा, परिमाणसंख्या-प्रमाणकीर्तना, ज्ञानसंख्यापि ज्ञानकीर्तनैव, द्वयमपि निगदसिद्धं । ‘से किं तं गणणसंख्या’ इत्यादि, एतावन्त इति संख्यानं गणनसंख्या, एको गणनां नोपैति तत्रान्तरेण एत्थं संख्यां वस्तिवत्येव प्रतीतेः, एकत्वसंख्याविषयत्वेऽपि वा प्रायोऽसंव्यवहार्यत्वादलपत्वादत आह-द्विप्रभृतिः संख्या, तद्यथा-संख्येयकं असंख्येयकं अनन्तकं, एत्थं संखिज्जकं जहणादिगं तिविधमेव, असंखिज्जगं परिचादिगं तिहा । काढं पुण एकेकं जहणादितिविहविगपेण नवविहं भवति, अण्ठतर्गंपि एवं चेव, यवरं अण्ठतगाण्ठं गस्स उक्तोसस्स असंभवत्तणओ अद्विहं कायन्वं, एवं भेदे कए लेसिमा परुवणा कज्जति-‘जहणागं संखिज्जगं केत्तियं’ इत्यादि कण्ठयं, ‘से जहा णामए पछे सिया’ इत्यादि, से पछे बुद्धिपरिकायणाकप्यए, पछे पक्खेवा भण्णनि, सो य हेढा जोयणसहस्सावगढो, रयणकंडं जोयणसहस्सावगाडं भेत्तु वेरकंडपतिहिओ, उवारं पुण सो वेदियाकंटो, वेदियापातो य उवारि सिहामयो कायव्वो, जतो असतिमादि सव्वं वियमेज्जं सिहामयं विडं, सेसं सुत्तसिद्धं, दीवसमुद्दाणं उद्धारो धेष्पद्धि, उद्धरणमुद्धारः, तेहिं पञ्च
दीप अनुक्रम [२९९- ३१०]	नामादि- संख्या . गणन संख्या च ॥१०९॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४६-१४८] / गाथा [११६-११८]
प्रत सूत्रांक [१४६- १४८]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा [११६- ११८]	<p>श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥११०॥</p> <p>माणेहि सरसवेहि वीवसमुदा उद्धरित्वंति॒ति, तत्प्रमाणा गृह्णन्त इत्यर्थः, स्याद्-उद्धरणं किमर्थ ?; उच्यते, अणवद्वितसलागप, रिमाणज्ञापनार्थ, चोदगो पुच्छति- जादे पढमपर्ले ओक्खिते पक्खिते निष्ठिते य सलागा ण पक्खिप्पति तो किं पर्लवितो?; उक्यते, एस अणवद्वितयपरिमाणदंसणत्वं पर्लवितो, इदं च ज्ञापितं भवति-पढमत्तणतो पढमपर्ले अणवद्वितभावो णत्यि, सलागापल्लो अणवद्वियसलागाण भरेयत्वो, जतो सुत्रे पढमसलागा पढमअणवद्वियपल्लभेदे देसिया, अणवद्वियपल्लपरंपरसला-गाण संलप्पा लोगा भरिता इत्यादि, असंलप्पति जं संखिज्जे असंखिज्जे वा एगतरे पक्खेवेदं न शक्यते तं असंलप्पति, कहै?, उच्यते, उक्तेसंखेज्जस अतिबद्धत्तणओ सुतव्ववहारीण य अठववहारित्तणओ असंखिज्जमिव लक्खिज्जति, जम्हा य जहण्णपरित्तासंखिज्जग-ण पावति आगमपच्चव्वववहारिणो य संखेज्जववहारिणत्तणओ असंलप्पा इति भणितं, लोगति सलागापल्लागा, अहवा जहा दुगादि इस-सतसहस्त्रक्षेत्रोडियादिएहि रासीहि अहिलावेण गणणसंखसंववहारा कज्जंति, न तहा उक्तेसगसंखेज्जगेण आदिलगारासीहि य ओम्पत्त्वगपरिहाणीए जा सीसपेडिअंको परिमाणरासी, एतोहि गणणाभिलाचसंखवहारे ण कज्जहान्ति अतो एते रासी असंलप्पा, इदं कारणमासज्ज भणितं असंलप्पा लोगा भरिता इति, अहवा अणवद्वितसलागपडिसलागमहासलागपल्ला य सर्वे गुरुणा कते-भणिते सीसो पुच्छसि-ते कहै भरेयत्वा ?, गुरु आह-- एवंविहसलागाण असंलप्पा लोगा भरिता, खेलप्पा नाम संमहा, ण संलप्पा असंलप्पा, सशिखा इत्यर्थः, तहापि उक्तेसगं संखेज्जगं ण पावति॒ति भणिते सीसो पुच्छति-कहै उक्तेसगसंखेज्जसरूपं जायिवव्वं?, उच्यते, से जहा णामेण मंचे इत्यादि, उवसंहारो एवं-अणवद्वितसलागाहि सलागापल्ले पक्खिप्पमाणीहि तथोः य पक्खिसलागापल्ले ततोवि महासलागापल्ले, हाहीइ-सा सलागा जा उक्तेसगसंखिज्जगं पाविहिति। इदाग्नि उक्तेसगसंखिज्जगपरव्वणत्वं फुहलरं इवं भणिइ-जहा तंभि मंचे आमलएहि पखि-</p> <p>उत्कृष्ट- संख्ये ये पल्ल्यचतुर्भुक्तं</p> <p>॥११०॥</p>
दीप अनुक्रम [२९९- ३१०]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४६-१४८] / गाथा [११६-११८]
प्रत सूत्रांक [१४६- १४८]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा ॥११६- ११८॥	<p>श्रीअग्नु० हारि.हृत्ती ॥१११॥</p> <p>प्यमणेहि होहिइ तं आमलगं जं तं भंचं भरेहिति, अणं आमलगं ण पडिच्छाविति, एवमुकोसयं संखिष्जयं विडं, तस्य इसा परुवणा-जंशूदीव-पभाषमेता चत्तारि पला, पठमो अणवाङ्गितपल्लो वितिथो सलागापल्लो तइओ पडिसलागापल्लो चउस्थो महासलागापल्लो, एते चउरोवि रथणप्पभाए पुढबीए पठमं रथणकंडे जोयणसहस्रावगार्द भिन्नू वितिए वद्वरकडे पतिङ्गिया विट्ठा, इसा ठवणा-०००० एते तु टिता, एगो गणणं नोवेति दुप्पभितिसंखित्तिकाऽं, तत्थ पठमे अणवाङ्गितपले दो सरिसवा पक्षिलत्ता, एते जहश्णमासंस्खिज्जगं, तभ्ये पणुत्तरबुद्धीए विणिग चउरो पञ्च जाव सो पुणो अणं सरिसवं ण पडिच्छाविति ताहे असच्चावपट्टवणं पक्षुच्च तुलति, तं कोऽव्रि देवो दाणत्रो वा उक्षिलत्तुं वाम-करथले कारं ते सरिसवे जंशूदीवाइए दीवे समुदे पक्षिलत्ता. जाव गिंडिया, ताहे सलागा-एरो सिद्धत्थओ द्वृढो सा सलागा; ततो जाहे दर्शे समुदे वा सिद्धत्थओ निंडितो सह तेण आरेण जे दीवसमुदा लेहि सव्वेहि तप्पमाणे पुणो अणो पक्षो भरिज्जह, सोऽव्रि सिद्धत्थयाण भरितो जंभिं गिंडितो ततो परतो दीवसमुदेसु एकेकं पक्षिलत्ता जाव सोऽव्रि गिंडिओ, ततो सलागापल्ले विसिओ सरिसवो द्वृढो, जत्थ गिंडितो तेण सह अदिल्लपहि पुणो अणो पक्षो आइज्जति, सोवि सरिसवाण भरितो, ततो परतो एकेकं दीवसमुदेसु पक्षिलत्तेरेण गिंडितो, ततो सलागापल्ले ततिया सलागा पक्षिलत्ता, एवं एतेण अणवाङ्गितपल्लकरण क्षेण सलायम्हणं करितेण सलागापल्लो सलागाण भरितो, क्रमागतः अणवाङ्गितो, ततो सलागापल्लो सलागं ण पडिच्छावितिकाऽं सो चेव उक्षित्तो, गिंडितद्वाणा परतो पुच्चक्षेण पक्षिलत्तो य, ततो अणवाङ्गितो उक्षिलत्ता गिंडियट्टाणा पुच्चक्षेण पक्षिलत्तो गिंडितो य, ततो सलागापल्ले सलागा पक्षिलत्ता, एवं अज्ञं अज्ञं अणवाङ्गितेण अतिरनिकरणेण जाहे पुणो सलागापल्लो भरितो अणवाङ्गितो य, ताहे पुण सलागापल्लो उक्षिलत्तो पक्षिलत्तो गिंडितो य पुच्चक्षेण, ताहे पडिसलागापल्ले विह्या पडिसलागा द्वृढा, एवं आइरनिकरणेण जाहे तिणिवि पडिसलागसलागअणवाङ्गितपल्ला य भरिता ताहे</p>
दीप अनुक्रम [२९९- ३१०]	पर्यचतुष्कं ॥१११॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४६-१४८] / गाथा [११६-११८]
प्रत सूत्रांक [१४६- १४८]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा [११६- ११८]	<p>श्रीअनु० हारि.वृत्ति०</p> <p>॥११२॥</p> <p>पदिसलागापल्लो पक्षित्वतो, पक्षित्वप्तमाणो गिद्धितो य, ताहे महासलागापल्ले महासलागा पक्षित्वता, ताहे सलागापल्लो उक्षित्वतो पक्षि- प्तमाणो गिद्धितो य, ताहे पदिसलागा पक्षित्वता, ताहे अणवद्धितो उक्षित्वतो पक्षित्वतो य, ताहे सलागापल्ले सलागा पक्षित्वता, एवं आइरण- णिकिरणक्षमेण ताव कायब्दं जाव परंपरेण महासलागापडिसलागसलागअणवद्धितपल्ला य चबरोवि भरिया, ताहे उक्षोसमतिनिष्ठयं, एत्य जावतिया अणवद्धितपल्ले सलागापस्ति पडिमलागापल्ले महासलागापल्ले य दीवसमुद्दा उद्धरिया जे य चउपलट्टिया सरिसवा एस सब्बोउवि एतप्पमाणो रासी एगरुव्वो उक्षोसयं संखेजजयं हवति, जहण्णुकोसयाण मङ्ग्ले जे ठाणा ते सब्बे पत्तेयं अजहण्णमणुकोसया संखेजजया भाणि- यव्वा, सिद्धेते जथं संखेजजयगहणं कयं तत्थ सब्बं अजहण्णमणुकोसयं दट्टव्बं । एवं संखिउज्जगे परुविते सीसो पुच्छति-भगवं ! किमे- तेण अणवद्धिते पल्ले सलागापडिसलागामहासलागापस्तिलयादीहि य दीवसमुद्दारगहणे य उक्षोसगसंखेजजगपरुवणा कज्जति॑, गुरु भणति- णत्य अणो संखेज्जगस्त फुडतरो परुवणोवायेति, किंचान्यत्- असंखेज्जगमणंतगरासीविगप्पणाचि एताओ चेव आधाराओ, रुदुतरणवृ- द्धताओ परुवणा कज्जतीत्यर्थः, उक्तं त्रिविधं संख्येयकं । इदाणि णवविहं असंखेज्जगं भणति-‘एवमेव उक्षोसए’ इत्यादि सुत्तं, असंखेज्जगे परुविज्जमाणे एवमेव अणवद्धितपल्लदीबुद्धारणे उक्षोसगं संखिउज्जगमाणीप एगसरिसवरुवं पक्षित्वतं ताहे जहण्णगं भवति, ‘तेण परं’ इत्यादि सूत्रं, एवं असंखेज्जग अजहण्णमणुकोसद्वाणाण य जाव इत्यादि सुत्तं, सीसो पुच्छति-‘उक्षोसगं’ इत्यादि सुत्तं, गुरु आह-जहण्णगं परित्ताअसंखेज्जगं ति, अस्य व्याख्या—ते जहण्णगं परित्तासंखेज्जयं विरलियं ठविउज्जति, तस्य विरलियठावियस्स एकके सरिसवडाणे जहण्णपरित्तासंखेज्जगमत्तो रासी दायब्बो, ततो तेसि जहण्णपरित्तासंखेज्जमेत्ताणं रासीण अणमणिभासोति-गुणणा कज्जति, गुणिते जो रासी जातो सो रुद्धोति रुवं पाडिते उक्षोसगं परित्तासंखेज्जगं हेति, एत्य दिङ्गते-जहण्णगं परित्तासंखेज्जगं बुद्धिकप-</p>
दीप अनुक्रम [२९९- ३१०]	<p>पल्यचतुष्कं</p> <p>॥११२॥</p>

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४६-१४८] / गाथा [११६-११८]
प्रति सूत्रांक [१४६- १४८]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा [११६- ११८]	<p>श्रीअनु० हारि.वृत्ति०</p> <p>॥११३॥</p> <p>जाए पंच रूपाणि, ते विरलिया इमे ५५५५५, एकेकस्स हेद्वा जहणगपरित्तासंखेजगमेत्तरासी ठविया ५५५५५, एतेसि पंचगाणं अण्णमण्णदभासोत्ति गुणितो जाता एकतीर्ति सता पणवीसा, एत्थ अण्णमण्णदभासोत्ति जं भणितं एत्थ अण्णे आयरिया भणिति-वगियसंब-गियर्ति भणितं, ५५५५५, अत्रोच्यते-स्वप्रमाणेन राशिना रासी गुणिज्जमाणो वगियर्ति भणिति, एतो चेव संवद्धमाणो रथी पुञ्चलङ्घुणका-रेण गुणिज्जमाणो संवागियर्ति, अतो अण्णमण्णदभत्यस्स वगियसंवगियस्स य नार्थभेद इत्यर्थः, अन्यः प्रकारः, अहवा जहणगं जुत्ता-संखेज्जगं जं तं रूपूणं कज्जति, सतो उक्तोसगं परित्तासंखेज्जगं होति, उक्तं तिविहंपि परित्तासंखेज्जगं इद्वाणि तिविहं जुत्तासंखेज्जगं भणिति, तस्स इमो समोतारो,-सीसो भणिति-भगवं ! जं तु ब्वेजहणगं जुत्तासंखेज्जगपरूपवणं करेह तमहं ण याणं, अतो पुच्छा इमा-जहणजुत्ता-संखेज्जगं केतियं होति ?, आचार्य उत्तरमाह-‘जहणगं परित्तासंखेज्जगं’ इत्यादि सूत्रं पूर्ववर्त्तक्यं, नवरं पद्मपुणेत्ति-गुणिते रूपं न पाडिज्जति, अन्यः प्रकारः, अथवा ‘उक्तोसए’ इत्यादि, सूत्रं कंठयं, जावइतो जहणजुत्तासंखेज्जगए सरिसवरासी एगावलियाएवि समयरासी वचिओ चेव, जत्थ सुत्ते आवलियागहणं तत्थ जहणजुत्तासंखेज्जगपद्मपुणात्पमाणमेत्ता समया गाहत्वा, ‘तेण पर’ मित्यादि, जहणजुत्तासंखेज्जगा परतौ एगुत्तरवद्विता असंखेज्जा अजहणमणुक्तोसजुत्तासंखेज्जगद्वाणा गच्छति, जाव उक्तोसगं जुत्तासंखेज्जगं ण पाषतीत्यर्थः, सीसो पुच्छति-उक्तोसगं जुत्तासंखेज्जगं केतियं भवति ?, आचार्य आह-‘जहणगजुत्तासंखेज्जगपमाणरासिणा आवलियासमयरासी गुणितो रूपूणो उक्तोसगं जुत्तासंखेज्जगं भवति, अण्णे आयरिया भणिति-जहणजुत्तासंखेज्जरासिस्स वगगो कज्जति, किमुकं भवति?, आवलिया आवलियाए गुणिज्जति रूपूणओ उक्तोसगं जुत्तासंखेज्जगं भवति, अन्यः प्रकारः-‘अहवा जहणगं’ इत्यादि सूत्रं, कंठयं । शिष्यः पुच्छति—‘उक्तोसगं’ इत्यादि सूत्रं, आचार्य उत्तरमाह-‘जहणगं’ मित्यादि सूत्रं, कंठयं, अन्यः प्रकारः‘अहवा जहणगं’ इत्यादि सूत्रं, कंठयं, अण्णे पुण आयरिया उक्तोसगं</p>
दीप अनुक्रम [२९९- ३१०]	गणना- संख्यायां असंख्येयाः
	॥११३॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४६-१४८] / गाथा [११६-११८]
प्रति सूत्रांक [१४६- १४८]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा [११६- ११८]	<p>श्रीअनु० हारि.बृत्ती ॥११४॥</p> <p>असंखेऽजासंखेऽजगं इमेण पगारेण पण्डवेति-जहृणगअसंखेऽजासंखेऽजगरासिस्स वग्गो कङ्गति, वस्स रासिस्स पुणो वग्गो कङ्गति, तस्सेव वगगस्स पुणो वग्गो कङ्गति, एवं तिषिण वारा वग्गितसंबिग्गते इमे दस पक्षेवया पक्षिष्ठप्पंति ‘लोगागासपदेसा ५ धन्मा २ धन्मे ३ गजी-वदेसा य ४। दव्वद्विया गिओया ६ पत्तेया चेव बोद्ववा ६ ॥ १ ॥ ठितिबंधज्ञवसाणे ७ अणुभागा ८ जोगचेयपङ्गिभागा ९। दोण्ह य समाण समया १० असंखपक्षेवया दस उ ॥ २ ॥ सब्बे लोगागासपदेसा, एवं घम्मतिथकायप्पएसा अधमतिथकायप्पएसा एगजीवरपदेसा दव्वद्विया गिओयति-सुहुमवादरअपेतवणस्थतिसरीरा इत्यर्थः, पुढवादि जाव पंचेयिया सब्बे पत्तेयसरीरणि गाहियाणि, ठितिबंधज्ञवसाणेति-गाणावरणादियस्स संपरायकम्भस्स ठितिविसेसर्वधा जेहिं अज्ञवसाणठाणेहिं भवंति ते ठितिबंधज्ञवसाणे, ते य असंख्या, कहौं, उच्यते, याणावरणदंसणावरणमोहआउअंतरायस्स जहृणिया अंतमुहुत्ता ठिती, सा एगसमउत्तरवुड्हीए ताव गता जाव मोहर्णिजस्स सत्तरिसागरोवम-कोडाकोडिओ सत्त य वाससहस्सति, एते सब्बे ठितिविसेसा, तेसे अज्ञवसायट्टाणविसेहितो णिलकज्जन्ति अतो ते असंखेऽज्ञा भणिता, अणुभागति-याणावरणादिकम्भणो जो जस्स विवागो सो अणुभागो, सो य सब्बजहृणठाणओ जाव सब्बुकोसो उमणुभाबो, एते अणुभाग-विसेसा जेहिं अज्ञवसाणट्टाणविसेहितो भवंति ते अज्ञवसाणट्टाण असंखेऽजगाऽऽगासपदेसमेत्ता, अणुभागट्टाणवि तत्तिया चेव, जोगचेयप-लिभागा, अस्य व्याख्या-ज्ञागेति जोगा मणवतिकायप्पओगा, तेसे मणादियाण अण्डणो जहृणठाणओ जोगविसेसपहाण तरवुड्हीए जाव उक्षोसो मणवइकायपओयति, एते एगुत्तरवुड्हीया जोगविसेसट्टाणछेदपङ्गिभागा भण्णति, ते मणादियछेदपङ्गिभागा पत्तेयं पिंडिया वा असंखे-ज्ञया इत्यर्थः, ‘दोण्ह य समाण समया उ’ ति उस्सपिणी ओसपिणी य, एयाण समया असंखेऽज्ञा चेव, एते दस असंखपक्षेवया</p>
दीप अनुक्रम [२९९- ३१०]	मणाना- संख्यायां असंख्येयाः ॥११४॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४६-१४८] / गाथा [११६-११८]
प्रति सूत्रांक [१४६- १४८]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा ॥११६- ११८॥	<p>श्रीअनु० हारि.वृत्तौ</p> <p>॥११५॥</p> <p>पक्षिखविडं पुणो रासी तिणिं वारा वगिओ, ताहे रुवोणो कंजो, एवं उक्तोसर्यं असंखेज्जासंखेज्जयप्पमाणं भवति, उक्तं असंखेज्जगं । इदार्थं अणंतर्यं भण्णति-सीसो पुच्छति—</p> <p>‘जहण्णगं’ इत्यादि सुत्तं, कंठं, गुरु आह—‘जहण्णगं असंखेज्जासंखेज्जगं’ इत्यादि सुत्तं, कंठं, अन्यः प्रकारः-‘उक्तोसर्ए’ इत्यादि सुत्तं, कंठं, सीसो पुच्छति-‘उक्तोसर्यं परित्ताणंतर्यं’ इत्यादि सुत्तं, कंठं, गुरु आह-‘जहण्णगं’ इत्यादि सुत्तं, कंठं, अन्यः प्रकारः-‘अहवा जहण्णगं’ इत्यादि सुत्तं, कंठं, सीसो पुच्छति-‘जहण्णगं परित्ता’ इत्यादि सुत्तं, कंठं, आचार्य आह-‘जहण्णगं परित्ताणंतर्यं’ इत्यादि सुत्तं, कंठं, ‘अहवा उक्तोसर्ए’ इत्यादि सुत्तं, कंठं, एथ अण्णायरियाभिष्पायतो वगिगतसंविगतं भाणियबं, पूर्ववत्, जहण्णो जुत्ताणंतयरासी जावहिओ अभव्वरासीवि केवलणाणेण तत्तितो चेव दिंडो, ‘तेण पर’ इत्यादि सुत्तं, कंठं, आचार्य आह-‘जहण्णएणं’ इत्यादि सुत्तं, कंठं, अन्यः प्रकारः ‘अहवा जहण्णगं’ इत्यादि सुत्तं, कंठं, एथ अण्णायरियाभिष्पायतो अभव्वरासीप्पमाणसस रासीणो सति वगगो कज्जति, ततो उक्तोसर्यं जुत्ताणंतर्यं भवति, सीसो पुच्छति-‘जहण्णगं अणंताणंतर्यं केतियं भवति?’ सुत्तं, कंठं, आचार्य आह—‘जहण्णएणं’ इत्यादि सुत्तं, कंठं, अन्यः प्रकारः-‘अहवा उक्तोसर्ए’ इत्यादि सूत्रं, कंठं, ‘तेण पर’ मित्यादि सुत्तं, कंठं, उक्तोसर्यं अणंताणंतर्यं नास्त्येवेत्यर्थः, अणे आयरिया भण्णति-जहण्णगं अणंताणंतर्यं तिणिं वारा वगियं, ताहे इमे एथ अणंतपक्षेवा पक्षेवत्ता, तंजहा-सिद्धा १ णिझोप्रजीवा २ वणस्सती ३ काळ ४ पोगगला ५ चेव । सव्वमलोगागासं ६ छ्यमेतेऽणंतपक्षेवा ॥ १ ॥ सव्वे सिद्धा सञ्चे सुहुमवादरा णिझोयजीवा परित्ता अणंता सञ्चे वणस्सइकाह्या सञ्चे तीताणागतवृत्तमाणकालसमयरासी सव्वपेगगलदव्वाण परमाणुरासी सव्वागासपएसरासी, एते पक्षिखविडं तिणिं वारा वगिगयसंविगिओ काउं तहवि उक्तोसर्यं अणंताणंतर्यं ण पावति, तओ केवलणाणं केवल-</p> <p>गणनार्थं अनन्त संख्या</p> <p>॥११५॥</p>
दीप अनुक्रम [२९९- ३१०]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४६-१४८] / गाथा [११६-११८]
प्रत सूत्रांक [१४६- १४८] गाथा [११६- ११८]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>श्रीअनु० हारि.वृत्ता ॥११६॥</p> <p>दंसणं च पक्षेस्तं, तहावि उक्षेसयं अणंताणंतयं ण पावति, मुत्ताभिप्पायाओ, जओ सुते भणितं-तेण परं अजहण्णमणुकोसाहं ठाणाइंति, अणगायरियाभिप्पायतो केवलणाणदंसणेमु पक्षित्तेसु पतं उक्षेसयं अणंताणंतयं, जओ सव्वमणन्तयमिह, णत्थ अणं किंचिदिति, जहिं अणंताणंतयं मविगज्जति तहिं अजहण्णमणुकोसयं अणंताणंतयं गहियव्वं, उक्ता गणनासंख्या । ‘से किं तं भावसंख्या’ इत्यादि, प्राकृत-शैल्याऽत्र शङ्खस्याः परिगृह्णान्ते, आह च-य एते इसि प्रहृष्टकप्रत्यक्षा लोकप्रसिद्धा वा जीवा आशुःप्राणादिमन्तः स्वस्वगतिनामगोत्राणि तिर्यगति-द्वीन्द्रियौदारिकशरीराङ्गोपाङ्गादीनि नीचेतरगोत्रलक्षणानि कर्माणि तद्वावापन्ना विपाकेन वेदयन्ति त एव भावसंख्या इत्युक्ता भावसंख्याः, ‘सेच्च’ मित्यादि निगमनत्रयं, समाप्तं प्रमाणद्वारं ॥ अधुना वक्तव्यताद्वारावसरः, तत्राह—</p> <p>‘से किं तं वक्तव्यता’ इत्यादि (१४७-२४३) तत्राध्ययनादिषु सूत्रप्रकारेण विभागन देशनियतगंधनं वक्तव्यता, इयं च त्रिविधा स्वस्मयादिभेदात्, तत्र स्वसमयवक्तव्यता यत्र यस्यां णमिति वाक्यालंकारे स्वसमयः-स्वसिद्धान्तः आख्यायते, यथा पंचास्तिकायाः, तथथा-धर्मास्तिकायाः इत्यादि, तथा प्रज्ञाप्यते यथा गतिलक्षणे धर्मास्तिकाय इत्यादि, तथा प्रस्तुप्यते यथाऽसावसंख्येयप्रदेशात्मकादिभिः, तथा ददर्श्यते मत्स्यानां जलभित्यादि, तथा निदर्श्यते यथा तथैवेषोऽपि जीवपुद्गलानामिति, उदाहरणमात्रमेतदेवमन्यथापि सुत्रालापयोजना कर्तव्येति शेषः, स्वसमयवक्तव्यता, परसमयवक्तव्यता तु यत्र परसमय आख्यायत इत्यादि, यथा ‘संति पञ्चमहृष्या, इहमेरेसि आहियं । पुढवी आऊ य वाऊ य, तेऽज आगासपंचमा ॥१॥ एते पञ्च महृष्या, तेभ्यो एगच्चि आहियं । अह तेसिं विणासेण, विणासो होइ देहिणो ॥ २ ॥ इत्यादि लोकायतसमयवक्तव्यतात्पूर्णत्वात् वरसमयवक्तव्यतेति, शेषसूत्रालापयोजनापि स्वदुद्घचा कार्या, सेयं परसमयवक्तव्यता, स्वस्मयपरसमय-</p> <p>वक्तव्यता- अधिकारः ॥११६॥</p>
दीप अनुक्रम [२९९- ३१०]	
	*** अथ ‘वक्तव्यता’ अधिकारः दर्शयते

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४६-१४८] / गाथा [११६-११८]
प्रत सूत्रांक [१४६- १४८]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा [११६- ११८]	<p>श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥११७॥</p> <p>वक्तव्यता पुनर्यत्र स्वसमयः परसमयशाऽऽल्लयेते, यथा ‘आगारमावसंतो वा, अरण्णः वापि पञ्चव्या । इमं दरिसणमावण्णा, सञ्चुदुक्षखा विमुच्छती ॥ १ ॥ त्यादि, शेषसूत्रालापकयोजना तु स्वधिया कार्येति, खेयं स्वसमयपरसमयवक्तव्यता ॥</p> <p>इदानीं नयविचारः कियते—को नयः? कां वक्तव्यतामिच्छति ?, तत्र नैगमव्यवहारौ त्रिविधां वक्तव्यतामिच्छतः; तत्या—स्वसमयवक्तव्यतामित्यादि, तत्र सामान्यरूपो नैगमः; प्रतिभेदं सामान्यरूपमेवेच्छति, स हेतुं मन्यते-भिण्णाभिधेया अपि स्वसमयवक्तव्यताऽविशेषात्स्व-समयसामान्यमतिरिक्त (च्य न) वर्त्तते, व्यतिरेके स्वसमयवक्तव्यताऽविशेषत्वानुपत्तेः; विशेषरूपः स नैगमो, व्यवहारस्तु प्रतिभेदं भिन्नरूपमेवे-च्छति, पदाथीनां विचित्रत्वादिति, यथाऽस्तिकायवक्तव्यता मूलगुणवक्तव्यतेत्यवमादि, ऋजुसूत्रस्तु द्विविधां वक्तव्यतामिच्छतीत्यादि सयुक्तिं सूत्रसिद्धेव, त्रयः शब्दनायाः शब्दसमभिरूढएवंभूताः एकां स्वसमयवक्तव्यतामिच्छन्ति, शुद्धनयस्वात्, नास्ति परसमयवक्तव्यतेति च मन्यते, कस्मादेतदेव ?, यस्मात्परसमयोऽनर्थ इत्यादि, तत्र ‘निमित्तकारणहेतुपु सर्वांसां विभक्तीनां प्रायो दर्शन’मिति वचनाद् हेतवस्तु एत इति, परसमयानर्थस्वादहेतुत्वादित्यवमादियः, तत्र कथमनर्थै इति, नास्त्यवात्मेत्यनर्थप्रसूपकत्वादस्य, आत्माभावे प्रतिवेधानुपपत्तेः, उक्तं-‘जो चिंतेइ सरीरे णात्यि अहं स एव होइ जीवोति । णहु जीविमि असर्वे संसयउपपायओ अण्णो ॥ १ ॥’ अहेतुः- हेत्वाभासेन प्रवृत्तेः, यथा नास्त्येवात्मा अत्यन्तानुपलब्धेः, हेत्वाभासत्वं चास्य ज्ञानादित्वगुणोपलब्धेः, उक्तं च—“ज्ञानानुभवतो दृष्टस्तदगुणात्मा कथं च न ? । गुणदर्शनरूपं च, घटादिष्वापि दर्शनम् ॥१॥” असद्ग्रावः—असद्ग्रावाभिधानात्, असद्ग्रावाभिधानं चात्मप्रतिवेधेनोत्त्वात्, स्यादेतत्-सर्वगतत्वादिधर्मविणोऽसर्वं रूपादिस्फन्दसमुदायात्मकस्य तु सद्ग्राव एवेति, न, तस्य भ्रान्तिरूपत्वात्, भ्रान्तिमात्रत्वाभ्युपगमश्च “केनपिण्डोपसंरूपं, वेदना बुद्ध्युदापमा । मरीचिसृष्टी संज्ञा, संस्काराः कदलीनिभाः ॥१॥ मायोपमं च विक्षनमुक्तमावित्यवन्धुने” त्यादि, आक्रियक्षणिकै-</p>
दीप अनुक्रम [२९९- ३१०]	वक्तव्य- तायां नयविचारः ॥११७॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४६-१४८] / गाथा [११६-११८]
प्रत सूत्रांक [१४६- १४८]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा [११६- ११८]	<p>श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥११८॥</p> <p>कान्ताऽभ्युपगमेन कर्मवन्धक्रियाऽभावप्रतिपादकत्वाद्, उक्तं च-“उत्पन्नस्याचक्षथानादभिसंधारयोगतः । हिंसाऽभ्यावान्न बन्धः स्युपदेशो निरर्थकः ॥१॥” इत्यादि, उन्मार्गः परस्परविरोधात्, विरोधाकुलत्वं चैकांतक्षणिकत्वेऽपि हिंसाऽभ्युपगमाद्, उक्तं च तत्र-प्राणी प्राणिज्ञानं वातकवित्तं च तद्वता चेष्टा । प्राणेभ्य विग्रयोगः पञ्चभिरापद्यते हिंसे ॥१॥” त्यादि, अनुपदेशः अहितपवर्तकत्वात्, उक्तं च-“सर्वं क्षणिकमित्येवत्, ज्ञात्वा-को न प्रवर्तते । विषयादौ? विषयो मे, न भावीति दृढप्रतः ? ॥१॥” इत्यादि, यत्त्रैवमतो विषयादर्शनं, ततश्च मिथ्याद-शेनमितिकुला नास्ति परस्परमयवक्तव्यतेर्ति वर्तते, एवं समयांतरेष्वविस्त्रुत्युपत्वाद्, यथाभूतस्त्वासौ विद्यते प्रतिपक्षसापेक्षस्त्वथाभूतः स्याद्वाहाङ्कान्त्यात् स्वसमय एवेति, तदुक्तं च-“नयास्तव स्यात्पदलाभिलिता हमे, रसोपविद्वा इव लोहधातवः । भवन्त्यभिप्रेतगुणा यत्स्वतो, भवन्तमप्यायः प्रगता हितेषिणः ॥१॥” इत्यादि, आह-न खलु अनेकान्त एव मत्तममीयां शब्दाद्यानां तत्कथमेवं भ्याल्यत्यते ? इति, उच्यते, विवादस्त-द्विषयः, शुद्धनयस्त्रैते भावप्रधानाः, तद्वावश्वेत्यमेवेति न दोषः, सेव्य वक्तव्यतेर्ति निगमनं, उत्तम वक्तव्यता ॥ सामव्रतमर्थाभिस्त्रैत्यस्त्रैत् स च सामाप्तिकादीनां प्राक् प्रदीर्घीत एवेति न प्रतन्यते, वक्तव्यतार्थाधिकारयोश्चाच्च भेदः-अर्थाधिकारो हात्यथसे आदिपदादारभ्यः सर्वपदेष्वनुवर्तते, पुद्रलास्तिकाशे मूर्च्छत्वबद्ध, देशमदिनियता तु वक्तव्यतेर्ति ।</p> <p>॥२१॥ किं तं समोवारे ? इत्यादि (१४९-२४६) समवतरणं समवतारः, अप्ययनासमलताकरणमिति भावः, अयं च पद्मविधः प्रज्ञात् इत्यादि निगदसिद्धमेव यावज्ज्ञासारीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यसमवताराद्याविधः प्रज्ञातः, तदश्या—आत्मसमवतार इत्यादि, तत्र सर्वाद्रव्याज्यप्यात्मसमवतरणात्मावे समवतरन्ति-वर्तन्ते, तदव्यतिरिक्तत्वाद्, यथा जीवद्रव्याणि जीवभावे इवि, भावान्तरसमवतारे तु स्वभावत्यागा-</p>
दीप अनुक्रम [२९९- ३१०]	अर्शा- धिकारः समवतारश्च ॥२१॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१४९] / गाथा [११९-१२३]
प्रति सूत्रांक [१४९] गाथा [११९- १२३]]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>श्रीअत्मु० हारि.बृत्ती ॥११९॥</p> <p>द्ववस्तुत्प्रसंगः, अथवारतस्यु परस्परमवतारेण परभावे, यथा कुण्डे धदराणि, स्वभाववृथितानमेवान्यत्र भावात्, तदुभव्यसमवतारेण तदुभये, यथा गुह्ये लम्ब्यः आत्मभावे चेत्यादि, मूलपादवेहलीकुभस्त्वम्भातुलादिसमुद्धायात्मेवत्वात् सूहस्य, वत्र च स्तम्भस्य पूढपादाद्यः परे, आत्मा पुनरात्मैव, तदुभये चास्य समवद्वारस्तथावृत्तेरिति, एवं घटे प्रीत्वा आत्मभावे च, सामान्यविशेषात्मकत्वाचास्य, अवब्धा ज्ञानपीरभव्यज्ञरी-रव्यविरित्तेः द्रव्यसमवक्त्वार्थे: द्विविष्टः प्रज्ञापत्तस्यथा-आत्मसमवतारस्तदुभयसमवतारस्य, शुद्धः परस्परमवतारोऽनास्त्वेव, आत्मसमवतारस्यहि-तस्य परस्परमवताराभावात्, न खण्डमन्यवर्त्तमानो गर्भो जनन्मुदशादौ वर्तत इति, ‘चउसाद्विश्वा’ इत्यादि, छण्डण्णा दो पलसता माणी भण्णति, तस्य चउसद्वीभ्यो चउसद्विश्वा चउरो पला भवति, एवं वत्तीसियाए अडु पला, सोलसियाए सोलस, अदुभाद्याए वत्तीसं, चउभाद्याए चउ-संठिं, दोभाद्याए, अद्वावीमुच्चरं पलसतं, सेसं कंठयं। द्रव्यता त्वमीयां प्रतीतैव, क्षेत्रकाङ्क्षसमवतारस्य सूत्रनिष्ठ एव, एवं सर्वत्र। उभयसमवतारे, तु ऋषे आत्मसमवतारेण आत्मभावे समववरति, तदुभव्यसमवतारेण माने समवतरति आत्मभावे च, यतो मानेत कृष्णतीति, एवं सर्वत्रो-भयसमवतारकरणे, आत्मसामान्यभव्यत्वाऽन्योऽन्यव्याप्त्यादिकं कारणं स्वहुद्वया वक्तव्यमित्युक्ता भावसमवतारस्तदभिधानाच्चेपक्षम इति, समाप्तव्यक्तमः</p> <p>‘से किं तं निक्षेपे’ लादि, (१५०-२५०) निक्षेप इति शब्दार्थः पूर्ववत् त्रिविदः प्रज्ञापत्तस्यथा-ओघनिष्क्रान्ति इत्यादि, तत्र ओघो, नाम सामान्यं श्रुताभिधानं तेजः निष्क्रान्ति इति, एवं नामसूक्तात्यपक्षेभ्यः वेदितव्यं, नकरं नाम वैक्षेपिकमध्यग्रामाभिधानं, सूत्रव्याप्त्यादिपक्षिविभागपूर्वक्य इति। ‘से किं तं ओहनिष्क्रान्ते’ लादि, चतुर्विदः प्रज्ञापत्तस्यथा-अध्यवयनमक्षिण्मायः ध्यापणेति। ‘क्षिं से तं आज्ञायाऽत् लादिः सूक्तां यावद् अज्ञाप्यस्त्राण्यणमिलादि (अ१२४-२५१) इह नैरुतैन विधिना प्राकृतस्वभावात्मव्य अज्ञाप्यस्त्राण्यव्याप्त्यादिगमर-</p>
दीप अनुक्रम [३११- ३१७]	ओघ- निष्पत्ते अध्यवयना- सूक्तीणादीति ॥११९॥
*** अत्र ‘निक्षेप’ अधिकारः वर्णयते	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१५०] / गाथा [१२४-१३१]
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
प्रति सूत्रांक [१५०] गाथा ॥१२४- १३१॥	<p>श्रीअनु० हारिवृत्तौ ॥१२०॥</p> <p>णगारच्छेवाऽमो अज्ञयणं, इदमेव संस्कृतेऽध्ययनं, आनीयते चासेन शोभनं चेतः, अस्मिन् सति वैराग्यभावात्, किमित्येतदेवं ?, यतः अस्मिन् सति कर्मणां ज्ञानावरणयादीनां अपचयो-हात्य उपचितानां-प्रागुपनिबद्धानामिति, तथाऽनुपचयश्च अवृद्धिरच नवानां-प्रत्यग्राणां तस्मादुक्त-शब्दार्थोपपत्तेरध्ययनमिच्छन्ति विपश्चित इति गाथार्थः। ‘से किं तं अज्ञीणे’ त्यादि सूत्रसिद्धं यावत् से किं तं आगमतो भावज्ञीणे ?, २ जाणए उवउत्ते’ ति, अत्र वृद्धा व्याचक्षते-यस्मान्त्यतुर्दशपूर्वविद आगमोपयुक्तस्यान्तर्मुदूर्त्तसात्रोपयोगकालेऽप्योपलम्पोपयोगपर्याया ये ते समयापहारेणानन्तमभिरप्युत्सर्पिवयवसर्पिणीभिन्नोपहियन्ते ततो भावाक्षणिं मिति, नोआगमतस्तु भावाक्षणिं शिष्यप्रदानेऽपि स्वात्मव्यनाशादिति, तथा चाह-‘जह दीवा’ गाहा (॥१२५-२५२) यथा दीपादवधिभूतादीपशतं प्रदीप्यते, स च दीप्यते दीपः, न तु स्वतः क्षयभुपगच्छति, एवं दीपसमा आचार्य दीप्यते स्वतः परं च दीपयन्ति व्याख्यानविधिनेति गाथार्थः। योआगमता चेहाचार्योपयोगस्य आगमत्वाद्वाकाययोरच नोआगमत्वान्मिश्रवचनश्च नोशब्द इति वृद्धा व्याचक्षते। ‘से किं तं आय’ इत्यादि, आयो छाम इत्यनर्थान्तरम्, अयं सूत्रसिद्ध एव, नवरं संतं-सावएज्जस्स आएति संतं-सिरिघरादिसु विज्ञमाणं सावएज्जं-दानक्षेपग्रहणेषु स्वावीनं। ‘से किं तं झवणा’ इत्यादि, क्षपणं अपचबो निजं-रोति पर्यायाः, शेषं सुगमं, सर्वत्र चेह भावेऽध्ययनमेव भावनीयमिति, उक्त ओवनिष्पन्नः। ‘से किं तं नामनिष्पणे’ त्यादि, सामायिकं इति वैशेषिकं नाम, इदं चोपलक्षणमन्येषां, शब्दार्थेऽस्य पूर्ववत्, ‘से समासओ चउच्चिह्ने पण्णते’ इत्यादि सुगमं, यावत् ‘जस्स सामाणिओ’ गाथा, (॥१२६-२५५) यस्य सत्त्वस्य सामानिकः-सञ्चिह्न आत्मा, क ?, संयमे-मूलगुणेषु तपे-अनशनादौ सर्वकालव्यापारात्, सत्येत्यंभूतस्य सत्त्वस्य सामायिकं भवति, इतिशब्दः सारप्रदर्शनार्थः; एतावत् केवलिभाषितमिति गाथार्थः। ‘जो समो’ गाहा (॥१२७-२५६) यः समः-तुल्यः सर्वभूतेषु-सर्वजीवेषु, भूतशब्दो जीवपर्यायः, वस्यन्तीति त्रजाः-द्विनिद्रियादयस्तेषु, तिष्ठतीति स्थावराः-पृथिव्यादयस्तेषु च, तस्य सामा-</p> <p>नामनि ॥१२०॥</p>

आगम
(४७)

“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)

..... मूलं [१५०] / गाथा [१२४-१३१]

पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः

प्रति
सूत्रांक
[१५०]
गाथा
॥१२४-
१३१॥

श्रीअनु०
हारि.बृत्तौ
॥१२१॥

यिकमित्यःदि पूर्वचत् ॥ ‘जह भम’ गाहा (॥१२८-२५६) व्याख्या-गाथा गम न प्रियं दुखं प्रतिकूलत्वात्, शात्वा एवमेव सर्वजीवनां दुखं प्रतिकूलत्वं न हन्ति स्वयं न धातयत्यन्वैः, चश्वद्वद् धातयन्तं च नानुमन्यतेऽन्यमिति । अनेन प्रकारेण समं अणति-नुस्यं गच्छति यस्त्वेनामौ समष्ट इति गाथार्थः । ‘षात्यिथ य सि’ गाथा (क्ष१२९-२५६) नास्ति ‘सि’ तस्य कृचिद्द्वेष्यः प्रियो वा, सर्वेष्वेव जीवेषु तुल्यमनस्त्वात्, एतेन भवति समन्वाः, समं भनेऽस्येति समन्वाः, एयोऽन्योऽपि पर्याय इति गाथार्थः । ‘उरग’ गाहा (क्ष१३०-२५६) उरगसमः परकृतविलः निवासात्, गिरिसमः परीष्वेष्यसर्गनिष्ठकम्पत्वात्, ज्वलनसमस्तपस्तेजोयुक्तत्वात्, सागरसमो गुणरत्नयुक्तत्वात्, नभस्तुत्समो निरालंबनत्वात्, गेहगिरिसमः सुखदुःखयोस्तुल्यत्वात्, भ्रमरसमोऽनियतवृत्तित्वात्, मृगसमः संसारं प्रति निष्येद्वगात्, धरणिसमः सर्वस्वर्णसदिष्युत्वात् ज्वलहसमो निष्पट्कत्वात्, पङ्कजलस्थार्नायकामभोगाप्रवृत्तेरित्यर्थः, रविसमस्तमोविद्यतकत्वात्, पवनसमः सर्वत्राप्रतिद्वत्वात्, एतत्प्रस्तु यः असौ ऋग्यन इति गाथार्थः । ‘तो समणो’ गाहा (क्ष१३१-२५६) ततः श्रमणो यदि सुमनाः, द्रव्यमनः प्रतीत्य, भावेन च यदि न भवति पाष्टमनाः, एतत्पलमेव दर्शयति-स्वजने च जने च समः, समव्याप्तमानव्योरिति गाथार्थः । सामायिकवाँश्य श्रमण इति सामायिकाविकारे खल्वस्योपन्यासो न्वायथ एवेत्युक्तो नामनिष्पत्तः । ‘से किं तं सुत्तालावगनिष्पत्ते’ त्यादि, यः सूत्रपदानां नामादिन्यासः स सूत्राङ्गपक्निष्पत्ते इति । इषानां सूत्राङ्गपक्निष्पत्तो लिखेष्य इच्छावेदिति एषयति श्वेतपदवित्तुमालमानमवसरप्राप्तत्वात्, य च प्राप्तलक्षणोऽपि व निष्पत्ते, अस्त्वप्ते ?, अस्यार्थं, द्वाष्यं च अस्ति इतः तृतीयमहुयोगद्वारमनुभावं इति तत्र निष्पत्ते इह निष्पत्तेभवति, इह वा निष्पत्तेभवति, तरसादित् न निष्पत्तेते, तत्रैव निष्पत्तेते इति, आहकः पुनरित्यं गुणः?, सूत्रानुगमे सूत्रभावः, इह तु तदभव इति विषयः, आह-वद्येषं किमर्थमिहेऽचार्यते ?, उच्यते, निष्पत्तेभवति, उक्ते निष्पत्तेः ।

निष्पत्तेः
अनुभवश्च

॥१२१॥

आगम (४७)	<h2 style="text-align: center;">“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः)</h2> <p style="text-align: center;">..... मूलं [१५१] / गाथा [१३२-१३४]</p>			
	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः			
प्रति सूत्रांक [१५१] गाथा ॥१३२- १३४॥	श्रीअनु० हारि.वृत्ती ॥१२२॥	<p>‘से किं तं अषुगमे’ इत्यादि (१५१-२५८) अषुगमनमनुगमः, स च द्विविधः-सूत्रानुगमो निर्युक्त्यनुगमश्चेति, निर्युक्त्यनुगमश्चिव- धस्तद्यथा निशेषनिर्युक्त्यनुगम उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगमः सूत्रस्पर्शनिर्युक्त्यनुगमश्च, निशेषोपोद्घातसूत्राणां व्याख्याविधिरित्यर्थः, तत्र निशेष- निर्युक्त्यनुगमोऽनुगतः यः खल्वोधनामादिन्यास उक्तो बद्यति चेति वृद्धा व्याचक्षते, उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगमस्त्वाभ्यां द्वाभ्यां गाथाभ्यामनुग- न्तव्यस्तद्यथा-‘उद्देसे’ गाहा, (५१३२-२५८) ‘किं कइविहं’ गाहा, (५१३३-२५८) इहं गाथाद्वयमतिगम्भीरार्थं मा भूदव्युत्पन्नविने- यानां मोह इत्यावश्यके प्रपञ्चेन व्याख्यास्यामः, सूत्रस्पर्शनिर्युक्त्यनुगमस्तु सति सूत्रे भवति, सूत्रं च सूत्रानुगमे, स चावसरप्राप्त एव, तत्रेवं सूत्रमुच्चारितव्यं-‘अस्पूलित’ भित्यादि व्याख्याकपदे व्याख्यातं तथैव वेदितव्यमिति, विषयविभागस्त्वमिति-‘होइ कयत्यो वोंडु सपदच्छेदं सुर्यं सुताणुगमो । सुत्तालावगणाद्यो नामाविष्णासाविष्णिओगं ॥१॥ सुत्तकासियनिज्जुचिनिओगो सेसओ पदव्यादी । पायं साचेचिय- णेगमणयादिमतगोयरो भणिष्ठो ॥२॥ एवं च-‘सुत्तं सुताणुगमो सुत्तालावगकओ य निक्खेवो । सुत्तप्कासियनिज्जुची णया य समर्गं हु वस्त्रांति ॥३॥ शेषानाक्षयपरिहारानावश्यके वद्यामः, ‘तो तत्थ णन्निजहिती ससमयपद् चे’लावि ततः सूत्र उच्चारिते ज्ञास्यते स्वसमयपदं वा पृथिवीकायिकादि, परसमयपदं वा नास्ति जीव एवेत्यादि, अनयोरेवैक बन्धपदं अपरं मोक्षपदमित्यके, अन्ये तु ‘प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशास्त- द्विधय’ इति (तत्त्वार्थे अ, ८सू. ४) बन्धपदं, कृत्तनकमक्षयान् मोक्ष इति मोक्षपदं, आह-तदुभयमपि त्वसमयपदे तत्किम्बर्थं भेदेनोक्तमिति, उच्यते, अर्थाधिकारमेदादू, एवं सामायिकनोसामायिकयोरपि वाच्यमिति, मक्षरं सामायिकपदमिदमेव, नोसामायिकपदं तु ‘धध्मो मंगल’ भित्यादि, अनेनो- पन्यासप्रयोजनमुक्तमत उच्चार्य इत्यर्थः, ततस्तरिमन्तुच्चरिते सति केषांचिद्गवतां साधूनां केचन अर्थाधिकाराः अविगताः-परिज्ञाता भवन्ति, क्षयोपशमवैचित्र्यात् केचिदनीधिगतास्ततस्तेषामनविगतानामर्थाधिकाराणामभिगमस्वार्थं पदेन-पदसंबंधनीत्या प्रतिपदं वा वर्तयिष्यामः-व्याख्यास्यामः</p>	निशेषादि निर्युक्त्य- नुगमः	॥१२२॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१५१] / गाथा [१३२-१३४]
प्रति सूत्रांक [१५१] गाथा ॥१३२- १३४॥	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>श्रीअनु० हारि.वृत्ती ॥१२३॥</p> <p>सम्प्रति व्याख्यालक्षणमेवाह-‘संचिता य’ (*१३४-२६१) इत्यादि, तत्रास्त्वलितपदोऽच्यारणं संहिता ‘परः सञ्चिकर्षः संहिते’ (पा० १-४-१०९-८५) ति वचनात्, यथा-करोमि भदन्त ! सामायिकमित्यादि, पदानि तु-करोमि भदन्त ! सामायिकं, पदार्थस्तु करोमीत्यभ्युपगमे, भदन्त ! इत्यामन्त्रणे, समभावः सामायिकमिति, पदविप्रहस्तु प्रायः समांसविषयः, पदयोः पदानां विश्लेषोऽनेकार्थसंभवे सति इष्टार्थतिथमाय क्रियते, यथा राज्ञः पुरुषो राजपुरुषः इवेतः पटोऽस्येति इवेतपट इत्यादिसमासभाकृदविषयसूत्रानुपाती, चोदना-चालना तदव्यवस्थापनं प्रसिद्धिः, यथा-करोमि भदन्त ! सामायिकमित्यत्र गुरुवामन्त्रणवच्चने भदन्तशब्द इत्युक्ते सत्याह-गुह्यविरहे करणे निरथकोऽयग्निति, न, स्थापनाचाय-भावेन, स्थापनाचार्यामन्त्रणेन च विनयोपदेशनार्थ इति सार्थकः, एवं पदविषयं विश्लेषिजानाहि लक्षणं, व्याख्याया इति प्रक्रमाद्यते, वाचि (नामि) कादिपदादिस्त्वरूपं त्वावइयके स्वस्थान एव प्रपञ्चेन वक्ष्यामि, गमनिकामावंभेतदित्युक्तोऽनुगमः।</p> <p>‘से किं तं नये’ त्यादि, (१५२-२६४) शब्दार्थः पूर्ववत्, सम सूलनयाः प्रज्ञासास्तव्याः-नैगम इत्यादि, तत्थ येषोहिति-न एकं नैकं, प्रभुतानीत्यर्थः, एतैः कैः ?-मानैः-महासत्त्वासामान्यविशेषज्ञानैर्मीते भिनोतीति वा नैकम इति नैकमस्य निश्चिः, निगमेषु भवो नैगमः, निगमाः-पदार्थपरिच्छेदाः, तत्र सर्वत्र सक्षिप्तमनुगताकारावबोधेतुभूतं च सामान्यविशेषं द्रष्टव्यत्वादि व्याख्यात्वावद व्याख्यात्वावदोधेतुभूतं च नित्य-द्रव्यवृत्तिमन्तं विशेषं, आह-इत्थं नैगमः तद्द्वय अयं ग्रन्थगदाष्टिरेवास्तु, सामान्यविशेषाभ्युपगमपरत्वात्, साधुविदिति, नैतदेवं, सामान्यविशेष-वस्तुनां अत्यन्तमेवाभ्युपगमपरत्वात्त्वस्य, आह च भाष्यकारः-‘जं सामण्णविसेसे परोपरं वत्युओ य सो भिण्णे । मण्णइ अच्चतमधो मिच्छिद्वी कणादव्व ॥ १ ॥। दोहिवि णएहिं पीयं सत्थमुल्लण तदवि मिच्छत्तं । जं सविसयपद्माणत्तणेण अण्णोणणिरेवक्षो ॥ २ ॥। अथवा निलयनप्रस्थकप्रामोदाहरणेभ्यः प्रतिपादितेभ्यः खल्वयमवसेय इत्यलं प्रसङ्गेन, गमनिकामावंभेतत् । ‘सेसाण’ मित्यादि,</p> <p>नैगमः संग्रहश्च</p> <p>॥१२३॥</p>
दीप अनुक्रम [३३२- ३३६]	*** अथ ‘नय’-अधिकारः वर्णयते

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१७४-१७५] / गाथा [१३५-१४१]
प्रत सूत्रांक [१७४- १७५]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा [१३५- १४१]	<p>श्रीअनु० हारि॒वृत्तौ ॥१२४॥</p> <p>शेषाणामपि नयानां संग्रहादीनां लक्षणमिदं शूणत बद्ये-अभिशास्ये इत्यर्थः । ‘संग्रहित’ गाहा (१३६-२६४) आभिमुख्येन गृहीतः-उपात्तः संग्रहीतः पिङ्गितः, एकजातिमापन्ना अर्थः विषया यस्य तत्संग्रहीतविंडितार्थं संग्रहस्य बचनं ‘समाप्ततः’ संक्षेपतः ब्रवते तीर्थकरणगणधरा इति, एतदुक्तं भवति-सामान्यप्रतिपादनपरः खल्वयं, सदित्युक्ते सामान्यमेव प्रतिपद्यते, न विशेषान्, तथा च मन्येत-विशेषाः सामान्य-तोऽर्थान्तरभूताः स्युरनर्थान्तरभूता वा !, यद्यर्थान्तरभूता न सन्ति, सामान्यादर्थान्तरत्वात्, खपुष्पवत्, अथानर्थान्तरभूताः सामान्यमात्रमेव तदवद्व्यतिरिक्तत्वात्स्वरूपवत् पर्यामं व्यासेन, उक्तः संग्रहः । ‘बच्चइ’ इत्यादि, ब्रजति चिराधिक्ये चयनं चयः अधिकश्चयो निश्चयः-सामान्यविगतो निश्चयो विनिश्चयः-विगतसामान्यभावाः ददर्श-तत्त्विमित्तं, सामान्यभावायेति भावना, व्यवहारो नयः, क ॑- सर्वद्रव्येषु-सर्वद्रव्यविषये, तथा च विशेषप्रतिपादनपरः खस्वर्यं प्रदित्युक्ते विशेषानेव अदादीम् प्रतिपद्यते, तेषां व्यवहारहेतुत्वात्, न तदतिरिक्तं सामान्यं, तस्य अव्यवहारपतित्वात्, तथा च सामान्यं विशेषेष्यो विभास्यित्वा स्फट्ट ? , यदि भिन्नं विशेषव्यतिरेकोपलङ्घयेत, अथाभिन्नं विशेषमात्रं तत्, वदन्यतिरिक्तत्वात्, तत्स्वरूपविद्विति, अथवा विशेषप्रतिपद्य निश्चयो विनिश्चयः आगोपालाङ्गनाद्यवोधो, न कतिपयविद्वत्संबद्ध इति, तदर्थं ब्रजति सर्वद्रव्येषु, आह च भाष्यकारः-‘भमरादि पंचवण्णादि णिछ्छए जान्मि वा जणवयस्त । अत्थे विणिच्छाओ सो विणिच्छयत्थोत्तिं जो गज्जो ॥ १ ॥ बहुतरओत्ति य तं चिय गमेद संतेवि सेसप्त मुयइ । संववहारपरतया ववहारो लोगमिच्छंतो ॥ २ ॥’ इत्यादि, उक्तो व्यवहार इति गाथार्थः । ‘पच्चुप्पणगाही’ गाहा (१३७-२६४) साम्प्रतमुत्पन्नं प्रत्युत्पन्नमुच्यते, वर्तमानमित्यर्थः, प्रति प्रति वोत्पन्नं प्रत्युत्पन्नं भिन्नेषु॒क्त (ज्वात्म) स्वामिकमित्यर्थः तद् ग्रहीतुं शीलमस्येति प्रत्युत्पन्नग्राही स ऋजुसूत्रं क्षजुश्रुतो वा नयविधिविज्ञातव्यः, तत्र ऋजु-वृत्तमानं अती-वानःगतपरित्यागात् बस्तविलं तत् सूत्रयति-गमयतीति ऋजुसूत्रः, यद्वा ऋजु वक्तव्यिष्ययात् अभिमुखं श्रुतं तु ज्ञानं, ततश्चाभिमुखं ज्ञानमस्येति</p> <p>व्यवहारजु- सूत्रशब्दाः</p> <p>॥१२४॥</p>
दीप अनुक्रम [३३७- ३५०]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१७४-१७५] / गाथा [१३५-१४१]
प्रत सूत्रांक [१७४- १७५]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा [१३५- १४१]	<p style="text-align: center;">॥१२५॥</p> <p>श्रीअनु० हारि.वृत्तौ ॥१२५॥</p> <p>ऋग्मुशुतः, शेषज्ञानानभ्युपगमात्, अयं हि नयः। वर्त्तमानं स्वलिङ्गवचननामादिभिन्नमप्येकं वस्तु प्रतिपद्यते, शेषमवस्थिति, तथाहि-अतीत-मेव्यं वा न भावः, विनष्टानुत्पन्नत्वाददृश्यत्वात् खपुष्पवत्, तथा परकीयमप्यवस्तु निष्फलत्वात् खपुष्पवत्, तस्मादृत्तमानं स्वं वस्तु, तच्च न लिङ्गादिभिन्नमपि स्वरूपमुज्ज्ञति, लिङ्गभिन्नं तटस्तटी तटभिति, वचनभिन्नमापो जलं, नामादिभिन्नं नामस्थापनाद्रव्यभावा इति, उक्तं ऋजुसूत्रः। इच्छति-प्रतिपद्यते, शेषमवस्थिति, तथाहि-अतीतमेव्यं वा न भावः। विशेषिततरं-नामस्थापनाद्रव्यविरहणं समानलिङ्गवचनपर्यायध्वनिबा-च्येन च प्रत्युत्पन्न-वर्त्तमानं, यः कः ?-‘शप् आक्रोशे’ शप्यते इनेनेति शब्दः तस्यार्थपरिप्रहादंभेदोपचारान्नयोऽपि शब्द एव, तथाहि-अयं नाम-स्थापनाद्रव्यकुभां न संत्येवेति मन्यते, तत्कार्याकरणात् खपुष्पवत्, न च भिन्नालिङ्गवचनं, भेदादेव, खीपुष्पवत् कुटवृक्षबद्, अतो घटः कुम्भ इति स्वपर्यायव्यनिवाचन्यमेवैकमिति गाथार्थः। ‘वत्थूओ’ गाहा (॥१३८-२६४) वस्तुनः संक्रमणं भवति अवस्तु नये समभिरुद्देष, वस्तुनो-घटा-ख्यस्य संक्रमणं-अन्यत्र कुटाख्यादौ गमनं भवति अवस्तु, असदित्यर्थः, नये पर्यालोच्यमाने, कस्मिन् ?-नानार्थसमभिरोहणात् समभिरुदस्तस्मिन्, इयमत्र भावना-घट कुम्भ इत्यादिशब्दान् भिन्नप्रवृत्तिनिभित्तत्वाद्द्विन्नार्थगोचरानेव मन्यते, घटपटादिशब्दानिव, तथा च घटनाद् घटः, विशिष्टचेष्टावानर्थो घट इति, तथा ‘कुट कौटिल्ये’ कुटनाद् कुटः, कोटिल्ययोगः त् कुट इति, तथा ‘कुम्भ पूर्णे’ कुम्भनात् कुम्भः, कुरुतिसवपूरणादित्यर्थः, ततश्च यदि घटाख्यर्थे कुटादिशब्दः प्रपद्यते तदा वस्तुनः कुटादेस्तत्र संक्रांतिः कुता भवति, तथा च सति सर्वधर्माणां नियतस्वभावत्वादन्यसंक्षान्त्योभयस्वभावोपगमतोऽवस्तुतेत्यलं विस्तरेण, उक्तः समभिरुदः। ‘वंजण’ इत्यादि, व्यञ्जयते व्यनक्तीसि व्यञ्जनं-शब्दः, अर्थस्तु तद्रोचरः, तच्च तदुभयं-शब्दार्थलक्षणं एवंभूतो नयः विशेषयति, इदमत्र हृदयं-शब्दमर्थेन विशेषयति, अर्थं च शब्देन, ‘घट चेष्टाया’-मिलत्र चेष्टया घटचेष्टां(शब्दां)विशेषयति, घटशब्देनापि चेष्टां, न स्थानभरणक्रियां, ततश्च यदा योपिनमस्तकव्यवस्थितश्चेष्टावानर्थो घटशब्देनो-</p> <p style="text-align: right;">नयः ॥१२५॥</p>
दीप अनुक्रम [३३७- ३५०]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१७४-१७५] / गाथा [१३५-१४१]
प्रत सूत्रांक [१७४- १७५]	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
गाथा [१३५- १४१]	<p>श्रीअनु० हारि.नुचौ ॥१२६॥</p> <p>च्यते तदा स घटः तद्वाचकश्च शब्दः, अन्यदा वस्त्रन्तरस्येव चेष्टाऽयोगादघटत्वं, तदध्वनेश्चायाचक्तव्यमिति गाथार्थः। इत्थं तावदुक्ता नयाः, भेदप्रभेदात्मु विशेषशुतादव्यसेयाः। साम्प्रतं एत एव ज्ञानकियार्थीनवात् भोक्त्वस्य ज्ञानकियानयद्वयान्तर्भवद्वारेण समाप्ततः प्रोच्यन्ते, ज्ञानयः क्रियानयश्च, तत्र ज्ञाननयदर्शनमिदं-ज्ञानमेव प्रधानं ऐहिकामुष्मिकफलप्राप्तिकारणं, युक्तियुक्तव्यात्, तथा चाह-‘णार्यमि’ ति (१३९-२६७) ज्ञाते-सम्यक् परिच्छिद्धे ‘गोणितव्ये’ ति अहीतव्ये उपादेये ‘अग्निपित्रव्यव्याख्यामि’ ति अप्रहीतव्ये, अनुपादेये हेये इत्यर्थः, चशब्दः खल्लभयोर्प्रहीतव्यामही-तव्ययोर्ज्ञातव्यत्वानुकर्षार्थः, उपेक्षणीयसमुच्चयार्थो वा, पवकारस्त्ववधारणार्थः, तस्य चैव व्यवहितः प्रयोगो द्रष्टव्यः-ज्ञात एव प्रहीतव्ये अप्रहीतव्ये वा, तथोपेक्षणीये च ज्ञात एव नाज्ञाते, ‘अत्युमिति अर्थं ऐहिकामुष्मिके, तत्र ऐहिकः प्रहीतव्यः स्वक्लृप्तनांगनादिः, अप्रहीतव्यो विषशखकण्ठकादिः, उपेक्षणीयस्तुषादिः, आमुष्मिको प्रहीतव्यः सम्यग्दर्शनादिरप्त्यादितव्यो मिथ्यात्वादिरुपेक्षणीयो विषक्षयाऽभ्युदयादिरिति, तस्मिन्नर्थे ‘यतितव्य-मेव’ति अतुस्वारलोपात् यतितव्यमेवं अनेन प्रकारेणैहिकामुष्मिकफलप्राप्त्यार्थिना सच्चेन प्रवृत्त्यादिलक्षणः प्रयत्नः कार्य इत्यर्थः, इत्यं चैतदंगी-कर्त्तव्यं, सम्यग्ज्ञाते प्रवर्त्तमानस्य कालविसंवाददर्शनात्, तथा चान्येरप्युक्तं-‘विज्ञापिः फलदा पुंसां, न क्रिया फलदा मता। मिथ्याज्ञानानात्प्रवृत्तस्य, फलासंवाददर्शनात् ॥१॥’ तथाऽमुष्मिकफलप्राप्त्यार्थिनाऽपि ज्ञान एव यतितव्यं, तदा चाऽऽगमोऽप्येवं व्यवस्थितः, यत उच्चं-‘पदमं नाणं तओ दया, एवं चिद्ग्रुष्टव्यस्थं जए। अण्णाणी किं काहिति, किं वा नाहिति छेयपावर्य ॥ १ ॥’ इतरचैतदेवमंगीरकर्त्तव्यं, यस्मात्तीर्थकरणग्रन्थैररपीतार्थीनां केवलानां विद्वारकियाऽपि निविद्वा, तथा चाऽऽगमः ‘गीयत्वे य विद्वारो वीओ गीयत्वमीसिओ भणिओ। एतो तइय विहारो णाणुणाओ जिणवेरीह ॥ १ ॥’ नवान्धेनान्धः समाकृष्यमाणः सम्यक् पन्थानं प्रतिपद्यत इत्याभिप्रायः, एवं तावत् क्षायोपशमिकं ज्ञानमधिकृत्योक्तं, ज्ञायिकमप्यंगीकृत्य विशिष्टफलसाधकत्वं तस्यैव विशेषं, यस्मादर्द्दोऽपि भवांभोधितवस्थस्य दीक्षाप्रसिपननस्योत्कृष्ट-</p> <p>ज्ञाननयः ॥१२६॥</p>
दीप अनुक्रम [३३७- ३५०]	

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१७४-१७५] / गाथा [१३५-१४१]
प्रत सूत्रांक [१७४- १७५] गाथा ॥१३५- १४१॥	पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः
श्रीअनु० हारि.वृचौ ॥१२७॥	चरणवतोऽपि न तावदपर्वग्नप्राप्तिः संजायते यावदजीवाजीवाद्यस्थिलवस्तुपरिच्छेदरूपं केवलज्ञानं नोत्पन्नमिति, वस्मात् ज्ञानमेव प्रधानमैहिका-मुष्मिकफलप्राप्तिकारणमिति स्थितं, ‘इति जो उवएसो सो ज्ञो णाम’ ति इत्येवमुखेन न्यायेन य उपदेशो ज्ञानशाधान्यरूपापनपरः सनयो नाम, ज्ञानय इत्यर्थः, अयं चतुर्विधेऽपि सम्यक्त्वादिसामायिके सम्यक्त्वासम्पायिकश्रुतसामायिकद्वयमेवेच्छति, ज्ञानात्मकत्वादस्य, देश-विरदिसर्वविरातिसामायिके तु तत्कार्यत्वात्तदायत्तत्वाच्च नेच्छति, गुणभूते वेच्छतीति गाथार्थः, उक्तो ज्ञानयः, अधुना कियानयावसरः-तदर्शीनं चेदं-‘कियैव प्रधानमैहिकामुष्मिकफलप्राप्तिकारणं युक्तियुक्तत्वात्, तथा चायमत्युक्तलक्षणमेव स्वप्रक्षसिद्धये गाथामाह‘णार्थमि गिणिहतव्ये’ इत्यादि, अस्य कियानुसारेण व्याख्या-ज्ञाते भ्रहीतव्ये चेवार्थे ऐदिकामुष्मिकफलप्राप्त्यर्थिना यतितद्यमेव, न यस्मात्प्रवृत्त्यादिलक्षण-प्रयत्नव्यतिरेकेण ज्ञानवतोऽप्यभिलिपितार्थावाप्तिरूप्यते, तथा चान्यैरप्युक्तं-‘कियैव फलद्वा पुंसां, न ज्ञानं फलदं मतम् । यतः स्त्रीभक्ष्यमोगज्ञो, न ज्ञानात्सुखितो भवेत् ॥ १ ॥’ तथाऽऽमुष्मिकफलप्राप्त्यर्थिनपि क्रियैव कर्तृत्वा, तथा च सुनीन्द्रवचनमप्येवमेव व्यवस्थितं, यत उक्तं-‘चेइयकुलगणसंबे आयरियाणं च पवयणसुपुण थ । सङ्खेसुवि तेण कथं तवसंजममुज्जमंतेण ॥ १ ॥’ इतश्चैतदेवमर्गीकर्त्तव्यं, यस्मात्तीर्थकरणवैरः क्रियाविकलानां ज्ञानमपि विफलमेवोक्तं, तथा चाऽऽगमः-‘सुवद्वृंपि सुतमहीतं किं काहिति चरणविष्पमुक्तस्स ? । अंधस्स जह पलित्ता दीविसयसहस्रकोडीति ॥ १ ॥’ द्विशक्तियाविकलत्वात्तस्येवमिप्रायः, एवं तावद् क्षायोपशमिकं चारित्रमञ्जिकृत्योक्तं, क्षायिकमप्य-गीकृत्य प्रकृष्टफलसाधकत्वं तस्यैव ह्येय, यस्मादृहेतोऽपि भगवतः समुत्पन्नकेवलज्ञानस्यपि न तावद्वृंपिश्राप्तिः संजायते यावदखिलकर्म-न्धनानलभूता हस्वपञ्चाक्षरोद्विरणमात्रकालावस्थायिनीं सर्वसंवररूपा चारित्रकिया नावाप्तेति, तस्मात्क्रियैव प्रधानमैहिकामुष्मिकफलकारण-मिति स्थितं, ‘इति जो उवएसो सो ज्ञो णाम’ ति इत्येवमुक्तन्यायेन य उपदेशः क्रियाप्रधान्यरूपापनपरः सनयो नाम, क्रियात्य इत्यर्थः ।
दीप अनुक्रम [३३७- ३५०]	क्रियानयः ॥१२७॥

आगम (४७)	“अनुयोगद्वार”- चूलिकासूत्र-२ (मूलं+वृत्तिः) मूलं [१७४-१७५] / गाथा [१३५-१४१]
प्रत सूत्रांक [१७४- १७५] गाथा [१३५- १४१]	<p>पूज्य आगमोदारकश्री संशोधिता मुनि दीपरत्नसागरेण संकलिता आगमसूत्र [४७]चूलिकासूत्र [२]अनुयोगद्वार मूलं एवं हरिभद्रसूरिजीरचिता वृत्तिः</p> <p>श्रीअंतु० हारि.वृत्ती ॥१२८॥</p> <p>अयं च सम्यक्त्वादौ चतुर्विषेऽपि सामायिके देशविरतिसर्वविरतिसामायिकद्वयमेवेच्छति, कियात्मकत्वादस्य, सम्यक्त्वसामायिकश्रुतसामायिके तु तदर्थमुपादीयमानत्वादप्रधानत्वात् नेच्छति, गुणभूते वेच्छताति गाथार्थः ॥ उक्तः कियानयः, इत्थं ज्ञानकियास्वरूपं श्रुत्वाऽविदिततदभिप्रायो विनेयः संशयापन्नः सन्नाह-किमत्र तत्त्वं ?, पक्षद्वयेऽपि युक्तिसंभवात्, आचार्यः पुनराह-‘सव्वेसिंपि’ गाहा (*१४०-२६७) अथवा ज्ञानकियानयमतं प्रत्येकमभिधायाधुना स्थिरपच्चमुपदर्शयन्नाह-‘सव्वेसिंपि गाहा’ गाहा, सर्वेषामिति मूलनयानाम्, अपिशब्दात्तद्वेषानां च नयानां द्रव्यास्तिकादीनां बहुविधवक्तव्यतां-सामान्यमेव विशेषा एव उभयमेव बाऽनपेक्षमित्यादिरूपां, अथवा नामादीनां कः कं साधुभिच्छ्रीतीत्यादिरूपां निशम्य-श्रुत्वा तस्सर्वनयविशुद्धं-सर्वनयसम्मतं वचनं यच्चरणगुणस्थितः साधुः. यस्मात्सर्वनया एव भावनिक्षेपमिच्छुतीति गाथार्थः ॥</p> <p>समाप्तेयं शिष्यहितानामानुयोगद्वारटीका, कृतिः सिताम्बराऽऽचार्यजिनभट्टपादसेवकस्याऽऽचार्यहरिभद्रस्य ‘कृत्वा विवरणमेतत्प्राप्तं यन्किङ्गविद्व भया कुशलम् । अनुयोगपुस्तसरत्वं लभतां भव्यो जनस्तेन ॥ १ ॥</p> <p>इति श्रीहरिभद्राचार्यरचिता अनुयोगद्वारसूत्रवृत्तिः</p> <p>१२८</p>
दीप अनुक्रम [३३७- ३५०]	
	<p>मुनिश्री दीपरत्नसागरेण पुनः संपादितः (आगमसूत्र ४७)</p> <p>“अनुयोगद्वारसूत्र” (हारिभद्रिया-वृत्तिः) परिसमाप्तं</p>

नमो नमो निम्नलदंसणस्स
पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरुभ्यो नमः

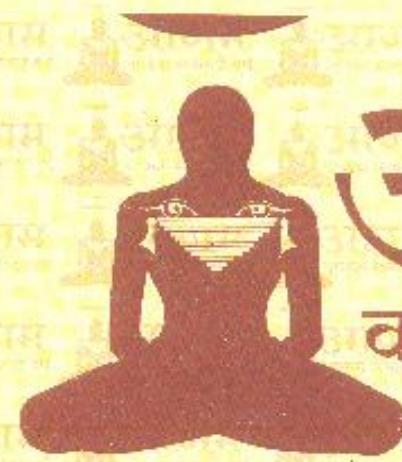
भाग-7

पूज्य आगमोद्धारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधितः संपादितश्च
“अनुयोगद्वार-चूलिकासूत्र” [हरिभद्रसूरिजी-रचिता वृत्तिः]

(किंचित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुनः संकलितः
“अनुयोगद्वारसूत्र” मूलं एवं वृत्तिः” नामेण परिसमाप्तः

‘सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि-2’ श्रेणि, भाग-7



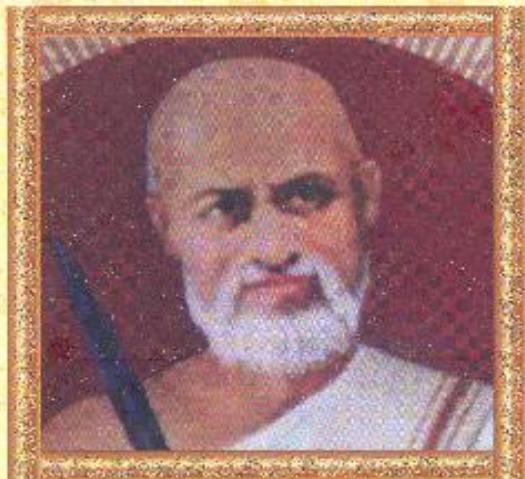
आजाम

वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्नलद्दंसणस्स

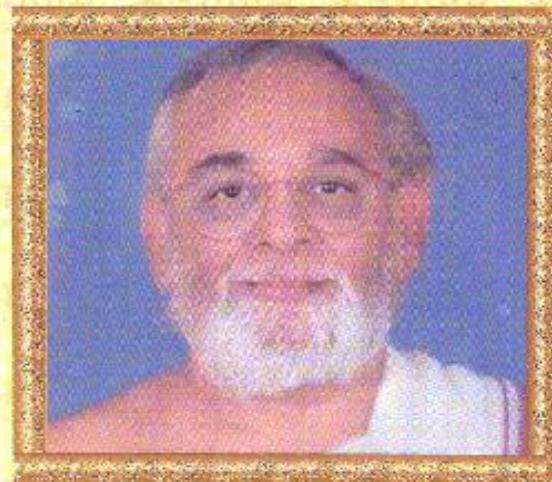
सवृत्तिक-आगम-सूत्राणि-2

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनन्दसागरसूत्रीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता



आगम दिवाकर मुनिश्री दीपस्तनसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्ष]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका

मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता

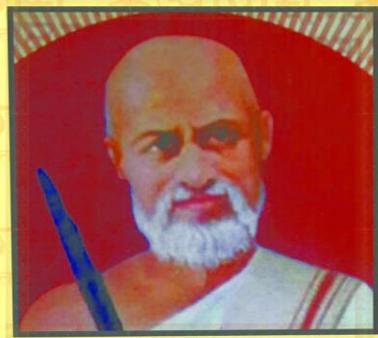
सच्चारित्र चूडामणि स्वर्गस्थ पूज्यपाद
गच्छाधिपति आचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागर
सूरीश्वरजी महाराज साहेब



श्री परम आनंद श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन संघ
वीतराग सोसायटी, प्रभूदास ठक्कर कोलेज रोड, पालडी, अमदावाद

करीब पचास साल पहले परम पूज्य स्वर्गस्थ गच्छाधिपति
आचार्य देव श्रीमद् देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब द्वारा
संस्थापित इस संघमें श्री शीतलनाथ भगवंत का जिनालय भी है,
जिन के प्रतिष्ठाचार्य भी पूज्य देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी म० ही है ।

इस संघमें पूज्य साधू -भगवंत एवं साध्वी -महाराज के लिए
उपाश्रय भी है, जहां हर-साल चातुर्मास करवा के श्रावक-शाविकाओं
को धर्म-आराधन से लाभान्वित करवाया जाता है । इस संघमें
आयंबिलभवन, उबाला हुआ पानी, ज्ञान-भण्डार एवं पाठशाला की
भी बहोत अच्छी सुविधा प्रदान हो रही है । ऐसे सम्यग्-मार्गी संघ
की सङ्खावना और प्रभावक आचार्य पूज्य श्री हर्षसागरसूरिजी म०
की प्रेरणा से इस शास्त्र के लिए अनुदान प्राप्त हुआ है ।



मूल संशोधक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनन्दसागरसूरीश्वरजी महाचाजसाहेब



आगम - ४४ + ४५

“नन्दी” + “अनुयोगद्वार” वृत्तिः

अभिनव-संकलनकर्ता
आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

